मत्स्य पुराण

[द्वितीय खण्ड]

सरल भाषानुवाद सहित



सम्पादक :

वेदमूर्ति तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

चारों वेद, १०८ उपनिषद्, षटदर्शन,

२० स्मृतियां और अठारह पुराणों

के प्रसिद्ध भाष्यकार



प्रकाशक :

संस्कृति संस्थान

ख्वाजा कुतुब (वेद नगर), बरेली (उ० प्र०)

प्रकाशक :

डॉ० चमनलाल गौतम

संस्कृति संस्थान, ख्वाजा कुतुब,
बरेली।



सम्पादक :

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य





प्रथम संस्करण
१९७०



मुद्रक :
विनोदकुमार मिश्र
राजेश्वरी प्रिंटिंग प्रेस,
आर्य समाज रोड, मथुरा



मूल्य :
सात रुपये पचास पैसे

दो शब्द

पुराणों का मुख्य उद्देश्य धर्म-कथाओं और धर्म-इतिहास का वर्णन करना माना गया है, पर बहुसंख्यक पुराणों में इनके अतिरिक्त विभिन्न कलाओं और विद्याओं का विवेचन भी बड़े विस्तारपूर्वक किया गया है। नारद पुराण, गरुड़ पुराण, अग्नि पुराण, विष्णु-धर्मोत्तर पुराण आदि इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। नारद पुराण में वेद के छः अंगों—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष, छन्द शास्त्र का जैसा विस्तृत और विशद वर्णन किया गया है उसे देखकर आश्चर्य होता है। गरुड़ पुराण मे रोग और औषधियों का जितना वर्णन मिलता है, उसे एक छोटा-मोटा पृथक आयुर्वेद ग्रंथ ही कहा जा सकता है। विष्णु धर्मोत्तर पुराण मे राज-धर्म और राज्य-सञ्चालन सम्बन्धी सैकड़ों पृष्ठव्यापी एक पूरा शास्त्र ही मौजूद है।

'मत्स्यपुराण' के इस दूसरे खण्ड मे भी 'राज-धर्म' 'राजनीति 'गृह निर्माण विद्या' और 'मूर्तिकला' का पर्याप्त विस्तार के साथ वर्णन पाया जाता है। इसमे न केवल राजा के कर्तव्य और प्रजापालन का उपदेश दिया गया है, वरन् राजधानी का नगर किस प्रकार बसाया जाय, किलाबन्दी किस प्रकार की जाय, अपनी रक्षा और शत्रुओं का सामना करने के लिये उसमे कैसे अस्त्र-शस्त्रों, युद्ध-सामिग्री और हर तरह की घायलों की चिकित्सार्थ जड़ी-बूटियों तथा औषधियों का संग्रह किया जाय इसका वर्णन दस-बीस अध्यायों में विस्तार के साथ किया गया है।

प्रसाद, भवन, गृह आदि के निर्माण मे भी इस देश के प्राचीन 'वास्तु-विद्या' (इंजीनियरिङ्ग) का ज्ञान भली प्रकार प्रदर्शित किया गया है। मकानों में द्वार किस तरफ कैसे बनाये जायें और खम्भों के निर्माण मे किन बातों का ध्यान रखना आवश्यक है? इसमें चौकोर से लेकर बत्तीस पहलों तक के तरह-तरह के खम्भों का जो वर्णन मिलता है उससे उस जमाने के लोगों की कलाप्रियता का परिचय मिलता है।

देवताओं की मूर्ति निर्माण में तो काफी जानकारी का होना अनिवार्य ही है। प्रत्येक देवता की मूर्ति में क्या विशेष लक्षण रखे जायें जिससे उसे ठीक-ठीक पहिचाना जाय और उसके समस्त साम्प्रदायिक चिन्ह उसमें स्पष्ट दिखाई पड़ सकें? उदाहरण के लिये विष्णु-भगवान् की मूर्ति-निर्माण में वर्णन किये कुछ लक्षण यहाँ दिये जाते हैं—

"शंख, चक्र, पद्म और गदा धारण करने वाला—परम प्रशान्त उनका मस्तक छत्र के आकार से संयुत होता है। शंख के समान ग्रीवा, शुभ नेत्र, ऊँची नाक, सीप के से कान, परम प्रशान्त उरु वाला उनका रूप होता है। उनकी मूर्ति कहीं आठ भुजाओं और कहीं चार भुजाओं से युक्त होती है। यदि आठ भुजा बनाई जायें तो खड्ग, गदा, शर, दिव्य पद्म ये सब आयुध विष्णु जी के दक्षिण भाग में होने चाहिए और धनुष, खेटक, शंख, चक्र ये चार वाम भाग में रहने चाहिये। चार भुजा वाले स्वरूप में गदा और पद्म दक्षिण भाग में और शंख तथा चक्र वाम भाग में रखे जायें। उनके नीचे की ओर पैरों के मध्य भाग में पृथ्वी की कल्पना करनी चाहिये। दक्षिण भाग में प्रणति करते हुये गरुण और वाम भाग में हाथों में पद्म धारण किये लक्ष्मी देवी को विराजमान करना चाहिये। विभूति की इच्छा रखने वाले व्यक्ति को गरुण की स्थापना भगवान के सम्मुख भाग में करनी चाहिये। दोनों पार्श्वों में पद्म से संयुत श्री तथा पुष्टि की स्थापना करे। विद्याधरों के ऊपर तोरण बनाये और उसे दुन्दुभिनाद करते हुये गन्धर्व, लतायें, सिंह और व्याघ्र आदि से सजाये।"

इसी प्रकार प्रत्येक देवता के विशेष चिन्हों को मूर्तियों में दर्शाने का पूरा विवरण दिया गया है। अन्त में सब मूर्तियों के अंग अनुपात के अनुसार कितने बड़े और छोटे होने चाहिये इसको भी स्पष्ट कर दिया गया है। एक जगह कहा गया है कि "मूर्ति की कटि अठारह अंगुल की होनी चाहिये। स्त्री-मूर्ति की कटि बाईस अंगुल की रखी जाती है और दोनों स्तन बारह-बारह अंगुल के होते हैं। नाभि के मध्य का परीणाह

बयालीस अंगुल का अभीष्ट होता है। पुरुषों में यह विस्तार पचपन अंगुल होता है। दोनों कन्धे छः-छः अंगुल के बताये गये हैं। ग्रीवा आठ अंगुल और दोनों भुजाओं का आयाम ब्यालीस अगुल का होता है।" इसी प्रकार शरीर के प्रत्येक अग की—हथेलियों और पाँचों अंगुलियों तक की नाप ठीक-ठीक बतलाई गई है, जिससे मूर्त्ति सब प्रकार से सुन्दर दिखलाई दे और उसमें कहीं बेडौलपन प्रकट हो।

और भी कई अन्य महत्त्वपूर्ण विषय इस खण्ड मे मिलते हैं। भृगु, अंगिरस, अत्रि कुशिक, कश्यप, वसिष्ठ आदि सभी प्रमुख ऋषियों के नाम, गोत्र, वंश, प्रवर स्पष्ट रूप मे दिये गये हैं। ये ही ऋषि भारतीय संस्कृति के आदि जनक माने जाते हैं और अधिकाश पौराणिक उपाख्यान इन्हीं वंशों से किसी न किसी रूप मे सम्बन्धित है। नरसिंह और वाराह अवतारों के चरित्र क विषय मे भी मत्स्य पुराण का वर्णन कुछ विशेषता लिये हुए हैं। देवासुर संग्राम मे दोनों पक्षों के सेनानायकों तथा वीरों का परिचय और उनका संग्राम कवि कल्पना का अच्छा परिचय देने वाला है। सावित्री-सत्यवान की कथा इस पुराण में भी छः-सात अध्यायों मे दी गई है और उसकी वर्णन शैली प्रभावशाली है। मंगल-अमंगल सूचक शकुनों, तरह-तरह के स्वप्नों और अंगों के फड़कने का जो फलादेश दिया गया है वह अधिकांश पाठकों को आकर्षक जान पड़ेगा।

अठारहों पुराणों के स्तर पर विचार करते हुये 'मत्स्य पुराण' को महत्त्वपूर्ण ही माना जायगा। यह न बहुत अधिक बड़ा है और न बहुत छोटा और पुराण के पाँचों अंगों के साथ इसमे पर्याप्त जीवनोपयोगी और समाज की दृष्टि से प्रगतिशील विद्याओं और कलाओं का परिचय दिया गया है। यद्यपि हम एक हजार पृष्ठ मे सब बातों को पूरे विस्तार के साथ नहीं दे सकते तब भी इस संशोधित संस्करण में पाठकों को सभी आवश्यकीय बातों का ज्ञान हो सकेगा और वे स्वयं इसके महत्त्व को अनुभव कर सकेंगे।

—सम्पादक

विषय-सूची

(द्वितीय खण्ड)

मत्स्य पुराण

[द्वितीय खण्ड]

★

६१—नरसिंह माहात्म्य वर्णन

इदानीं श्रोतुमिच्छामो हिरण्यकशिपोर्वधम् ।
नरसिंहस्य माहात्म्यं तथा पापविनाशनम् ॥१
पुरा कृतयुगे विप्रा हिरण्यकशिपुः प्रभुः ।
दैत्यानामादिपुरुषश्चकार स महत्तपः ॥२
दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च ।
जलवासी समभवत् स्नानमौनधृतव्रतः ॥३
ततः शमदमाभ्याञ्च ब्रह्मचर्येण चैव हि ।
ब्रह्मा प्रीतोऽभवत्तस्य तपसा नियमेन च ॥४
ततः स्वयम्भूर्भगवान् स्वयमागम्य तत्र ह ।
विमानेनार्कवर्णेन हंसयुक्तेन भास्वता ॥५
आदित्यैर्वसुभिः साध्यैर्मरुद्भिर्दैवतैस्तथा ।
रुद्रैर्विश्वसहायैश्च यक्षराक्षसपन्नगैः ॥६
दिग्भिश्चैव विदिग्भिश्च नदीभिः सागरैस्तथा ।
नक्षत्रैश्च मुहूर्तैश्च खेचरैश्च महाग्रहैः ॥७

ऋषिगण ने कहा—हे मुनिवर ! इस समय में हम लोग हिरण्य कशिपु के वध के विषय में श्रवण करने की इच्छा रखते हैं तथा भगवान्

नरसिंह प्रभु के माहात्म्य को भी सुनना चाहते हैं जो सम्पूर्ण पापों का विनाश करने वाला है ॥ १ ॥ महा महर्षि श्री सूतजी ने कहा—हे विप्र-वृन्द ! पहिले कृत युग में हिरण्य कशिपु प्रभु दैत्यों का आदि पुरुष था और उसने दश सौ दश हजार वर्ष तक महान् घोर तपश्चर्या की थी। वह स्नान–मौन और व्रत को धारण करने वाला होकर जल में ही निवास करने वाला हो गया था ॥ २, ३ ॥ इसके अनन्तर उस हिरण्य कशिपु दैत्यराज के उस महान् उग्र तप से और नियमों के परिपालन से–शम–दम और ब्रह्मचर्य के द्वारा ब्रह्माजी उस पर बहुत प्रसन्न हो गये थे। जब वे अत्यधिक प्रसन्न हो गये तो स्वयम्भू भगवान् स्वयं ही वहाँ पर उसके तप के स्थल पर आ गये थे। हंसयुक्त-सूर्य के समान वर्ण वाले कामवान् विमान के द्वारा ब्रह्माजी ने वहाँ पर पदार्पण किया था। उस समय में उनके साथ आदित्य–वसुगण–साध्य–मरुद्गण–दैवत–रुद्र—विश्व सहायक—यक्ष—राक्षस —पन्नग—दिशाऐं–विदिशाऐं–नदियाँ—सागर नक्षत्र–मुहूर्त–खेचर और महान् ग्रह सब थे ॥ ४ । ५ । ६ । ७ ॥

देवैर्ब्रह्मर्षिभिः सार्द्धं सिद्धैः सप्तर्षिभिस्तथा ।
राजर्षिभिः पुण्यकृद्भिर्गन्धर्वाप्सरसाङ्गणैः ॥८
चराचरगुरुः श्रीमान् वृतः सर्वैर्दिवौकसैः ।
ब्रह्मा ब्रह्मविदां श्रेष्ठो दैत्य वचनमब्रवीत् ॥९
प्रीतोऽस्मि तव भक्तस्य तपसाऽनेनसुव्रत ! ।
वरं वरय भद्रं ते यथेष्टं काममाप्नुहि ॥१०
न देवासुरगन्धर्वा न यक्षोरगराक्षसाः ।
न मानुषाः पिशाचा वा हन्युर्मान्देवसत्तम ! ॥११
ऋषयो वा न मां शापः शपेयुः प्रपितामह ।
यदि मे भगवान् प्रीतो वर एष वृतोमया ॥१२
न चास्त्रेण न शस्त्रेण गिरिणा पादपेन च ।
न शुष्केण न चार्द्रेण न दिवा न निशाऽथवा ॥१३

भवेयमहमेवार्कः सोमोवायुर्हुताशनः ।
सलिलञ्चान्तरिक्षञ्च नक्षत्राणि दिशो दश ॥१४
अहं क्रोधश्च कामश्च वरुणो वासवोयमः ।
धनदश्च धनाध्यक्षो यक्षः किंपुरुषाधिपः ॥१५

ब्रह्माजी जब वहाँ आये थे तो वे देवगण—ब्रह्मर्षि—सिद्ध और सप्तर्षियों के साथ में थे। बड़े २ राजर्षि-पुण्यवान्—गन्धर्व—अप्सराओं के समुदाय तथा समस्त दिवोकसों के साथ में वे चरों और अचरों के गुरु—ब्रह्मवेत्ताओं मे परम श्रेष्ठ श्रीमान् ब्रह्माजी परिवृत थे। वहाँ पहुँच कर जगद्गुरु ब्रह्माजी ने उस दैत्यराज से यह वचन कहा था ॥ ८ । ९ ॥ हे सुव्रत ! तुम मेरे परम भक्त हो। मैं इस समय में आपके इस अत्यन्त उग्र तप से परम प्रसन्न हो गया हूँ। आपका कल्याण हो, अब जो भी कोई वरदान मुझसे चाहते हो माँग लो और जो भी आपको परम अभीष्ट कामना हो उसे प्राप्त करलो ॥ १० ॥ यह ब्रह्माजी का वचन सुनकर हिरण्य कशिपु ने कहा—हे देव सत्तम ! मैं यही चाहता हूं कि देव—असुर—गन्धर्व—यक्ष—उरग—राक्षस—पिशाच और मानुष कोई भी मेरा हनन न करें ॥ ११ ॥ हे प्रपितामह ! ये ऋषिगण भी अपने शापों के द्वारा मुझे अभिशप्त न करने पावें। यदि भगवान् आप मुझ पर पूर्णतया प्रसन्न हो गये हैं तो मैं आपसे यही वरदान प्राप्त करना चाहता हूँ ॥१२॥ हे भगवन् ! मेरी मृत्यु का साधन कोई भी अस्त्र—शस्त्र—गिरि—पादप आदि न होवे अर्थात् इनमें किसी के भी द्वारा मैं न मारा जा सकूं। मैं किसी भी शुष्क स्थल में अर्थात् भूमि पर और आर्द्र भाग में अर्थात् जल में न मरूं। मुझे दिन में तथा रात्रि में किसी भी समय में मृत्यु न आवे अर्थात् मुझे दिन और रात में कोई भी न मार सके ॥ १३ ॥ हे ब्रह्मन् ! मैं ही सूर्य हो जाऊं तथा सोम—वायु और हुताशन मैं ही बन जाऊं अर्थात् इन सबकी शक्ति मेरे अन्दर ही हो जावे। मैं ही सलिल—अन्तरिक्ष—नक्षत्र—दशों दिशाएं हो जाऊँ अर्थात् इन सबकी शक्ति मेरे ही

अन्दर उपस्थित हो जावे। हिरण्यकशिपु ने कहा कि मैं ही क्रोध-काम-वरुण-इन्द्र-यम-धनद-धन का स्वामी किम्पुरुषों का अधिप यक्ष होजाऊँ अर्थात् इन सबकी क्षमता मेरे ही अन्दर हो जानी चाहिए और मेरे सामने ये सब शक्तिहीन हो जावें ॥१-॥१५॥

एते दिव्या वरास्तात ! मया दत्तास्तवाद्भुताः।
सर्वान् कामान् सदा वत्स ! प्राप्स्यसे त्वं न संशयः॥१६
एवमुक्त्वा स भगवान् जगामाकाश एव हि।
वैराज ब्रह्मसदनं ब्रह्मर्षिगणसेवितम् ॥१७
ततो देवाश्च नागाश्च गन्धर्वा ऋषिभिः सह।
वरप्रदानं श्रुत्वैव पितामहमुपस्थिताः ॥१८
वरप्रदानाद्भगवन् ! वधिष्यति स नोऽसुरः।
तत्प्रसीदाशु भगवन् ! वधोऽप्यस्य विचिन्त्यताम् ॥१९
भगवन् ! सर्वभूतानामादिकर्त्ता स्वयं प्रभुः।
स्रष्टा त्वं हव्यकव्यानामव्यक्तप्रकृतिर्बुधः ॥२०
सर्वलोकहितवाक्यं श्रुत्वा देव प्रजापतिः।
आश्वासयामास सुरान् सुशीतैर्वचनाम्बुभिः ॥२१

ब्रह्माजी ने कहा—हे तात ! ये सब दिव्य वरदान हैं और बहुत ही अद्भुत हैं किन्तु मैंने तुमको ये सभी वरदान दे दिये हैं। हे वत्स ! तुम अपने सम्पूर्ण कामों को सदा प्राप्त कर लोगे—इसमें लेश मात्र भी संशय नहीं है ॥ १६ ॥ इस प्रकार से उन भगवान् ब्रह्माजी ने कहा था और फिर आकाश के मार्ग से ही वापिस चले गये थे। ब्रह्माजी उस समय में ब्रह्मर्षि गणों से सेवित ब्रह्माजी का घर वैराज को चले गये थे ॥ १७ ॥ इसके पश्चात् देव-नाग-गन्धर्व आदि सब ऋषिगण के साथ इस वरों के प्रदान को सुनकर ही ब्रह्माजी पितामह के समीप में उपस्थित हुए थे ॥ १८ ॥ देवगण ने कहा—हे भगवन् ! आपके इस प्रकार के वरदानों के दे देने से तो यह हमारा सबका वध कर डालेगा।

हे भगवन्! इसलिये आप प्रसन्न होइये और शीघ्र हो इसका कोई वध होने का उपाय भी सोचिए ॥ १९ ॥ हे भगवन्! आप तो समस्त भूतों के आदि कर्त्ता है और स्वयं प्रभु हैं। आप हव्यकव्यों के सृजन करने वाले हैं। अव्यक्त प्रकृति और परम बुध है। इस समस्त लोकों के हित करने वाले वाक्य को सुनकर प्रजापति देव ने सब सुरो को सुगीत वचन रूपी सुन्दर जलों के द्वारा समाश्वासन दिया था ॥२०॥२१॥

अवश्य त्रिदशास्तेन प्राप्तव्यं तपसः फलम् ।
तपसोऽन्तेऽस्य भगवान् वधं विष्णुः करिष्यति ॥२२
तच्छ्रुत्वा विबुधा वाक्यं सर्वं पङ्कजजन्मनः ।
स्वानि स्थानानि दिव्यानि विप्रा जग्मुर्मुदान्विताः ॥२३
लब्धमात्रे वरे चाथ सर्वाः सोऽबाधत प्रजाः ।
हिरण्यकशिपुर्दैत्यो वरदानेन दर्पितः ॥२४
आश्रमेषु महाभागान् स मुनीन्संशितव्रतान् ।
सत्यधर्मपरान् दान्तान् धर्षयामास दानवः ॥२५
देवांस्त्रिभुवनस्थांश्च पराजित्य महासुरः ।
त्रैलोक्य वशमानीय स्वर्गे वसति दानवः ॥२६
यदा वरमदोत्सिक्तश्चोदित कालधर्मतः ।
यज्ञियानकरोद्दैत्यानयज्ञियांश्च देवताः ॥२७
रुद्रादित्याश्च साध्याश्च विश्वे च वसवस्तथा ।
सेन्द्रा देवगणा यक्षाः सिद्धद्विजमहर्षयः ॥२८
शरणं शरणं विष्णुमुपतस्थुर्महाबलम् ।
देवदेवं यज्ञमयं वासुदेवं सनातनम् ॥२९

हे देवगणो! उस असुर न तपस्या की है अतएव उसका फल तो उसे अवश्य ही प्राप्त करना ही था। इस तप के फल के अन्त हो जाने पर इसका वध भगवान् विष्णु ही करेंगे ॥२२॥ हे विप्रो! उस समय में

सब देवों ने पङ्कज से जन्म ग्रहण करने वाले पितामह के इस वाक्य को श्रवण कर प्रसन्नता से युक्त होकर अपने २ दिव्य स्थानों को वे सब चले गये थे ।। २३ ।। ऐसे वरदानों को प्राप्त होने के साथ ही वह दैत्यराज सम्पूर्ण प्रजाओं को बाधा में पहुँचाने लगा था । वह दैत्यराज हिरण्य कशिपु वरदान प्राप्त करने से अत्यन्त हर्षित हो गया था अर्थात् उसे बड़ा घमण्ड हो गया था ।। २३ ।। २४ ।। वह दानव जो अपने २ आश्रमों में रहने वाले महाभाग मुनिगण थे और जो शासित व्रतों वाले-सत्यधर्म में परायण एवं परम दमनशील सत्पुरुष थे उन सबको धर्षित करने लगा था ।। २५ ।। त्रिभुवनों में स्थित देवों को उस महासुर ने पराजित करके पूर्ण त्रैलोक्य को अपने वश में ले लिया था और वह दानव स्वयं स्वर्ग में निवास किया करता था । जिस समय में वह वरदान के मद से अत्यन्त ही उन्मत्त हो गया था तब वह काल के धर्म से प्रेरित हो गया और दैत्यों को यज्ञिय बना दिया था और अयज्ञियों को देवता कर दिया था ।। २६, २७ ।। उस समय में आदित्य—साध्य—विश्वेदेवा—वसुगण—इन्द्र के सहित देवगण—यक्ष—सिद्ध—द्विज और महर्षि-वृन्द सबके सब महान् बल सम्पन्न भगवान् विष्णु की शरणागति में पहुँचे थे जो प्रभु देवों के भी देव—यज्ञमय सनातन वासुदेव थे और आप ही हमारे शरण अर्थात् रक्षक हैं—यह प्रार्थना करने लगे थे ।। २८, २९ ।।

नारायण ! महाभाग ! देवास्त्वां शरणगताः ।
त्रायस्व जहि दैत्येन्द्रं हिरण्यकशिपुं प्रभो ! ।।३०

त्वं हि नःपरमो धाता त्वं हि नः परमो गुरुः ।
त्वं हि नः परमोदेवो ब्रह्मादीनां सुरोत्तम ।।३१

भयन्त्यजध्वममरा अभयं वो ददाम्यहम् ।
तथैव त्रिदिवं देवाः प्रतिपद्यत मा चिरम् ।।३२

एषोऽहं सगणं दैत्यं वरदानेन दर्पितम् ।
अवध्यममरेन्द्राणं दानवेन्द्रं निहन्म्यहम् ॥३३
एवमुक्त्वा तु भगवान् विसृज्यत्रिदशेश्वरान् ।
वधं सङ्कल्पयामास हिरण्यकशिपोः प्रभुः ॥३४
सहायश्च महाबाहुरोङ्कारं गृह्य सत्वरम् ।
अथोङ्कारसहायस्तु भगवान् विष्णुरव्ययः ॥३५

देवगण ने भगवान् विष्णु से कहा– हे नारायण ! आप तो महान् भाग वाले हैं। हम समस्त देवगण आपकी शरणागति में उपस्थित हो गये हैं। हे प्रभो ! आप हमारी रक्षा करो और इस दैत्येन्द्र हिरण्य कशिपु का वध करो ॥३०॥ हे सुरोत्तम ! हम सबके आप ही परम धाता हैं और आप ही हमारे परम गुरु हैं—आप ही हमारे सर्वोपरि विराजमान देव हैं और ब्रह्मा आदि सब में आप सर्वश्रेष्ठ देव हैं ॥३१॥ भगवान् विष्णु ने कहा—हे अमर गणो ! भय का पूर्ण रूप से त्याग करदो—मैं आपको अभय का दान करता हूं। हे देवताओ ! पूर्व की ही भाँति आप सब लोग अपने त्रिदिव को पुनः बहुत ही शीघ्र प्राप्त कर लोगे ॥३२॥ यह मैं ही वरदान प्राप्त करने से अत्यन्त घमण्ड में भरा हुआ जो यह दैत्यराज है उसको गणों के सहित मार दूंगा जो कि यह दानवेन्द्र अन्य सब अमरेन्द्रों के द्वारा अवध्य है ॥३३॥ इस प्रकार से कहकर भगवान् ने उन सब त्रिदशेश्वरों को विसर्जित कर दिया था और फिर प्रभु ने उस दैत्येन्द्र हिरण्य कशिपु के वध के करने के लिये मन में संकल्प किया था। ३४॥ सहायता करने वाले महाबाहु प्रभु ने बहुत ही शीघ्र ओङ्कार का ग्रहण किया था। इसके अनन्तर अव्यय भगवान् विष्णु ओङ्कार की सहायता वाले हो गये थे ॥३५॥

हिरण्यकशिपुस्थानं जगाम हरिरीश्वरः ।
तेजसा भास्कराकारः शशी कान्त्येवचापरः ॥३६
नरस्य कृत्वार्द्धतनुं सिंहस्यार्द्धतनुं तथा ।

नारसिंहेन वपुषा पाणि संस्पृश्य पाणिना ॥३७
ततोऽपश्यत विस्तीर्णां दिव्यां रम्यां मनोरमाम् ।
सर्वकामयुतां शुभ्रा हिरण्यकशिपोः सभाम् ॥३८
विस्तीर्णां योजनशतं शतमध्यर्द्धमायताम् ।
वैहायसीङ्कामगमां पञ्चयोजनविस्तृताम् ॥३९
जराशोकक्लमापेता निष्प्रकम्पां शिवां सुखाम् ।
वेश्महर्म्यवती रम्या ज्वलन्तीमिव तेजसा ॥४०
अन्तःसलिलसंयुक्ता विहितां विश्वकर्म्मणा ।
दिव्यरत्नमयैर्वृक्षैः फलपुष्पप्रदैर्युताम् ॥४१
नीलपीतसितश्यामैः कृष्णैर्लोहितकैरपि ।
अवतानैस्तथा गुल्मैर्मञ्जरीशतधारिभिः ॥४२

ईश्वर हरि भगवान् हिरण्य कशिपु के स्थान को गये थे। उस समय मे वह तेज से भास्कर के आकार के तुल्य और कान्ति से एक दूसरे चन्द्रमा के समान थे। नर का आधा शरीर बना कर तथा आधा शरीर सिंह का धारण करके नरसिंह वपु से युक्त होकर, पाणि के द्वारा पाणि का स्पर्श करते हुए हरि हिरण्य कशिपु की सभा मे पहुँचे थे। वहा पहुँच कर उन्होने अत्यन्त विस्तीर्ण–दिव्य–रम्य–मनोरम–समस्त कामो से समन्वित और शुभ्र दैत्यराज हिरण्य कशिपु की सभा का अवलोकन किया था ॥३६, ३७, ३८॥ वह सभा सौ योजन विस्तार वाली-शत मध्यर्द्ध आयत–वैहायसी–काम पूर्वक गमन करने वाली तथा पाँच योजन विस्तृत थी ॥३९॥ हिरण्यकशिपु की सभा जरा, शोक और क्लम से अपेत अर्थात रहित थी तथा निष्प्रकम्प–शिव–सुखप्रद–वेश्म और हर्म्यों से सयुत रम्य एव तेज से जाज्वल्यमान जैसी थी ॥ ४० ॥ इस सभा के मध्य मे सलिल रहता था और इसकी रचना विश्वकर्म्मा के द्वारा की गयी थी। वह सभा परम दिव्य फल-पुष्प प्रदान करने वाले रत्नो से परिपूर्ण वृक्षो से समन्वित थी। नील–पीत–सित-श्याम–कृष्ण

लोहित अवतानों से युक्त तथा मन्जरी शतधारी गुल्मों से संयुत वह सभा थी जिसकी अवर्णनीय शोभा हो रही थी ॥४१, ४२॥

सिताभ्रघनसङ्काशा प्लवन्तीव व्यदृश्यत ।
रश्मिवती भास्वरा च दिव्यगन्धमनोरमा ॥४३
सुसुखा न च दुःखा सा न शीता न च घर्मदा ।
न क्षुत्पिपासे ग्लानिं वा प्राप्यतां प्राप्नुवन्ति ते ॥४४
नानारूपैरुपकृतां विचित्रै रति भास्वरैः ।
स्तम्भैर्न विभृता सा च शाश्वती चाक्षया सदा ॥४५
सर्वे च कामाः प्रचुरा ये दिव्या ये च मानुषाः ।
रसयुक्तं प्रभूतञ्च भक्ष्याभोज्यमनन्तकम् ॥४६
पुण्यगन्धस्रजश्चात्र नित्यपुष्पफलद्रुमाः ।
उष्णे शीतानि तोयानि शीतेचोष्णानिसंतिच ॥४७
पुष्पिताग्रा महाशाखाः प्रवालाङ्कुरधारिणः ।
लतावितानसच्छन्ना नदीषु च सरःसु च ॥४८
वृक्षान् बहुविधास्तत्र मृगेन्द्रो ददृशे प्रभुः ।
गन्धवन्ति च पुष्पाणि रसवन्ति फलानिच ॥४९

सित मेघाभ्र के सदृश वह सभा प्लवन करती हुई जैसी दिखलाई दिया करती थी। रश्मियों से युक्त—परम भास्कर और दिव्यगन्ध से समन्वित एवं मनोहर थी ॥४३॥ सुन्दर सुखों से परिपूर्ण-दुःखों से रहित-न अधिक शीत युक्त और न घर्म को प्रदान करने वाली थी। वहाँ पर जो भी पहुँच जाया करते थे वे फिर भूख-प्यास और ग्लानि को प्राप्त नहीं हुआ करते थे। नाना प्रकार के रूपों वाले—विचित्र और भास्कर स्तम्भों से उपकृत वह सभा थी। वह विभृता नहीं थी प्रत्युत शास्वती तथा सदा अक्षया थी। उस सभा मे सभी कामनाएँ चाहे वे दिव्य हों या मानुषी हों प्रचुर मात्रा में विद्यमान रहा करती थी। रस से युक्त—अन्त से शून्य प्रभूत भक्ष्य एवं भोज्य पदार्थ उसमें रहा करते थे ॥४४, ४५॥

॥४६॥ इस दैत्यराज की महासभा मे पुण्य गन्ध वाले सुराज भी और वहाँ के वृक्ष बारहो महीने नित्य ही पुष्प और फलो के प्रदान करने वाले थे। वहा पर उष्ण काल मे शीतल और शीत काल मे उष्ण जल रहा करते थे ॥४७॥ नदियो मे और सरोवरो मे ऐसे वृक्ष थे जिनके अग्रसर पुष्पित थे—जिनकी महान् शाखाएँ थी और जो प्रवालांकुरो के धारण करने वाले थे तथा लताओ के वितानो से सच्छन्न थे ॥४८॥ मृगेन्द्र प्रभु ने वहा पर इस प्रकार के बहुत-सी तरह के वृक्षो को देखा था जिनमे गन्ध से युक्त पुष्प थे और रस से समन्वित फल थे ॥४६॥

तस्यां सभायां दैत्येन्द्रो हिरण्यकशिपुस्तदा ।
स्त्रीसहस्रैः परिवृतो विचित्राभरणाम्बरः ॥५०
अनर्घ्यमणिवज्रार्चिशिखाज्वलितकुण्डलः ।
आसीनश्चासने चित्रे दश नल्वप्रमाणतः ॥५१
दिवाकरनिभे दिव्ये दिव्यास्तरणसंस्तृते ।
दिव्यगन्धवहस्तत्र मारुत सुसुखोववौ ॥५२
हिरण्यकशिपुर्दैत्य आस्ते ज्वलितकुण्डल. ।
उपचेरुर्महादैत्य हिरण्यकशिपुं तदा ॥५३
दिव्यतानेन गोतानि जगुर्गन्धर्वसत्तमाः ।
विश्वाची सहजन्याच प्रम्लोचेत्यभिविश्रुता ॥५४
दिव्याथ सौरभेयीच समीचो पुञ्जिकस्थली ।
मिश्रकेशीचरम्भाचचित्रलेखाशुचिस्मिता ॥५५
चारुकेशी घृताची च मेनका चोर्वशीतथा ।
एताः सहस्रशश्चान्या नृत्यगीतविशारदाः ॥५६

उस समय मे उस सभा मे वह दैत्येन्द्र हिरण्य कशिपु समवस्थित था जो स्त्री समुदायो की सहस्र संख्या से परिवृत था तथा विचित्र आभरण और वस्त्रो से समलङ्कृत था ॥५०॥ बहुमूल्य मणि और वज्रो की रश्मियो की शिखाओ से ज्वलित कुण्डलो वाला था। दश नल्व प्रमाण से युक्त

विचित्र सिंहासन पर वह दैत्य राज समवस्थित था। वह सिंहासन सूर्य के समान परम दिव्य एवं दिव्य अस्तरण से सम्भृत था। वहां पर दिव्य गन्ध के वहन करने वाला सुन्दर सुख का देने वाला वायु वहन कर रहा था ॥५१, ५२॥ वहां पर जाज्वल्यमान कुण्डलों वाला हिरण्य कशिपु दैत्यराज स्थित था। उस समय मे हिरण्य कशिपु दैत्यराज की परिचर्या बहुत सी अप्सराऐं कर रही थीं ॥५३॥ श्रेष्ठ गन्धर्वगण दिव्यतान के द्वारा गीतों का गान कर रहे थे। विश्वाची—सहजन्या—अभिविश्रुत-प्रम्लोचा—दिव्या—सौरभेयी—समीचा—पुञ्जिक स्थली—मिश्र केशी—रम्भा—शुचिस्मित वाली चित्र लेखा—चारु केशी-घृताची-मेनका और उर्वशी ये और सहस्रों अन्य अप्सराऐं जो नृत्य तथा गीतों के गायन करने में परम विशारद् उस दैत्य राज की परिचर्या कर रही थी ॥ ५४ ॥ ॥ ५५, ५६ ॥

उपतिष्ठन्त राजानं हिरण्यकशिपुं प्रभुम् ।
तमासीनं महाबाहुं हिरण्यकशिपुं प्रभुम् ॥५७
उपासन्त दितेः पुत्राः सर्वे लब्धवरास्तथा ।
तमप्रतिमकर्माणं शतशोऽथ सहस्रशः ॥५८
बलिर्विरोचनस्तत्र नरकः पृथिवीसुत ।
प्रह्लादो विप्रचित्तिश्च गविष्ठश्च महासुरः ॥५९
सुरहन्ता दुःखहन्ता सुनामा सुमतिर्वरः ।
घटोदरो महापार्श्वः क्रथनः कठिनस्तथा ॥६०
विश्वरूपः सुरूपश्च स्वबलश्च महाबलः ।
दशग्रीवश्च वाली च मेघवासा महासुरः ॥६१
घटास्यो कम्पनश्चैव प्रजनश्चेन्द्रतापनः ।
दैत्यदानवसंघास्ते सर्वे ज्वलितकुण्डलाः ॥६२
स्रग्विणो वाग्मिनः सर्वे सदैव चरितव्रताः ।
सर्वे लब्धवराः शूराः सर्वे विगतमृत्यवः ॥६३

वहा पर उस महती राज सभा मे समवस्थित महान् बाहुओं वाले महाराज हिरण्य कशिपु प्रभु की सेवा मे सब उपस्थित होकर सेवाऐं कर रहे थे ॥५७॥ दिति के सभी पुत्र जिन्होने वरदान प्राप्त कर लिये थे वे सब सैकडो और सहस्रो की सख्या मे अप्रतिम कर्म्म वाले उस दैत्यराज की उपासना कर रहे थे। उन दैत्यो मे बलि–विरोचन–नरक–पृथिवी सुत प्रह्लाद–विप्रचित्ति–श्रदासुर गविष्ठ–सुरहन्ता दुःख हन्त्ल–सुनामा—सुमति वर – घटोदर–महापार्श्व —क्रथन —कठिन – विश्वरूप—सुरूप—सबल—महाबक —हशग्रीव–वाली–महासुर मेघ वासा—धरास्य–घम्पन–प्रजन–इन्द्र तापन आदि थे। इन सब दैत्य दानवो के सघ थे जो सभी जाज्वल्यमान कुण्डलो वाले थे ॥५७, ५८, ५९, ६०, ६१, ६२॥ सभी लोग स्रग्वी अर्थात् मालाधारी–वाग्मी और सदैव चरित व्रत वाले थे। इन सभी ने वरदान प्राप्त कर लिये थे—सब शूर वीर और मृत्यु के भय से रहित थे ॥६२॥

एते चान्ये च बहवो हिरण्यकशिपुं प्रभुम् ।
उपासन्ति महात्मान सर्वे दिव्यपरिच्छदाः ॥६४
विमनैर्विविधाकारैर्भ्राजमानैरिवाग्निभिः ।
महेन्द्रवपुष. सर्वे विचित्राङ्गदबाहवः ॥६५
भूषिताङ्गा दिते.पुत्रास्तमुपासन्त सर्वश· ।
तस्या सभायान्दिव्यायामसुरा पर्वतोपमा ॥६६
हिरण्यवपुषः सर्वे दिवाकरसमप्रभाः ।
न श्रुतन्न दृष्ट हि हिरण्यकशिपोर्यथा ॥६७
ऐश्वर्यं दैत्यसिंहस्य यथा तस्य महात्मनः ।
कनकरजतचित्रवेदिकायां परिहृतरत्नविचित्रवीथिकायाम् ।
स ददर्श मृगाधिपः सभायां सुरचितरत्नगवाक्षशोभितायाम् ॥६८
कनकविमलहारविभूषिताङ्ग दितितनय स मृगाधिपोददर्श ।
दिवसकरमहाप्रभाभासं दितिजसहस्रशतं निषेव्यमाणम् ॥६९

ये तथा अन्य बहुत-से दिव्य परिच्छदों वाले सब असुरगण महान् आत्मा वाले उस प्रभु हिरण्य कशिपु की उपासना कर रहे थे ॥६४॥ विविध भाँति के आकार-प्रकार वाले अग्नि के सदृश भ्राजमान विमानों के द्वारा अद्भुत अङ्गदों से समलङ्कृत बाहुओं वाले और महेन्द्र के तुल्य वपु को धारण करने वाले-भूषित अङ्गों से युक्त सब दिति के पुत्र सभी ओर से उस दैत्यराज की समुपासना कर रहे थे। उस महान् राजसभा में जो कि अत्यन्त दिव्य थी सभी असुरगण पर्वत के समान विशाल थे। ॥६५, ६६॥ सभी लोग हिरण्य वपु वाले वहाँ पर थे जिनकी दिवाकर के तुल्य प्रभा थी दैत्यों में सिंह के समान उस महान् आत्मा वाले हिरण्य कशिपु का जैसा ऐश्वर्य था वैसा न तो कभी किसी का देखा गया था और न कहीं पर सुना ही गया था। जिस सभा में स्थित होकर वह मृगाधिप नरसिंह देख रहे थे वह भली भाँति निर्मित गवाक्षों से सुशोभित थी और परिष्कृत किये हुए रत्नों से चित्रित वीथिका वालों थी तथा सुवर्ण एवं चाँदी की निर्मित अद्भुत वेदिका से समन्वित थी॥ उन मृगाधिप नरसिंह प्रभु ने सुवर्ण के विमल हारों से विभूषित अङ्गों वाले तथा सूर्य के तुल्य महती प्रभा से युक्त और सैकड़ों एवं सहस्रों दैत्यों के द्वारा सेवित उस दिति के पुत्र हिरण्य कशिपु को देखा था ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥

---

६२ —नरसिंह हिरण्यकशिपु युद्ध वर्णन

ततो दृष्ट्वा महात्मानं कालचक्रमिवागतम् ।
नरसिंहवपुश्छन्नं भस्मच्छन्नमिवानलम् ॥१
हिरण्यकशिपोः पुत्रः प्रह्लादोनाम वीर्यवान् ।
दिव्येन चक्षुषा सिंहमपश्यद्देवमागतम् ॥२

तं दृष्ट्वा रुक्मशैलाभतपूर्वान्तनुमाश्रितम् ।
विस्मिता दानवाः सर्वे हिरण्यकशिपुश्न सः ॥३
महाबाहो ! महाराज ! दैत्यानामादिसम्भप ।
न श्रुतं न च नोदृष्ट नारसिंहमिदं वपुः ॥४
महाबाहो ! महाराज ! दैत्यानामादिसम्भव ।
दैत्यान्तकरण घोर संशतीव ननो मम ॥५
अस्य देवाः शरीरस्थाः सागराः सरितश्चयाः ।
हिमवान्पारियात्रश्चयेचान्येकुलपर्वताः ॥६
चन्द्रमाश्च सनक्षत्रोरादित्यर्वसुभिः सह ।
धनदो वरुणश्चैव यमः शक्रः शचीपति. ॥७

महर्षि श्री सूतजी ने कहा—जिस समय में नरसिंह भगवान् उस सभा मे पहुँचे थे तो उस समय मे हिरण्य कशिपु के पुत्र वीर्यवान् प्रह्लाद ने महान् आत्मा वाले नरसिंह के शरीर मे छिपे हुए साक्षात् आये हुए काल चक्र के समान तथा भस्म मे छन्न अग्नि के समा उनको आरम्भ मे देखा था ॥१, २॥ वहा पर स्थित सब दानवो ने और उस हिरण्य कशिपु ने भी पूर्व शरीर मे समाश्रित सुवर्ण के पर्वत की आभा वाले उन नरसिंह प्रभु को देखकर सभी को उस समय मे बहुत विस्मय हो गया था ॥३॥ उसी समय मे प्रह्लाद ने कहा था—हे महान् बाहुओ वाले ! हे महाराज ! हे दैत्यो के आदि जन्मधारी ! मैंने तो अब तक ऐसा नारसिंह वपु न कभी देखा है और न कही पर सुना ही है। यह अव्यक्त प्रभव (जन्म) वाला—परम दिव्य क्या रूप सामने मे आ गया है ? मेरे मन मे तो ऐसा ही संशय हो रहा है कि यह कोई घोर स्वरूप वाला दैत्यो के अन्त कर देने वाला ही यहाँ आकर समुपस्थित हुआ है ॥४, ५॥ इनके इस विशाल शरीर मे समस्त देवगण स्थित है—सब सागर—समस्त नदियाँ—हिमवान्—पारियात्र और अन्य सब कुल पर्वत भी इनके शरीर मे विद्यमान है। समस्त नक्षत्रों के साथ तथा वसु गण और आदित्यो के

सहित चन्द्रमा भी इसमें वर्त्तमान हैं। धनद (कुबेर)–वरुण–यम और शची का पति इन्द्र देव भी इनके इस नारसिंह शरीर में विद्यमान दिखलाई दे रहे हैं ॥६, ७॥

मरुतो देवगन्धर्वा ऋषयश्च तपोधनाः।
नागा यक्षाः पिशाचाश्च राक्षसा भीमविक्रमाः ॥८
ब्रह्मा देवः पशुपतिर्ललाटस्था भ्रमन्ति वै।
स्थावराणि च सर्वाणि जङ्गमानितथैवच ॥९
भवांश्च सहितोऽस्माभिः सर्वैर्देवगणैर्वृतः।
विमानशतसङ्कीर्णा तथैव भवतः सभा ॥१०
सर्वं त्रिभुवनं राजन्! लोकधर्माश्च शाश्वताः।
दृश्यन्ते नारसिंहेऽस्मिस्तथेदमखिलं जगत् ॥११
प्रजापतिश्चात्र मनुर्महात्मा ग्रहाश्च योगश्च महीरुहाश्च।
उत्पातकालश्च धृतिर्मतश्च रतिश्च सत्यञ्च तपो दमश्च ॥१२
सनत्कुमारश्च महानुभावो विश्वे च देवा ऋषयश्च सर्वे।
क्रोधश्च कामश्च तथैव हर्षो धर्मश्च मोहः पितरश्च सर्वे ॥१३
प्रह्लादस्य वचः श्रुत्वा हिरण्यकशिपुः प्रभुः।
उवाच दानवान् सर्वान् गणाश्च स गणाधिपः ॥१४
मृगेन्द्रो गृह्यतामेष अपूर्वं सत्वमास्थितः।
यदि वा संशयः कश्चिद्वध्यतां वनगोचरः ॥१५

मरुद्गण–देव—गन्धर्व—तप के ही धनी वाले सब ऋषि वृन्द—नाग–यक्ष–पिशाच—भीम विक्रम वाले राक्षस—ब्रह्मा—देव पशुपति ये सब इनके ललाट प्रदेश में स्थित हुए भ्रमण कर रहे हैं। सम्पूर्ण स्थावर तथा सभी जङ्गम जीव इनके शरीर में दिखलाई दे रहे हैं ॥८, ९॥ सब देवों से परिवृत हम सबके सहित आप भी इनके शरीर में स्थित देखे जा रहे हैं। सैकड़ों विमानों से सङ्कीर्ण यह आपकी महती राज सभा तथा हे राजन् यह सम्पूर्ण त्रिभुवन और समस्त शाश्वत लोक धर्म इस नारसिंह

शरीर में दिखाई दे रहे हैं। उसी भाँति यह सम्पूर्ण जगत्—महात्मा प्रजापति मनु—सब ग्रह—योग—महीरुह इसमें दृष्टिगत हो रहे हैं ॥१०॥ ॥११, १२॥ इनके अतिरिक्त उत्पात का काल—धृति—मति—रति—सत्य—तप—दम इसमें विद्यमान है। महानुभाव सनत्कुमार—विश्वेदेवा—सब ऋषिगण—क्रोध—काम—हर्ष—धर्म—मोह—सब पितृगण इनके इस महान् विशाल एवं परम दिव्य शरीर में प्रत्यक्ष रूप से दिखाई दे रहे हैं। ॥१३॥ इस प्रकार के कहे हुए वचन का श्रवण कर वह गणों का अधिप प्रभु हिरण्य कशिपु समस्त दानवों और गणों से यह बोला था—देखो, आप सब मिलकर इस अत्यन्त अद्भुत अपूर्व सत्त्व के रूप में संस्थित नरसिंह को पकड़ लो और यदि कुछ भी संशय हो तो इन वन में भ्रमण करने वाले को मार डालो ॥१४, १५॥

ते दानवगणाः सर्वे मृगेन्द्रं भीमविक्रमम् ।
परिक्षिपन्तो मुदितास्त्रासयामासुरोजसा ॥१६
सिंहनादं विमुच्याथ नरसिंहो महाबलः ।
बभञ्ज तां सभां सर्वां व्यादितास्य इवान्तकः ॥१७
सभायां भज्यमानायां हिरण्यकशिपुः स्वयम् ।
चिक्षेपास्त्राणि सिंहस्य रोषाद्व्याकुललोचनः ॥१८
सर्वास्त्राणामथ ज्येष्ठं दण्डमस्त्रं सुदारुणम् ।
कालचक्रं तथा घोरं विष्णुचक्रं तथा परम् ॥१९
पैतामहं तथात्युग्रं त्रैलोक्यदहनं महत् ।
विचित्रामशनीञ्चैव शुष्कार्द्रं चाशनिद्वयम् ॥२०
रौद्रं तथोग्रं शूलञ्च कङ्कालं मुसलं तथा ।
मोहनं शोषणं चैव सन्तापनविलापनम् ॥२१

हिरण्य कशिपु के इस आदेश को प्राप्त करके वे समस्त दानवगण उस भीम विक्रम वाले मृगेन्द्र पर परिक्षेप करते हुए बहुत ही प्रसन्न हो रहे थे और वे सब अपने ओज से बल से उन नरसिंह प्रभु को त्रास देने

लगे थे ॥१६॥ उस समय में महान् बलशाली नरसिंह प्रभु ने एक सिंह-नाद करके उस सम्पूर्ण हिरण्य कशिपु की सभा का फैलाये हुए मुंह वाले अन्तक काल के समान भंग कर दिया था ॥१७॥ जिस समय में वह पूरी सभा भज्यमान हो गई थी तब हिरण्य कशिपु ने स्वयं ही रोष से व्याकुल नेत्रों वाला होकर उन नरसिंह भगवान् के शरीर पर अपने ही अस्त्रों का प्रयोग आरम्भ कर दिया था। समस्त अस्त्रों में सबसे बड़ा-महान् दारुण दण्ड अस्त्र—घोर काल चक्र—परमोत्तम विष्णुचक्र तथा अत्यन्त ही उग्र पितामह का अस्त्र जो इस महान् त्रैलोक्य के दाह कर देने वाला था इन सब अस्त्रों से हिरण्य कशिपु ने नारसिंह वपु पर प्रहार किये थे। विचित्र अशनी तथा शुष्क और आर्द्र दोनो प्रकार के अशनि-रौद्र तथा उग्रशूल—कङ्काल—मुसल—मोहन—शोषण—सन्तापन—विलापन नाम वाले अस्त्रों से दैत्यराज ने नरसिंह प्रभु के शरीर पर डर-डर कर प्रहार पर प्रहार किये थे ॥१८, १६, २०, २१॥

वायव्यं मथनं चैव कापालमथ कैङ्करम् ।
तथाप्रतिहतां शक्ति क्रौञ्चमस्त्रं तथैव च ॥२२
अस्त्रं ब्रह्मशिरश्चैव सोमास्त्रं शिशिरं तथा ।
कम्पन शतनञ्चैव त्वाष्ट्रञ्चैव सुभैरवम् ॥२३
कालमुद्गरमक्षोभ्यं तपनञ्च महाबलम् ।
संवर्तन मादनञ्च तथा मायाधर परम् ॥२४
गान्धर्वमस्त्रं दयितमसिरत्नं च नन्दकम् ।
प्रस्वापन प्रमथनं वारुणं चास्त्रमुत्तमम् ॥
अस्त्रं पाशुपतञ्चैव यस्याप्रतिहता गतिः ॥२५
अस्त्रं हयशिरश्चैव ब्राह्ममस्त्रं तथैव च ।
नारायणास्त्रमन्द्रञ्च सार्पमस्त्रं तथाद्भुतम् ॥२६
पैशाचमस्त्रमजित शोषदं शामन तथा ।
महाबल भावनं च प्रस्थापनविकम्पने ॥२७

एतान्यस्त्राणि दिव्याणि हिरण्यकशिपुस्तदा ।
असृजन्नरसिंहस्य दीप्तस्याग्नेरिवाहुतिम् ॥ ८

वायव्य, मथन, कापाल, कैङ्कर, अप्रतिहता शक्ति, क्रौञ्च अस्त्र, ब्रह्म शिरास्त्र, सोमास्त्र, शिशिर, कम्पन, शतन, त्वाष्ट्र, सुभैरव, कालमुद्गार, अक्षोभ्य, महाबल, तपन, सम्वर्त्तन, मादन, परमायाधर, गान्धर्वास्त्र, दयित, असिरत्न, नन्दक, प्रस्वापन, प्रमथन, उत्तम वारुणास्त्र और पशुपत अस्त्र जिसकी गति अप्रतिहत हुआ करती है ॥२२, २३, २४, २५॥ हयशिर अस्त्र, ब्राह्मास्त्र, नारायणास्त्र, ऐन्द्र, अद्भुत साप अस्त्र, पैशाचास्त्र, अजित, शोषद, शामन, महाबल, भावन, प्रस्थापन, विकम्पन इन सब अस्त्रों को जो महान् दिव्य थे दैत्यराज हिरण्य कशिपु ने भगवान् नरसिंह के शरीर पर छोड दिया था किन्तु वे सब अस्त्र उनके शरीर का स्पर्श करते ही ऐसे नष्ट भ्रष्ट होकर भस्मसात् हो गये थे जिस तरह से प्रदीप्त हुई अग्नि में हवि पडते ही जल कर भस्म हो जाया करती है ॥२६॥ ॥ २७, २८ ॥

अस्त्रैः प्रज्वलितैः सिंहमावृणोदसुरोत्तमाः ।
विवस्वान् घर्म्मसमये हिमवन्तमिवांशुभिः ॥२९
स ह्यमर्षानिलोद्धूतो दैत्यानां सैन्यसागरः ।
क्षणेन प्लावयामास मैनाकमिव सागरः ॥३०
प्रासैः पाशैश्च खड्गैश्च गदाभिर्मुसलैस्तथा ।
वज्रैरशनिभिश्चैव साग्निभिश्च महाद्रुमैः ।३१
मुद्गरैर्भिन्दिपालैश्च शिलोलूखलपर्वतैः ।
शतघ्नीभिश्च दीप्ताभिर्दण्डैरपि सुदारुणैः ॥३२
ते दानवाः पाशगृहीतहस्ता महेन्द्रतुल्याशनिवज्रवेगाः ।
समन्ततोऽभ्युद्यतबाहुकाया स्थिताः स्त्रिशीर्षा इव नागपाशाः ।३३
सुवर्णमालाकुलभूषिताङ्गाः पीतांशुकाभोगविभाविताङ्गाः ।
मुक्तावलीदामसनाथकक्षा हंसा इवाभान्ति विशालपक्षाः । ३४

उन असुरोत्तमों ने घर्म के समय में विवस्वान् अपनी किरणों से हिमवान् की तरह प्रज्वलित अस्त्रों के द्वारा उन नृसिंह प्रभु को आवृत्त कर दिया था ॥ २६ ॥ अमर्ष की अग्नि से उद्भूत दैत्यों के उस सेना-रूपी सागर ने क्षण भर में मैनाक को समुद्र की भाँति सबको प्लावित कर दिया था ॥ ३० ॥ असुरों की उस विशाल सेना ने प्राश–पाश–खड्ग–गदा–मूसल–वज्र–अशनि–अग्नि के सहित महान् द्रुम–मुद्गर–भिन्दिपाल, शिला, उलूखल, पर्वत, दीप्त शतघ्नी और सुदारुण दण्ड आदि के द्वारा नृसिंह प्रभु पर प्रहारों की भरमार करदी थी ॥३१, ३२॥ पाशों को हाथों में ग्रहण करने वाले, महेन्द्र के समान अशनि वज्र के वेग से युक्त सभी ओर से अभ्युद्यत बाहु और काया वाले वे सब दानव तीन शीर्षों वाले नागपाशों की भाँति स्थित थे ॥ ३३ ॥ सुवर्ण की मालाओं के समूह से विभूषित अङ्गों वाले तथा पीत वर्ण के वस्त्ररूपी आभोग से विभावित अङ्गों से युक्त और मुक्तावली की माला से समन्वित कक्षों से सयुत विशाल पक्षों वाले हंसों के तुल्य वे दानवगण शोभित हो रहे थे ॥ ३४ ॥

तेषां तु वायुप्रतिमौजसां वै केयूरमौलीवलयोत्कटानाम् ।
तान्युत्तमाङ्गान्यभितो विभान्ति प्रभातसूर्यांशुसमप्रभाणि ॥३५
क्षिपद्भिरुग्रज्वलितैर्महाबलैर्महास्त्रपूगैः सुसमावृतो बभौ ।
गिरिर्यथा सन्ततवर्षिभिर्घनैः कृतान्धकारान्तरकन्दरोद्रुमः ॥३६
तैर्हन्यमानोऽपि महास्त्रजालैर्महाबलैर्दैत्यगणैः समेतैः ।
नाकम्पताजौ भगवान् प्रतापस्थितप्रकृत्या हिमवानिवाचलः ॥३७
सन्त्रासितास्तेन नृसिंहरूपिणा दितेः सुताः पावकतुल्यतेजसा ।
भयाद्विचेलुः पवनोद्धताङ्गा यथोर्मयः सागरवारिसम्भवाः ॥३८

वायु के समान ओज से युक्त, केयूर-मौली और वलय से उत्कट उन दानवों के उत्तम अङ्ग सभी ओर से प्रातःकाल के सूर्य की किरणों के तुल्य प्रभा वाले विभात हो रहे थे ॥ ३५ ॥ वह नरसिंह प्रभु महान

नलो वाले, उग्र, ज्वलित, दानवो के द्वारा प्रक्षिप्त किये हुए महान् अस्त्रो के समूहो से भली भाँति आवृत होकर कन्दराओ के अन्दर अन्धकार कर देने वाले द्रुमो से और निरन्तर वर्षा करते हुए मेघो से पर्वत की भाँति सुशोभित हो रहे थे ॥ ३६ ॥ महान् बलवान्—सब ओर से एकत्रित हुए उन दैत्य गणो के द्वारा महान् अस्त्रो के जाल से हन्यमान भी वह नृसिंह प्रभु उस युद्ध स्थल मे प्रताप से स्थित प्रवृत्ति के द्वारा हिमाचल की भाँति बिल्कुल भी कम्पायमान नही हुए थे ॥ ३७ ॥ उन नृसिंह के रूप-धारी भगवान् के द्वारा जिनका पावक के समान तेज था वे सब दिति के पुत्र दैत्य सन्त्रासित कर दिये गये थे और वे सब भय से भीत होकर पवन से उद्धूत अङ्गो वाली सागर के जल मे समुत्पन्न ऊर्मियो की भाँति भय से विचलित हो गये थे अर्थात् भयभीत होकर इधर-उधर भाग गये थे ॥ ३८ ॥

६२–अन्य दानवों के साथ नरसिंह का युद्ध

खरा: खरमुखाश्चैव मकराशीविषानना: ।
ईहामृगमुखाश्चान्ये वराहमुखसंस्थिता: ॥१
बालसूर्यमुखाश्चान्ये धूमकेतुमुखास्तथा ।
अर्द्धचन्द्रार्धवक्त्राश्च अग्निदीप्तमुखास्तथा ॥२
हंसकुक्कुटवक्त्राश्च व्यादितास्या भयावहा: ।
सिंहास्यालेलिहानाश्च काकगृध्रमुखास्तथा ॥३
द्विजिह्वकावक्रशीर्षास्तथोल्का मुखसंस्थिता: ।
महाग्राहमुखाश्चान्ये दानवाबलदर्पिता: ॥४
शैलसंवर्ष्मणस्तस्य शरीरे शरवृष्टिभि: ।
अवध्यस्य मृगेन्द्रस्य न व्यथाञ्चक्रुराहवे ॥५
एवं भूयोऽगमन् घोरानसृजन् दानवेश्वरा: ।

मृगेन्द्रस्योपरि क्रुद्धा निश्वसन्त इवोरगाः ॥६
ते दानवशरा घोरा दानवेन्द्रसमीरिताः ।
विलयं जग्मुराकाशे खद्योता इव पर्वते ॥७

महर्षि प्रवर सूतजी ने कहा—उस महान् भीषण युद्ध में बहुत से दानवों ने नृसिंह भगवान् से युद्ध किया था जिनके नाम ये हैं—खर, खर मुख, मकराक्षी, विषानन, ईहामृगमुख, वराह मुख, बाल सूर्यमुख, धूमकेतु मुखअ,द्धं चन्द्रार्ध मुख,अग्निदीप्तमुख,हंस कुक्कुट मुख व्यादितास्य,भयावह सिंहास्य लेलिहान, काक गृध्रमुख, द्विजिह्व, द्विवक्त्र, द्विशीर्ष, उल्कामुख, महाग्राह मुख आदि महान् भीषण मुखाकृतियों वाले बल के घमण्ड से परिपूर्ण दानव थे जो शैल के समान संवर्ष्म वाले और वध के अयोग्य भगवान् मृगेन्द्र के शरीर मे निरन्तर शरों की वर्षा से भी युद्ध में किञ्चित् मात्र भी व्यथा न कर सके थे ॥ १, २, ३, ४, ५॥ इसी प्रकार से फिर दूसरी बार उन दानवेश्वरों ने अत्यन्त क्रोधित होकर गर्म श्वास छोड़ते हुए फुस्कारें करने वाले सर्पों की भाँति मृगेन्द्र प्रभु के शरीर के ऊपर दूसरे परम घोर अस्त्रों को छोड़ा था ॥ ६ ॥ वे सब दानवेन्द्रों के द्वारा प्रक्षिप्त किये हुए अतीव घोर दानवीय शर पर्वत मे खद्योतों की भाँति आकाश में जा र विलय को प्राप्त हो गये थे ॥७॥

ततश्चक्राणि दिव्यानि दैत्या क्रोधसमन्विताः ।
मृगेन्द्रायासृजन्नाशु ज्वलितानिसमन्ततः ॥८
तैरासीद्गगनं चक्रैः सम्पतद्भिरितस्ततः ।
युगान्ते सम्प्रकाशद्भिश्चन्द्रादित्यग्रहैरिव ॥९
तानि सर्वाणिचक्राणिमृगेन्द्रेणाशमात्मना ।
ग्रस्तान्युदीर्णानि तदापावकार्चिःसमानिवै ॥१०
तानि चक्राणि वदनं विशमानानि भान्ति वै ।
मेघोदरदरीष्वेव चन्द्रसूर्यग्रहा इव ॥११
हिरण्यकशिपुर्दैत्यो भूयः प्रासृजदूर्जिताम् ।

शक्तिं प्रज्वलितां घोरां धौतशस्त्रतडित्प्रभाम् ॥१२
तामापतन्तीं संप्रेक्ष्य मृगेन्द्रः शक्तिमुज्वलाम् ।
हुङ्कारेणैव रौद्रेण बभञ्ज भगवांस्तदा ॥१३
रराज भग्नासाशक्तिर्मृगेणमहीतले ।
स विस्फुलिङ्गा ज्वलिता महोल्केवदिवश्च्युता ॥१४

इसके उपरान्त उन दैत्यों ने महान् क्रोध से समन्वित होकर चारों ओर से प्रज्वलित होने वाले दिव्य चक्रों को नरसिंह प्रभु के शरीर पर बड़ी ही शीघ्रता से छोड़ दिये थे ॥ ८ ॥ इधर-उधर गिरने वाले उन चक्रों से युग के अन्त में भली भाँति प्रकाश करने वाले चन्द्र—सूर्य ग्रहों की भाँति उस समय में आकाश था ॥ ९ ॥ अरामात्मा उन मृगेन्द्र (नरसिंह) के द्वारा वे समस्त चक्र उस समय में अग्नि की अचियों के तुल्य ग्रस्त और उदीर्ण होते थे ॥१०॥ वे सब चक्र जो दानवों के द्वारा नरसिंह प्रभु पर छोड़े गये थे उन्हीं के मुख में प्रवेश प्राप्त करते हुए मेघोदर दरीओं में चन्द्र-सूर्य्य ग्रहों के समान शोभा दे रहे थे ॥ ११ ॥ हिरण्य कशिपु दैत्यराज ने पुनः अत्यन्त प्रज्वलित—परम घोर—धौत शस्त्र विद्युत की प्रभा से समन्वित अतीव अजित शक्ति का प्रहार नरसिंह भगवान् पर किया था ॥ १२ ॥ उस समय में अत्यन्त समुज्वल अपने ऊपर आपतन करती हुई शक्ति को देखकर नृसिंह भगवान् ने महान् रौद्र हुङ्कार की ध्वनि से ही उसका भञ्जन कर दिया था ॥ १३ ॥ महीतल में मृगेन्द्र भगवान् के द्वारा भग्न की हुई वह शक्ति विस्फुलिङ्गों से युक्त और प्रज्वलित दिवलोक से च्युत महोल्का के समान शोभित हो रही थी ॥ १४ ॥

नाराचपङ्क्तिः सिंहस्य प्राप्ता रेजे विदूरतः ।
नीलोत्पलपलाशाना मालेवोज्ज्वलदर्शना ॥१५
स गर्जित्वा यथान्याय विक्रम्य च यथासुखम् ।
तत्सैन्यमप्सारितवान् तृणाग्राणीव मारुतः ॥१६

ततोऽश्मवर्षं दैत्येन्द्रा व्यसृजन्त नभोगताः ।
नगमात्रैः शिलाखण्डैर्गिरिश्रृङ्गैर्महाप्रभैः ॥१७
तदश्मवर्षं सिंहस्य महन्मूर्द्ध निपातितम् ।
दिशादश विकीर्णा वै खद्योतप्रकरा इव ॥१८
तदाश्मौघैर्दैत्यगणाः पुनः सिंहमरिन्दमम् ।
छायायां चक्रिरे मेघा धाराभिरिव पर्वतम् ॥१९
न च तं चालयामासुर्दैत्यौघादेवसत्तमम् ।
भीमवेगोऽचलश्रेष्ठ समुद्र इव मन्दरम् ॥२०
ततोऽश्मवर्षेविहिते जलवर्षमनन्तरम् ।
धाराभिरक्षमात्राभिः प्रादुरासीत् समन्ततः ॥२१

नृसिंह भगवान् के शरीर पर प्राप्त हुई नाराचों की पंक्ति से ही नीलोत्पल के पलाशो की उज्वल दर्शन वाली माला के समान दीप्तिमान हो रही थी ॥ १५ ॥ नृसिंह महाप्रभु ने न्यायानुसार गर्जना करके और सुखपूर्वक बल-विक्रम दिखाकर उस दानवेन्द्र की सेना को तिनकों के अग्रभागों को वायु की तरह अपसारित कर दिया था ॥ १६ ॥ इसके उपरान्त दैत्येन्द्रो ने आकाश में स्थिति होते हुए नग मात्र शिला खण्डों के द्वारा, महती प्रभा से युक्त गिरि के श्रृङ्गो के द्वारा पाषाणो की वर्षा का विसर्जन कर रहे थे। वह पत्थरों की महान् वर्षा नरसिंह प्रभु के मस्तक पर डाली गयी थी और वह दशों दिशाओ मे खद्योतो के प्रकरो की भाँति विकीर्ण हो गयी थी ॥ १७, १८ ॥ अरियो के दमन करने वाले नृसिंह प्रभु को फिर उन दैत्यों के गणो ने पाषाणों को वृष्टि से डाले हुए पत्थरो के द्वारा मेघ जैसे अपनी वर्षाई हुई जल की धाराओं से पर्वत को ढाँक दिया करते हैं वैसे ही छाया मे कर दिया था ॥ १९ ॥ उन दैत्यो के विशाल समुदायो ने देवों मे परम श्रेष्ठ नृसिंह महा प्रभु को जिस प्रकार से भीम वेग वाला सागर अचलों में श्रेष्ठ मन्दराचल को चलायमान कर दिया करता है उसी तरह से चलायमान कर दिया था ॥ २० ॥

इसके उपरान्त उस पाषाणों की की गई वर्षा के अनन्तर जल की वृष्टि से अकस्मात्र धाराओ के द्वारा चारो ओर से प्रादुर्भूत हो गये थे ॥ २१ ॥

नभसः प्रच्युताधारास्तिग्मवेगाः समन्ततः ।
आवृत्यसर्वतो व्योमदिशश्चोपदिशस्तथा ॥२२
धारा दिवि च सर्वत्र वसुधायाञ्च सर्वशः ।
न स्पृशन्ति च ता देवं निपतन्तोऽनिशं भुवि ॥२३
बाह्यतो ववृपुर्वर्षं नोपरिष्टाच्च ववृपुः ।
मृगेन्द्रप्रतिरूपस्य स्थितस्य युधि मायया ॥२४
हतेऽश्मवर्षे तुमुले जलवर्षे च शोषिते ।
सोऽसृजद्दानवो मायामग्निवायुसमीरिताम् ॥२५
महेन्द्रस्तोयदैः सार्द्धं सहस्राक्षो महाद्युतिः ।
महता तोयवर्षेण शमयामास पावकम् ॥२६
तस्या प्रतिहतायां तु मायायां युधि दानवः ।
असृजत् घोरसंकाश तमस्तीव्रं समन्ततः ॥२७
तमसा संवृते लोके दैत्येष्वात्तायुधेषु च ।
स्वतेजसा परिवृतो दिवाकर इवाबभौ ॥२८

आकाश से अत्यन्त तीव्र वेगो वाली गिरी हुई धाराऐं चारों ओर से आवृत करके सभी व्योम-दिशाओ और उप दिशाओ को घेर करके हो रही थी तथा दिवलोक मे और सर्वत्र पृथ्वी मे निरन्तर गिरती हुई वे धाराऐं इस भूमण्डल मे उन नृसिंहदेव का फिर स्पर्श नही कर रही थी ॥ २२, २३ ॥ वे धाराऐं बाहिर से वर्ष रही थीं किन्तु उनके ऊपर वे नहीं बरस रही थी उस युद्ध स्थल में एक मृगेन्द्र के प्रतिरूप धारण करने वाले प्रभु की माया से उस तुमुल पाषाणो की वर्षा के हत होने पर तथा जल की वर्षा के एकदम शोषित कर डालने पर फिर उस दानव ने अग्नि और वायु से समीरित माया का सृजन किया था ॥ २४, २५ ॥

उस समय में महान् द्युति वाले सहस्राक्ष महेन्द्रदेव ने जलदों के द्वारा महान् जल की वृष्टि से उस मायाकृत अग्नि का शमन कर दिया था। जब वह माया भी प्रतिहत करदी गई तो उसके पीछे युद्ध में उस महा-दानव ने चारों ओर में महान् घोर तम का बड़ी ही तीव्रता के साथ विशेष रूप से सृजन किया था ॥ २६, २७ ॥ सम्पूर्ण लोक तम से जब परिवृत हो गया था तो उस समय में आयुधों के धारण करने वाले उन दैत्यों के विशाल समुदाय में वह महाप्रभु नृसिंहदेव अपने ही तेज से परिवृत होकर दिवाकर के समान शोभा सम्पन्न होगये थे ।।२८।।

त्रिशाखां भ्रुकुटीञ्चास्य ददृशुर्दानवा रणे ।
ललाटस्थां त्रिशूलाङ्कां गङ्गां त्रिपथगामिव ॥२९
ततः सर्वासु मायासु हतासु दितिनन्दनाः ।
हिरण्यकशिपुं दैत्य विवर्णाः शरणं ययुः ॥३०
ततः प्रज्वलितः क्रोधात् प्रदहन्निव तेजसा ।
तस्मिन् क्रुद्धे तु दैत्येन्द्रे तमोभूतमभूज्जगत् ॥३१
आवाहः प्रवहश्चैव विवहोऽथ ह्युदावहः ।
परावहः संवहश्च महाबलपराक्रमाः ॥३२
तथा परिवहः श्रीमानुत्पातभयशंसनाः ।
इत्येवं क्षुभिताः सप्त मरुतो गगनेचराः ॥३३
ये ग्रहाः सर्वलोकस्य क्षये प्रादुर्भवन्ति वै ।
ते सर्वे गगने दृष्टा व्यचरन्त यथासुखम् ॥३४
अन्यङ्गते चाप्यचरन्मार्गं निशि निशाचरः ।
संग्रहः सहनक्षत्रै राकापतिररिन्दमः ॥३५

रणस्थल में स्थित दानवों ने फिर इन नृसिंह प्रभु की तीन शाखाओं वाली भृकुटी का त्रिशूल से अङ्कित ललाट प्रदेश में स्थित त्रिपथ गामिनी गङ्गा की भाँति दर्शन किया था। इसके अनन्तर जब सभी की गयी मायायें हत हो गयी थीं तो वे सब दिति के पुत्र महादैत्य गण विवर्ण

होकर दैत्यराज हिरण्य कशिपु की शरणागति में प्राप्त हो गये थे ॥ २९, ३० ॥ इसके पश्चात् वह मानो अपने ही तेज से सबको प्रदग्ध कर रहा था वह दैत्यराज महान् क्रोध से प्रज्वलित हो गया था। जब वह दैत्येन्द्र इस भाँति क्रुद्ध हो गया तो उस समय में सम्पूर्ण जगत् अन्धकार से परिपूर्ण हो गया था ॥ ३१ ॥ उत्पातों के भय को सूचित करने वाले और महान् बल तथा पराक्रम से युक्त आवह–प्रवह–विवह–उदावह–परावह–संवह और परिवह ये सात प्रकार के मरुत परम क्षुभित होते हुए आकाश में सञ्चरण करने वाले दिखलाई दे रहे थे ॥ ३२, ३३ ॥ जो ग्रह सम्पूर्ण लोकों के क्षय होने के समय में प्रादुर्भूत हुआ करते हैं वे सभी ग्रह यथा सुख आकाश में विचरण करते हुए देखे गये थे। रात्रि में निशाचर मार्ग में अभ्यगत हो जाने पर विचरण कर रहा था और अरिन्दम राकापति का नक्षत्रों के सहित सग्रहीत कर लिया गया था ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

विवर्णताञ्च भगवान् गतो दिवि दिवाकरः।
कृष्णं कबन्धं च तथा लक्ष्यते सुमहद्दिवि ॥३६
अमुञ्चदार्चिषा वृन्दं भूमिवृत्तिर्विभावसुः।
गगनस्थश्च भगवानभीक्ष्णं परिदृश्यते ॥३७
सप्त धूम्रनिभा घोराः सूर्य्या दिवि समुत्थिताः।
सोमस्य गगनस्थस्य ग्रहास्तिष्ठन्ति शृङ्गगाः ॥३८
वामेन दक्षिणे चैव स्थितौ शुक्रबृहस्पती।
शनैश्चरो लोहिताङ्गो ज्वलनाङ्गसमुद्यती ॥३९
सम समधिरोहन्तः सर्वे ते गगनेचराः।
शृङ्गाणि शनकैर्घोरा युगान्तावर्तिनो ग्रहाः ॥४०
चन्द्रमाश्च सनक्षत्रैः ग्रहैः सह तमोनुदः।
चराचरविनाशाय रोहिणी नाभ्यनन्दत ॥४१
गृह्यते राहुणाचन्द्र उल्काभिरभिहन्यते।

उल्का: प्रज्वलिताश्चान्द्रे विचरन्ति यथासुखम् ।।४२

भगवान् दिवाकर दिव लोक में विवर्णता को प्राप्त हो गये थे और वह उस सुमहान् दिवलोक मे कृष्ण कवन्ध की भाँति दिखलाई दे रहे थे। ।।३६।। अर्चियों का वृन्द यह—भूमि वृत्ति-विभावसु और गगन मे स्थित भगवान् अभीक्ष्ण में परिदृश्यमान हो रहे थे ।।३७।। दिवलोक मे धूम्र के तुल्य महान् घोर सात सूर्य समुत्थित हो गये थे। गगन में स्थित सोम के शृङ्ग में गमन करने वाले ग्रह स्थित हो गये थे ।।३८।। उसके वाम भाग में और दक्षिण भाग में शुक्र और वृहस्पति ग्रह स्थित हो गये थे। शनैश्चर और लोहिताङ्ग अग्नि के अङ्ग के समान द्युति वाले थे। वे सम्पूर्ण गगन पर समरूप से ही समधिरोहण कर रहे थे, ये युगान्त मे आवर्त्तन करने वाले महान् घोर ग्रह, शनैः-शनैः शृङ्गों पर अधिरोहण और करते थे। तमका नोदन करने वाला चन्द्रमा नक्षत्रों और ग्रहो के सहित चराचर सबके विनाश करने के लिये रोहिणी का अभिनन्दन नही कर रहा था। ।।३६, ४०, ४१।। राहु के द्वारा चन्द्र निगृहीत हो रहा था और उल्काओं से उसका अभिहनन किया जा रहा था। प्रज्वलित उल्काऐं सुख पूर्वक चन्द्रमा में विचरण कर रही थीं ।।४२।।

देवानामपि यो देवः सोऽप्यवर्षतशोणितम् ।
अपतन् गगनादुल्का विद्युद्रूपामहा स्वनाः ।।४३
अकाले च द्रुमाःसर्वे पुष्पन्ति च फलन्ति च ।
लताश्च सफलाःसर्वा येचाहुर्दैत्यनाशनम् ।।४४
फले-फलान्यजायन्त पुष्पैःपुष्पं तथैव च ।
उन्मीलन्ति निमीलन्ति हसन्तिच रुदन्ति च ।।४५
विक्रोशन्ति च गम्भीरा धूमयन्ति ज्वलन्ति च ।
प्रतिमाः सर्वदेवानां वेदयन्ति महद्भयम् ।।४६
आरण्यैः सह संसृष्टा ग्राम्याश्च मृगपक्षिणः ।
चक्रुः सुभैरवं तत्र महायुद्धमुपस्थितम् ।।४७

नद्यश्च प्रतिकूलानि वहन्ति कलुषोदकाः ।
न प्रकाशन्ति च दिशो रक्तरेणुसमाकुलाः ॥४८
वानस्पत्यो न पूज्यन्ते पूजनार्हाः कथञ्चन ।
वायुवेगेन हन्यन्ते भज्यन्ते प्रणमन्ति च ॥४९

ज्योतिष के अनुसार युगान्तकारी महान् भीषण ग्रहों की स्थिति जो उस समय हुई थी—यह जतला कर उसका प्रतिफल बतलाते हुए कहते हैं कि समस्त देवो का भी जो देव है वह भी इस भीषण ग्रहो की स्थिति के कारण रक्त की वर्षा कर रहा था और गगन से महान् घोर ध्वनि करने वाली विद्युत् के स्वरूप मे स्थित उल्काओ का पतन हो रहा था ॥४३॥ अकाल मे ही सब वृक्ष पुष्प और फल देने वाले हो गये थे जो कि महान् उत्पात के सूचक थे । सम्पूर्ण लताऐं भी फलो से युक्त हो गई थी जो दैत्यों के विनाश को स्पष्ट तया बतला रही थी ॥४४॥ फलो मे से फल और पुष्पों के द्वारा पुष्पो की उत्पत्ति होने लग गयी थी । ये सब उन्मीलित और निमीलित हुआ करते थे तथा कभी २ हँसते थे और किसी समय मे रुदन करने वालेथे। ये सब महा विनाश की सूचना करने वाले हो गये थे ॥४५॥ समस्त देवो की प्रतिमाऐ जो अति गम्भीर थी—धूमित बना रही थी और प्रज्वलित हो जाया करती थी । ये सभी महान् भय के समागम को प्रकट कर रही थी और महान् असगुन को ज्ञात कराती थी। ग्राम्य पशुगण और पक्षिवृन्द आरण्यक (जगली) पशु-पक्षियो के साथ ससृष्ट होने लगे थे । वहा पर अत्यन्त भैरव उपस्थित महान् युद्ध करने लगे थे । कलुषित जलो से युक्त होकर सभी नदियां प्रतिकूल रूप से बहने लगी थी । सभी दिशाऐं लाल वर्ण की रेणुओ से समाकुल होकर प्रकाश नहीं करने वाली हो गई थीं । पूजन करने के योग्य वनस्पतियां किसी भी समय मे पूजित नही हो रही थी और वायु के वेग से वे सब हन्यमान—भञ्जन शील और नीचे की ओर झुकी हुई हो गई थी ॥ ४६ ॥ ॥४७, ४८, ४९॥

यदा च सर्वभूतानां छाया न परिवर्तते ।
अपहृणगते सूर्ये लोकानां युगसक्षये ॥५०
तदा हिरण्यकशिपोर्दैत्यस्योपरि वेश्मनः ।
भाण्डागारे युधागारे निविष्टमभवन्मधु ॥५१
असुराणां विनाशायसुराणांविजयाय च ।
दृश्यन्ते विविधोत्पाता घोराघोरनिदर्शनाः ॥५२
एते चान्ये च बहवो घोरोत्पाताः समुत्थिताः ।
दैत्येन्द्रस्य विनाशायदृश्यन्ते कालनिर्मिताः ॥५३
मेदिन्यां कम्पमानायां दैत्येन्द्रेण महात्मना ।
महीधरा नागगणा निपेतुरमितौजसः ॥५४
विषज्वालाकुलैर्वक्त्रैर्विमुञ्चन्तो हुताशनम् ।
चातुःशीर्षाः पञ्चशीर्षाः सप्तशीर्षाश्चापन्नगाः ॥५५
वासुकिस्तक्षकश्चैव कर्कोटकधनञ्जयौ ।
एलामुख, कालिकश्च महापद्मश्च वीर्यवान् ॥५६
सहस्रशीर्षा नागावै हेमतालध्वजः प्रभुः ।
शेषोऽनन्तोमहाभागो दुष्प्रकम्प्यःप्रकाम्पतः । ५७
दीप्तान्यन्तर्जलस्थानि पृथिवीधरणानि च ।
तदा क्रुद्धेन महता कम्पितानि समन्ततः ॥५८

जिस समय में समस्त प्राणियों की छाया परिवर्त्तित नहीं होती है और लोकों के युग सक्षय में सूर्य्य भगवान् अपराह्ण गत हो जाया करते हैं ॥५०॥ उस समय में दैत्यराज हिरण्य कशिपु के निवास-गृह के ऊपर भाण्डागार और आयुधागारमें मधु निविष्ट हो गया था ॥५१॥ घोर निदर्शन वाले विविध भाँति के स्वरूप वाले महान् उत्पात इन असुरों के विनाश के लिये तथा देवगणों को विजय प्राप्त होने के लिये दिखलाई दे रहे थे ॥५२॥ अन्य भी और जो बहुत-से अत्यन्त घोर उत्पात उठ खड़े हुए थे वे सब काल बलों के द्वारा विनिर्मित उस दैत्येन्द्र के सर्व तो भाव

से विनाश के लिये ही दिखलाई दे रहे थे ॥५३॥ उस महान् आत्मा वाले दैत्येन्द्र के द्वारा कम्पायमान इस मेदिनी मे अमित ओज से सम्पन्न महीधर और नागगण गिर गये थे ॥५४॥ चार शीर्ष वाले-पाँच फणओं से युक्त और सात मस्तकों वाले पन्नग (सर्प) विष की ज्वालाओ से समाकुल मुखो से हुताशन का विमुञ्चन कर रहे थे। प्रमुख पन्नगो में वासुकि—तक्षक—कर्कोटक—धनञ्जय—एलामुख—कालिक और महान् वीर्य-शाली महापद्म एवं सहस्र शीर्षों वाला—नग—हेमताल ध्वज—प्रभु शेष और महाभाग अनन्त—दुष्प्रकम्प्य—प्रकम्पित—जल के अन्दर स्थित रहने वाले दीप्त और पृथिवी धारण थे। उस समय मे ये सब चारो ओर मे महान् क्रुद्ध उसके द्वारा कम्पित हो गये थे ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

नागास्तेजोधराश्चापि पातालतलचारिणः।
हिरण्यकशिपुर्दैत्यस्तदा संस्पृष्टवान्महीम् ॥५९
संदष्टौष्टपुटः क्रोधाद्वाराह इव पूर्वजः।
नदी भागीरथी चैव सरयूः कौशिकी तथा ॥६०
यमुना त्वथ कावेरी कृष्णवेणी च निम्नगा।
सुवेणा च महाभागा नदी गोदावरीतथा ॥६१
चर्मण्वती च सिन्धुश्च तथा नदनदीपतिः।
कमलप्रभवश्चैव शोणोमणिनिभोदकः ॥६२
नर्मदा शुभतोया च तथा वेत्रवती नदी।
गोमती गोकुलाकीर्णा तथा पूर्वसरस्वती ॥६३
मही कालमही चैव तमसा पुष्पवाहिनी।
जम्बूद्वीप रत्नवट सर्वरत्नोपशोभितम् ॥६४

तेज के धारण करने वाले और पाताल तल मे सचरण करने वाले नाग भी कम्पायमान हो गये थे। उस समय में दैत्यराज हिरण्यकशिपु ने इस मही को सम्पर्श किया था और यह क्रोध से अपने होठों को

काटता हुआ पूर्वज वाराह की भाँति हो गया था। समस्त नद और नदियां भी प्रकम्पित हो गये थे जिनके प्रमुख नाम ये हैं—भागीरथी नदी-सरयू-कौशिकी—यमुना—कावेरी—कृष्ण वेणी निम्नगा—सुवेणा—महाभागा गोदावरी नदी—चर्मण्वती—सिन्धुनद—नद नदीपति—कमल प्रभव और मणि के सदृश स्वच्छ जल वाला शोणनद-शुभ तोया नर्मदा-वेत्रवती नदी-गोमती—गोकुलाकीर्णा तथा पूर्व सरस्वती-मही-कालमही—तमसा और पुष्प वाहिनी ये सभी नद और नदियां प्रकम्पित हो गये थे। जम्बू द्वीप और सब प्रकार के रत्नों से उपशोभित रत्नव भूः कम्पायमान थे। ॥५९, ६०, ६१, ६२, ६३, ६४॥

सुवर्णप्रकटञ्चैव सुवर्णाकरमण्डितम्।
महानदञ्च लौहित्य शैलकाननशोभितम् ॥६५
पत्तनं कोशकरणं ऋषिवीरजनाकरम्।
मागधाश्च महाग्रामा मुण्डाः शुङ्गास्तथैव च ॥६६
सुह्मा मल्ला विदेहाश्च मालवाः काशिकोसलाः।
भवनं वैनतेयस्य दैत्येन्द्रेणाभिकम्पितम् ॥६७
कैलासशिखराकारं यत् कृतं विश्वकर्मणा।
रक्ततोयो महाभीमो लौहित्यो नाम सागरः ॥६८
उदयश्च महाशैल उच्छ्रितः शतयोजनम्।
सुवर्णवेदिकः श्रीमान् मेघपङ्क्तिनिषेवितः ॥
भ्राजमानोऽर्कसदृशैर्जातरूपमयैर्द्रुमैः।
शालैस्तालैस्तमालैश्च कर्णिकारैश्च पुष्पितैः ॥६९

सुवर्ण के आकरों (खानों) से मण्डित सुवर्ण प्रकट तथा शैल और काननों से शोभा संयुत लौहित्य महान्-ऋषि और वीरजनों की खान कोश करण पत्तन-मागध-महाग्राम-मुण्ड तथा शुङ्ग-सुह्म-मल्ला-विदेह-मालव-काशी—कोसल और वैनतेय का भवन ये सब देश और स्थल उस दैत्येन्द्र हिरण्य कशिपु के द्वारा अभिकम्पित होगये थे ॥६५, ६६, ६७। यह भवन

कैलास पर्वत की शिखर के समान आकार वाला था और विश्वकर्मा के द्वारा इसकी रचना की गयी थी। महान् भीम स्वरूप वाला जिसका जलरक्त वर्ण का था ऐसा लौहित्य नाम वाला सागर—उदय महाशैल जिसकी सौ योजन ऊँचाई थी—मेघों की पंक्तियों से निषेवित सुवर्ण वेदिक जो पुष्पित कणिकार, शाल, ताल, तमाल, सूर्य के सदृश जात रूपमय द्रुमों से भ्राजमान था ॥६८, ६९॥

अयोमुखश्च विख्यातः सर्वतो धातुमण्डितः।
तमालवनगन्धश्च पर्वतो मलयः शुभः ॥७०
सुराष्ट्राश्च सवाल्हीकाः शूराभीरास्थैवच ॥७१
भोजा.पाण्ड्याश्च वङ्गाश्च कलिङ्गास्ताम्रलिप्तकाः॥७२
तथैवोड्राश्च पौण्ड्राश्च वामचूडाःसकेरलाः।
क्षोभितास्तेन दैत्येन सदेवाश्चाप्सरोगणाः ॥७३
अगस्त्यभवनञ्चैव यदगम्यङ्कृतं पुरा
सिद्धचारणसङ्घैश्च विप्रकीर्णं मनोहरम् ॥७४
विचित्रनानाविहगं सुपुष्पितमहाद्रुमम्।
जातरूपमयैः शृङ्गैर्गगनं विलिखन्निव ॥७५
चन्द्रसूर्यांशुसङ्काशैः सागराम्बुसमावृतः।
विद्युत्वान् सर्वः श्रीमानायतः शतयोजनम् ॥७६
विद्युतां यत्र सङ्घाता निपात्यन्ते नगोत्तमे।
ऋषभः पर्वतश्चैव श्रीमान् वृषभसंज्ञितः ॥७७

अयोमुख परम विख्यात था जो सभी ओर से धातुओं से मण्डित था तथा तमाल के वनों की गन्ध से युक्त मलय पर्वत परम शुभ था। सुराष्ट्र—वाह्लीक—शूर—आभीर—भोज—पाण्ड्य—बङ्ग—कलिङ्ग—ताम्रलिप्त—उड्र—पौण्ड्र—वाम चूड—केरल इन सब देशों को उस दैत्य ने क्षोभ युक्त बना दिया था और देवों के सहित अप्सराओं के समुदायों को भी क्षुब्ध कर दिया था ॥७०, ७१, ७२, ७३॥ अगस्त्य भवन

जो कि पहिले अगस्त्य कर दिया था वह सिद्ध-चारणों के समूहों से विप्रकीर्ण और अत्यन्त मनोहर था ॥७४॥ उसमे विचित्र भाँति के अनेक विहग रहते थे तथा सुन्दर पुष्पों से युक्त महान् वृक्ष लगे हुए थे। उसके सुवर्णमय शिखर इतने ऊचे थे मानो वे गगन को लिखित बना रहे हैं। ॥७५॥ वह सागर के जलो से समावृत चन्द्र सूर्य्य की किरणों के सदृश विद्युत वाला शोभा से सुसम्पन्न सौ योजन पर्य्यन्त आयति वाला था। जिस नगोत्तम पर विद्युतों के संघातों का निपातन किया जाता था ऋषभ और श्री सम्पन्न वृषभ संज्ञा वाला पर्वत था ॥७६, ७७॥

कुञ्जरः पर्वतः श्रीमानगस्त्यस्य गृहं शुभम् ।
विशालाक्षश्च दुर्धर्षः सर्पाणामालयः पुरी ॥७८
तथा भोगवतीचापि दैत्येन्द्रेणाभिकम्पिता: ।
महासेनो गिरिश्चैव पारियात्रश्च पर्वतः ॥७९
चक्रवांश्च गिरिश्रेष्ठो वाराहश्चैव पर्वतः ।
प्राग्ज्योतिषपुरञ्चापि जातरूपमयं शुभम् ॥८०
यस्मिन्वसति दुष्टात्मा नरको नाम दानवः ।
विशालाक्षश्च दुर्द्धर्षो मेघगम्भीरनिस्वनः ॥८१
षष्टिस्तत्र सहस्राणि पर्वतानां द्विजोत्तमाः ।
तरुणादित्यसङ्काशो मेरुस्तत्र महागिरिः ॥८२
यक्षराक्षसगन्धर्वैर्नित्यं सेवितकन्दरः ।
हेमगर्भो महाशैलस्तथा हेमसखो गिरिः ॥८३
कैलासश्चैव शैलेन्द्रो दानवेन्द्रेण कम्पिताः ।
हेमपुष्करसक्षेत्रं तेन वैखानसं सरः ॥८४

श्री से सम्पन्न कुञ्जर पर्वत अगस्त्य का परम शुभ गृह था भोगवती भी उस दैत्येन्द्र के द्वारा अभिकम्पित हो रही थी। महासेन पर्वत—पारियात्र गिरि—चक्रवान् श्रेष्ठ गिरि—वाराह पर्वत—प्राग्ज्योतिषपुर जो परम शुभ और जातरूप मय था। जिसमे दुष्ट आत्मा वाला नरक नाम-

धारी दानव निवास किया करता था वह मेघ के समान गम्भीर ध्वनि वाला दुर्धर्ष विशालाक्ष था ॥७८, ७९, ८०, ८१॥ हे द्विजोत्तमो ! वहां पर साठ हजार पर्वत थे और वहां तरुण आदित्य के सदृश महान् गिरि मेरु था ॥८२॥ यक्ष-गन्धर्व—राक्षसों के द्वारा नित्य ही जिसकी कन्दराओं का सेवन किया जाता था वह महान् शैल हेम गर्भ था तथा हेम सखा गिरि था ॥८३॥ ये समस्त महा शैल और शैलों का प्रमुख स्वामी कैलास को भी उस दानवेन्द्र ने कम्पित कर दिया था। उसने हेम पुष्प रस तीव्र वैखानस सरोवर को भी प्रकम्पित कर दिया था ॥८४॥

कम्पित मानसञ्चैव हंसकारण्डवाकुलम् ।
त्रिशृङ्गपर्वतञ्चैव कुमारी च सरिद्वरा ॥८५
तुषारचयसञ्छन्ना मन्दरश्चापि पर्वतः ।
उशीरबिन्दुश्च गिरिश्चन्द्रप्रस्थस्तथाद्रिराट् ॥८६
प्रजापतिगिरिश्चैव तथा पुष्करपर्वतः ।
देवाभ्रपर्वतश्चैव यथावै रेणुकोगिरिः ॥८७
क्रौञ्चः सप्तर्षिशैलश्च धूम्रवर्णश्च पर्वतः ।
एते चान्ये च गिरयो देशा जनपदास्तथा ॥८८
नद्यः ससागराः सर्वाः सोऽकम्पयत दानवः ।
कपिलश्च महीपुत्रो व्याघ्रवांश्चैव कम्पितः ॥८९
खेचराश्चैव सतीपुत्राः पातालतलवासिनः ।
गणस्तथा परोरौद्रो मेघनामाकुशायुधः ॥९०
ऊर्ध्वगो भीमवेगश्च सर्व एवाभिकम्पिता. ।
गदी शूली करालश्च हिरण्यकशिपुस्तदा ॥९१

हंसों और कारण्डवों से समाकुल मानस सरोवर का भी कम्पायमान कर डाला था। त्रिशृङ्ग पर्वत, सरिताओं में परम श्रेष्ठ, तुषार के समुदाय से सञ्छन्न कुमारी नदी, मन्दर पर्वत, उशीर बिन्दु गिरि, अद्रियों का राजा चन्द्रप्रस्थ, प्रजापति गिरि, पुष्कर पर्वत, देवाभ्र पर्वत,

रेणुक गिरि, क्रौञ्च, सप्तर्षि, शैल, धूम्रवर्ण पर्वत, तथा अन्य गिरिगण, देश तथा जनपद, सागरों के सहित समस्त नदियों आदि को उस महा दानव ने कम्पित कर दिया था। मही का पुत्र कपिल और व्याघ्रवान् पर्वत को भी कम्पायमान बना दिया था ॥८५, ८६, ८७, ८८, ८९॥ खेचर, सप्तीपुत्र, पाताल तल के निवासिगण, पर रौद्र, मेघ नाम वाला अङ्कुशायुध, ऊर्ध्वग और भीम वेग ये सभी अभिकम्पित हो गये थे। उस समय में हिरण्य कशिपु गदा के धारण करने वाला, शूलधारी और महान् कराल हो गया था ॥९०, ९१॥

जीमूतघनसङ्काशो जीमूतघननिस्वनः।
जीमूतघननिर्घोषो जीमूत इव वेगवान् ॥९२
देवारिर्दितिजो वीरो नृसिंहं समुपाद्रवत्।
समुत्पत्य ततस्तीक्ष्णैर्मृगेन्द्रेण महानखैः ॥९३
तदोङ्कारसहायेन विदार्य निहतोयुधि।
मही च कालश्च शशी नभश्च ग्रहाश्च सूर्यश्च दिशश्च सर्वाः।
नद्यश्च शैलाश्च महार्णवाश्च गताः प्रसादन्दितिपुत्रनाशात् ॥९४
ततः प्रमुदिता देवा ऋषयश्च तपोधनाः।
तुष्टुवुर्नामभिर्दिव्यैरादिदेव सनातनम् ॥९५
यत्त्वया विहितं देव! नारसिंहमिदं वपुः।
एतदेवार्चयिष्यन्ति परावरविदोजनाः ॥९६
भवान् ब्रह्मा च रुद्रश्च महेन्द्रो देवसत्तमाः!।
भवान् कर्ता विकर्ता च लोकानां प्रभवाप्ययः ॥९७
परञ्च सिद्धाञ्च परञ्च देव परञ्च मन्त्रं परमं हविश्च।
परञ्च धर्मं परमञ्च विश्वं त्वामाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम् ॥९८

उस हिरण्य कशिपु का स्वरूप उस काल में जीमूत कृष्णमेघ के समान था और मेघ के ही तुल्य घोर ध्वनि वाला वह था। उसको घोर

गर्जना भी मेघ के ही तुल्य थी तथा जीमूत के समान ही वेग से सुदृढ था ॥ ६२ ॥ इस प्रकार के स्वरूप वाला वह दिति का पुत्र और देवों का शत्रु था उस वीर ने नृसिंह महाप्रभु पर आक्रमण किया था। इसके अनन्तर उसी समय मे ओङ्कार की सहायता वाले मृगेन्द्र ने उछाल मारकर अपने परम तीक्ष्ण विशाल नखों से उस दानवेन्द्र हिरण्य कशिपु को पकड कर विदीर्ण कर दिया था और नृसिंह प्रभु के द्वारा वह युद्ध मे निहत हो गया था। दिति-पुत्र के विनाश हो जाने से यह मही—वात-व्योनम-सूर्य-सम्पूर्ण ग्रह—समस्त दिशाऐं—नदियाँ-शैल और महासागर सब परम प्रसन्नता को प्राप्त हो गये थे ॥ ६३। ६४ ॥ इसके पश्चात् सब देव वृन्द—ऋषिवर्ग और तापस गण परम प्रमुदित हो गये थे और फिर उन्होंने दिव्य नामो के द्वारा उन सनातन आदि देव का स्तवन किया था ॥ ६५ ॥ उन्होंने कहा—हे देव ! आपने जो यह नारसिंह वपु धारण किया है आपके इसी स्वरूप का दगावर वेत्ता जन अर्चन किया करेंगे ॥ ६६ ॥ ब्रह्माजी ने कहा—हे भगवन् ! आप ही ब्रह्मा-रुद्र-महेन्द्र और परम श्रेष्ठ देव हैं। आप ही इन लोकों के कर्त्ता-विकर्त्ता-प्रभव और अव्यय हैं ॥ ६७ ॥ आपको ही परम सिद्ध-परात्पर देव-परम मन्त्र-परम हवि-परम धर्म्म-परम विश्व और सबसे आदि मे होने वाले पुरातन पुरुष कहते हैं ॥६७, ६८॥

परं शरीरं परमञ्च ब्रह्म परञ्च योगं परमाञ्च वाणीम् ।
पर रहस्यं परमाद्भुतिञ्च त्वामाहुरग्र्यं पुरुष पुराणम् ॥६६
एवं परस्यापि परं पदं यत् पर परस्यापि परञ्च देवम् ।
परं परस्यापि परञ्च भूतं त्वामाहुरग्र्यं पुराणम् ॥१००
परं परस्यापि परं निधानं पर परस्यापि पर पवित्रम् ।
पर परस्यापि परं च दान्तन्त्वामाहुरग्र्यं पुरुष पुराणम् ॥१०१
एवमुक्त्वा तु भगवान् सर्वलोकपितामहः ।
स्तुत्वा नारायणं देवं ब्रह्मलोकं गतः प्रभुः ॥१०२

ततो नदत्सु तूर्येषु नृत्यन्तीष्वप्सरःसु च ।
क्षीरोदस्योत्तरं कूलं जगाम हरिरीश्वरः ॥१०३
नारसिंह वपुर्देवः स्थापयित्वा सुदीप्तिमत् ।
पौराणं रूपमास्थाय प्रययौ गरुडध्वजः ॥१०४
अष्टचक्रेण यानेन भूतयुक्तेन भास्वता ।
अव्यक्तप्रकृतिर्देवः स्वस्थानं गतवान् प्रभुः ॥१०५

हे भगवन् ! आपको ही परम शरीर—परम ब्रह्म—परमयोग—परम वाणी—परम रहस्य तथा परम गति एवं आद्य पुराण पुरुष कहा करते हैं। इस प्रकार से जो परकामी परम पद है और परकामी परम देव है तथा परकामी परमभूत है उस आद्य पुरुष एवं परम पुराण आपको ही कहते हैं ॥ ९९ । १०० ॥ इसी भाँति परकामी परम निधान—परकामी परम पवित्र तथा परसेवी परम दान्त आद्य पुराण पुरुष आपको ही कहते हैं ॥ १०१ ॥ इस रीति से समस्त लोकों के पितामह भगवान् ने नारायण देव का स्तवन करके प्रार्थना की और फिर वे प्रभु अपने ब्रह्मलोक को वापिस चले गये थे ॥ १०२ ॥ इसके अनन्तर तूर्यों के घोष होने पर और अप्सराओं के नृत्य होने पर ईश्वर श्री हरि क्षीरसागर के उत्तर कूल पर गमन कर गये थे ॥ १०३ ॥ देवेश्वर ने सुदीप्ति से युक्त नारसिंह वपु की स्थापना कराकर फिर गरुड़ध्वज प्रभु पौराण स्वरूप में समास्थित होकर प्रयाण कर गये थे। भूतयुक्त-भास्वान् आठ चक्रों वाले यान के द्वारा अव्यक्त प्रकृति देव प्रभु अपने स्थान को चले गये थे ॥ १०४ ॥ १०५ ॥

६४—मनुमत्स्य संवाद वर्णन

पद्मरूपमभूदेतत् कथं हेममयं जगत् ॥१
कथञ्च वैष्णवी सृष्टिः पद्ममध्येऽभवत्पुरा ॥२
श्रुत्वा च नरसिंह माहात्म्यं रविनन्दनः ।
विस्मयोत्फुल्लनयनः पुनः प्रपच्छकेशवम् ॥३
कथं पाद्मे महाकल्पे तव पद्ममयं जगत् ।
जलार्णवगतस्येह नाभौ जातं जनार्दन ! ॥४
प्रभावात् पद्मनाभस्य स्वपतः सागराम्भसि ।
पुष्करे च कथं भूता देवाः सर्षिगणाः पुरा ॥५
एतमाख्याहि निखिलं योगं योगविदाम्पते ! ।
शृण्वतस्तस्य मे कीर्ति नतृप्तिरुपजायते ॥६
कियता चैव कालेन शेते व पुरुषोत्तमः ।
कियन्तं वा स्वपिति च कोऽस्य कालस्य सम्भवः ॥७

ऋषिगण ने कहा—हमारी यह प्रार्थना है कि सृष्टि रचना को कुछ और अधिक विस्तार के साथ आप वर्णन कीजिए ॥ १, २ ॥ यह सम्पूर्ण जगत् जिस प्रकार से हेममय पद्म के स्वरूप वाला हो गया था और पहिले उस पद्म के मध्य में यह वैष्णवी सृष्टि किस प्रकार से हुई थी ॥ ३ ॥ महा महर्षि श्री सूतजी ने कहा—रविनन्दन ने प्रभु नारसिंह के माहात्म्य का श्रवण करके विस्मय से उत्फुल्ल नेत्रों वाला होकर पुनः उसने केशव प्रभु से पूछा था ।' ४ ॥ मनु ने कहा—हे जनार्दन ! पाद्म महा कल्प में जिस समय में आप जलार्णव में लीन होकर स्थित थे तब यह पद्ममय जगत् आपकी नाभि से किस प्रकार उत्पन्न हुआ था ? सागर के जल में शयन करने वाले पद्मनाभ के प्रभाव से उस पुष्कर में पहिले देव-ऋषिगण और समस्त भूत किस रीति से समुत्पन्न हुए थे ॥ ५ ॥ हे योग के वेत्ताओं के स्वामिन् ! इस सम्पूर्ण योग का वर्णन

कृपा करके कीजिए। उसकी कीर्ति का श्रवण करने वाले मेरे हृदय की तृप्ति नही हो रही है। पुरुषोत्तम प्रभु कितने लम्बे समय से वहाँ पर शयन किया करते हैं और किस काल पर्यन्त शयन करते रहते हैं। इस काल की उत्पत्ति क्या है? ॥६, ७॥

कियत्तावाथ कालेन ह्युत्तिष्ठति महायशाः।
कथञ्चोत्थाय भगवान् सृजते निखिलंजगत् ॥८
के प्रजापतयस्तावदासन् पूर्वं महामुने!।
कथं निर्मितवांश्चैव चित्रं लोकं सनातनम् ॥९
प्रथमेकार्णवे शून्ये नष्टस्थावरजङ्गमे।
दग्धदेवासुरनरे प्रनष्टोरगराक्षसे ॥१०
नष्टानिलानले लोके नष्टाकाशमहीतले।
केवलं गह्वरीभूते महाभूतविपर्यये ॥११
विभुर्महाभूतपतिर्महातेजा महाकृतिः।
आस्ते सुरवरश्रेष्ठो विधिमास्थाय योगवित् ॥१२
शृणुयां परया भक्त्या ब्रह्मन्नेतदशेषतः।
वक्तुमर्हसि धर्मिष्ठ! यशो नारायणात्मकम् ॥१३

यह महान् यशस्वी प्रभु कितने काल मे वहाँ पर उत्थित हुआ करते हैं और किस प्रकार से उठकर इस सम्पूर्ण जगत् का सृजन भगवान् किया करते हैं? हे महामुने! पहिले कौन प्रजापति थे और इस अत्यन्त विचित्र जगत् तथा सनातन लोक का किस प्रकार से निर्माण किया था? ॥८, ९॥ प्रथम इस एक मात्र आर्णव में जब कि सभी स्थावर और जङ्गम नष्ट होकर यह एकदम शून्य था-और सब देव—असुर एवं नर दग्ध हो गये थे तथा उरग और राक्षस भी सब नष्ट हो गये थे। अनिल और अनल भी विनष्ट हो गये थे। लोक में आकाश एवं महीतल का नाम निशान भी नही था। महाभूतों के विपर्यय हो जाने पर यह केवल एक गह्वर के तुल्य ही था। उस समय मे महान् आकृति वाले—महान्

तेजस्वी—मुनिवरों में परम श्रेष्ठ—महाभूतों के स्वामी—योगवेत्ता विधि में समास्थित होकर थे ॥ १०, ११, १२ ॥ हे भगवन्! मैं परम भक्तिपूर्वक पूर्णरूप से इन सबको श्रवण करना चाहता हूँ। हे धर्मिष्ठ! आप इस नारायण के ही स्वरूप वाले परम यश का वर्णन करने के योग्य होते हैं ॥ १३ ॥

श्रद्धया चोपविष्टानां भगवन्! वक्तुमर्हसि ।
नारायणस्य यशसः श्रवणे या तव स्पृहा ॥१४
तद्वंश्यान्वयभूतस्य न्याय्यं रविकुलर्षभ ! ।
शृणुष्वादिपुराणेषु वेदेभ्यश्च यथाश्रुतम् ॥१५
ब्राह्मणानाञ्च वदतां श्रुत्वा वै सुमहात्मनाम् ।
यथा च तपसा दृष्ट्वा बृहस्पतिसमद्युतिः ॥१६
पराशरसुतः श्रीमान् गुरुर्द्वैपायनोऽब्रवीत् ।
ततोऽहं कथयिष्यामि यथाशक्ति यथाश्रुति ॥१७
यद्विज्ञातुं मया शक्यमृषिमात्रेण सत्तमाः ! ।
कः समुत्सहते ज्ञातुं परं नारायणात्मकम् ॥१८
विश्वायनश्च यद्ब्रह्मा न वेदयति तत्त्वतः ।
तत्कर्म्मं विश्ववेदानां तद्रहस्यं महर्षिणाम् ॥१९
समीज्यं सर्वयज्ञानां तत्तत्त्वं सर्वदर्शिनाम् ।
तदध्यात्मविदां चिन्त्यं नरकञ्च विकर्मिणाम् ॥२०
अधिदैवञ्च यद्दैवमधियज्ञं सुसंज्ञितम् ।
तद्भूतमधिभूतञ्च तत्परं परमर्षिणाम् ॥२१

हम सब श्रद्धा के साथ श्रवण करने के लिए यह समुपस्थित हैं। आप अब कहने की कृपा कीजिए क्योंकि इसके वर्णन करने की पूर्ण क्षमता रखते हैं। मत्स्य भगवान् ने कहा—जो यह आपकी स्पृहा भगवान् नारायण के यश को श्रवण करने की समुत्पन्न हुई है यह हे रविकुलर्षभ! उसी वंश में होने वाले अन्वय में उत्पन्न आपको बहुत उचित ही है।

वेदों से तथा आदि पुराणों में जिस प्रकार से सुना गया है उसका अब श्रवण करो ॥ १४, १५ ॥ सुन्दर और महान् आत्मा वाले बोलते हुए ब्राह्मणो का कथन सुनकर और बृहस्पति के समान द्युति वाले, पाराशर के पुत्र श्रीमान् शुक द्वैपायन ने जिस प्रकार से तपश्चर्या के द्वारा देखकर बोला था उसी को मैं अपनी शक्ति और श्रवण के अनुसार आपको सब कहूँगा ॥ १६, १७ ॥ हे श्रेष्ठजनो ! ऋषि मात्र मेरे द्वारा जो भी जाना जा सकता है उस परम नारायण के स्वरूप को अन्य कौन जानने का उत्साह कर सकता है ॥ १८॥ विश्व जिसको अपना बनाता है वह ब्रह्माजी तात्विक रूप से जिसको नहीं जानते हैं। विश्व वेदो का यह कर्म्म महर्षियों के लिये भी एक रहस्य है। सब यज्ञों के यजन करने के योग्य वह सर्व दर्शियों का तत्त्व है। वह अध्यात्म के वेत्ताओं के चिन्तन के योग्य विषय है और विकर्मियो का नरक नहीं है। वह अधिदैव और अधियज्ञ संज्ञा से युक्त एवं वह भूत अधिभूत है तथा परमर्षियो का वह परम है ॥ १९, २०, २ ॥

स यज्ञो वेदनिर्दिष्टस्तत्तपः कवयो विदुः ।
यः कर्ता कारको बुद्धिर्मनः क्षेत्रज्ञ एव च ॥२२
प्रणव. पुरुषः शास्ता एकश्चेति विभाव्यते ।
प्राणः पञ्चविधश्चैव ध्रुव अक्षर एव च ॥२३
कालः पाकश्च यन्ता च द्रष्टा स्वाध्याय एव च ।
उच्यते विविधैर्देवः स एवाय न तत्परम् ॥२४
स एव भगवान् सर्वं करोति विकरोति च ।
सोऽस्मान् कारयते सर्वान् सोऽत्येति व्याकुलीकृतान् ॥२५
यतामहे तमेवाद्यन्तमेवेच्छाम निर्वृताः ।
यो वक्ता यच्च वक्तव्य यच्चाहन्तद्ब्रवीमि वः ॥२६
श्रूयते यच्च वै श्राव्यं यच्चान्यत् परिजल्प्यते ।
याःकथाश्चैव वर्तन्ते श्रुतयो वाथ तत्पराः ॥२७

पहिले प्रसन्न आत्मा इस प्रभु ने ब्रह्मा का सृजन किया था। फिर उस पूर्व पुरुष ने पहिले कल्प मे प्रजापतियों का सृजन किया था ॥ ६ । ७ ॥

अमृजन्मानवांस्तत्र ब्रह्मवंशाननुत्तमान् ।
तेभ्योऽभवन्महात्मभ्यो बहुधाब्रह्म शाश्वतम् ॥८
एतदाश्चर्यभूतस्य विष्णोः कर्मानुकीर्तनम् ।
कीर्तनीयस्य लोकेषु कीर्त्यमानं निबोध मे ॥९
वृत्ते वृत्रवधे तत्र वर्तमाने कृते युगे ।
आसीत्त्रैलोक्यविख्यातः संग्रामस्तारकामयः ॥१०
यत्र ते दानवा घोराः सर्वे संग्रामदुर्जयाः ।
घ्नन्ति देवगणान् सर्वान् सयक्षोरगराक्षसान् ॥११
ते वध्यमाना विमुखाः क्षीणप्रहरणा रणे ।
त्रातार मनसा जग्मुर्देवं नारायणं प्रभुः ॥१२
एतस्मिन्नन्तरे मेघा निर्वाणाङ्गारवर्चसः ।
सार्कचन्द्रग्रहगणंच्छादयन्तो नभस्तलम् ॥१३
वेणुर्विद्युद्गणोपेता घोरनिह्लादकारिणः ।
अन्योन्यवेगाभिहता. प्रववुः सप्त मारुताः ॥१४

वहाँ पर अत्युत्तम ब्रह्मा के वंश वाले मानवों का उनने सृजन किया था फिर उन सब महान् आत्माओं वालो से यह शाश्वत ब्रह्म ही बहुत से स्वरूपों मे समुत्पन्न हुआ था। यह ही आश्चर्य स्वरूप वाले भगवान् विष्णु के कर्मों का अनुकीर्तन है। लोकों में कीर्तन करने के योग्य के उस कीर्त्यमान कर्म्म को अब मुझसे तुम भलीभाँति समझ लो। ॥ ८ । ९ ॥ वर्तमान कृत युग मे वृत्रासुर के वध उपस्थित होने पर वहाँ पर त्रिभुवन मे विख्यात तारकामय संग्राम हुआ था। जिस युद्ध में संग्राम मे दुर्जय समस्त घोर दानव गण यक्ष–उरग और राक्षसों के सहित सब देवों का हनन किया करते थे ॥ १० । ११ ॥ उस रण मे वध किये

जाते हुए क्षीण आयुओं वाले विमुख होकर सबके सब मन से त्राण करने वाले प्रभु देव नारायण की शरण में गये थे ॥१२॥ इसी बीच में निर्वाण अङ्गार वर्चस वाले मेघ, सूर्य, चन्द्र आदि ग्रहों से युक्त नभस्तल का आच्छादन करते हुए छा गये थे। ये मेघ वेणु विद्युद्गण से युक्त थे तथा घोर गर्जन करने वाले थे। परस्पर में वेग से अभिहत मानो मगन वहन करने लगे थे ॥१३।१४॥

दीप्ततोयाशनिर्नैर्धनैर्वेगानलानिलैः।
रवं सुघोरैरुत्पातैर्दह्यमानमिवाम्बरम् ॥१५
तत उल्कासहस्राणि निपेतुः खगतान्यपि।
दिव्यानि च विमानानि प्रपतन्त्युत्पतन्ति च ॥१६
चतुर्युगान्ते पर्याये लोकानां यद्भयं भवेत्।
अरूपवन्ति रूपाणि तस्मिन्नुत्पातलक्षणे ॥१७
जातञ्च निष्प्रभं सर्वं न प्राज्ञायत किञ्चन।
तिमिरौघपरिक्षिप्ता न रेजुश्च दिशोदश ॥१८
विवेश रूपिणी काली कालमेघावगुण्ठिता।
द्यौर्नभात्यभिभूतार्का घोरेण तमसा वृता ॥१९
तान् घनौघान् सतिमिरान् दोर्भ्यामाक्षिप्य स प्रभुः।
वपुः स्वन्दर्शयामास दिव्यं कृष्णवपुर्हरिः ॥२०
बलाहकाञ्जनमिभं बलाहकतनूरुहम्।
तेजसा वपुषा चैव कृष्णं कृष्णमिवाचलम् ॥२१

उस समय में यह सम्पूर्ण आकाश दीप्त तोय और अशनि (वज्र) से संयुत घनों के द्वारा—प्रचण्ड वेग अनल और अनिलों के द्वारा—सुघोर ध्वनि और उत्पातों से दह्यमान की तरह हो रहा था ॥१५॥ इसके पश्चात् आकाश में स्थित भी सहस्रों उल्काएँ गिर गयी थीं तथा दिव्य विमान ऊपर थे और नीचे की ओर गिरते थे ॥१६॥ चतुर्युगों के अन्त में लोकों के पर्याय में जो भय होता है उस उत्पात के लक्षण में सभी रूप

बिना रूप वाले हो जाते हैं ।। १७ ।। लोकों में सभी कुछ प्रभा से हीन हो जाता है और कुछ भी नहीं जाना या समझा जाया करता है । अन्धकार के अत्यन्त घोर एवं गहन समुदाय से परिक्षिप्त हुई दशों दिशाऐं प्रकाशित नहीं होती थी । उस समय मे काल मेघ मे अवगुण्ठित होकर रूपधारिणी काली का प्रवेश हो जाता था । अत्यन्त घोर तम से समावृत दिवलोक तथ अन्तरिक्ष जिसमे सूर्य्य एकदम अभिभूत होजाता है बिल्कुल भी दिखलाई नहीं दिया करता है ।। १८, १६ ।। तिमिर से परिपूर्ण घन घनो कि समूहो को वह प्रभु अपने हाथो से आक्षिप्त करके कृष्ण वपुधारी श्री हरि अपने दिव्य शरीर को दिखाया करते थे ।। २० ।। बलाहक के सदृश काले बलाहक के समान रोमो से युक्त–वपु और तेज से एक कृष्ण अचल की भाँति कृष्ण स्वरूप को प्रकट किया था ।। २१ ।।

दीप्तापीताम्बरधरं तप्तकाञ्चनभूषणम् ।
धूमान्धकारवपुष युगान्ताग्निमिवोत्थितम् ।।२२
[illegible]
[illegible] ।।२३
चन्द्रार्ककरणोद्योत गिरिकूटमिवोच्छ्रितम् ।
नन्दकानन्दितकर शराशीविषधारिणम् ।।२४
शक्तिचित्रफलोदग्रशङ्खचक्रगदाधरम् ।
विष्णुशैल क्षमामूल श्रीवृक्ष शार्ङ्गधन्विनम् ।।२५
त्रिदशोदारफलद स्वर्गस्त्रीचारुपल्लवम् ।
सर्वलोक मनः कान्त सर्वसत्वमनोहरम् ।।२६
नानाविमानविटपन्तोयदाम्बुमधुस्रवम् ।
विद्याहङ्कारसाराढ्य महाभूतप्ररोहणम् ।।२७
विशेषपत्रैर्निचित ग्रहनक्षत्रपुष्पितम् ।
दैत्यलोकमहास्कन्ध मर्त्यलोकैः प्रकाशितम् ।।२८

वह दीप्तियुक्त पीत अम्बर को धारण करने वाला—तथा तपे हुए सुवर्ण के भूषणों से संयुत—धूम सहित अन्धकार के शरीर वाला युगान्त करने वाली अग्नि के तुल्य समुपस्थित हुआ था ॥ २३ ॥ चौगुने और दुगुने पीन अंस से समयुक्त—किरीट से समाच्छन्न केशों वाला वह दिव्य वपु चामीर प्रख्य आयुधों से उपशोभित होकर प्रकट हो रहा था ॥ २३ ॥ चन्द्र और सूर्य्य की किरणों के उद्योत वाला अत्यन्त ऊँचे गिरि के शिखर के सदृश था। नन्दक से आनन्दित करने वाला—शर तथा आसीविष के धारण करने वाला—क्षमा का मूल—विष्णु पीन—श्री वृक्ष और शार्ङ्ग धनुष के धारण करने वाला वह दिव्य स्वरूप था ॥ २४, २५ ॥ उसी दिव्य स्वरूप का वर्णन किया जा रहा है—वह देवों का उदार फल देने वाला—स्वर्गीय स्त्रियों का चारु पल्लव-सब लोगों के मन को रमणीय—सब जीवों से अत्यन्त मनोहर—नाना विमानों के विटपों वाला—मेघों के जलरूप मधु का श्रवण करने वाला—विद्या के अहङ्कार-सार का आद्य—महान् भूतों का प्ररोहण करने वाला—विशेष पत्रों से निचित—ग्रह और नक्षत्र रूपी पुष्पों से संयुत और वह दिव्य रूप दैत्यों के लोक का महान् स्कन्ध था जो कि इस मर्त्य लोक में प्रकाशित हुआ था ॥ २६ । २७ । २८ ॥

सागराकारनिह्रादं रसातलमहाश्रयम् ।
मृगेन्द्रपाशैर्विततं पक्षजन्तुनिषेवितम् ॥२९
शीलार्थचारुगन्धाढ्यं सर्वलोकमहाद्रुमम् ।
अव्यक्तानन्तसलिलं व्यक्ताहङ्कारफेनिलम् ॥३०
महाभूततरङ्गौघं ग्रहनक्षत्रबुद्बुदम् ।
विमानगह्वरव्याप्तं तोयदाडम्बराकुलम् ॥३१
जन्तुमत्स्यजनाकीर्णं शैलशङ्खकुलैर्युतम् ।
त्रैगुण्यविषयावर्तं सर्वलोकतिमिङ्गिलम् ॥३२
वीरवृक्षलतागुल्मं भुजगोत्कृष्टशैवलम् ।

द्वादशार्कमहाद्वीपं रुद्रैकादशपत्तनम् ।।३३
वस्वष्टपर्वतोपेत त्रैलोक्याम्भोमहोदधिम् ।
सन्ध्यासङ्ख्योर्मिसलिल सुपर्णानिलसेवितम् । ३४
दैत्यरक्षोगणग्राहं यक्षोरगझपाकुलम् ।
पितामहमहावीर्य्यं सर्वस्त्रीरत्नशोभितम् ।।३५

पुनरपि उसी परम दिव्य स्वरूप को वर्णित किया जा रहा है कि सागर के आकार के तुल्य निर्ह्राद था और रसातल के महान् आश्रय वाला था। मृगेन्द्र के पाशों से वितत–पक्षिगण एवं जन्तुओं से निषेवित–शीलार्थ और सुन्दर गन्ध से आढ्य–सब लोकों का महान् द्रुम–अव्यक्त एवं अनन्त सलिल वाला—व्यक्त अहङ्कार से फेनयुक्त–महान् भूतों की तरङ्गों के ओघ वाला—ग्रह तथा नक्षत्रों के बुलबुलों से समन्वित—विमान गरुत व्याप्त और तोयदों के आडम्बर से समाकुल था ॥ २९, ३० ३१ ॥ वह रूप जन्तुओं वाला—जनों से समाकीर्ण—शैल शयों के कुलों से सयुत–त्रैगुण्य के विषयों का आवर्त–समस्त लोकों का तिमिङ्गिल—वीर रूपी वृक्ष लता और गुल्मों वाला–भुजङ्गों के उत्कृष्ट शैवाल वाला–द्वादश सूर्यों के महाद्वीपों वाला—एकादश रुद्रों के पत्तनों से युक्त—आठ वसुरूपी पर्वतों से युक्त–त्रैलोक्य रूपी महा सागरों वाला–सन्ध्या सख्या की ऊर्मियों का सलिल—सुपर्ण की वायु से सेवित—दैत्य और रक्षोगण रूपी ग्राहों वाला–यक्ष और उरग रूपी भुजों से समाकुल—पितामह के समान महान् वीर्य वाला और सब स्त्रियों के स्वरूप वाले रत्नों से सुशोभित था ।।३२–३५।।

श्रीकीर्तिकान्तिलक्ष्मीभिर्नदीभिरुपशोभितम् ।
कालयोगिमहापर्वप्रलयोत्पत्तिवेगिनम् ।।३६
तन्तु योगमहापारं नारायणमपार्णवम् ।
देवाधिदेवं वरद भक्तानां भक्तिवत्सलम् ।।३७

अनुग्रहकरं देवं प्रशान्तिकरणं शुभम् ।
हर्यश्वरथसंयुक्ते सुपर्णध्वजसेविते ॥३८
ग्रहचन्द्रार्करचिते मन्दराक्षवरावृते ।
अनन्तरश्मिभिर्युक्ते विस्तीर्णे मेरुगह्वरे ॥३९
तारकाचित्रकुसुमे ग्रहनक्षत्रबन्धुरे ।
भयेष्वभयदं व्योम्नि देवा दैत्यपराजिताः ॥४०
ददृशुस्तेस्थितं देव दिव्ये लोकमये रथे ।
ते कृताञ्जलयः सर्वे देवाः शक्रपुरोगमा ॥४१
जयशब्दं पुरस्कृत्य शरण्य शरणं गताः ।
स तेषां तद्गिरं श्रुत्वा विष्णुर्दैवतदैवतम् ॥४२

उसी दिव्य स्वरूप का वर्णन करते हुए बतलाते हैं कि वह दिव्यरूप श्रीकान्ति और लक्ष्मी से तथा नारियों से उपशोभित था—ज्ञानयोगी और महापर्व एवं प्रलय तथा उत्पत्ति के वेग वाला था। तनुयोग का महापार—नारायण रूपी महार्णव में युक्त—देवों का भी अधिदेव—वर देने वाला जो अपने भक्तों को प्रदान करते थे—भक्तों पर प्यार करने वाला यह स्वरूप था ॥ ३६, ३७ ॥ वह अनुग्रह करने वाला—देव—प्रशान्ति करने वाला—शुभ था। हर्यश्व रथ से समन्वित—ध्वज से सेवित—ग्रह चन्द्र और सूर्य से विरचित—मन्दराक्ष वर से आवृत—अनन्त रश्मियों से युक्त—विस्तीर्ण मेरु गह्वर में युक्त—तारे रूप विचित्र कुसुमों से परिपूर्ण—ग्रह और नक्षत्रों से बन्धुर (सुडौल)—भय के अवसरों पर अभय देने वाले उस स्वरूप को व्योम में दैत्यों से पराजित देवों ने देखा था। उन देवों ने परम दिव्य लोकमय रथ में स्थित देव का दर्शन प्राप्त किया था। उस समय में इन्द्र को अपना अग्रणी बना करके उन समस्त देवों ने अपनी अञ्जलियों को बद्ध कर लिया था। जयकार के शब्द को पहिले समुच्चारित करके शरण्य प्रभु की वे सब शरणागति में प्राप्त होगये थे। उन देवों के भी देवेश्वर विष्णु भगवान् ने देवगण

की शरणागति मे प्राप्त होने के लिए कथित वाणी का श्रवण किया था
॥ ३८-४२ ॥

मनश्चक्रे विनाशाय दानवानां महामृधे ।
आकाशे तु स्थितो विष्णुरुत्तमं वपुरास्थितः ॥४३
उवाच देवता सर्वाः सप्रतिज्ञमिदं वचः ।
शान्तिं व्रजत भद्रं वो मा भैष्ट मरुतां गणाः ॥४४
जिता मे दानवाः सर्वे त्रैलोक्यं परिगृह्यताम् ।
ते तस्य सत्यसन्धस्य विष्णोर्वाक्येन तोषिताः ॥४५
देवाः प्रीतिं समाजग्मुः प्राश्यामृतमनुत्तमम् ।
ततस्तमः संहृतं तद्विनेशुश्च बलाहकाः ॥४६
प्रववुश्च शिवा वाताः प्रशान्ताश्च दिशो दश ।
शुद्धप्रभाणि ज्योतींषि सोमश्चक्रुः प्रदक्षिणम् ॥४७
न विग्रहं ग्रहाश्चक्रुः प्रशान्ताश्चापि सिन्धवः ।
विरजस्का भवन्मार्गा नाकवर्गादियस्त्रयः ॥४८
याथार्थमूहुः सरितो नापिचक्षुभिरेऽर्णवाः ।
आसञ्छुभानीन्द्रियाणि नराणामन्तरात्मसु ॥४९
महर्षयो वीतशोका वेदानुच्चैरधीयत ।
यज्ञेषु च हविः पाकं शिवमाप च पावकः ॥५०
प्रवृत्तधर्माः संवृत्ता लोका मुदितमानसाः ।
विष्णोर्दत्तप्रतिज्ञस्य श्रुत्वारिनिधने गिरम् ॥५१

देवों को परित्राण के लिये कही हुई वाणी को सुनते ही विष्णुदेव ने उस महान् युद्ध मे दानवों के विनाश करने के लिए मन मे स्थिरता करली थी। उस समय मे भगवान् विष्णु उत्तम वपु मे समास्थित होकर आकाश मे ही स्थित थे। उन्होंने समस्त देवों से प्रतिज्ञा के सहित यह वचन कहा था कि अब आप सब लोग शान्ति धारण करें अर्थात् एकदम प्रशान्त हो जावें। हे मरुतों के गणो! अब आप डरो मत—आपका

कल्याण होगा। मैंने सभी दानवों को जीत ही लिया है—ऐसा समझ लो और अब इस त्रैलोक्य को जो तुमसे उन्होंने छीनकर अपना अधिकार कर लिया है पुनः वापिस ग्रहण करलो। इस प्रकार के वचन जब उन समस्त देवगण ने सत्य प्रतिज्ञा वाले विष्णु भगवान के सुने थे तो उनके वाक्य से सबको बहुत ही अधिक सन्तोष हो गया था ॥४३, ४४, ४५॥ उस समय में उस सत्युत्तम अमृत का प्राशन करके देवगण परम प्रीति को प्राप्त हो गये थे। इसके बाद वह सम्पूर्ण अन्धकार नष्ट हो गया था और सभी बलवाहक विनाश को प्राप्त हो गये थे। सर्वत्र परम मङ्गल-कारी वायु वहन करने लगी थी और दशों दिशाऐं एक दम प्रशान्त हो गयी थी शुद्ध प्रभा वाली ज्योतिया अर्थात् नक्षत्रादि सोम की प्रदक्षिणाऐं करने लगी थी ॥४६।४७॥ उस समय में ग्रह गण परस्पर में कोई भी विग्रह नहीं करते थे और सभी सिन्धु परम प्रशान्त हो गये थे। स्वर्ग वर्गादि तीनों ही रज से रहित मार्गों वाले हो गये थे। सम्पूर्ण सरिताऐं ठीक मार्ग से यथार्थ रूप से वहन कर रही थी और आर्णवों में भी किसी भी प्रकार का क्षोभ नहीं हो रहा था। सभी मनुष्यों की अन्तरात्माओं में परम शान्ति थी और इन्द्रियाँ परम शुभ वृत्ति वाली होगई थी ॥४८, ४६॥ सब महर्षिगण शोक से रहित होकर वेदों का उच्च स्वर से अध्ययन कर रहे थे। यज्ञों में जो भी हवि प्रक्षिप्त किया जाता था पावक उसका अति शिव पाक करने लगा था ॥ ५० ॥ सभी लोक परम प्रमुदित मनों वाले होकर अपने २ धर्मों में प्रवृत्त हो गये थे जिस समय में सत्य प्रतिज्ञा वाले भगवान् विष्णु की समस्त शत्रुओं के विनाश कर देने की वाणी का सबने श्रवण कर लिया था सभी को परमानन्द प्राप्त हो गया था ॥५१॥

६६—दैत्य सैन्य विस्तार वर्णन

ततो भय विष्णुवचः श्रुत्वा दैत्याश्च दानवाः ।
उद्योगविपुल चक्रुर्युद्धाय विजयाय च ॥१
मयस्तु काञ्चनमय त्रिनल्वायतमक्षयम् ।
चतुश्चक्र सुविपुल सुकल्पितमहायुगम् ॥२
किङ्किणीजालनिर्घोष द्वीपिचमपरिष्कृतम् ।
रुचिर रत्नजालैश्च हेमजालैश्च शोभितम् ॥३
ईहामृगगणाकीर्णं पक्षिपङ्क्तिविराजितम् ।
दिव्यास्त्रतूणीरधरं पयोधरविनादितम् ॥४
स्वक्ष रथवरोदार सूपस्थ गगनोपमम् ।
गदापरिघसंपूर्णं मूर्तिमन्तमिवार्णवम् ॥५
हेमकेयूरवलय स्वर्णमण्डलकूबरम् ।
सपताकध्वजोपेत सादित्यमिव मन्दरम् ॥६
गजेन्द्राभोगवपुष क्वचित् केसरिवच्चसम् ।
युक्तमृक्षसहस्रेण समृद्धाम्बुदनादितम् ॥७
दीप्तमाकाशग दिव्य रथ पररथारुजम् ।
अध्यतिष्ठद्रणाकाङ्क्षी मेरुं दीप्तमिवांशुमान् ॥८

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—इसके अनन्तर उस अभय से पूर्ण भगवान् विष्णु के वचन का श्रवण करके दैत्यों और दानवों ने विजय की प्राप्ति करने के लिए विपुल उद्योग वाला युद्ध किया था ॥ १ ॥ विभिन्न दानवों के द्वारा किये जाने वाले युद्ध का वर्णन किया जाता है—मय दानव ने जिस रथ में विराजमान होकर समर किया था वह काञ्चनमय था—त्रिनल्व आयत और अक्षय था। उस रथ में चार चक्र थे—अतीव विपुल था और सुन्दर कल्पना किया हुआ महायुग वाला था ॥ २ ॥ मय का रथ किङ्किणी जालों के निर्घोष से युक्त—द्वीपियों के चर्म से परिष्कृत—

रत्नों के जालों से अत्यन्त मनोरम—हेम रचित जालों से शोभित—ईहा मृग गणों से समाकीर्ण—पक्षियों की पंक्ति से शोभा सम्पन्न—दिव्य अस्त्र और तूणीर को धरने वाला तथा पयोधरों के समान ध्वनि से पूर्ण था ॥ ३, ४ ॥ सुन्दर अक्षों वाला श्रेष्ठ रथों में भी अतीव उदार—सूपस्थ—गगन के सदृश—गदा और परिघ से परिपूर्ण मूर्तिमान एक अर्णव के ही समान वह मय का रथ था ॥ ५ ॥ वह हेम के केयूर और वलय से युक्त—स्वर्ण मण्डल कूबर वाला—पताकाओं के सहित ध्वजा वाला और आदित्य से मन्दराचल के समान दिखलाई देता था ॥ ६ ॥ गजेन्द्र के आभोग वपु वाला—किसी स्थल पर केशरी के वर्चस से युक्त—सहस्रों ऋक्षों से युक्त—समृद्ध अम्बुद के समान गर्जन वाला—दीप्त—आकाश में गमन करने वाला—पर रथारुज वह अतीव दिव्य रथ था। जिस तरह से अंशुमान् दीप्त मेरु पर अधिरोहण किया करता है कि ठीक उसी भाँति वह रथ को आकाश रखने वाला मय दानव उस अपने पूर्वोक्त प्रकार के रथ पर अधिष्ठित हुआ था ॥ ७, ८ ॥

तारमुत्क्रोशविस्तारं हेममयं रथम् ।
शैलाकारमसम्बाधं नीलाञ्जनचयोपमम् ॥६
कार्ष्णायसमयं दिव्यं लोहपाशकृतकूबरम् ।
तिमिरोद्गारिकिरणं गर्जन्तमिव तोयदम् ॥१०
लोहजालेन महता सगवाक्षेण दंशितम् ।
आयसैः परिघैः पूर्णं क्षेपणीयैश्च मुद्गरैः ॥११
प्रासैः पाशैश्च विततैरसंयुक्तकण्टकैः ।
शोभितं त्रासयानैश्च तोमरैश्च परश्वधैः ॥१२
उद्यन्तं द्विषतां हेतोर्द्वितीयमिव मन्दरम् ।
युक्तं खरसहस्रेण सोऽध्यारोहद्रथोत्तमम् ॥१३
विरोचनस्तु सक्रुद्धो गदापाणिरवस्थितः ।
प्रमुखे तस्य सैन्यस्य दीप्तशृङ्ग इवाचलः ॥१४

तार का रथ अक्रोश के विस्तार वाला था और वह सम्पूर्ण रथ हेम से परिपूर्ण था। वह रथ शैल के समान आकार वाला—बाधाओं से रहित—नील अञ्जन के निचय की उपमा वाला—काले लोह से पूर्ण—दिव्य-लोहेपा से बद्ध कूबर वाला—तिमिर के उद्गरण करने वाली किरणों से सयुत—गर्जना करने वाले तोयद के सदृश—गवाक्ष से युक्त महान् हेम जाल से दर्शित—आयस परिघों से तथा क्षेपणीय और मुद्गरों से पूर्ण—प्रासों, पाशों और वितत नर सयुक्त कण्ठकों से शोभित—त्रास वालों, तोमरों और परश्वधों से शोभा सम्पन्न—द्विप पुरुषों के कारण ही उद्दीयमान दूसरे मन्दर के ही समान वह रथ था। सहस्र खरों से सयुत वह उत्तम रथ था जिस पर उस दानव ने अध्यारोहण किया था ॥ ६ । १० । ११ । १२ । १३ ॥ विरोचन तो भली भाँति क्रुद्ध होता हुआ अपने हाथ में गदा उठाकर उसकी सेना के साम र दीप्तशृङ्गों वाले अचल के समान अवस्थित होगया था ॥१४॥

युक्त रथसहस्रेण हयग्रीवस्तु दानवः ।
स्यन्दनं वाहयामास सपत्नानीकमर्दनः ॥१५
व्यायतं किष्कुसाहस्रं धनुर्विस्फारयन्महत् ।
वाराहः प्रमुखे तस्थौ सप्ररोह इवाचलः ॥१६
खरस्तु विक्षरन्दर्पान्नेत्राभ्यां रोषजं जलम् ।
स्फुरद्दन्तोष्ठनयनः संग्रामं सोऽभ्यकाङ्क्षत ॥१७
त्वष्टा त्वष्टगजं घोरं यानमास्थाय दानवः ।
व्यूहितुं दानवव्यूहं परिचक्राम वीर्यवान् ॥१८
विप्रचित्तिवपुश्चैव श्वेतकुण्डलभूषणः ।
श्वेतः श्वेतप्रतीकाशो युद्धायाभिमुखे स्थितः ॥१६
अरिष्टो बलिपुत्रश्च वरिष्ठाद्रिशिलायुधः ।
युद्धायाभिमुखस्तस्थौ धराधरविकम्पनः ॥२०
किशोरस्त्वभिगर्जन् किशोर इति चोदितः ।

सबला दानवाश्चैव सन्नह्यन्ते यथाक्रमम् ॥२१

शत्रुओं की सेना का मर्दन करने वाला हयग्रीव नाम वाले दानव ने एक सहस्र रथों से युक्त अपने स्यन्दन (रथ) को वाहित किया था ॥ १५ ॥ एक सहस्र किष्कुओं से समन्वित—व्यायत महान् धनुष को विस्फारित करता हुआ वाराह संमुख में प्रगोह से संयुत एक अचल की भाँति समवस्थित हो गया था ॥ १६ ॥ खर नामधारी दानव घमण्ड से अपने नेत्रों के द्वारा रोष से समुत्पन्न जल को विक्षरित कर रहा था और वह भी जिसके दाँत—ओष्ठ और नेत्र फड़क रहे थे संग्राम करने की आकांक्षा कर रहा था ॥१७॥ त्वष्टा नाम वाला दानव आठ हाथियों वाले परम घोर यान में समास्थित होकर वीर्य वाला यह दानवों के व्यूह को भली भाँति व्यूहित करने के लिये चारों ओर घूम रहा था ॥ १८ ॥ श्वेत वर्ण के कुण्डलों से विभूषित विप्रचित्त वपु वाला श्वेत प्रतीकाश श्वेत युद्ध करने के लिए अभिमुख में समवस्थित हो गया था ॥ १९ ॥ बड़े बड़े पर्वतों को भी कम्पित कर देने वाला—वरिष्ठ पर्वत की शिलाओं के आयुधों से समन्वित होकर अरिष्ट और बलि का पुत्र संग्राम करने के लिए सामने स्थित हो गया था ॥ २० ॥ शुभ सङ्कल्प से किशोर और किशोर इसी नाम से प्रेरित होने वाला था। इस प्रकार से अपने अपने बलों के सहित दानव गण यथा क्रम युद्ध के लिये सन्नद्ध हो रहे थे ॥ २१ ॥

अभवद्दैत्यसैन्यस्य मध्ये रविरिवोदितः ।
लम्बस्तु नवमेघाभः प्रलम्बाम्बरभूषणः ॥२२
दैत्यव्यूहगतो भाति सनीहार इवांशुमान् ।
स्वर्भानुरास्ययोधी तु दशनौष्ठेक्षणायुधः । २३
हसंस्तिष्ठति दैत्यानां प्रमुखे स महाग्रहः ।
अन्ये हयगतास्तत्र गजस्कन्धगताः परे ॥२४
सिंहव्याघ्रगताश्चान्ये वराहर्क्षेषु चापरे ।

केचित् खरोष्ट्रयातारः केचिच्छ्वापदवाहनाः ॥२५
पत्तिनस्त्वपरे दैत्या भीषणा विकृताननाः ।
एकपादार्द्धपादाश्च ननृतुर्युद्धकाङ्क्षिणः ॥२६
आस्फोटयन्तो बहवः क्ष्वेडन्तश्च तथापरे ।
हृष्टशार्दूलनिर्घोषा नेदुर्दानवपुङ्गवाः ॥२७
ते गदापरिघैरुग्रैः शिलामुसलपाणयः ।
बाहुभि. परिघाकारैस्तर्जयन्तिस्म देवताः ॥२८

दैत्यो की सेना के मध्य मे प्रलम्ब अम्बर और भूषणो से संयुत—नूतन मेघ की आभा के तुल्य आभा वाला लम्ब नाम वाला दैत्य सूर्य के समान उदित हो गया था ॥ २२ ॥ दैत्यो के व्यूह मे प्राप्त होने वाला—अग्रयोधी—दाँत, ओष्ठ, नेत्र और आयुधो वाला स्वर्भानुनी हार से युक्त अंशुमान् के समान शोभित हो रहा था। २३ ॥ वह महान् ग्रह दैत्यो के समक्ष मे हँसता हुआ स्थित था। वहाँ पर अन्य हयो पर स्थित थे और दूसरे गजो के स्कन्धो पर समवस्थित थे ॥ २४ ॥ कुछ सिंहो तथा व्याघ्रो पर सवार थे और दूसरे वराह एवं ऋक्षो पर अधिरूढ थे। कुछ लोग खरो तथा उष्ट्रो के द्वारा गमन करने वाले और कुछ श्वापदो के वाहनो वाले थे ॥ २५ ॥ अन्य सेनापति दैत्य परम भीषण और विकृत मुखो वाले थे। कुछ एक पैर वाले और कोई आधे पैरो वाले थे जो युद्ध करने की इच्छा से युक्त होकर नृत्य कर रहे थे ॥ २६ ॥ बहुत से आस्फोटन कर रहे थे—दूसरे क्ष्वेडन करने वाले थे। प्रसन्न शार्दूल के समान गर्जन की ध्वनि करने वाले दानव श्रेष्ठ निर्घोष कर रहे थे ॥ २७ ॥ वे सब शिलाएँ और मूसल हाथो मे लिये हुए अत्यन्त उग्र गदा और परिघो के द्वारा तथा परिघा के आकार वाले बाहुओ के द्वारा देवगणो की तर्जनाएँ (फटकारे) दे रहे थे ॥ २८ ॥

पाशै. प्रासैश्च परिघैस्तोमराङ्कुशपट्टिशै.।
चिक्रीडुस्ते शतघ्नीभि. शतधारैश्च मुद्गरैः ॥२९

गण्डशैलैश्च शैलैश्च परिघैश्चोत्तमायसैः ।
शक्रैश्च दैत्यप्रवराश्चक्रुरानन्दितं वलम् ॥३०
एतद्दानवसैन्यं तत्सर्वं युद्धमदोत्कटम् ।
देवानभिमुखे तस्थौ मेघानीकमिवोद्धतम् ॥३१
तद्भुतं दैत्यसहस्रगाढं वाय्वग्निशैलाम्बुदतोयकल्पम् ।
वलं रणौघाभ्युदयेऽभ्युदीर्णं युयुत्सयोन्मत्तमिवावभासे ॥३२

वे दानव गणो पाशों—प्रासों—परिघो—तोमर—अंकुश और पट्टिशो—शतघ्नी—शतधार और मुद्गरों से क्रीडा कर रहे थे ॥ २६ ॥ वे दैत्यों में प्रवर गण्डशैलो—शैलो—उत्तम आयस वाले परिघों और चक्रो के द्वारा अपने वल को आनन्द से युक्त बना रहे थे ॥ ३० ॥ युद्ध करने के मद से अत्यन्त उत्कट यह सम्पूर्ण दानवो की सेना उद्धत मेघों की अनीक के समान देवों के अभिमुख मे स्थित थी ॥ ३१ ॥ वह अति अद्भुत—सहस्रो दैत्यो से अत्यन्त गहन—वायु अग्नि, शैल और अम्बुद तोय के तुल्य दानवो का वल (सेना) रणो के समूह के अभ्युदय में अभ्युदीर्ण युद्ध करने की इच्छा से उन्मत्त के समान अवभासित हो रहा था ॥ ३२ ॥

६७—सुरसैन्य विस्तार वर्णन

श्रुतस्ते दैत्यसैन्यस्य विस्तरो रविनन्दन ! ।
सुराणामपि सैन्यस्य विस्तरं वैष्णव शृणु ॥१
आदित्या वसवोरुद्रा अश्विनौच महाबलौ ।
सबलाः सानुगाश्चैव सन्नह्यन्त यथाक्रमम् ॥२
पुरुहूतस्तु पुरतो लोकपालाः सहस्रदृक् ।
ग्रामणीः सर्वदेवानामारुहोहसुरद्विपम् ॥३

मध्ये चास्य रथः सर्वपक्षिप्रवररंहसः ।
सुचारुचक्रचरणो हेमवज्रपरिष्कृतः ॥४
देवगन्धर्वयक्षौघैरनुयातः सहस्रशः ।
दीप्तिमद्भिः सदस्यैश्च ब्रह्मर्षिभिरभिष्टुतः ॥५
वज्रविस्फूर्जितोद्‌भूतैर्विद्युदिन्द्रायुधार्दितैः ।
युक्तो बलाहकगणैः पर्वतैरिव कामगैः ॥६
यमारूढः स भगवान् पर्येति सकलं जगत् ।
हविर्धानेषु गायन्ति विप्रा मखमुखे स्थिताः ॥७

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—हे रविनन्दन ! तुमने दैत्यों की सेना के विस्तार का वर्णन श्रवण गत कर लिया है । अब सुरगणों की सेना का भी वैष्णव विस्तार श्रवण करलो । द्वादश आदित्य—आठ वसुगण—एकादश रुद्र—महान् बल सम्पन्न अश्विनीकुमार ये सब बलों और अनुगामियों के सहित क्रम के अनुसार ही सन्नद्ध हो गये थे ॥ १ । २ ॥ समक्ष में सहस्र नेत्रों वाले इन्द्रदेव—समस्त लोकपाल—सब देवों की ग्रामणी सुरों के शत्रु पर समारोहण करने वाले हो गए थे ॥ ३ ॥ मध्य में समस्त पक्षियों में श्रेष्ठ (गरुड) के वेग वाले इनका सुचारु (सुन्दर चक्र चरणों वाला हेम और वज्र से परिष्कृत रथ था ॥ ४ ॥ उस रथ के पीछे सहस्रों देव—गन्धर्व—और यक्षों के समुदाय अनुगमन करने वाले थे तथा वे दीप्तिमान् सदस्यों के द्वारा और ब्रह्मर्षियों के द्वारा अभिष्टुत हो रहे थे ॥ ५ ॥ वज्र के तुल्य विस्फूर्जित एवं उद्‌भूत—विद्युत् और इन्द्रायुधों से समुदित स्वेच्छया गमन करने वाले पर्वतों के समान बलाहकों के गणों से युक्त थे ॥ ६ ॥ जिस रथ पर यह भगवान् समारूढ थे वह रथ समस्त जगत् में परिगमन करता था और यज्ञशालाओं में समवस्थित विप्रगण हविर्धानों में गायन किया करते थे । ७॥

स्वर्गे शक्रानुयातेषु देवतूर्यनिनादिषु ।
सुन्दर्यः परिनृत्यन्ति शतशोऽप्सरसाङ्गणे ॥८

केतुना नागराजेन राजमानो यथा रविः ।
युक्तो हयसहस्रेण तमो मारुतरंहसा ॥९
सस्यन्दनवरोभाति गुप्तोमातलिना तदा ।
कृत्स्नः परिवृतो मेरुर्भास्करस्येव तेजसा ॥१०
यमस्तु दण्डमुद्यम्य कालयुक्तश्च मुद्गरम् ।
तस्थौ सुरगणानीके दैत्यान्नादेन भीषयन् ॥११
चतुर्भिः सागरैर्युक्तो लेलिहानैश्च पन्नगैः ।
शङ्खमुक्ताङ्गदधरो बिभ्रत्तोयमयं वपुः ॥१२
कालपाशान् समाविध्यन् हयैः शशिकरोपमैः ।
वायवीरितजलाकारैः कुर्वन् लीलाः सहस्रशः ॥१३
पाण्डुरोद्धूतवसनः प्रचलन् रुचिराङ्गदः ।
मणिश्यामोत्तमवपुर्हरिभारार्पितोवरः ॥१४
वरुणः पाशधृङ्मध्ये देवानीकस्य तस्थिवान् ।
युद्धवेलामभिलपन् भिन्नवेल इवार्णवः ॥१५

स्वर्ग मे देव तूर्यों को निवादित करने वालो का इन्द्र के पीछे अनुगमन होने पर अप्सराओ के आँगन मे सैकडो सुन्दरियाँ नृत्य कर रही थीं ॥ ८ ॥ नागराज केतु से युक्त वह रथ सूर्य्य के समान राजमान हो रहा था तथा मारुत के तुल्य वेग से सयुत एक सहस्र अश्वों से सम्पन्न माना गया है ॥ ९ ॥ उस समय मे मातलि के द्वारा परम सुरक्षित वह श्रेष्ठतम स्यन्दन (रथ) पूर्णतया चारो ओर से परिवृत होकर भगवान् भास्कर के तेज से मेरु के समान शोभित हो रहा था ॥ १० ॥ काल से युक्त यमराज दण्ड और मुद्गर को उठाकर घोर गर्जन के द्वारा दैत्यों को भय उत्पन्न करते हुए सुरगणो की सेना मे सस्थित थे ॥ १० । ११॥ देवगणों की सेना के मध्य मे युद्ध के समय की अभिलाषा करते हुए वेला के भेदन करने वाले आर्णव के सदृश पाश को धारण करने वाले वरुणदेव स्थित हो रहे थे जो चारों सागरों तथा जीभ निकाल कर फुस्कारते हुए

सर्पों से युक्त थे और तोयमय वपु को धारण करने वाले शंख-युक्ताङ्गद को धारण कर रहे थे। वायु से प्रेरित—जल के आकार वाले—चन्द्र की किरणों के द्वारा कालपाशों को समाविद्ध करने वाले थे और सहस्रों प्रकार की लीलाऐं कर रहे थे। पाण्डुर वर्ण के वस्त्र को उद्धूत करते हुए तथा हिलने वाले रुचिर अङ्गदों के धारी—मणि के सदृश श्याम एवं उत्तम वपु वाले और हृदिभार से अर्पित वरदान से युक्त वरुण देव थे ॥ १२-१५ ॥

यक्षराक्षससैन्येन गुह्यकानां गणैरपि ।
युक्तश्च शङ्खपद्माभ्यां निधीनामधिपः प्रभुः ॥१६
राजराजेश्वरः श्रीमान् गदापाणिरदृश्यत ।
विमानयोधी धनदो विमाने पुष्पके स्थितः ॥१७
स राजराजः शुशुभे युद्धार्थी नरवाहनः ।
उग्राणमास्थितः सरथे साक्षादिव शिवः स्वयम् ॥१८
पूर्वपक्षः सहस्राक्षः पितृराजस्तु दक्षिणः ।
वरुणः पश्चिमं पक्षमुत्तरं नरवाहनः ॥१९
चतुर्षु युक्ताश्चत्वारो लोकपाला महाबलाः ।
स्वासु दिक्षु स्वरक्षन्त तस्य देवबलस्य ते ॥२०

यक्षों और राक्षसों की सेना और गुह्यकों के गणों से समन्वित तथा शङ्ख—पद्मों को धारण करने वाले निधियों के स्वामी प्रभु—गदा हाथ में ग्रहण किये हुए—विमानों के द्वारा युद्ध करने वाले राजराजेश्वर श्रीमान् धनद अर्थात् कुबेर पुष्पक विमान में स्थित दिखाई दे रहे थे ॥१६,१७॥ युद्ध करने की इच्छा रखने वाले राजाओं के भी राजा नरवाहन वृषभ पर समास्थित युद्ध में साक्षात् स्वयं शिव के ही समान शोभित हो रहे थे ॥ १८ ॥ पूर्व दिशा में पक्ष वाले सहस्राक्ष इन्द्र देव थे। दक्षिण दिशा में पितृराज थे—पश्चिम में वरुण देव और उत्तर पक्ष में नर वाहन थे। इस तरह से चारों पक्षों में चार महान् बल विक्रम शाली लोकपाल थे

और वे अपनी-अपनी दिशाओं मे उस देवों की सेना की रक्षा कर रहे थे ॥१६।२०॥

सूर्यः सप्ताश्वयुक्तेन रथेनामितगामिना ।
श्रिया जाज्वल्यमानेन दीप्यमानैश्च रश्मिभिः ॥२१
उदयास्तगचक्रेण मेरुपर्वतगामिना ।
त्रिदिवद्वारचक्रेण तपता लोकमव्ययम् ॥२२
सहस्ररश्मियुक्तेन भ्राजमानेन तेजसा ।
चचार मध्ये लोकाना द्वादशात्मा दिनेश्वरः ॥२३
सोमः श्वेतहये भाति स्यन्दने शीतरश्मिवान् ।
हिमवत्तोयपूर्णाभिर्भाभिराह्लादयञ्जगत् ॥२४
तमृक्षपूगानुगत शिशिरांशु द्विजेश्वरम् ।
शशच्छायाङ्कितततनु नैशस्य तमसः क्षयम् ॥२५
ज्योतिषामीश्वर व्योम्नि रसाना रसद प्रभुम् ।
ओषधीना सहस्राणानिधानममृतस्यच ॥२६
जगतः प्रथमं भाग सौम्य सत्यमय रथम् ।
ददृशुर्दानवाः सोम हिमप्रहरण स्थितम् ॥२७
यः प्राणः सर्वभूताना पञ्चधा भिद्यते नृपु ।
सप्तधातुगतो लोकां स्त्रीन्दधार चचार च ॥२८

अमितगामी—श्री से तथा दीप्यमान रश्मियो से जाज्वल्यमान रथ के द्वारा द्वादश स्वरूप वाले दिनेश्वर लोकों के मध्य मे सचरण कर रहे थे। वह सूर्यदेव का रथ उदय और अस्त मे गमन करने वाला—मेरु पर्वत पर जाने वाला—त्रिदिव द्वार के चक्र से समायुक्त—अव्यय लोक को ताप देने वाला—सहस्र रश्मियो से युक्त और भ्राजमान तेज से सम्पन्न था ॥ २१, २२, २३ ॥ शीत रश्मियो वाले सोमदेव हिम से समन्वित जल से परिपूर्ण दीप्तियों से सम्पूर्ण जगत् को समाह्लादित करते हुए श्वेत अश्वों वाले रथ में शोभा पा रहे थे ॥ २४ ॥ उन सब दानवों

ने हिम के अस्त्र वाले वहाँ पर स्थित सोमदेव को देखा था जो नक्षत्रो के समुदाय से अनुगत—शिशिर किरणो वाला—द्विजेश्वर—शश की छाया से चिह्नित शरीर के धारण करने वाला—रात्रि के तम का क्षय करने वाला—समस्त ज्योतियो के व्योम मे स्वामी—रसो मे रस का प्रदान करने वाले—प्रभु—महान् औषधियो के तथा अमृत के निधान थे ॥ २५, २६, २७ ॥ जो समस्त भूतो का प्राण है और नरो मे पाँच प्रकार का होकर स्थित रहा करता है तथा सातो धातुओ मे अल होकर तीनो लोको का धारण किया करता है और सञ्चरण करने वाला भी था ॥ २८ ॥

यमाहुरग्निकर्तारं सर्वप्रभवमीश्वरम् ।
सप्तस्वरगतोयश्च नित्यङ्गीभिरुदीर्यते ॥२६
य वदन्त्युत्तम भूत य वदन्त्यशरीरिणम् ।
यमाहुराकाशगम शीघ्रगंशब्दयोगिनम् ॥३०
स वायु. सर्वभूतायुरुद्भूतः स्वेन तेजसा ।
ववौप्रव्यथयन् दैत्यान् प्रतिलोमसतोयदः ॥३१
मरुतो दिव्यगन्धर्वविद्याधरगणैः सह ।
विक्रीडुरसिभि. शुभ्रं निर्मुक्तैरिवपन्नगः ॥३२
सृजन्त सर्पपतयस्ते वक्त्रोयमय विषम् ।
शरभूता दिवीन्द्राणाञ्चेरुज्वलिताननाः दिवि ॥३३
पर्वतैश्च शिलाशृङ्गै शतशश्चैव पादपैः ।
उपतस्थुः सुरगणाः प्रहर्तुं दानवे बले ॥३४
यः सदेवाहृषीकेशः पद्मनाभस्त्रिविक्रमः ।
युगान्ते कृष्णवर्णाभो विश्वस्यजगत प्रभु ॥ ३५

जिसको अग्नि की रचना करने वाला—सबका प्रभव उत्पत्ति—ईश्वर—कहा गया है और जो सात स्वरो मे रहने वाला नित्यङ्गियो के द्वारा उदीरित किया जाता है । जिसको सबसे उत्तम भूत कहते हैं और

जिसको बिना शरीर वाला कहते हैं तथा जिसको आकाश में गमन करने वाला-शीघ्रगामी और शब्दयोगी कहा गया है ॥ २६, ३० ॥ वह वायु अपने तेज से सम्पूर्ण भूतों का आयु उद्भूत हुआ है वह तोय देने वाला प्रतिलोम में दैत्यों को प्रकृष्ट रूप से व्यथित करता हुआ वहन करने लगा था। दिव्य गन्धर्वों के और विद्याधर गणों के साथ मरुत शुभ्र निर्मुक्त पन्नगों के तुल्य असियो (खड्गों) से क्रीड़ा करने वाला था। ॥ ३१, ३२ ॥ सर्पों के स्वामी गण तीव्र तापपूर्ण विष का सृजन करते हुई दिवीन्द्रों के शरभूत बनकर दिवलोक में मुख फैलाये हुए संचरण कर रहे थे ॥ ३३ ॥ सुरगण पर्वतों शिला के शिखरों और सैकड़ो पादपों के द्वारा दानवों की सेना मे प्रहार करने के लिये उपस्थित हो गये थे ॥ ३४ ॥ जो वह देव हृषीकेश थे वह पद्मनाभ-त्रिविक्रम-इस विश्व और और जगत् के प्रभु युग के अन्त में कृष्ण वर्ण की आभा वाले थे ॥ ३५ ॥

सर्वयोनिः स मधुहा हव्यभुक् क्रतुसंस्थितः ।
भूम्यपोव्योमभूतात्मा श्यामः शान्तिकरोऽरिहा ॥३६
अरिघ्नममरादीनाञ्चक्र गृह्य गदाधरः ।
अर्क नगादिवोद्यन्तमुद्यम्योत्तमतेजसा ॥३७
सव्येनालम्ब्य महती सर्वासुरविनाशिनीम् ।
करेण काली वपुषा शत्रुकालप्रदाङ्गदाम् ॥३८
अन्यैर्भुजैः प्रदीप्ताभभुजगारिध्वजः प्रभुः ।
दधारायुधजातानि शाङ्गदीनि महाबलः ॥३९
सकश्यपस्यात्मभुवद्विज भुजगभाजनम् ।
पवनाधिकसम्पात गगनक्षोभणं खगम् ॥४०
भुजगेन्द्रेण वदने निविष्टेन विराजतम् ।
अमृतारम्भ निर्मुक्त मन्दराद्रिमिवाच्छ्रुतम् ॥४१
देवासुरविमर्देषु बहुशोदृढविक्रमम् ।

महेन्द्रणामृतस्यार्थे वज्रेण कृतलक्षणम् ।।४२

वह मधुदैत्य का हनन करने वाले—सबकी योनि तथा उत्पत्ति का स्थान-हव्य को खाने वाला—ऋतुओं में संस्थित-भूमि, जल और व्योम भूत स्वरूप—श्याम और अरियों का हनन करने वाला शान्तिकर था ।। ३६ ।। उन गदाधर प्रभु ने देवगणों के अरियों के मारने वाला चक्र ग्रहण किया था । वह चक्र अपने उत्तम तेज से मग से उदीयमान सूर्य्य के सदृश प्रतीत हो रहा था ।।३७।। सव्य कर से समस्त असुरों के विनाश करने वाली महती और वपु से शत्रुओं के काल को प्रदान करने वाली गदा को प्रभु ने ग्रहण किया था ।।३८। भुजगों के अरि (गरुड़) की ध्वजा वाले महान् बलवान् प्रभु ने अपनी अन्य भुजाओं के द्वारा जो कि प्रदीप्त आभा वाली थी आङ्क आदि आयुधों को धारण किया था । ।।३९।। वह प्रभु कश्यप महर्षि के पुत्र - भुजगों का भोजन करने वाला पक्षी - पवन से भी अधिक वेग से युक्त - गगन को क्षुब्ध करने वाला—खग—पुरमें निविष्ट भुजगेन्द्र के द्वारा विराजमान—अमृत के आरम्भ में निर्मुक्त अत्यन्त उच्च मन्दरगों के समान स्थित थे । वह गरुड़ देवों के और असुरों के विमर्दन करने वाले युद्धों में बहुत ही अधिक विक्रम से युक्त अमृत के लिये वज्र के द्वारा महेन्द्र से कृत लक्षण वाले थे ।।४०।। ।।४१।४२।।

शिखिन वलिनञ्चैव तप्तकुण्डलभूषणम् ।
विचित्रपत्रवसनं धातुमन्तमिवाचलम् ।।४३
स्फीतक्रोडावलम्बेन शीतांशुसमतेजसा ।
भोगिभोगावसिक्तेन मणिरत्नेन भास्वता ।।४४
पक्षाभ्याञ्चारुपत्राभ्यामावृत्य दिविलीलया ।
युगान्ते सेन्द्रचापाभ्यां तोयदाभ्यामिवाम्बरम् ।।४५
नीललोहितपीताभिः पताकाभिरलङ्कृतम् ।
केतुवेषप्रतिच्छन्नं महाकायनिकेतनम् ।।४६

अरुणावरजं श्रीमानारुह्य समरे विभुः ।
सुवर्णस्वर्णवपुपा सुपर्णं खेचरोत्तमम् ॥४७
तमन्वयुर्देवगणा मुनयश्च समाहिताः ।
गीर्भि परममन्त्राभिस्तुष्टुवुश्च जनार्दनम् ॥४८
तद्वैश्रवणसंश्लिष्टं वैवस्वतपुरःसरम् ।
द्विजराजपतिक्षिप्तं देवराजविराजितम् ॥४९
चन्द्रप्रभाभिविपुल युद्धाय समवर्तत ।
स्वस्त्यस्तु देवेभ्य इति बृहस्पतिभारपत ॥
स्वस्त्यस्तु दानवानीके उशनः वाक्यमाददे ॥५०॥

वह गरुड पक्षिराज—शिखी—बली – तप्त कुण्डल भूषण वाला—विचित्र पत्रों के वस्त्रों मे युक्त धातुमान् एक अचल के तुल्य स्थित था ॥४३॥ वह गरुड स्फीत (लम्बे चौड़े) क्रोड मे अवलम्ब वाले—शीतांशु (चन्द्रमा) के समान तेजयुक्त—भोगियों के भोग से अवसिक्त भास्वान् मणि रत्न से शोभित था। वह अपने सुन्दर पत्रो वाले पक्षो से युगान्त में इन्द्र के चापो से युक्त तोयदों से अम्बर की भाँति दिवलोक मे लीला से आवरण करके स्थित था। वह गरुड देव नील—लोहित और पीत वर्ण वाली पताकाओ से समलंकृत–केतु के वेप मे प्रतिच्छन्न–महान काया के निकेतन वाले अरुणदेव के छोटे भाई थे। उन गरुड पर जो सुन्दर वर्ण वाले सुवर्ण के वपु से सुपर्ण और खेचरों में सर्वोत्तम थे श्रीमान् प्रभु ने समर के अवसर पर समारोहण किया था ॥ ४४, ४५, ४६, ४७॥ उन प्रभु के पीछे गमन करने वाले देवगण और परम समाहित मुनिगण थे। जिन्होंने परम श्रेष्ठ मन्त्रो से समन्वित वाणियों के द्वारा भगवान् जनार्दन प्रभु का स्तवन किया था ॥ ४८ ॥ उन प्रभु के साथ मे वैश्रवण कुबेर थे और वैवस्वत (यमराज) उनके आगे थे। वे द्विजराजो के पति से क्षिप्त और देवराज से शोभित थे इस प्रकार चन्द्र की प्रभाओं से परम विपुल वह प्रभु युद्ध करने के लिये प्रस्तुत हुए थे।

उस अवसर पर सुरों के गुरु वृहस्पति ने देवों का मङ्गल हो—ऐसा आशीर्वादात्मक वचन कहा था। उधर उशना असुरो के गुरु ने दानवो की सेना मे स्वस्ति हो—यह वाक्य कहा था।

६८—देवासुर संग्राम वर्णन (१)

ताभ्यां बलाभ्यां संजज्ञे तुमुलोविग्रहस्तदा।
सुराणामसुराणाञ्च परस्परजयैषिणाम् ॥१
दानवा दैवतैः सार्द्धं नानाप्रहरणोद्यताः।
समीयुर्युध्यमाना वै पर्वता इव पर्वतैः ॥२
तत् सुरासुरसंयुक्तं युद्धमत्यद्भुतं बभौ।
धर्माधर्मसमायुक्तं दर्पेण विनयेन च ॥३
ततोरथैर्विप्रयुक्तैर्वारणैश्च प्रचोदितैः।
उत्पतद्भिश्च गगनमसिहस्तैः समन्ततः ॥४
क्षिप्यमाणैश्च मुसलैः सम्पतद्भिश्च सायकैः।
चापैर्विस्फार्यमाणैश्च पात्यमानैश्च मुद्गरैः ॥५
तद्युद्धमभवद्घोरं देवदानवसङ्कुलम्।
जगतस्त्रासजननं युगसवर्तकोपमम् ॥६
हस्तमुक्तैश्च परिघैर्विप्रयुक्तैश्च पर्वतैः।
दानवाः समरेजघ्नुर्देवानिन्द्रपुरोगमान् ॥७

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—उस समय में उन दोनों सेनाओं से एक महान् तुमुल युद्ध उत्पन्न हो गया था। यह युद्ध परस्पर में जय की अभिलाषा रखने वाले सुर और असुर इन दोनो का ही हुआ था ॥१॥ अनेक प्रकार के अस्त्रायुधों से उद्यत होने वाले दानव देवगणों के साथ पर्वतों की ही भांति युद्ध करते हुए समक्ष मे समुपस्थित हो गये थे ॥२॥

वह सुरों और असुरों का संयुक्त युद्ध अत्यन्त ही अद्भुत शोभा दे रहा था क्योंकि वह विनय और दर्प से, धर्म तथा अधर्म से समायुक्त था। देवों में विनय और धर्म था तो असुरों में घमण्ड और अधर्म था ॥ ३ ॥ इसके अनन्तर विशेष रूप से प्रयुक्त और प्रकृष्ट रूप से प्रेरित गजों के द्वारा खड्ग हाथों में ग्रहण करने वाले चारों ओर से गगन में उत्पतन कर रहे थे। प्रक्षिप्त किये हुए मुसल—सम्पतन वाले सायक—विस्फार्यमाण चाप और पात्यमान मुद्गरों के द्वारा वह देवों और दानवों का संकुल महान् घोर युद्ध हुआ था और यह युद्ध सब जगत् को त्रास देने वाला था तथा युग के सम्वर्त्तक के ही तुल्य था ॥ ४, ५, ६ ॥ हाथों से छोड़े हुए परिघों के द्वारा तथा विशेष रूप से प्रयोग में लाये हुए पर्वतों के द्वारा दानव गण देवों का जिनमें महेन्द्र प्रमुख अग्रणी था हनन करने लगे थे ॥ ७ ॥

ते वध्यमाना बलिभिर्दानवैर्जयकाङ्क्षिभिः ।
विषण्णवदना देवा जग्मुरार्तिं परां मृधे ॥८
तेऽस्त्रशूलप्रमथिताः परिघैर्भिन्नमस्तकाः ।
भिन्नोरस्का दितिसुतैर्वेमूरक्तं व्रणैर्बहु ॥९
वेष्टिताः शरजालैश्च निर्यत्नाश्चासुरैः कृताः ।
प्रविष्टा दानवीं मायां न शेकुस्ते विचेष्टितुम् ॥१०
अस्तं गतमिवाभाति निष्प्राणसदृशाकृति ।
बलं सुराणामसुरैर्निष्प्रयत्नायुधं कृतम् ॥११
दैत्यचापच्युतान् घोरांश्छित्त्वा वज्रेण तांश्छरान् ।
शक्रो दैत्यबलं घोरं विवेश बहुलोचनः ॥१२
स दैत्यप्रमुखान् हत्वा तद्दानवबलं महत् ।
तामसेनास्त्रजालेन तमोभूतमथाकरोत् ॥१३
तेऽन्योन्यं नावबुध्यन्त देवानां वाहनानि च ।
घोरेण तमसाविष्टाः पुरुहूतस्य तेजसा ॥१४

उस महान् युद्ध में जय काशी बलशाली दानवों के द्वारा वध किये जाने वाले वे देवगण विषाद युक्त मुखो वाले होकर महान् पीड़ा को प्राप्त हुए थे ॥ ८ ॥ वे सब देवता लोग त्रिशूलों से प्रमथित—परिघों के द्वारा भिन्न मस्तकों वाले और दिति के पुत्रों के द्वारा भिन्न उरःस्थल वाले शरीरो में होने वाले व्रणो से बहुत रक्त का वमन करने लगे थे ॥ ९ ॥ शरो के जालो से उनको एकदम वेष्टित करके असुरो ने यत्नों से रहित कर दिया था। देवगण दानवों की माया मे प्रविष्ट होकर कुछ भी विशेष चेष्टा करने मे समर्थ नही रहे थे ॥ १० ॥ असुरो के द्वारा सुरगणो के बल को प्रयत्न से रहित आयुधो वाला बना दिया था और वह प्राणो से रहित के समान आकृति वाला अर्थात् मुर्दे की भांति अन्त को प्राप्त हुआ सा ही प्रतीत हो रहा था ॥ ११ ॥ दैत्यो के चापो से छूटे हुए उन परम घोर शरो को वज्र के द्वारा छेदन करके बहुत अधिक नेत्रो वाले इन्द्र ने उस अत्यन्त घोर दैत्यो की सेना मे प्रवेश किया था ॥ १२ ॥ उस महेन्द्र ने प्रमुख दैत्यो का हनन करके फिर उस महान् दानवो के बल को तामस अस्त्रो के जाल से उसे एकदम तमोभूत अर्थात् अन्धकार मय कर दिया था ॥ १३ ॥ इन्द्र के तेज के प्रभाव से उस परम घोर तप से आविष्ट होकर वे दैत्यगण परस्पर मे दैत्यो को और देवो के वाहनो को भी नही जान पा रहे थे ॥ १४ ॥

मायापाशविमुक्तास्तु यत्नवन्तः सुरोत्तमाः ।
वपूंषि दैत्यसिंहानान्तमोभूतान्यपातयन् ॥ १५
अपध्वस्ता विसंज्ञाश्च तमसा नीलवर्चसा ।
पेतुस्ते दानवाश्छिन्नपक्षा इवाद्रयः ॥१६
तद्घनीभूतदैत्येन्द्रमन्धकार इवार्णवे ।
दानवेन्द्रवरदनन्तमाभूतमिवाभवत् ॥१७
तदासृजन्महामाया मयस्तां तामसीन्दहन् ।
युगान्तोद्योतजननी सृष्टामौर्वेण वह्निना ॥१८

सा ददाह ततः सर्वान् मायामयविकल्पिता ।
दैत्याश्चादित्यवपुषः सद्य उत्तस्थुराहवे ॥१६
मायामौर्वीं समासाद्य दह्यमाना दिवौकसः ।
भेजिरे चेन्द्रविषयं शीतांशुं सलिलप्रदम् ॥२०
ते दह्यमाना ह्यौर्वेण वह्निना नष्टचेतसः ।
शरणमुर्वज्रिणं देवाः सन्तप्ताः शरणैषिणः ॥२१

माया के पाशों से विमुक्त हुए यत्नों वाले सुरोत्तम तमोभूत दैत्यों के सिंहों के समान शरीरों को भूमि पर मार कर गिराने लगे थे ॥ १५ ॥ नील वर्चस तम से एकदम अपध्वस्त और संज्ञा (चेतना एवं होश) से रहित वे दानव गण पक्षों के छेदन हो जाने वाले पर्वतों के ही समान भूमि पर पतित हो रहे थे ॥ १६ ॥ अर्णव में अन्धकार के समान उस घनीभूत दैत्येन्द्र और देवों के द्वारा कदन किये गये दानव तमोभूत की ही तरह हो गया था ॥ १७ ॥ उस समय में मय दानव ने देवों के द्वारा की हुई उस तामसी माया को दग्ध करते हुए एक अपनी महामाया का सृजन किया था जो और्व वह्नि के द्वारा सृजि हुई थी और युगान्त में उद्योत (प्रकाश) की जननी थी ॥ १८ ॥ मय दानव के द्वारा विरचित उस माया ने सबका दहन कर दिया था और फिर तुरन्त ही दैत्यगण देवों के वपु वाले होकर उस रण स्थल में समुत्थित हो गये थे । और्वी माया को प्राप्त करके दग्ध होते हुए देवगण इन्द्र का विषय सलिल का प्रदान करने वाले शीतांशु का सेवन करने लगे थे । और्व वह्नि से दह्यमान होकर वे देवगण एकदम नष्ट चेष्टाओं वाले हो गये थे । और फिर वे सन्तप्त हुए देवता लोग शरण की इच्छा वाले होते हुए इन्द्र से कहने लगे थे ॥१६, २०, २१॥

सन्तप्ते मायया सैन्ये हन्यमाने च दानवैः ।
चोदितो देवराजेन वरुणो वाक्यमब्रवीत् ॥२२
और्वो ब्रह्मर्षिजः शक्र ! तपस्तेपे सुदारुणम् ॥

और्वः स पूर्वतेजस्वी सदृशो ब्रह्मणो गुणैः ॥२३

तं तपन्तमिवादित्यं तपसा जगदव्ययम् ।

उपतस्थुर्मुनिगणा दिव्या देवर्षिभिः सह ॥२४

हिरण्यकशिपुश्चैव दानवो दानवेश्वरः ।

ऋषिं विज्ञापयामासुः पुरा परमतेजसम् ॥२५

ऊचुर्ब्रह्मर्षयस्तं तु वचनं धर्मसंहितम् ।

ऋषिवंशेषु भगवञ्छिन्नमूलमिदं पदम् ॥२६

एकस्त्वमनपत्यश्च गोत्रायान्यो न वर्तते ।

कौमारं व्रतमास्थाय क्लेशमेवानुवर्तसे ॥२७

बहूनि विप्र ! गोत्राणि मुनीनां भावितात्मनाम् ।

एकदेहानि तिष्ठन्ति विविक्तानि विना प्रजाः ॥२८

मय दानव की रचित माया से सेना के सन्तप्त हो जाने पर तथा दानवों के द्वारा हनन किये जाने पर देवराज के द्वारा प्रेरित किये हुए वरुण देव ने यह वाक्य कहा था—हे इन्द्र ! ब्रह्मर्षि से जन्म लेने वाले और्व ने अतीव दारुण तपश्चर्या की थी। वह और्व पूर्व का ही तेजस्वी था तथा गुणों के द्वारा ब्रह्मा के सदृश था ॥ २२ । २३ ॥ तप के द्वारा इस अव्यय जगत् को आदित्य के समान तपाते हुये उसका देवर्षियों के सहित दिव्य मुनिगणों ने सन्तवन किया था। दानवेश्वर दानव ने हिरण्यकशिपु को पहिले परम तेजस्वी ऋषि को विज्ञापित किया था। ॥ २४ । २५ ॥ ब्रह्मर्षियों ने उससे परम धर्म से सहित वचन कहा था—हे भगवन् ! ऋषियों के वंशों में यह छिन्न मूल वाला ही है। आप एक ही सन्तान से रहित हैं और गोत्र के लिये अन्य कोई भी नहीं। आप इस कौमार व्रत में समास्थित होकर केवल क्लेश का ही अनुवर्तन कर रहे हैं। हे विप्र ! भावित आत्मा वाले मुनियों के बहुत-से गोत्र ऐसे हैं जो प्रजाओं के बिना एक ही देहों वाले विविक्त स्थित रहा करते हैं ॥ २६, २७, २८ ॥

एवमुच्छिन्नमूलैश्च पुत्रैर्नो नास्ति कारणम् ।
भवांस्तु तपसा श्रेष्ठो प्रजापतिसमद्युतिः ॥२९
तत्र वर्तस्व वंशाय वर्द्धयात्मानमात्मना ।
त्वया धर्मोऽर्जितस्तेन द्वितीयां कुरु वै तनुम् ॥३०
स एवमुक्तो मुनिभिर्ह्यौर्वमर्मसु ताडितः ।
जगर्हे तान् ऋषिगणान् वचनं चेदमब्रवीत् ॥३१
यथायं विहितो धर्मो मुनीनां शाश्वतस्तु स ।
आर्षं वै सेवतःकर्म वन्यमूलफलाशिनः ॥३२
ब्रह्मयोनौ प्रसूतस्य ब्राह्मणस्यात्मदर्शिनः ।
ब्रह्मचर्यं सुचरितं ब्रह्माणमपि चालयेत् ॥३३
जनानां वृत्तयस्तिस्रो यद् गृहाश्रमवासिनाम् ।
अस्माकन्तु वरं वृत्तिर्वनाश्रमनिवासिनाम् ॥३४

इस प्रकार से उच्छिन्न मूलों वाले पुत्रों से हमारा कोई कारण नहीं है और आप तो तपस्या में परम श्रेष्ठ एवं प्रजापति के समान द्युति वाले हैं। अब उसमें अपने वंश के लिये ही बरताव करें और आत्मा के द्वारा आत्मा की वृद्धि करें। आपने धर्म का तो पर्याप्त अर्जन कर ही लिया है। अब दूसरा शरीर भी बनाइये ॥२९। ३०॥ मुनिगणों के द्वारा जब इस प्रकार से उस मुनि से कहा गया था तो वह और्व मर्म स्थल में ताडित किया गया था। उसने उन ऋषिगणों की गर्हा की थी और फिर उनसे यह वचन बोला था। जिस प्रकार से मेरे द्वारा यह धर्म विहित किया गया है वह मुनियों का परम शाश्वत धर्म है। वन में समुत्पन्न मूल और फलों का अशन करने वाले तथा आर्ष कर्म को सेवन करने वाले—ब्रह्म योनि में समुत्पन्न—आत्मदर्शी ब्राह्मण का भली भाँति चरित ब्रह्मचर्य व्रत का बड़ा महान् माहात्म्य है यह तो ब्रह्मा को भी चलित कर देने वाला होता है। जो गृहाश्रम के निवासी जन हैं उनकी तीन

वृत्तियाँ होती हैं। इस जो वनाश्रम निवासी हैं उनकी यही वृत्ति परम श्रेष्ठ है ॥२६–३४॥

अब्भक्षा वायुभक्षाश्च दन्तोलूखलिनस्तथा ।
अश्मकुट्टा दश तथा पञ्चातपसहाश्च ये ॥३५
एते तपसि तिष्ठन्ति व्रतैरपि सुदुष्करैः ।
ब्रह्मचर्यं पुरस्कृत्य प्रार्थयन्ति परागतिम् ॥३६
ब्रह्मचर्याद् ब्राह्मणस्य ब्राह्मणत्वं विधीयते ।
एवमाहुः परे लोके ब्रह्मचर्यविदोजनाः ॥३७
ब्रह्मचर्ये स्थितं धैर्यं ब्रह्मचर्ये स्थितं तपः ।
ये स्थिताः ब्रह्मचर्येषु ब्राह्मणा दिवि संस्थिता ॥३८
नास्ति योगं विना सिद्धिर्न वा सिद्धिं विना यशः ।
नास्ति लोके यशो मूलं ब्रह्मचर्यात् परन्तपः ॥३९
यो निगृह्येन्द्रियग्रामं भूतग्रामं च पञ्चकम् ।
ब्रह्मचर्यं समाधत्ते किमतः परमं तपः ॥ ४०
अयोगे केशधरणमसङ्कल्पव्रतक्रिया ।
अब्रह्मचर्ये चर्या च त्रयं स्याद् दम्भसंज्ञकम् ॥४१
क्व दाराः क्व च संयोगः क्व च भावविपर्ययः ।
नन्वियं ब्रह्मणा सृष्टा मनसा मानसी प्रजा ॥४२

जल के भक्षण करने वाले – वायु के भक्षण करने वाले तथा दन्तोलूखली—दश अश्म कुट्ट और जो पाँच आतपों के सहन करने वाले हैं। ये तप में आस्थित रहा करते हैं और जो परम दुष्कर व्रतों के द्वारा ब्रह्मचर्य का पूर्ण परिपालन करके परागति की प्रार्थना किया करते हैं। ॥३५॥३६॥ परलोक में भी ब्रह्मचर्य के महान् महत्व के ज्ञाता लोग इसी प्रकार से कहा करते हैं कि ब्रह्मचर्य में ही ब्राह्मण का ब्राह्मणत्व स्थित रहा करता है।३७। इस ब्रह्मचर्य में ही धैर्य की स्थिति रहा करती है और इस ब्रह्मचर्य में ही तप स्थित रहता है। जो ब्राह्मण अपने पूर्ण

ब्रह्मचर्य्य व्रत मे टिके हुये है वे दिवलोक में सस्थिति रक्खा करते हैं । ॥३८॥ योग के बिना कोई भी सिद्धि नही हुआ करती है और जब कोई सिद्धि नहीं होती है यश भी लोक में नही हुआ करता है तथा लोक में यश का मूल नही है और ब्रह्मचर्य से अधिक कोई भी तप नही होता है ॥३९॥ जो कोई भी पुरुष अपनी इन्द्रियों के समूह को पाँचों भूत-ग्रामो को निगृहीत करके ब्रह्मचर्य्य व्रत का पूर्ण पालन किया करता है फिर इससे अधिक अन्य क्या तप हो सकता है । यही सबसे परम श्रेष्ठ तप होता है ॥४०॥ अयोग मे चेष्टा का धारण करना—बिना ही किसी सद्भावना के व्रतों की क्रिया का सम्पादन करना और अब्रह्मचर्य मे अपनी चर्या रखना ये तीनों कर्म दम्भ की संज्ञा वाले ही कहे गये हैं ॥ ४१ ॥ कहीं तो दारा का अयोग हुआ था और कहीं भावों का विध्वंस ही हुआ था अर्थात् दारा—संयोग और भावों की विपरीतता ये दोनों ही बातों का बिल्कुल अभाव था तो भी ब्रह्मा के द्वारा मन से ही यह मानसी प्रजा का सृजन किया गया था ॥४२॥

यद्यस्ति तपसो वीर्यं युष्माकं विदितात्मनाम् ।
सृजध्वं मानसान् पुत्रान् प्राजापत्येन कर्मणा ॥४३
मनसा निर्मिता योनिराधातव्या तपस्विभिः ।
न दारयोगो बीजं वा व्रतमुक्तं तपस्विनाम् ॥४४
यदिदं लुप्तधर्मार्थं युष्माभिरिह निर्भयैः ।
[illegible] ५

एवमात्मानमात्मा मे द्वितीयं जनयिष्यति ।
अन्येनानेन विधिना दिधक्षन्तमिव प्रजाः ॥४७
ओर्वस्तु तपसाविष्टो निवेश्योरुं हुताशने ।
ममन्थैकेन दर्भेण सुतस्य प्रभवारणिम् ॥४८
तस्योरुं सहसा भित्वा ज्वालामाली ह्यनिन्धनः ।

जगतो दहनाकाङ्क्षी पुत्रोऽग्निः समपद्यत ॥ ४९

यदि आत्मा व ज्ञान को जानने वाले आप लोगों में कुछ भी तप या वीर्य विद्यमान है तो आप प्रजा पत्य कर्म के द्वारा मानस पुत्रों का सृजन करिए ॥ ४३ ॥ मन के द्वारा ही निर्मित की हुई योनि ही तपस्वियों को आधान करनी चाहिए। दारा के साथ योग करना तथा बीज का प्रयोग करना तपस्वियों का व्रत नहीं बताया गया है ॥ ४४ ॥ यहाँ पर आप लोगों ने जो भी निर्भय होकर इस लुप्त धर्म और अर्थ से पूर्ण वचन को कह डाला है। यद्यपि आप लोग सत्पुरुष हैं जिन्होंने इसको यहाँ पर प्रतिपादन किया है तो भी यह मुझको असत्पुरुष के कथन के समान ही प्रतीत होता है मैं इस दीप्त अन्तरात्मा वाले वपु को मनायम करके दारा व योग के बिना ही आत्म तनूरुह पुत्र का सृजन करूँगा। इसी प्रकार से यह मेरी आत्मा द्वितीय आत्मा को जन्म ग्रहण करायेगी और इसी यज्ञ विधि के द्वारा प्रजा की भाँति ही जलाने वाली हो जायगी। उन और्व ने तप से समाविष्ट होकर अपने ऊरु को हुताशन में निवेशित कर दिया था और एक धर्म से मुनि की दर्भारणि का मथन किया था ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ उनके अङ्ग का सहसा भेदन करके बिना ही ईंधन वाला ज्वालामाली और इस जगत् का दहन कर देने की आकाङ्क्षा वाला अग्नि पुत्र समुत्पन्न हुआ था ॥ ४९ ॥

ऊर्वस्योरुं विनिर्भिद्य और्वो नामान्तकोऽनलः ।
दिधक्षन्निव लोकांस्त्रीञ्जज्ञे परमकोपनः ॥५०
उत्पन्नमात्रश्चोवाच पितरं दीनया गिरा ।
क्षुधा मे बाधते तात ! जगद्भक्ष्य त्यजस्व माम् ॥५१
त्रिदिवारोहिभिर्ज्वालैर्जृम्भमाणो दिशो दश ।
निर्दहन् सर्वभूतानि ववृधे सोऽन्तकोऽनलः ५२
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा मुनिमर्वं सभाजयन् ।
उवाच वार्यतां पुत्रो जगतश्च दयां कुरु ॥५३

अस्यापत्यस्य ते विप्र! करिष्ये स्थानमुत्तमम् ।
तथ्यमेतद्वचः पुत्र! शृणु त्वंवदताम्वरः ॥५४
धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यन्मेऽद्य भगवांच्छिशोः ।
मतिमेतां ददातीह परमानुग्रहायवै ॥५५
प्रभातकाले संप्राप्ते काङ्क्षितव्ये समागमे ।
भगवन्! तर्पितः पुत्रः कैर्हव्यैः प्राप्स्यते सुखम् ॥ ५६
कुत्र चास्य निवासः स्याद्भोजनं वा किमात्मकम् ।
विधास्यतीह भगवान् वीर्यतुल्यं महौजसः ॥ ५७

उस ऊर्व की ऊरु का विनिर्भेदन करके 'और्व' नाम वाला अनल अन्त कर देने वाला परम कोप से समन्वित तीनों लोकों को दग्ध सा करता हुआ समुत्पन्न हुआ था। उत्पन्न होने के ही साथ उसने परम विनम्र वाणी से अपने पिता से प्रार्थना की थी कि हे तात! मुझे यह क्षुधा अत्यन्त अधिकता के साथ सता रही है। मैं इस जगत् का भक्षण करूँगा आप मुझे अपनी क्षुधा के निवारण करने के लिये मुझे छुट्टी दे दीजिए ॥५०,५१॥ त्रिदिव मे समारोहण करने वाली ज्वालाओं स दशों दिशाओं मे जृम्भमाण होता हुआ समस्त भूतों को दया से रहित होकर दलित करता हुआ गया था। इसी बीच मे वह अन्तक अनल वृद्धि को प्राप्त हो ब्रह्मा ने ऊर्व मुनि का समाजन करते हुए उससे कहा था कि हे पुत्र! इसको धारण करो तथा इस जगत् पर दया करो।५२, ५३॥ हे विप्र! मैं आपकी इस सन्तति का समुचित स्थान स्थिर कर दूँगा। हे पुत्र! बोलने वालों मे परम श्रेष्ठ आप मेरे अतीव तथ्य वचन का श्रवण करो।।५४॥ ऊर्व ने कहा—मैं परम धन्य और अतीव अनुगृहीत हूं कि आज भगवान् आपने इस समय में इस शिशु को ऐसी बुद्धि मुझपर परम अनुग्रह करने के लिये प्रदान की है। प्रभात काल के सम्प्राप्त होने पर आपका समागम आकाङ्क्षणीय है। हे भगवन्! यह बतलाइये कि किन हव्यों से तर्पित हुआ मेरा पुत्र सुख प्राप्त करेगा? इसका निवास स्थल कहाँ पर होगा और इसके भोजन

का स्वरूप होगा ? भगवान् आप इस महान् ओज वाले के वीर्य के तुल्य ही इन बातों की व्यवस्था कर देंगे ॥ ५४–५७ ॥

वडवामुखेऽस्य वसतिः समुद्रे वै भविष्यति ।
मम योनिर्जलं विप्र ! तस्य पीतवतः सुखम् ॥ ५८
यत्राहमास नियतं पिबन् वारिमयं हविः ।
तद्धविस्तव पुत्रस्य विसृजाम्यालयञ्च तत् ॥५९
ततो युगान्ते भूतानामेष चाहञ्च पुत्रक ! ।
सहितौ विचरिष्यावो निष्पुत्राणामृणापहः ॥६०
एषोऽग्निरन्तकाले तु सलिलाशी मया कृतः ।
दहनः सर्वभूतानां सदेवासुररक्षसाम् ॥ ६१
एवमस्त्विति सोऽग्निः संवृतज्वालमण्डलः ।
प्रविवेशार्णवमुखं प्रक्षिप्य पितरि प्रभाम् ॥६२
प्रतियातस्ततो ब्रह्मा ये च सर्वे महर्षयः ।
ऊर्वस्याग्नेः प्रभां ज्ञात्वा स्वां स्वां गतिमुपाश्रिताः ॥६३

श्री ब्रह्माजी ने कहा—समुद्र में वडवा के मुख में इसका निवास स्थान होगा । हे विप्र ! मेरी उत्पत्ति की योनि जल पीने वाले इसको सुखकर होगा और जहाँ पर हूँ वहीं पर नियत रूप से वारिमय हवि का पान करेगा तथा वह हवि आपके पुत्र के निमित्त मैं सब काल पर्यन्त विसर्जित कर देता हूँ ॥ ५८ । ५९ ॥ इसके पश्चात् हे पुत्र ! भूतों के युग के अन्त में यह आपका पुत्र और मैं दोनों एक साथ में मिलकर निष्पुत्रों के ऋण का अपहरण करने वाले विचरण करेंगे । इस अग्नि को अन्तकाल में मैंने सलिल का अशन करने वाला कर दिया है जो समस्त भूतों का तथा देव-असुर और राक्षसों का दहन करने वाला होगा । ऐसा ही होवे—यह कहकर वह अग्नि संवृत ज्वालाओं के मण्डल वाला अपने पिता ऊर्व में प्रभा को प्रक्षिप्त करके अर्णव के मुख में प्रवेश कर गया था । इसके अनन्तर ब्रह्माजी तथा सब महर्षिगण प्रति-

याम कर गये थे। ऊर्व की अग्नि की प्रभा को जानकर सब अपनी गति का उपाश्रय कर गये थे ॥६०-६३॥

हिरण्यकशिपुर्दृष्ट्वा तदा तन्महदद्भुतम् ।
उच्चैः प्रणतसर्वाङ्गो वाक्यमेतदुवाच ह ॥६४
भगवन्नद्भुतमिदं संवृत्तं लोकसाक्षिकम् ।
तपसा ते मुनिश्रेष्ठ ! परितुष्टः पितामहः ॥६५
अहन्तु तव पुत्रस्य तव चैव महाव्रत ! ।
भृत्य इत्यवगन्तव्यः साध्यो यदिह कर्मणा ॥६६
तन्मां पश्य समापन्न तवैवाराधने रतम् ।
यदि सीदे मुनिश्रेष्ठ ! तवैव स्यात् पराजयः ॥७०
धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यस्यतेऽहं गुरुः स्थितः ।
नास्तिमे तपसानेन भयमद्येहमुव्रत ! ॥७१
तामेव मायां गृह्णाष्व मम पुत्रेण निर्मिताम् ।
निरिन्धनामग्निमयीं दुर्धर्षां पावकैरपि ॥७२
एषा ते स्वस्य वंशस्य वशगारिविनिग्रहे ।
संरक्षत्यात्मपक्षञ्च विपक्षञ्च प्रधर्षति ॥७०

उसी समय में उस महान् अद्भुत को हिरण्य कशिपु देखकर उच्च भाव से सब अङ्गो को प्रणत करने वाला होकर यह वाक्य बोला था ॥६४॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! यह लोक का साक्षिक अद्भुत हो गया है। हे भगवन् ! आपकी तपश्चर्या से पितामह भी परितुष्ट हो गये हैं ॥६५॥ हे महाव्रत ! मैं तो आपके पुत्र का और आपका भृत्य ही हूँ—ऐसा ही समझ लीजिए जो कि यहाँ पर कर्म के द्वारा साधना के योग्य है। इसलिये इस मुझको आपके ही समाराधन में सम्पन्न हो देखिये। हे मुनि श्रेष्ठ ! यदि मैं आपका अनुगामी सेवक होकर भी दुःखित रहता हूँ तो यह आपका ही पराजय होगा। ऊर्व ने कहा—मैं परम धन्य हूँ और परम अनुगृहीत हूँ कि जिस तुम्हारा मैं गुरु समवस्थित हो गया हूँ।

हे सुव्रत ! आज यहाँ पर मेरे इन तप से कोई भी भय नहीं है। मेरे पुत्र के द्वारा निर्मित उसी माया को ग्रहण करो जो बिना ईंधन वाली पावकों द्वारा भी दुर्धर्ष और अग्निमयी है। यह तेरे अपने वंश के वश में गमन करने वाले अरियों में विशेष निग्रह में अपने पक्ष की रक्षा करेगी और रिपुओं को प्रज्वलित करेगी ॥ ६९-७० ॥

एवमस्त्विति तां गृह्य प्रणम्य मुनिपुङ्गवम् ।
जगाम त्रिदिवं हृष्टः कृतार्थो दानवेश्वरः ॥ ७१

एषा दुर्विषहा माया देवैरपि दुरासदा ।
और्वेण निर्मिता पूर्वं पावकेनोर्वसूनुना ॥ ७२

तस्मिन्स्तु व्युत्थिते दैत्ये निर्वीर्येषा न संशयः ।
शापो ह्यस्याः पुरा दत्तो सृष्टा येनैव तेजसा ॥ ७३

यद्येषा प्रतिहन्तव्या कर्तव्यो भगवान् सुखी ।
दीयतां मे सखा शक्र ! तोययोनिर्निशाकरः ॥ ७४

तेनाहं सह सङ्गम्य यादोभिश्च समावृतः ।
मायामेनां हनिष्यामि त्वत्प्रसादान्न संशयः ॥ ७५

ऐसा ही होगा—ऐसा कहकर उसको ग्रहण किया था और फिर उस श्रेष्ठ मुनि को प्रणाम करके दानवेश्वर प्रसन्न एवं कृतार्थ होकर त्रिदिव को चला गया था ॥७१॥ यह माया दुर्विषह है और देवगणों के द्वारा भी दुरासद है। इसको ऊर्व के पुत्र पावक और्व के द्वारा पूर्व में निर्माण किया गया था ॥७२॥ उस दैत्य के व्युत्थित होने पर यह निर्वीर्य हो जाया करती है इस में कुछ भी संशय नहीं है। जिस जिस तेज के द्वारा इस का सृजन किया गया था उसी के द्वारा पहिले इस को शाप भी दिया गया है। यदि यह माया प्रतिहनन के योग्य करनी है तो भगवान् को सुख से सम्पन्न एवम् प्रसन्न करना चाहिए। हे इन्द्रदेव ! अतएव तोय की योनि निशाकर मेरा सखा दे दो ॥७३॥७४॥ उसके साथ मैं सङ्गत होकर और

यादव गणों से समावृत होकर आपकी कृपा एवं प्रसाद से उस माया का मैं हनन कर दूँगा—इस में लेशमात्र भी संशय नही है ॥७५॥

६६—देवासुर संग्राम वर्णन (२)

एवमस्त्विति संहृष्टः शक्रस्त्रिदशवर्धनः ।
सन्दिदेशाग्रतः सोमं युद्धाय शिशिरायुधम् ॥१
गच्छ सोम ! सहायत्वंकुरुपाशधरस्य वै ।
असुराणां विनाशाय जयार्थञ्चदिवौकसाम् ॥२
त्वं मत्तः प्रतिवीर्यश्च ज्योतिषाञ्चेश्वरेश्वरः ।
त्वन्मय सर्वलोकेषु रसं रसविदो विदुः ॥ ३
क्षयवृद्धी तव व्यक्ते सागरस्येव मण्डले ।
परिवर्त्तस्यहोरात्र कालं जगति योजयन् ॥४
लोकच्छायामयः लक्ष्म तवाङ्कः शशसन्निभः ।
न विदुः सोमदेवापि ये च नक्षत्रयोनयः ॥ ५
त्वमादित्यपथादूर्ध्वं ज्योतिषां चोपरि स्थितः ।
तमः प्रोत्सार्य सहसा भासयस्यखिल जगत् ॥६
अधिकृत्कालयोगात्माइष्टोयज्ञस्यसोऽव्ययः ।
ओषधीशः क्रियायोनिरब्जयोनिरनुष्णभाः ॥

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—ऐसा ही होवेगा—यह कहकर परम प्रहर्षित और देवो की वृद्धि करने वाले इन्द्र ने सोम के समक्ष में युद्ध करने के लिए शिशिर आयुध के प्रयुक्त करने का सन्देश दे दिया था और सोम से उसने कहा था कि हे सोम ! तुम तुरन्त ही चले आओ और पाशधारी वरुण देव की युद्ध मे सहायता करो यह इस प्रकार से तुम्हारा इस समय मे वरुण का सहायक होना असुरों के विनाश के लिये

तथा देवगणों की विजय प्राप्त करने के लिये ही होगा ॥१॥२॥ हे सोम ! आप मत्त हैं और मुकाबले के प्रतिवीर्य—विक्रम वाले हैं तथा आप समस्त ज्योतियों के ईश्वरों के भी ईश्वर हैं। रसों के वेत्ता लोग सब लोकों में आप से परिपूर्ण रस को भली भांति ग्रहण करते एवं जानते हैं ॥३॥ मण्डल में सागर की ही भाँति आपकी क्षीणता तथा वृद्धि स्पष्ट है और जगत् में अहोरात्र के काल को योजित करते हुए आप परिवर्तित हुआ करते हैं। आपका यह शश के सदृश जो अङ्क में चिन्ह है वह लोगों की इच्छा से ही परिपूर्ण है और इस को नक्षत्रों की योनि वाले जो देवगण भी हैं वे भी हे सोम ! नहीं जानते हैं ॥४॥५॥ आप आदित्य के पथ से भी ऊपर सब ज्योतियों के ऊर्ध्वभाग में समवस्थित हैं। आप सहसा तम को प्रोत्सारित करके सम्पूर्ण जगत् को अपने सुन्दर प्रकाश से भासित कर दिया करते हैं ॥६॥ आप अधिकृत कालयोग के स्वरूप वाले—यज्ञ के अभीष्ट और अविनाशी हैं। आप ओषधियों के स्वामी—सब क्रियाओं की योनि—अब्ज योनि और शीतल दीप्ति से समन्वित हैं ॥७॥

शीतांशुरमृताधारश्चपलः श्वेतवाहनः ।
त्वं कान्तिः कान्तिवपुषां त्वं सोमः सोमपायिनाम् ॥८
सौम्यस्त्वं सर्वभूतानां तिमिरघ्नस्त्वमृक्षराट् ।
तद्गच्छ त्वं महासेन ! वरुणेन वरूथिना ॥
शमयस्वासुरीं मायां यया दह्याम संयुगे ॥९
यस्मात् वदसि युद्धार्थे देवराज ! वरप्रद ! ।
एष यामि शिशिरं दैत्यमायापकर्षणम् ॥१०
एतान् मच्छीतनिर्दग्धान् पश्य मद्धिमवेष्टितान् ।
विमायान् विमदांश्चैव दैत्यसिंहान् महाहवे ॥११
तेषां हिमकरोत्सृष्टाः सनीहारा हिमवृष्टयः ।
वेष्टयन्ति स्म तान् घोरान् दैत्यान् मेघगणा इव ॥१२

तौ पाशशीतांशुधरौ वरुणेन्द्र महाबलौ ।
जघ्नतुर्हिमपातैश्च पाशपातैश्च दानवान् ॥१३
द्वावम्बुनाथौ समरे तौ पाशहिमयोधिनौ ।
मृधे चेरतुरम्भोभिः क्षुब्धाविव महार्णवौ ॥१४

हे सोम ! आप शीतल किरणों वाले—अमृत के आधार—चपल श्वेत वाहन हैं। आप इस अपने कान्तिपूर्ण शरीर के द्वारा स्वयं ही कान्ति हैं और सोम के पान करने वालो के लिए साक्षात सोम स्वरूप वाले हैं। आप समस्त भूतो के लिये परम सौम्य है तथा सब ऋक्षों के राजा और तिमिर के नाश करने वाले हैं। इसीलिये हे महासेन ! वरूथी वरुण के साथ सहायता करने के लिए आप शीघ्र ही चले जाइये तथा जिससे हम सब युद्ध मे दग्ध हुए जा रहे है उस इस आसुरी माया का शमन कीजिए ॥ ८ ॥ ९ ॥ इन्द्रदेव के इस प्रकार से प्रार्थना करने पर सोम ने कहा—हे देवराज ! हे वर प्रदान करने वाले देव ! जो आप युद्ध करने के लिये मुझे कह रहे हैं। मैं अभी दैत्यो की माया के अपकर्षण करने वाले शिशिर की वर्षा करता हूँ। आप इन सबको मेरे हिम से संवेष्टित और मेरे शीत से निर्दग्ध देखिये। इस महायुद्ध मे इन सब दैत्य सिंहों को मद और माया से रहित हुए ही आप देखेंगे ॥१०। ११॥ उनको हिमकिरणों से समुत्सृष्ट पाशो के सहित हिम की वृष्टियो मे घोर दैत्यों को मेघ गणो की ही भाँति वेष्टित कर दिया था ॥ १२ ॥ महान् बलवान् पाश और शीतल किरणो को धारण करने वाले वरुण और चन्द्र दोनो ने उन दानवों का हिम के पातो तथा पाशो के पातो से हनन कर दिया था ॥१३॥ वे दोनों अम्बु के स्वामी—पाश और हिम से युद्ध करने वाले उस महान् घोर रण मे जलो से क्षुब्ध दो महार्णवों की भाँति ही विचरण कर रहे थे ॥१४॥

ताभ्यामाप्लावितं सैन्यं तद्दानमदृश्यत ।
जगत् संवर्तकाम्भोदैः प्रविष्टैरिवसंवृतम् ॥१५

तावुद्यताम्बुनाथौ तु शशाङ्कवरुणावुभौ ।
शमयामासतुर्मायां देवौ दैत्येन्द्रनिर्मिताम् ॥१६
शीतांशुजालनिर्दग्धाः पाशैश्च स्पन्दिता रणे ।
न शेकुश्चलितुं दैत्या विशिरस्का इवाद्रयः ॥१७
शीतांशुनिहतास्ते तु दैत्यास्तोयहिमार्दिताः ।
हिमाप्लावितसर्वाङ्गा निरूष्माण इवाग्नयः ॥१८
तेषान्तु दिवि दैत्यानां विपरीतप्रभाणि वै ।
विमानानि विचित्राणि प्रपतन्त्युत्पतन्ति च ॥१९
तान् पाशहस्तग्रथितांश्छादितांश्छीतरश्मिभिः ।
मयोऽददर्श मायावी दानवान्दिवि दानवः ॥२०

उन दोनों से आच्छादित दानवों की सेना उस समय में दिखाई नहीं दे रही थी और वह सम्पूर्ण जगत् प्रविष्ट हुए सम्वर्तक अग्नियों के द्वारा भस्म की तरह ही हो गया था ॥ १५ ॥ उन समुद्यत हुए शशांक और वरुण दोनों अम्बुनाथों ने देवों ने दैत्यों के द्वारा निर्माण की हुई उस माया का एकदम शमन कर दिया था। शीतांशुओं के जाल से निर्दग्ध हुए तथा पाशों से रणस्थल में स्पन्दित हुए सब दैत्यगण बिना सिर वाले पर्वतों के समान हो चलने में असमर्थ हो गये थे ॥१६, १७॥ शीत किरणों से निहत हुए तथा जल और हिम से अर्दित तथा हिम से प्लावित समस्त अङ्गों वाले सब दैत्यगण बिना ऊष्मा (ताप) वाली अग्नियों के ही तुल्य हो गये थे ॥१८॥ दिवलोक में उन दैत्यों के विपरीत प्रभा वाले विचित्र विमान ऊपर उड़ते थे और नीचे भूमि पर गिर जाया करते थे। उस समय में दिवलोक में मायावी दानव मय ने उन सब दानवों को पाश हस्त ग्रथित और शीत रश्मियों से समाच्छादित देखा था ॥१९, २०॥

स शिलाजालविततां खड्गचर्माट्टहासिनीम् ।
पादपोत्कटकूटाग्रां कन्दराकीर्णकाननाम् ॥२१

सिंहव्याघ्रगणाकीर्णां नर्दद्भिर्गजयूथपैः ।
ईहामृगगणाकीर्णां पवनाघूर्णितद्रुमाम् ॥२२
निर्मितां स्वेन यत्नेन कूजितां दिवि कामगाम् ।
प्रथितां पार्वतीं मायामसृजत्सममन्ततः ॥ ३
सासिशब्दैः शिलावर्षैः सम्पतद्भिश्च पादपैः ।
जघान देवसङ्घांश्च दानवांश्चाप्यजीवयत् ॥२४
नैशाकरी वारुणी च मायेऽन्तर्दधतुस्ततः ।
असिभिश्चायसगणैः किरन् देवगणान् रणे ॥२५
साश्मयन्त्रायुधघना द्रुमपर्वतसङ्कटा ।
अभवत् घोरसञ्चार्या पृथिवी पर्वता इव ॥ २
अश्मना प्रहताः केचित् शिलाभिः शकलीकृताः ।
नानिरुद्धो द्रुमगणैर्देवोऽदृश्यत कश्चन ॥२७
तदपध्वस्तधनुषं भग्नप्रहरणाविलम् ।
निष्प्रयत्नं सुरानीकं वर्जयित्वा गदाधरम् । २८

उस समय में उस मय दानव ने शिला के जालों में वितत—पङ्क चर्मों के अट्टहास वाली—पादपों के उत्कट कूटों के अग्र भाग वाली—कन्दराओं में समाकीर्ण, काननों से युक्त—सिंह एवं व्याघ्रों के गणों से सकुल—चिंघाड़ते हुए गजों के यूथों से समन्वित—ईहामृग गणों से आकीर्ण—पवन से आघूर्णित द्रुमों वाली—दिवलोक में स्वेच्छया गमन करने वाली—कूजित और अपने ही यत्न से निर्माण की हुई परम प्रथित पार्वती माया को चारों ओर सृजित कर दिया था। उसने असि के शब्दों से—शिलाओं की वर्षा से—और सम्पात करने वाले पादपों से देवों के सङ्घों का हनन कर दिया था तथा दानवों को जीवित कर दिया था। उस पार्वती माया में नैशाकरी और वारुणी दोनों मायाएं अन्तर्हित हो गई थीं और देवगणों को असि तथा आयास गणों से रण में तितर-बितर कर दिया था ॥ २१, २२, २३, २४, २५ ॥ अश्म यन्त्र और

वायुओं से घन—द्रुम और पर्वतों से संकट वह माया पर्वतों से पृथिवी के समान अति घोर संचरण के योग्य हो गई थी ॥ २६ ॥ कुछ पाषाणों से प्रहत हुए थे और कुछ शिलाओं से खण्ड २ कर दिये गये थे और द्रुमगणों से अनिरुद्ध कोई भी देवता दिखलाई नहीं दे रहा था। भगवान् गदाधर को वर्जित करके सम्पूर्ण सुरों की सेना ध्वस्त धनुषों वाली—भग्न प्रहरणों से आविरत (मलिन) और प्रयत्न सहित बन गई थी ॥ २७, २८ ॥

स हि युद्धगत श्रीमानीशानोऽसभ्यमाग्मत ।
सहिष्णुर्वाज्जगत्स्वामी नचुक्षोभ गदाधरः ॥२९
कालज्ञः कालमेघाभः समीक्षन् कालमाहवे ।
देवासुरविमर्दं तु द्रष्टुकामस्तदा हरिः ॥३०
ततो भगवता दृष्टौ रणे पावकमारुतौ ।
चोदितौ विष्णुवाक्येन तौ मायामपकर्षताम् ॥३१
ताभ्यामुद्भ्रान्तवेगाभ्यां प्रवृद्धाभ्यां महाहवे ।
दग्धा सा पार्वती माया भस्मीभूता ननाश ह ॥३२
सोऽनिलोऽनलसंयुक्तः सोऽनलश्चानिलाकुलः ।
दैत्यसेनां ददहतुर्युगान्तेष्विव मूर्च्छितौ ॥३३
वायुः प्रधावितस्तत्र पश्चादग्निस्तु मारुतम् ।
चेरतुर्दानवानीके क्रीडन्तावनिलानलौ ॥३४

उस समय में युद्ध में गमन करने वाले श्रीमान् ईशान पाषाणों से व्यथित हो गये थे किन्तु जगत् के स्वामी भगवान् गदाधर ने सहिष्णुता के गुण होने के कारण से क्षोभ नहीं किया था। काल के ज्ञाता—कालमेघ के तुल्य आभा वाले हरि ने उस समय में उस युद्ध में काल को देखते हुए थे देव सुरों के विमर्द को देखने की कामना वाले हो गये थे। इसके उपरान्त भगवान् ने उस रण में पावक और मारुत को देखा था और वे दोनों विष्णु के वाक्य से प्रेरित होकर उस माया का अपकर्षण

करने वाले हुए थे। उस महायुद्ध में उद्‌भ्रान्त वेगों वाले और प्रवृद्ध उन दोनों के द्वारा वह पार्वती माया दग्ध तथा भस्मीभूत होकर नष्ट हो गई थी ।। २६, ३०, ३१, ३२ ।। वह अनिल (वायु) अनल (पावक) से संयुक्त और वह अग्नि वायु से समाकुल होकर इन दोनों ने युग के अन्त में मूर्छित होने के समान दैत्यों की सेना का दहन कर दिया था ।। ३३ ।। वहाँ पर वायु प्रधावित हुआ था और पीछे से अग्नि वायु के अनुसार ही धावमान हुआ था। इस तरह से अनिल और अनल दोनों दानवों की सेना में क्रीड़ा करते हुए चरण करते थे ।। ३४ ।।

भस्मावयवभूतेषु प्रपतत्सूत्पतत्सु च ।
दानवानां विमानेषु निपतत्सु समन्ततः ।।३५
वातस्कन्धापविद्धेषु कृतकर्म्मणि पावके ।
मया बधे निवृत्ते तु स्तूयमाने गदाधरे ।।३६
निष्प्रयत्नेषु दैत्येषु त्रैलोक्ये मुक्तबन्धने ।
सम्प्रहृष्टेषु देवेषु साधु साध्विति सर्वशः ।।३७
जये दशशताक्षस्य दैत्यानाञ्च पराजये ।
दिक्षु सर्वासु शुद्धासु प्रवृत्ते धर्म्मविस्तरे ।।३८
अपावृते चन्द्रमसि स्वस्थानस्थे दिवाकरे ।
प्रकृतिस्थेषु लोकेषु त्रिषु चारत्रबन्धुषु ।।३९
यजमानेषु भूतेषु प्रशान्तेषु च पाप्मसु ।
अभिन्नबन्धने मृत्यौ हूयमाने हुताशने ।।४०
यज्ञशोभिषु देवेषु स्वर्गार्थं दर्शयत्सु च ।
लोकपालेषु सर्वेषु दिक्षु संयानवर्त्तिषु ।।४१
भावे तपसि सिद्धानामभावे पापकर्म्मणाम् ।
देवपक्षे प्रमुदिते दैत्यपक्षे विषीदति ।।४२

चारों ओर से दानवों के विमानों के नीचे गिर जाने पर उनके ऊपर उड़कर भूमि गिरने पर तथा भस्मीभूत अवयवों के होने

पर पुर के बाण रूप से प्रविद्ध हो जाने पर पावक के द्वारा किए हुए कर्म से मय का वध हो गया था और भगवान् गदाधर का स्तवन किया गया था ॥ ३५, ३६ ॥ जिस समय में मय दानव का वध हो गया था तो सभी दैत्य निरुद्यम हो गये थे तथा त्रैलोक्य बन्धन से मुक्त हो गया था। तब देवगण अत्यन्त प्रसन्न हुए थे और, सभी ओर "साधु-साधु" अर्थात् अच्छा हुआ की ध्वनियाँ होने लगी थी ॥ ३७ ॥ इन्द्रदेव की जय होने पर और दैत्यों का पराजय हो जाने पर सब दिशाएँ विशुद्ध हो गई थी तथा धर्म का विस्तार प्रवृत्त हो गया था ॥ ३८ ॥ चन्द्रदेव अनाकुल हो गये थे तथा दिवाकर अपने स्थान पर स्थित हो गये थे एवं वह्नि के बन्धु तीनों लोक अपनी स्वाभाविक अवस्था में स्थित हो गये थे ॥ ३९ ॥ उपवनों में और द्रुमों में पाप प्रशान्त हो गये थे तथा अग्नि बन्धन वाला मृत्यु अग्नि में दृश्यमान हो गया था ॥ ४० ॥ सब देवगण सदा से लोकों का पालन करने लगे तथा स्वर्ग में धर्म का प्रदर्शन करते थे। सभी लोकपाल अपनी दिशाओं में स्थानों में वर्तमान हो गये थे ॥ ४१ ॥ उस समय में सिद्धों का तपश्चर्या में भाव स्थित हो गया था और जो पापपूर्ण कर्म करने वाले थे उनकी अभाव में स्थिति थी। देवों का पक्ष उस समय प्रमुदित हो गया और दैत्यों का पक्ष उस समय विषाद में पड़ा था ॥ ४२ ॥

त्रिपादविग्रहे धर्मे अधर्मे पादविग्रहे
अपावृते महाद्वारे वर्तमाने च सत्पथे ॥४३
लोके प्रवृत्ते धर्मेषु सुधर्मेष्वाश्रमेषु च ।
प्रजारक्षणयुक्तेषु भ्राजमानेषु राजसु ॥४४
प्रशान्तकल्मषे लोके शान्ते तमसि दानवे ।
अग्निमारुतयोर्नाथ वहती महासमरकीर्तिः ॥४५
तस्मिन् त्रिपुरे नीरजस्के नष्टदर्पे च वियत् ।
पुरंदरमुख प्रमुखा सुरा आगत्य नन्दतु ॥४६

कालनेमीति विख्यातो दानवः प्रत्यदृश्यत ।
भास्कराकारमुकुटः शिञ्जिताभरणाङ्गदः ॥४७
बाहुभिस्तुलयन् व्योम क्षिपन् पद्भ्यां महीधरान् ।
ईरयन्मुखनिश्वासैर्वृष्टिमवतान् बलाहकान् ॥४८

इस समय में तीन पादों वाला धर्म का निग्रह था और अधर्म केवल एक ही पाद से युक्त था । महासुर के अपावृत होने पर सब लोग सत्पथ में वर्तमान हो गये थे ॥४३॥ लोक अपने २ धर्मों और आश्रमों में प्रवृत्त थे तथा सब नृपति गण अपनी प्रजा की रक्षा कार्य में युक्त एवं प्रजामान होगये थे ॥ ४४ ॥ सम्पूर्ण लोक प्रशान्त कल्मषों वाले थे एवं दानवीय तम भी एक दम शान्त होगया था । वहाँ पर अग्नि और मारुत का संग्राम जब हुआ था तभी यह सब होगया था वहुत से लोक तन्मय होगये थे और उन दोनों में उनके विजय की करने वाली क्रिया भी हुई थी । मारुत और अग्नि के द्वारा किये हुए महान् पूर्व देवों का भय श्रवण करके परम विख्यात कालनेमि नाम वाला दानव वहाँ पर दिखलाई दिया था जिसका भास्कर के आकार के सदृश मुकुट था और वह शिञ्जित आभरणों एवं अङ्गदों वाला था । वह कालनेमि अपनी बाहुओं से व्योम तोलन करने लगा और पैरों से बड़े २ महीधरों को भी क्षिप्त करता था । वह वृष्टि से युक्त बलाहकों को मुख के निश्वासों के द्वारा प्रेरित करता था ।।४५-४८।।

तिर्यगायतरक्ताक्षं मन्दरोदग्रवर्चसम् ।
दिधक्षन्तमिवायान्तं सर्वान् देवगणान् मृधे ॥४९
तर्जयन्तं सुरगणाञ्छादयन्तं दिशो दश ।
संवर्तकाले तृषितं दृष्टं मृत्युमिवोत्थितम् ॥५०
सुतलेनोच्छ्रयवता विपुलाङ्गुलिपर्वणा ।
लम्बाभरणपूर्णेन किञ्चिच्चलितवर्मणा ॥५१
उच्छ्रितेनाग्रहस्तेन दक्षिणेन वपुष्मता ।

धावतान् देवानिहत्यानुतिष्ठस्वेमिति ब्रुवन् ॥५२
तं कालनेमिं समरे द्विषतां कालकल्पितम् ।
वीक्षन्तेस्म सुराः सर्वे भयविस्तललोचनाः ॥५३
तं वीक्षन्तिस्म भूयः न शमन्त कालनेमिनम् ।
त्रिविक्रमाविक्रमन्तं नारायणमिवापरम् ॥५४
सोऽभ्युत्सृष्य पादेनाक्रान्ता घूर्णिताम्बरः ।
प्रकाशं सर्वगो युद्धे त्रासयामास देवताः ॥५५
मन्दरेणाम्बरे द्वेन परिवर्त्तस्तथो रणे ।
कालनेमिरभूदिन्द्र स विष्णुरिव मन्दरः ॥५६
अथ विस्मयिरे देवाः सर्वे शक्रपुरोगमाः ।
कालनेमिं समायान्तं दृष्ट्वा कालमिवापरम् ॥५७

जिस समय में वह कालनेमि वहाँ रणस्थल में समागत हुआ था उस समय वह निर्दय—आतुर और यम जैसी काया था—उसका स्वरूप महान् था। सुन्दर उदग्र वर्चस से युक्त था—युद्ध में सब देवों का हनन करने [illegible] हुआ [illegible] हुआ था। ५१। समस्त सुरों को हटाकर [illegible] हुआ उसी दिशा में [illegible] हुआ और समस्त [illegible] दिखाई दिया था। उस युद्ध में दुष्ट—दुर्दान्त [illegible]—त्रिपुर [illegible] के पक्षों में दुर्ग—सबके [illegible]—कुछ चलित होने वाले—उत्क्षिप्त—बढ़ते हुए दाहिने हाथ से देवों के द्वारा मारे हुए दानवों से उठकर खड़े हो जाओ—ऐसा कह रहा था ॥५१—५२॥ उस समय रण में दौड़ कर जाने वाले सब [illegible] को काल से प्रेरित कालनेमि को भय से विह्वल और [illegible] नेत्रों वाले [illegible] देख रहे थे ॥५३॥ आगे और बढ़ते हुए उस कालनेमि को त्रिविक्रम (वामन) के भी अतिक्रम करते हुए दूसरे नारायण के ही समान स्वरूप (वाले) देखते थे ॥५४॥ आकाश [illegible] पैरों को [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ने

अक्रमण करते हुए युद्ध स्थल में देवगणों को डरा दिया था ॥५५॥ इसके अनन्तर रण मे समय वाले असुरेन्द्र से परिष्वक्त होकर वह कालनेमि विष्णु मन्दर के समान शोभित हुआ था ॥ ५६ ॥ इसके अनन्तर समस्त देवगण जिनमे इन्द्र देव सबके अग्रगामी थे दूसरे काल के ही समान आते हुए उस कालनेमि को देखकर विशेष रूप से व्यथित हुए थे ॥ ५७ ॥

७०—कालनेमि वृत्तान्त वर्णन

दानवानामनीकेषु कालनेमिर्महासुरः ।
विवर्द्धितमहातेजास्तपान्ते जलदो यथा ॥१
तं त्रैलोक्यान्तरगतं दृष्ट्वा ते दानवेश्वराः ।
उत्तस्थुरपरिश्रान्ताः पीत्वामृतमनुत्तमम् ॥२
ते वीतभयसन्त्रासा मयतारपुरोगमाः ।
तारकामयसंग्रामे सततं जितकाशिनः ॥३
रेजुरायोधनगता दानवाः युद्धकाङ्क्षिणः ।
मन्त्रमभ्यसतान्तेषां व्यूहञ्च परिधावताम् ॥४
प्रेक्षताञ्चाभवत् प्रीतिर्दानवं कालनेमिनम् ।
ये तु तत्र मयस्यासन् मुख्या युद्धपुरःसराः ॥५
ते तु सर्वे भयन्त्यक्त्वा हृष्टा योद्धुमुपस्थिताः ।
मयस्तारो वराहश्च हयग्रीवश्च वीर्यवान् ॥६
विप्रचित्तिसुतः श्वेतः खरलम्बावुभावपि ।
अरिष्टोबलिपुत्रश्च किशोराख्यस्तथैव च ॥७
स्वर्भानुश्चामरप्रख्यो वक्त्रयोधी महासुरः ।
एतेऽस्त्रवेदिनः सर्वे सर्वेतपसिसुस्थिताः ॥८

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—दानवों की सेनाओं में महासुर कालनेमि विशेष दर्पित हुए महान् तेज वाला तप के अन्त में जलद की तरह हो गया ॥ १ ॥ त्रैलोक्य के अन्तर्गत उसको देखकर भी दानवेश्वर अत्युत्तम अमृत का पान करके उपरिश्रान्त होते हुए उठकर खड़े हो गये थे ॥ २ ॥ तारकामय संग्राम में निरन्तर जित काशी वे सब दानव जिनमें मय और तार पुरोगामी थे भय और सन्त्रास को उल्लंघन कर देने वाले थे ॥ ३ ॥ मन्त्रों का अभ्यास करने वाले और व्यूह का परिपालन करने वाले उनके युद्ध की इच्छा रखने वाले दानव युद्ध स्थल में पहुँच कर अधिक शोभा एवं दीप्ति को प्राप्त हुए थे ॥ ४ ॥ जो लोग वहाँ पर मय दानव के प्रमुख युद्ध पुरःसर थे कालनेमि दानव को देखने वाले उनको अत्यधिक प्रीति हो गयी थी ॥ ५ ॥ वे सभी भय का त्याग करके हर्षित होते हुए युद्ध करने के लिये वहाँ पर उपस्थित हुए थे। उनमें मय—तार—वराह—वीर्यवान्—हयग्रीव—विप्रचित्ति का पुत्र श्वेत—खर और लम्ब—बलि का पुत्र अरिष्ट और किशोर नामधारी—स्वर्भानु—अमर प्रख्य—महासुर वक्त्रयोधी ये सभी अस्त्रों के ज्ञाता तथा सभी तपस्वी थे जो सुस्थित रहने वाले थे ॥ ६-८ ॥

दानवा दृष्टिनो भूत्वा कालनेमिं तमूर्जितम्।
तं गदाभिर्भुशुण्डीभिश्चक्रैश्च परश्वधैः ॥९
कालकल्पैश्च मुसलैः क्षेपणीयैश्च मुद्गरैः।
अश्मभिश्चाद्रिसदृशैर्गण्डशैलैश्च दारुणैः ॥१०
पट्टिशैर्भिन्दिपालैश्च परिघैश्चोत्तमायसैः।
घातनीभिः सुगुर्वीभिः शतघ्नीभिस्तथैव च ॥११
युगयन्त्रैश्च निर्मुक्तैरर्गलैश्चाप्यलंकृतैः।
दोर्भिश्चायतपीनांसैः पाशैश्च मूच्छनैः ॥१२
भुजङ्गवक्त्रैर्लेलिहानैर्विसर्पद्भिश्च सायकैः।
वज्रैः प्रहरणीयैश्च दीप्यमानैश्च तोमरैः ॥१३

विकोशैरसिभिस्तीक्ष्णैः शूलैश्च शितनिर्मलैः ।
दैत्याः संदीप्तमनसः प्रगृहीतशरासनाः ॥१४

ये समस्त परम क्रूरी दानव उस अतीव उद्धत कालनेमि के समीप में पहुँचे थे। ये सभी दैत्यगण बहुत से हथियारों से समन्वित थे जिनमें गदा–भुशुण्डी–चक्र–परश्वध–काल कल्प मुसल–क्षेपणीय–मुद्गर–अद्रि सदृश अश्म (पाषाण)–दारुण भण्ड शैल–पट्टिश–भिन्दि पाल–उत्तमायस परिघ–घातिनी और अत्यन्त गुरु (भारी एवं बहुत विशाल) शतघ्नी (तोप)–युग यन्त्र–उग्र ताडित नियुंक्त मार्गण (शर)–आयत और दीप्त भुजाएँ—प्रास—मूर्च्छन पाश–भुजङ्गों के तुल्यमुखों वाले लेलिहान (फुस्कारें भरने वाले) और विशेष रूप से सर्पण करने वाले शायक–वज्र–प्रहरणीय–दीप्त मान तोमर–बिना कोश (म्यान) वाले खड्ग–शीत निर्मल तोमर आदि अनेक आयुध थे। इन सभी प्रकार के अनेक अस्त्र—शस्त्रों से सुसज्जित होकर सभी दानव सदीप्त मन वाले थे और शरासनों को ग्रहण किए हुए वहाँ पर युद्ध स्थल में समुपस्थित होगये थे ॥६–१४॥

ततः पुरस्कृत्य तदा कालनेमि महाहवे ।
सा दानवशस्त्रप्रवरा दैत्यानां रराजे चमूः ॥१५
द्यौर्निमीलितसर्वाङ्गा घना नीलाम्बुदागमे ।
देवतानामपि चमूर्मुदे शक्रपालिता ॥१६
उपेता सितकृष्णाभ्यां ताराभ्यां चन्द्रसूर्ययोः ।
वायुवेगवती सौम्या तारागणपताकिनी ॥१७
तोयदाविद्धवसना ग्रहनक्षत्रहासिनी ।
यमेन्द्रवरुणैर्गुप्ता धनदेन च धीमता ॥१८
सम्प्रदीप्ताग्निनयना नारायणपरायणा ।
सा समुद्रौघसदृशी दिव्या देवमहाचमूः ॥१९
रराजास्त्रवती भीमा यक्षगन्धर्वशालिनी ।

तयोश्चम्वोस्तदानीन्तु बभूव स समागमः ॥२०
द्यावापृथिव्योः संयोगो यथा स्याद्युगपर्यये ।
तद्युद्धमभवद् घोरं देवदानवसंकुलम् ॥२१

उस समय में उस महान् रण स्थल में वे सब कालनेमि को अपना पुरोगामी बनाकर उपस्थित हो गये थे और वह दैत्यों की विशाल सेना परम दीप्त—प्रशस्त एवं अतीव श्रेष्ठ होकर दीप्तिमती हो गई थी ।।१५।। इसी भाँति महेन्द्र के द्वारा सुरक्षित देवों की भी सेना त्रिलोक में निमीलित समस्त अक्षों वाली नीलाम्बुदागम में घनी परम प्रहृष्ट हो रही थी ।।१६।। चन्द्र और सूर्य के श्वेत एवं कृष्ण ताराओं से समुपेत वह देवों की सेना थी जो वायु के सदृश वेग से युक्त परम सौम्य और तारागणों की पताकाओं वाली थी ।। १७ ।। तोयदों से आविद्ध वसनों वाली—ग्रहों तथा नक्षत्रों के हास से संयुत थी । वह देवों की विशाल सेना यम—इन्द्र—वरुण और परम धीमान् धनद कुबेर के द्वारा सुरक्षित थी ।। १८ ।। अत्यन्त सम्प्रदीप्त अग्नि के नयनों वाली—नारायण प्रभु के परायण एवं समुद्र के ओघ के समान यह देवों की अतीव महान् एवं विशाल सेना दिव्य हो रही थी ।। १९ ।। यक्षों और गन्धर्वों की शोभा से सुसम्पन्न—भीम स्वरूप वाली तथा नाना भाँति के अस्त्र—शस्त्रों से युक्त होती हुई दीप्तिमती हो गई थी । उसी समय में उन दोनों दैत्यों तथा देवों की सेनाओं का वहीं पर समागम होगया था ।।२०।। जिस प्रकार से युग के विपर्यय उपस्थित होने पर द्यावा पृथ्वी का संयोग हो जाया करता है उसी भाँति वह देवों और दानवों का परम संकुल घोर युद्ध हो गया था ।।२१।।

क्षमापराक्रमपरं दर्पस्य विनयस्य च ।
निश्चक्रमुर्बलाभ्यान्तु भीमास्तत्र सुरासुराः ॥२२
पूर्वापराभ्यां संरब्धाः सागराभ्यामिवाम्बुदाः ।
ताभ्यां बलाभ्यां संहृष्टाश्चेरुस्ते देवदानवाः ॥२३

वनाभ्यां पार्वतीयाभ्यां पुष्पिताभ्यांयथागजाः ।
समाजघ्नुस्ततोभेरी शङ्खान्दध्मुरनेकशः ॥२४
स शब्दोद्यां भुव खञ्च दिशश्च समपूरयत् ।
ज्याघाततलनिर्घोषो धनुषा कूजतानि च ॥२५
दुन्दुभीनाञ्च निनदो दैत्यमन्तर्दधुः स्वनम् ।
तेऽन्योन्यमभिसम्पेतु पातयन्त परस्परम् ॥२६
बभञ्जु र्बाहुभिर्बाहून् द्वन्द्वमन्ये युयुत्सवः ।
देवास्तु चाशनि घोरपरिघाश्चोत्तमायसान् ॥२७
निस्त्रिशान् ससृजुःसंख्ये गदागुर्वीश्च दानवाः ।
गदानिपातैर्भग्नाङ्गावाणैश्च शकलीकृताः॥२८

वह युद्ध दर्प तथा विनय का क्षमा एवं पराक्रम में परायण था। वहाँ पर उन दोनों ही सेनाओं में अतीव भीम (भयावह) स्वरूपों वाले सुर और असुर निकल पड़े थे अर्थात् युद्ध करने के लिये मैदान में आ गये थे। पूर्व और अपर सागरों से सरब्ध अम्बुदों के समान उन दोनों ही दलों से बाहिर निकल कर देखे गये वे देव तथा दानव वहाँ रणस्थल में विचरण कर रहे थे। २२। २३॥ पुष्पों से समन्वित पर्वतीय वनों से जिस तरह गज निकल आया करते हैं उसी तरह से उन देव-दानवों ने सेनाओं के समुदाय से बाहिर निकल कर अनेक भेरी और शंखों की ध्वनि भूमण्डल-दिवलोक और सब दिशाओं में पूरित हो गयी थी। धनुषों की प्रत्यञ्चाओं के घात से समुत्थित निर्घोष-धनुषों के कूजित दुन्दुभियों की ध्वनि यह सब दैत्य ध्वनि में अन्तर्हित हो गयी थी। वे परस्पर में शस्त्रों का सम्पातन करते हुए एक दूसरे का नीचे गिराने लगे थे। बाहुओं से बाहुओं का भञ्जन करने लगे थे और दूसरे योधा द्वन्द्वयुद्ध करने की इच्छा वाले भी थे देवगण परम घोर अशनि और उत्तमायस परिघों को प्रयोग उस युद्ध में कर रहे थे। दानव गण युद्ध में निस्त्रिशों का तथा अत्यन्त भारी एवं विशाल गदाओं को शत्रुओं पर छोड़

रहे थे। गदाओं के प्रहारों से सैनिक भग्न अङ्गों वाले तथा बाणों के द्वारा खण्ड-खण्ड अंगों वाले होगये थे॥ २४—२८॥

परिपेतुर्भुवि केचित् पुनः केचित्तु जघ्निरे।
ततो रथैः सतुरगैर्विमानैश्चाशुगामिभिः॥२९
समीयुस्तेऽतिसंरब्धा रोषादन्योन्यमाहवे।
प्रवर्तमाना समरे सन्दष्टोष्ठपुटानना॥३०
रथा रथैर्निरुध्यन्ते पादाताश्च पदातिभिः।
तेषां रथानान्तुमुल स शब्दः शब्दवाहिनाम्॥ १
नभो नभश्च हि यथा नभस्यैर्जलदस्वनैः।
बभञ्जुस्तु रथान् केचित्केचित् सम्पादिता रथैः।
सम्बाधमन्ये सम्प्राप्य न शेकुश्चलितुं रथान्।
अन्योन्यमन्ये समरे दोर्भ्यामुत्क्षिप्य दर्पिताः। ३३
संह्लादमानाभरणा जघ्नुस्तत्रापि चर्मिणः।
अस्त्रैरन्ये विनिर्भिन्ना वेमू रक्तं हतायुधि॥ ४
क्षरज्जलानां सदृशा जलदानां समागमे।
तैरस्त्रशस्त्रग्रथितं क्षिप्तोत्क्षिप्तगदाविलम्॥३५

परस्पर में इस तरह से शास्त्रास्त्रों के प्रहारों से कुछ तो नीचे गिर गये थे और कुछ उठकर पुनः हनन किया करते थे। इसके उपरान्त रथों तुरङ्गों और शीघ्रगामी विमानों के द्वारा वे समक्ष में समागत हुए थे॥ २९॥ उस महायुद्ध में वे रोषावेश में परस्पर में अत्यन्त संरब्ध होकर समागत हुए थे। समराङ्गण में वर्तमान होकर अपने मुखों के ओष्ठों को क्रोध से काट रहे थे॥ ३०॥ रथों पर सवार रथ वालों से और पैदल में चलने वाले पदातियों के साथ युद्ध कर रहे थे। शब्दवाही उनके रथों का शब्द अत्यन्त तुमुल हो रहा था॥ ३१॥ जिस प्रकार से नभस्य जलदों की ध्वनि होती है उसी प्रकार नभ में टकरा रहा था। कुछ लोगों ने रथों का भञ्जन किया था और कुछ लोग सम्पादित रथों

के द्वारा सम्बाध कर रहे थे। अन्य लोग ऐसी सम्बाधा प्राप्त करके रथों के आगे चलाने में भी असमर्थ हो गये थे। दूसरे लोग उस समर में परस्पर में हाथों से ऊपर को क्षिप्त करके दर्शित हुए थे ॥३२॥३३॥ वहाँ पर भी चर्म्मधारी गण संह्लादमान आवरण वाले होकर हनन कर रहे थे। अन्य लोग अस्त्रों से निर्भिन्न होकर युद्ध में आहत हुए रक्त का वमन करते थे। जलदों के समागम काल में धारण करते हुए जलों के सदृश हो गये थे। उन सबके द्वारा वहाँ युद्ध शस्त्रों और अस्त्रों से दूषित तथा क्षिप्त एवं उत्क्षिप्त गदाओं से अवनि था ॥३४॥३५॥

देवदानवसंक्षुब्ध संकुलं युद्धमावभौ।
तद्दानवमहामेघं देवायुधविराजितम् ॥३६
अन्योन्यबाणवर्षेण युद्धदुर्दिनमावभौ।
एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धः कालनेमिः स दानवः ॥३७
व्यवर्धत समुद्रौघः पूर्यमाण इवाम्बुदः।
तस्य विद्युच्चलापीडं प्रदीप्ताशनिवर्षिणः ॥३८
गात्रेर्नगगिरिप्रख्या विनिपेतुर्बलाहकाः।
क्रोधान्निश्वसतस्तस्य भ्रूभेदस्वेदवर्षिणः ॥३९
साग्निस्फुलिङ्गप्रतता मुखान्निष्पेतुरर्चिषः।
तिर्यगूर्ध्वञ्च गगने ववृधुस्तस्य बाहवः ॥४०
पर्वतादिव निष्क्रान्ता पञ्चास्या इव पन्नगाः।
सोऽस्त्रजालैर्बहुविधैर्धनुर्भिः परिघैरपि ॥४१
दिव्यमाकाशमावव्रे पर्वतैरुच्छ्रितैरिव
सोऽनिलोद्धूतवसनस्तस्थौ संग्रामलालसः ॥४२

वह देवों और दानवों से परम संक्षोभ वाला एवं संकुल युद्ध हुआ था। वह युद्ध दानव रूपी महान् मेघों वाला और देवों के अनेक आयुधों से शोभित था। परस्पर में एक दूसरों पर बाणों की वर्षा से वह दुर्दिन के समान ही शोभा दे रहा था। इसी बीच में परम क्रुद्ध होकर वह

कालनेमि दानव समुद्रों के ओघों से घूर्णमान एक अम्बुद के तुल्य बढ़ रहा था। विद्युत् के चलायमान आपीडों के द्वारा प्रदीप्त अशनि की वर्षा करने उसके अङ्गों से नागगिरि नाम वाले बलाहक निकलते हुए थे। भौंहों के भेद से समुत्पन्न स्वेद की वर्षा करने वाले—क्रोध से उष्ण और लम्बी श्वास लेने वाले उसके मुख से अग्नि के कणों से संयुत चिनगारियाँ निकलने लग गई थीं। गगन में ऊपर और तिरछी उसकी बाहुएँ बढ़ गई थीं जो कि पर्वत से मानों निकले हुए पाँच मुखों वाले पन्नगों के ही समान थीं। वह कालनेमि दानव अनेक प्रकार के अस्त्रों से शस्त्रों से—धनुषों से और परिघों के द्वारा उत्पन्न ऊँचे पर्वतों की भाँति दिव्य आकाश में व्याप्त कर रहा था। वह संग्राम के ... जो ज्वालाएँ वाला जिसके वस्त्र वायु से उद्धूत हो रहे थे वहाँ रणस्थल में स्थित हो गया था। ॥३६-४२॥

सोऽट्टहासप्रमथित मासावयेव दानवान् ।
ऊर्ध्वमप्रमथितं शैलशृङ्गाग्रपादपैः ॥४३
अपातयद् देवगणान् वज्रेणेव महागिरीन् ।
चतुर्भिः शस्त्रनिर्भिन्नैर्निकृत्तशिरसोऽपराः ॥४४
न शेकुश्चलितुं देवाः कालनेमिहता युधि ।
मुष्टिभिर्निहताः केचित् केचित्तु विदारिताः ॥४५
यक्षगन्धर्वपतयः पेतुः सह महोरगैः ।
तेन वित्रासिता देवाः समरे कालनेमिना ॥४६
न शेकुर्यत्नवन्तोऽपि यत्नं कर्तुं विचेतसः ।
तेन शक्रः सहस्राक्षः स्यन्दितः शरबन्धनैः ॥४७
ऐरावतगतः शक्रश्चलितुं न शशाक ह ।
निर्जलाम्भोदसङ्काशो निर्जलार्णवसप्रभः ॥४८
निर्व्यापारः कृतस्तेन विपाशो वरुणो मृधे ।
रणे वैश्रवणस्तेन परिघैः कालनेमिना ॥४९

सन्ध्याकालीन आतप से जिसकी शिलाओं को ग्रसित कर लिया है ऐसा साक्षात् मेरु पर्वत के तुल्य वह ऊरुओं के वेग से प्रमर्दित हुए पर्वत की चोटियों के अग्रभाग में स्थित पादपों से वृक्ष के द्वारा महान् पर्वतों के ही तुल्य देवगणों का पालन कर रहा था। बहुत से शस्त्र और निस्त्रिशों से छिन्न-भिन्न शिरोरुहों वाले युद्ध में कालनेमि के द्वारा निहत हुए देवगण चलने में भी असमर्थ हो गये थे। कुछ तो मुष्टियों के प्रहारों से निहत किये गये थे और कुछ देवगण विदली कृत कर दिये गये थे। ॥ ४३, ४४ ४५ ॥ यक्ष और गन्धर्व पतिगण महोरगों के साथ ही नीचे निपातित हो गये थे। उस कालनेमि के द्वारा समर भूमि में समस्त देवगण विशेष रूप से त्रासित कर दिये गये थे। ॥ ४६ ॥ वे सब देवता ऐसे विगत चेतना वाले हो गये थे कि वे यत्न करते हुए भी अर्थात् यत्न करने की पूर्ण चेष्टा करने पर भी कुछ भी यत्न नहीं कर सके थे। उसने सहस्र नेत्रों वाले इन्द्र को भी शरों के बन्धनों से स्पन्दित कर दिया था ॥ ४७ ॥ वह यद्यपि अपने ऐरावत हाथी पर स्थित था तो भी वहाँ से हिल नहीं सकता था। वह बिना जल वाले अम्बोद (मेघ) के सदृश तथा निर्जल अर्णव के तुल्य प्रभा वाला हो गया था। ॥ ४८ ॥ युद्ध में बिना पाश बदले वरुण को उसने बिना व्यापार वाला बना दिया था। काम रूपी उसने परिघों के द्वारा वैश्रवण को भी विगत कर दिया था ॥ ४९ ॥

वित्तदोऽपि कृत. सर्व्व निर्जित कालनेमिना।
यम. सर्वहरस्तेन मृत्युप्रहरणो रणे ॥५०
याम्यामवस्था सन्त्यज्य भीत स्वान्दिशमाविशत्।
स लोकपालानुन्माथ कृत्वा तेषाञ्च कर्म तत् ॥५१
दिक्षु सर्वासु देह स्व चतुर्धा विदधे तदा।
स नक्षत्रपथङ्गत्वा दिव्य स्वर्भानुदर्शनम् ॥५२
जहार लक्ष्मी सोमस्य त चास्य विषय महत्।

चालयामास दीप्तांशुं स्वर्गद्वारात् स भास्करम् ॥५३
सायनञ्चास्य विषयं जहार दिनकर्म च ।
सोऽग्निं देवमुखं दृष्ट्वा चकारात्ममुखाश्रयम् ॥५४
वायुञ्च तरसा जित्वा चकारात्मवशानुगम् ।
स समुद्रान् समानीय सर्वांश्च सरितो बलात् ॥५५
चकारात्ममुखे वीर्याद्देहभूताश्च सिन्धवः ।
अपः स्ववशगाः कृत्वा दिविजा याश्च भूमिजाः ॥५६

उस महा दानव कालनेमि ने युद्ध में विलद (कुबेर) को भी निर्जित कर दिया था। मृत्यु के प्रहरणों वाले उस रण में उसने सर्वदा यम को भी विजित कर दिया था और अपनी याम्य अवस्था का परित्याग करके वह मदमोद होकर अपनी दिशा में प्रवेश कर गया था। उसने सब लोकपालों को हटाकर और उनका जो कर्म था उसे स्वयं ही करने लगा था। उस समय में सब दिशाओं में अपने ही देह को उसने चार रूपों में बनाकर स्थित कर दिया था। नक्षत्रों के मार्ग में पहुँच कर वह दिव्य स्वर्भानु का दर्शन करता था ॥ ५०, ५१, ५२ ॥ उसने सोम की लक्ष्मी और इसके महान् विषय का हरण कर लिया था। उसने दीप्त अंशु वाले भास्कर को स्वर्ग के द्वार से चालित कर दिया था। इसके सायन विषय को तथा दिन के कर्म को भी समाहृत कर दिया था। उस कालनेमि ने देवमुख अग्नि को देखकर उसे अपने मुख के आश्रय वाला बना लिया था ॥ ५३, ५४ ॥ उसने वायुदेव को भी वेग से जीतकर अपने वश में रहने वाला अनुग बना लिया था। उस कालनेमि दानव ने बलपूर्वक समस्त समुद्रों और सरिताओं को भी लाकर अपने ही मुख में कर लिया था। उसके वीर्य से सब सिन्धु उसके देहभूत बन गये थे। जो जल दिवलोक में समुत्पन्न थे और जो भूमिज थे। उन सबको अपने ही वश में रहने वाला कर लिया था ॥ ५५, ५६ ॥

स स्वयम्भुवि वा भाति महाभूतपतिर्यथा ।
सर्वलोकमयो दैत्य. सर्वभूतभयावहः ॥५७
स लोकपालैकवपुश्चन्द्रादित्यग्रहात्मवान् ।
स्थापयामास जगती सुगुप्तां धरणीधरैः ॥५८
पावकानिलसम्पातो रराज युधि दानवः ।
पारमेष्ठ्ये स्थितः स्थानेलोकानां प्रभवोपमे ॥
त तुष्टुवुर्दैत्यगणा देवा इव पितामहम् ॥५९॥

वह स्वय ही भूमण्डल मे भूतो के पति के समान शोभित हो रहा था। वह दैत्य सब लोको मे परिपूर्ण और समस्त प्राणियो को भय देने वाला था। वह लोकपालो के एक ही वपु वाला स्वय था और चन्द्र तथा आदित्य ग्रहो के भी स्वरूप वाला था। उसने धरणी धरो के द्वारा सम्पूर्ण जगती को गुगुप्त करके स्थापित किया था। युद्ध मे वह दानव पावक और अनिल के सम्पात वाला दीप्तिमान हो रहा था। वह लोको के प्रभवोपम स्थान पारमेष्ठ्य मे स्वयं ही स्थित हो गया था। पितामह को देवो की भाँति ही सब दैत्यगण उसका संस्तवन किया करते थे ॥ ५७ । ५८ । ५९ ॥

---

७१ --कालनेमि और विष्णु का युद्ध

पञ्च तन्नाभ्यवर्तन्त विपरीतेन कर्म्मणा ।
वेदो धर्म्मं क्षमा सत्य श्रीश्च नारायणाश्रया ॥१
स तेषामनुपस्थानात् सक्रोधोदानवेश्वरः ।
वैष्णवपदमन्विच्छन्ययौनारायणान्तिकम् ॥२
स ददर्श सुपर्णस्थ शङ्खचक्रगदाधरम् ।
दानवाना विनाशाय भ्रामयन्तं गदा शुभाम् ॥३
सजलाम्भोदसदृश विद्युत्सदृशवाससम् ।

स्वारूढं स्वर्णपक्षाढ्यं शिखिनं काश्यपं खगम् ॥४
दृष्ट्वा दैत्यविनाशाय रणे स्वस्थमवस्थितम् ।
दानवो विष्णुमक्षोभ्य बभाषे लुब्धमानसः ॥५
अयं स रिपुरस्माकं पूर्वेषां प्राणनाशनः ।
अर्णवावासिनश्चैव मधोर्वै कैटभस्य च ॥६
अयं स विग्रहोऽस्माकमशाम्यः किल कथ्यते ।
अनेन संयुगेष्वद्य दानवा बहवो हताः ॥७

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—उस समय में विपरीत कर्मों के होने के कारण से वेद-धर्म-क्षमा-सत्य और नारायण प्रभु के समाश्रय करने वाली श्री—ये पाँच नहीं रहे थे। इन पाँचों के उपस्थित न रहने से वह दानवेश्वर बड़े क्रोध से पूरित हो गया था और फिर भगवान् विष्णु को प्राप्त करने की इच्छा करता नारायण प्रभु के समीप में प्राप्त हो गया था। उसने वहाँ पर सुपर्ण पर समवस्थित—दानवों के विनाश करने के लिये अपनी परम शुभ गदा को घुमाते हुए शङ्ख-चक्र और गदा के धारण करने वाले प्रभु को देखा था ॥१, २, ३॥ वहाँ पर नारायण का स्वरूप जल सहित मेघ के समान था—विद्युत् तुल्य वसन धारण करने वाला उनका रूप था तथा वे काश्यप के पुत्र-स्वर्ण पक्षों से समन्वित शिखी खग पर समारूढ़ थे ॥४॥ इस तरह के स्वरूप की शोभा से समवस्थित एवं परम स्वस्थ और रण में दैत्यों के विनाश करने के लिए उद्यत विष्णु भगवान् को देखकर लुब्ध मन वाला वह दानव क्षोभ न करने के योग्य विष्णु भगवान् से बोला ॥५॥ यह ही हम लोगों का सच्चा शत्रु है जो हमारे पूर्वजों के प्राणों का नाश करने वाला है तथा अर्णव में आवास करने वाले मधु तथा कैटभ का प्राण लेने वाला है। यही हमारा वह विग्रह है जो शमन न करने के योग्य कहा जाया करता है। आज इसने ही रणक्षेत्र में बहुत-से दानवों का हनन किया है।
॥६, ७॥

अयं स निर्घृणोलोके स्त्रीबालनिरपत्रपः।
येन दानवनारीणां सीमन्तोद्धरणं कृतम् ॥८
अयं सविष्णुर्देवानांवैकुण्ठश्चदिवौकसाम्।
अनन्तोभोगिनामप्सुस्वपन्नाद्यः स्वयम्भुवः ॥९
अयं स नाथो देवानामस्माकं व्यथितात्मनाम्।
अस्य क्रोधं समासाद्य हिरण्यकशिपुर्हतः ॥१०
अस्य च्छायामुपाश्रित्य देवा मखमुखे स्थिताः।
आज्यं महर्षिभिर्दत्तमश्नुवन्ति त्रिधा हुतम् ॥११
अयं स निधने हेतुः सर्वेषाममरद्विषाम्।
यस्य चक्रे प्रविष्टानि कुलान्यस्माकमाहवे ॥१२
अयं स किल युद्धेषु सुरार्थे त्यक्तजीवितः।
सवितुस्तेजसा तुल्यं चक्रं क्षिपतिशत्रुषु ॥१३
अयं सकालोदंत्यानाकालभूतःसमास्थितः।
अतिक्रान्तस्यकालस्यफलंप्राप्स्यति केशवः ॥१४

यह वह है जो अत्यन्त ही निर्घृण और स्त्री तथा बालकों मे भी निर्लज्ज है जिसने दानवो की नारियो का सीमन्तो का उद्धरण किया था ॥ ८ ॥ यह ही वह विष्णु है जो दिवलोक मे रहने वाले देवो का वैकुण्ठ है—भोगियो का अनन्त और जल मे शयन करने वाला आद्य स्वयम्भुव है। यह ही व्यथित आत्मा वाले हमारे देवो का नाथ है। इसी के क्रोध की प्राप्ति कर हिरण्य कशिपु मारा गया था ॥ ९, १० ॥ इसी की छत्र छाया का उपाश्रय प्राप्त करके देवगण मखो के मुख मे स्थित हुआ करते है—और तीन प्रकार से हुत महर्षियो के द्वारा समर्पित आज्य का अशन किया करते हैं ॥ ११ ॥ समस्त देवों के दुश्मनो के निधन होने मे यह ही एक हेतु है। जिसके चक्र मे युद्ध क्षेत्र मे हमारे कुल सब प्रविष्ट हो गये हैं अर्थात् सुदर्शन चक्र के द्वारा कुलो के कुल मारे गये होकर समूल नष्ट हो गये हैं। यही वह है जो सुरो के लिये

युद्धों में अपना जीवित भी त्याग देने वाला हो जाया करता है और जो सूर्य के तेज के तुल्य अपने सुदर्शन चक्र को शत्रुओं पर प्रक्षिप्त किया करता है। यह दैत्यों का वह साक्षात् काल है जो कि कालभग्न होकर समास्थित रहा करता है। यह केशव अतिक्रान्त काल का फल प्राप्त करेगा ॥१३-१४॥

दिष्ट्येदानीं समक्षं मे विष्णुरेष समागतः ।
अद्य मद्बाहुनिष्पिष्टो मामेव प्रणमिष्यति ॥१५
यास्याम्यपचितिं दिष्ट्या पूर्वेषामद्य संयुगे ।
इमं नारायणं हत्वा दानवानां भयावहम् ॥१६
क्षिप्रमेव हनिष्यामि रणेऽमरगणांस्ततः ।
जात्यन्तरगतो ह्येष बाधते दानवान् मृधे ॥१७
एषोऽनन्तः पुरा भूत्वा पद्मनाभ इति श्रुतः ।
जघानैकार्णवे घोरे तावुभौ मधुकैटभौ ॥१८
द्विधाभूतं वपुः कृत्वा सिंहस्यार्द्धं नरस्य च ।
पितरं मे जघानैष हिरण्यकशिपुं पुरा ॥१९
शुभं गर्भमधत्तैनमदितिर्देवतारणिः ।
त्रील्लोकाञ्जहारैष क्रममाणस्त्रिभिः क्रमैः ॥२०
भूयस्त्विदानीं सङ्ग्रामे सम्प्राप्ते तारकामये ।
मया सह समागम्य स देवो विनशिष्यति ॥२१

बड़े ही हर्ष की बात है कि इस समय में यह विष्णु मेरे समक्ष में समागत हो गया है। आज यह मेरी बाहुओं से निष्पिष्ट होकर मुझको प्रणाम करेगा। बड़ी ही प्रसन्नता की बात है कि आज युद्ध क्षेत्र में मैं अपने पूर्व पुरुषों की अपचिति को प्राप्त करूँगा अर्थात् उनके साथ किए व्यवहार का बदला ले लूँगा। आज दानवों को भय देने वाले नारायण का मैं हनन करके ही बदला ले लूँगा ॥ १५ । १६ ॥ यह जाति में अन्तर्गत अर्थात् अन्य जाति वाला विष्णु युद्ध में दानवों को

बाधाएं दिया करता है। आज मैं बहुत ही शीघ्र रण में इसके पश्चात् सब देवगणों का भी वध कर डालूँगा। यह पहिले अनन्त होकर पद्मनाभ—इस नाम से सुना गया है। इसने ही परम घोर एकार्णव में उन दोनों मधु कैटभ का हनन किया था। पहिले इसने दो प्रकार का शरीर धारण किया था जो आधा तो सिंह का था और आधा नर का था। इसी एक ने मेरे पिता हिरण्य कशिपु का हनन किया था ॥ १७। १८। १९ ॥ अदिति ने परम शुभ गर्भ धारण किया था और देवतारणि इसी एक ने तीन पैंडो के क्रम से क्रममाण होते हुए तीनों लोकों का उद्धरण कर डाला था। पुनः इस समय में इस तारकामय संग्राम के सम्प्राप्त होने पर मेरे साथ समागम करके वह देव विनष्ट हो जायगा ॥ २०। २१ ॥

एवमुक्त्वा बहुविधं क्षिपन्नारयणं रणे।
वाग्भिरप्रतिरूपाभिर्युद्धमेवाभ्यरोचयत् ॥२२
क्षिप्यमाणो सुरेन्द्रेण न चुकोप गदाधरः।
क्षमाबलेन महता सस्मितं चेदमब्रवीत् ॥२३
अल्पं दर्पबलं दैत्य! स्थिरमक्रोधजं बलम्।
हतस्त्वं दर्पजैर्दोषैर्हित्वा यद्भाषसे क्षमम् ॥२४
अधीरस्त्वं मम मतो धिगेतत्तव चापलम्।
न यत्र पुरुषाः सन्ति तत्र गर्जन्ति योषितः ॥२५
अहं त्वां दैत्य! पश्यामि पूर्वेषां मार्गगामिनम्।
प्रजापतिकृतं सेतुं भित्वा कः स्वस्तिमान् व्रजेत् ॥२६
अद्य त्वां नाशयिष्यामि देवव्यापारघातकम्।
स्वेषु स्वेषु च स्थानेषु स्थापयिष्यामि देवताः ॥२७
एवं ब्रुवति वाक्यं तु मृधे श्रीवत्सधारिणि।
जहास दानवः क्रोधाद्धस्तांश्चक्रे सहायुधान् ॥२८

इस प्रकार से अनेक रीतियों से कहकर तथा नारायण पर रण

मैं अङ्गों को छोड़कर करके अपरिमित शक्तियों के द्वारा तूने युद्ध करने को ही पसन्द किया था ॥२२॥ इस तरह उस असुरेन्द्र के द्वारा आक्षिप्त होते हुए भी गदाधारी प्रभु ने कोई क्रोध नहीं किया था और महान् क्षमा के बल का सहारा लेते हुए मुस्करा कर यह वचन कहा था ॥२३॥ दर्प का बल अल्प होता है, हे दैत्य! जो बिना किसी क्षोभ से उत्पन्न होने वाला बल होता है वह स्थिर बल हुआ करता है। तू क्षमा का त्याग करके जो कुछ भी इस समय में बोल रहा है इस दर्प (घमण्ड) से उत्पन्न हुए दोषों से ही हत हो गया है ॥२४॥ मेरी मति से तो तू बहुत ही अधीर है। तेरे इस वचनों के बल को धिक्कार है जहाँ पर कोई बलशाली पुरुष नहीं रहा करते हैं वहीं पर स्त्रियाँ भी इसी प्रकार से गर्जन किया करती हैं ॥२५॥ हे दैत्यराज! मैं तो तुमको अपने पूर्वज पुरखाओं के ही मार्ग का अनुगमन करने वाला देख रहा हूँ। प्रजापति के द्वारा किये हुए सेतु का भेदन करके कौन पुरुष कल्याण वाला हो सकता है? अर्थात् वह कभी भी कल्याणकारी हो ही नहीं सकता है ॥२६॥ मैं आज ही देवों के व्यापारों के घात करने वाले तुमको नष्ट कर डालूँगा और उन देवताओं को उनके अपने अपने स्थानों पर स्थापित कर दूँगा ॥२७॥ उस महान् युद्ध क्षेत्र में श्रीवत्स के चिह्न को धारण करने वाले प्रभु के द्वारा इस प्रकार से बोलने पर वह दानव कालनेमि बहुत हँसा था और उसने बहुत ही क्रोध से अपने हाथों को आयुधों से युक्त कर लिया था ॥२८॥

स बाहुशतमुद्यम्य सर्वास्त्रग्रहणं रणे ।
क्रोधाद्द्विगुणरक्ताक्षो विष्णुवक्षस्यताडयत् ॥२९
दानवाश्चापि समरे मयतारपुरोगमाः ।
उद्यतायुधनिस्त्रिंशा विष्णुमभ्यद्रवन् रणे ॥३०
स ताड्यमानोऽतिबलैर्दैत्यैः सर्वोद्यतायुधैः ।
न चचाल तदा युद्धे कम्पमान इवाचलः ॥३१

संसक्तश्च सुपर्णेन कालनेमी महासुरः ।
सर्वप्राणेन महती गदामुद्यम्य बाहुभिः ॥३२
घोरां ज्वलन्तीं मुमुचे संरब्धो गरुडोपरि ।
कर्म्मणातेनदैत्यस्य विष्णुर्विस्मयमाविशत् ॥३३
यदा तेन सुपर्णस्य पातिता मूर्द्धनि सा गदा ।
सुपर्णं व्यथितं दृष्ट्वा कृतञ्च वपुरात्मनः । ३४
क्रोधसंरक्तनयनो वैकुण्ठश्चक्रमाददे ।
व्यवर्द्धत स वेगेन सुपर्णेन समं विभुः ॥३५

उस दानव ने उस रण स्थल में सभी प्रकार के अस्त्रों को ग्रहण करने वाले सैकड़ों बाहुओं को उठाकर क्रोध से द्विगुणित लाल नेत्रों वाले ने भगवान् विष्णु पर उनके वक्षःस्थल पर प्रताड़ित किया था।२६। अन्य दानव भी जिनमें मय और तार पुरोगामी थे सबने निस्त्रिंश और अन्य आयुधों को समुद्यत करके भगवान् विष्णु पर रण में आक्रमण कर दिया था ॥ ३० ॥ सब प्रकार के समुद्यत आयुधों वाले—अत्यन्त बलशाली दैत्यों के द्वारा इस भाँति ताड्यमान होते हुए भी भगवान् विष्णु उस युद्ध में बिना कम्प के न एक पर्वत की तरह स्थित रहते हुए वहाँ पर बिल्कुल भी चलित नहीं हुए थे ॥ ३१ ॥ विष्णु प्रभु सुपर्ण पर ही संसक्त थे कि महासुर उस कालनेमि ने अपना पूर्ण जोर लगाकर प्राणपण से महान् विशाल गदा को बाहुओं से उठाकर जो कि अत्यन्त घोर और आज्वल्यमान थी बहुत ही संरब्ध होते हुए गरुड के ऊपर उसे छोड़ दिया था। दैत्य के उस कर्म्म से भगवान् विष्णु को भी बड़ा विस्मय हो गया था ॥ ३२, ३३ ॥ जिस समय में उस दानव ने सुपर्ण के मस्तक पर उस महती गदा को पातित किया था सुपर्ण को देखकर उन्होंने अपना वपु व्यथित कर दिया था फिर महान् क्रोध से संरक्त नयनों वाला होकर भगवान् वैकुण्ठनाथ ने अपना चक्र ग्रहण किया था और सुपर्ण के साथ ही वह विभु आगे को बढ़ गये थे ।।३४, ३५।।

भुजाश्चास्य व्यवर्द्धन्त व्याप्नुवन्तो दिशो दश ।
प्रदिशश्चैव खं गां वं पूरयामास केशवः ॥३६
ववृधे च पुनर्लोकान् क्रान्तुकाम इवौजसा ।
तर्जनायासुरेन्द्राणां वर्द्धमानं नभस्तले ॥३७
ऋषयश्चैव गन्धर्वास्तुष्टवुर्मधुसूदनम् ।
सर्वान् किरीटेन लिहन् साभ्रमम्बरमम्बरैः ॥३८
पद्भ्याक्रम्य वसुधां दिशः प्रच्छाद्य बाहुभिः ।
स सूर्यकरतुल्याभं सहस्रारमरिक्षयम् ॥३९
दीप्ताग्निसदृशं घोरं दर्शनेन सुदर्शनम् ।
सुवर्णरेणुपर्यन्तं वज्रनाभं भयापहम् ॥४०
मेदोऽस्थिमज्जारुधिरैः सिक्तं दानवसम्भवैः ।
अद्वितीयप्रहरणं क्षुरपर्यन्तमण्डलम् ॥४१
स्रग्दाममालावितत कामगं कामरूपिणम् ।
स्वयंस्वयम्भुवा सृष्टं भयदं सर्वविद्विषाम् ॥४२

इनकी भुजाएँ दशों दिशाओं में व्यापक होती हुई बढ़ गयी थीं और भगवान् केशव ने उनको सब प्रदिशाओं में—भूमि तथा आकाश में पूरित कर दिया था ॥ ३६ ॥ फिर महान् ओज से समस्त लोकों का क्रमण करने की इच्छा वाले प्रभु और भी वर्धित हो गये थे तथा नभस्तल में भी उन असुरेन्द्रों के तर्जन के लिये वे वर्द्धमान हो गये थे । अम्बरों के द्वारा अभ्र सहित अम्बर की भाँति किरीट के द्वारा सबका स्पर्श करते हुए वे उस समय में हो गये थे तथा वहाँ पर मधुसूदन प्रभु का सस्तवन ऋषिगण और गन्धर्व लोग करने लगे थे ॥ ३७, ३८ ॥ प्रभु ने अपने चरणों से सम्पूर्ण वसुधा को समाक्रान्त करके बाहुओं से सभी दिशाओं को प्रच्छादित कर दिया था तथा उनने फिर सूर्य की किरणों के तुल्य आभा वाले—सहस्र अरों से समन्वित और अरियों के क्षय को करने वाले उस चक्र को प्रयुक्त किया था ॥ ३९ ॥ वह चक्र दीप्त अग्नि के

समान महान् घोर था तथा देखने से वह सुन्दर दर्शन वाला अर्थात् सुदर्शन नामधारी था। सुवर्ण रेणुपर्यन्त—वज्रनाभ—भयों का अपहरण करने वाला—दानवों के शरीरों से समुत्पन्न मेदा, अस्थि, मज्जा तथा रुधिर से सिक्त—क्षुर पर्यन्त मण्डल वाला—एक परम अद्वितीय प्रहरण (अस्त्र)—स्रग्दाम (मालाएँ) से विनत—स्वेच्छया गमन करने वाला—कामरूपी—समस्त शत्रुओं को भय देने वाला और स्वयं ही स्वयम्भू प्रभु के द्वारा वह पूजित किये जाने वाला था ॥४०-४२॥

महर्षिरोषैराविष्टं नित्यमाहवदर्पितम् ।
क्षेपणाद्यस्य मुह्यन्ति लोकाः सस्थाणुजङ्गमाः ॥४३
क्रव्यादानि च भूतानि तृप्तिं यान्ति महामृधे ।
तदप्रतिमकर्मोग्रं समानं सूर्यवर्चसा ॥४४
चक्रमुद्यम्य समरे क्रोधदीप्तो गदाधरः ।
समुष्णन् दानवं तेजः समरं स्वेन तेजसा ॥४५
चिच्छेद बाहूंश्चक्रेण श्रीधरः कालनेमिनः ।
तच्च वक्त्रशतं घोरं साग्निपूर्णाट्टहासि वै ॥४६
तस्य दैत्यस्य चक्रेण प्रममाथ बलाद्धरिः ।
स छिन्नबाहुर्विशिरा न प्राकम्पत दानवः ॥४७
कबन्धोऽवस्थितः संख्ये विशाखइव पादपः ।
सम्वितत्य महापक्षौ वायोः कृत्वा समञ्जवम् ॥४८
उरसा पातयामास गरुडः कालनेमिनम् ।
स तस्य देहो विमुखो विबाहुश्च परिभ्रमन् ॥४९

वह ऊपर मे बतलाये गुणगणों वाला सुदर्शन चक्र महर्षियों के रोषों से समाविष्ट था और नित्य ही युद्ध में दर्प से समायुक्त रहने वाला था। जिसके क्षेपण करने से सभी स्थावर एवं जङ्गम लोक मूच्छित हो जाया करते हैं। महान् युद्ध में क्रव्याद आदि जो भूत हैं वे उस चक्र द्वारा प्रवाहित हुए शत्रुओं के रक्त के पान से परम तृप्ति को प्रा

हुआ करते हैं ऐसे उस अनुपम कर्म के करने से उग्र और सूर्य के वर्चस के तुल्य उस अपने सुदर्शन चक्र को उठाकर समर मे क्रोध से दीप्त गदाधर ने छोड़कर अपने तेज के द्वारा युद्धस्थल मे दानवो के तेज का छेदन कर दिया था और श्रीधर प्रभु ने उस अपने चक्र से कालनेमि की बाहुओ को भी काट डाला था। उस दानव के अग्नि से परिपूर्ण अट्टहास वाले सौ परम घोर मुखो का श्री हरि ने उसी चक्र के द्वारा बलपूर्वक प्रमथन कर दिया था। किन्तु वह दानव बाहुओ शिर के कट जाने पर भी वहाँ पर प्रकम्पित नही हुआ था। उसका वह कबन्ध (धड़) युद्ध स्थल मे बिना शाखा वाले पादप के समान अवस्थित था। गरुड़ ने अपने पखो को फैलाकर तथा वायु के समान वेग को करके अपने उरस्थल के द्वारा उस कालनेमि के धड़ को नीचे गिरा दिया था और उसका वह बिना मुख तथा बाहुओ वाला देह इधर-उधर परिभ्रमण कर रहा था ॥४३-४९॥

निपपात दिवस्त्यक्त्वा क्षोभयन् धरणीतलम् ।
तस्मिन्निपतिते दैत्ये देवाः सर्षिगणास्तदा ॥५०
साधु साध्विति वैकुण्ठ समेताः प्रत्यपूजयन् ।
अपसर्पन्तु दैत्याश्च युद्धे दृष्टपराक्रमा. ।५१
ते सर्वे बाहुभिर्व्याप्ता न शेकुश्चलितु रणे ।
काश्चित् केशेषु जग्राह काश्चित् कण्ठेष्वपीडयन् ॥५२
चर्पं कस्यचिद्वक्त्र मध्येगृह्णादथापरम् ।
ते गदाचक्रनिदग्धा गतसत्वा गतासवः ॥५३
गगनाद्भ्रष्टसर्वाङ्गा निपेतुर्धरणीतले ।
तेषु दैत्येषु सर्वेषु हतेषु पुरुषोत्तमः ॥५४
तस्थौ शक्रप्रिय कृत्वा कृतकर्मा गदाधरः ।
तस्मिन् विमर्दे निवृत्ते संग्रामे तारकामये ॥५५
तं देशमाजगामाशु ब्रह्मा लोकपितामहः

सर्वेर्ब्रह्मर्षिभिः सार्द्धं गन्धर्वाप्सरसाङ्गणैः ॥५६

वह धरणी तल को शोभित करता हुआ दिवलोक को त्याग कर के भूमि पर गिर गया था। उस समय में उस महा दानवेश्वर के निपतित हो जाने पर समस्त देवगण और ऋषि वृन्द "साधु-साधु" अर्थात् बहुत ही अच्छा हुआ यह कहते हुए सब एकत्रित होकर भगवान् वैकुण्ठनाथ की पूजा करने लगे थे। युद्ध में दैत्यगण पराक्रम देख लेने वाले अपमर्षण कर जावें। किन्तु बाहुओं से व्याप्त वे सब रणस्थल में चल नहीं सकते थे। उनमें से कुछ को तो केश पकड़ कर ग्रहण किया था और कुछ को कण्ठों में ताडित किया था ॥ ५०, ५१, ५२ ॥ किसी के मुख को पकड़ कर कंपित किया था और दूसरे को मध्य भाग में ग्रहण किया था। वे सब गदा और चक्र के प्रहारों से निर्दग्ध—गत प्राण और हीन तत्वों वाले हो गये थे ॥ ५३ ॥ गगन से उद्भ्रष्ट समस्त अङ्गों वाले धरणी तल में सब निपतित हो गये थे। उन सब दैत्यों के निहत हो जाने पर पुरुषोत्तम प्रभु गदाधारी महेन्द्र का कर्म्म सम्पादन करके तथा इन्द्र का प्रियकर्म करके उस विमर्द तारकामय संग्राम के निर्वृत होने पर वहीं पर ही समवस्थित हो गये थे। उसी स्थल पर लोकों के पिता यह ब्रह्मा जी समस्त ब्रह्मर्षिगण और गन्धर्व एवं अप्सरागणों के साथ शीघ्र ही आकर उपस्थित हो गये थे ॥५४-५६॥

देवदेवो हरिं देवं पूजयन् वाक्यमब्रवीत् ।
कृतं देव महत्कर्म सुराणां शल्यमुद्धृतम् ॥ ५७
वधेनानेन दैत्यानां वयं च परितोषिताः ।
योऽयं त्वया हतो विष्णो! कालनेमी महासुरः ॥५८
त्वमेकोऽस्य मृधेहन्ता नान्यः कश्चन विद्यते ।
एषदेवान्परिभवन्लोकांश्चसमुरासुरान् ॥५९
ऋषीणां कदनं कृत्वा मामपि प्रतिगर्जति ।
तदनेन तवाग्र्येण परितुष्टोऽस्मि कर्मणा ॥६०

यदयं कालकल्पस्तु कालनेमी निपातितः ।
तदा गच्छस्व भद्रन्ते गच्छाम दिवमुत्तमम् ॥६१
ब्रह्मर्षयस्त्वा तत्रस्थाः प्रतीक्षन्ते सदोगताः ।
कञ्च.हं तव दास्यामि वरं वरनताम्वर ! ।।६२
सुरेष्वथ च दैत्येषु वराणां वरदो भवान् ।
निर्यातयैतत्त्रैलोक्यं स्फीतं निहतकण्टकम् ॥६३

देवों के देव ने श्री हरिदेव का अभ्यर्चन करते हुए यह वाक्य कहा था कि हे देव ! आपने बहुत बड़ा कर्म सम्पादित किया है और सुरगणों के शल्य को आपने उद्धृत कर डाला है। दैत्यों के इस बध से आपने हम सबको परितोषित कर दिया है जो कि हे विष्णो ! आपने इस महासुर कालनेमि को निहत कर डाला है ।। ५७, ५८।। इस युद्ध में आप ही एक इसके हनन करने वाले थे अन्य कोई भी आपके अतिरिक्त नहीं है। इससे सब देवों को परिभूत कर दिया है और सुरों एवं असुरों के सहित लोकों का भी परिभव किया है। यह ऐसा दुष्ट था कि यह ऋषियों का कदन करके मुझको भी अपनी गर्जना दिखाता था । आपके अत्युत्तम इस कर्म से मैं बहुत ही परितुष्ट हुआ हूँ ।। ५९, ६०।। जो यह काल के सदृश कालनेमि आपके द्वारा निपतित हुआ है यह बहुत ही अच्छा हो गया। अब आप पधारिये आपका परम मङ्गल होवे—अब हम भी उत्तम दिवलोक को चलते हैं । वहाँ पर सदोगत समुपस्थित ब्रह्मर्षि गण आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं । हे वरदान देने वालों में परमश्रेष्ठ ! मैं आपको कौन-सा वरदान दूँगा । आप सुरों में और दैत्यों में वरदानों को प्रदान करने वाले वरद हैं । इस परम विस्तृत त्रैलोक्य को निहत कण्टक वाला निर्यात कर डालिये ।। ६१ । ६२ । ६३ ।।

अस्मिन्नेव मृधे विष्णो ! शक्राय सुमहात्मने ।
एवमुक्तो भगवता ब्रह्मणा हरिरव्ययः ॥६४

देवांश्छक्रमुखान् सर्वानुवाच शुभया गिरा ।
शृण्वन्तु त्रिदशाः सर्वे यावन्तोऽत्र समागताः ॥६५
श्रवणावहितैः श्रोत्रैः पुरस्कृत्य पुरन्दरम् ।
अस्माभिः समरे सर्वे कालनेमिमुखा हताः ॥६६
दानवा विक्रमोपेताः शक्रादपि महत्तराः ।
अस्मिन्महति संग्रामे दैतेयौ द्वौ विनिःसृतौ ॥६७
विरोचनश्च दैत्येन्द्रः स्वर्भानुश्च महाग्रहः ।
स्वां दिशं भजतां शक्रो दिशं वरुण एव च ॥६८
याम्यां यमः पालयितामुदीचीं च धनाधिपः ।
ऋक्षैः सह यथायोगं गच्छतां चैव चन्द्रमाः ॥६९
अब्दं ऋतुमुखे सूर्यो भजतामयनैः सह ।
आज्यभागाः प्रवर्तन्तां सदस्यैरभिपूजिताः ॥७०

हे विष्णो ! इस युद्ध मे आपने महान् आत्मा वाले इन्द्र के लिये यह सब कर दिया है । इस प्रकार से भगवान् ब्रह्माजी के द्वारा अविनाशी श्री हरि से कहा गया था । तब श्री हरि ने इन्द्र जिनमे प्रधान थे उन समस्त देवो से परम शुभ वाणी से कहा था—विष्णु भगवान् ने कहा था—अब सब देवगण श्रवण करलो जितने यहाँ पर इस समय मे समागत हुए है ॥ ६४, ६५ ॥ श्रवण मे परम समाहित श्रोत्रो से पुरन्दर आगे को करके हमने समर मे कालनेमि प्रमुख सब दानव निहत कर दिये थे । ये समस्त दानव विक्रम से उपेत थे तथा इन्द्र से भी महत्तर थे । इस महान् संग्राम मे दो दैत्य विनिःसृत हुए थे ॥ ६६, ६७॥ एक तो दैत्येन्द्र विरोचन था दूसरा महान् ग्रह स्वर्भानु था । अब इन्द्र अपनी दिशा का सेवन करे और वरुण अपनी दिशा मे चले जावें ॥ ६८ । ६६ ॥ याम्य दिशा मे यम चले जावे । धनाधिप उत्तर दिशा मे पहुँच जावे । ऋक्षो के सहित यथा योग चन्द्रमा भी चले जावें । ऋतुमुख मे अयनो के सहित

सूर्य अब्द का सेवन करे। सदस्यों के द्वारा अभिपूजित आज्यभाग प्रवृत्त हो जावें ॥ ६९, ७० ॥

हूयन्तामग्नयो विप्रैर्वेददृष्टेन कर्मणा।
देवाश्चाप्यग्निहोमेन स्वाध्यायेन महर्षयः ॥७१
श्राद्धेन पितरश्चैव तृप्तिं यान्तु यथासुखम्।
वायुश्चरतु मार्गस्थ स्त्रिधा दीप्यतु पावकः ॥७२
त्रीस्तु वर्णाश्च लोकांस्त्री स्तर्पयश्चात्मजैर्गुणैः।
क्रतवः सम्प्रवर्तन्ता दीक्षणीयैर्द्विजातिभिः।
दक्षिणाश्चोपपाद्यन्ता याज्ञिकेभ्यः पृथक् पृथक्।
गान्तु सूर्यो रसान् सोमो वायु प्राणाश्च प्राणिषु ॥७४
तर्पयन्तः प्रवर्तन्ता सर्वएव स्वकर्मभि।
यथावदानुपूर्व्येण महेन्द्रमलयोद्भवाः ॥७५
शैलोपयमातरःसर्वा समुद्रयान्तु सिन्धवः।
दैत्येभ्यस्त्यज्यता भीश्च शान्तिव्रजतदेवताः ॥७६
स्वस्ति वोऽस्तु गमिष्यामि ब्रह्मलोकं सनातनम्।
स्वगृहे स्वर्गलोके वा सग्रामे वा विशेषतः ॥७७

वेदों के द्वारा दृष्ट कर्म से विप्रों के द्वारा अग्नियों में हवन किया जावे। अग्नि के होम से देवगण—स्वाध्याय से महर्षि गण और श्राद्ध से पितृगण सुखपूर्वक तृप्ति को प्राप्त करें। वायु अपने मार्ग में स्थित होकर सञ्चरण करें और पावक तीन प्रकार दीप्त होवे। दीक्षणीय द्विजातियों के द्वारा ऋतुगण तीन वर्णों को और तीन लोकों को अपने गुणों से तृप्ति करते हुए सम्प्रवृत्त होवें ॥ ७१, ७२, ७३ ॥ याज्ञिकों के लिये पृथक् २ दक्षिणाऐं उपपन्न होवें। सूर्य गौ को—सोम रसों को और वायु प्राणियों में प्राणों को प्रदान करे। सभी अपने २ कर्मों के द्वारा तृप्त करते हुए प्रवृत्त होवें। यथावत् आनुपूर्वी से महेन्द्र और मलय से उद्भव पाने वाले स्वकर्मों से तृप्ति देते हुए प्रवर्त्तित हो जावें। शैलोपय

की माताऐं समस्त सिन्धु समुद्र मे गमन करें। सब देवता लोग अब दैत्यो के द्वारा होने वाले भय का त्याग कर देवें। और सबका कल्याण होवे। अब मैं सनातन ब्रह्मलोक को गमन करूँगा। अथवा घर में— स्वर्ग लोक मे तथा विशेष रूप से संग्राम में गमन करूँगा ॥ ७४। ७५ ७६। ७७ ॥

विश्रम्भो वो न मन्तव्यो नित्यं क्षुद्रा हि दानवाः।
छिद्रेषु प्रहरन्त्येते न तेषां संस्थितिर्ध्रुवा ॥७८
सौम्यानामृजुभावानां भवतामार्जवन्धनम्।
एवमुक्त्वा सुरगणान् विष्णुः सत्यपराक्रम ॥७९
जगाम ब्रह्मणा सार्द्धं स्वर्लोकन्तु महायशाः।
एतदाश्चर्यमभवत् सग्रामे तारकामये ॥
दानवानाञ्च विष्णोश्च यन्मान्त्व परिपृष्टवान् ॥८०

आपको विश्रम्भ नही मानना चाहिए। ये दानव नित्य ही क्षुद्र है। छिद्रो मे ही प्रहार किया करते हैं और उनकी संस्थिति निश्चित नही है ॥ ७८ ॥ आप लोग परम सौम्य तथा सरल भावो वाले हैं। आपका आर्जव (सरलता) ही धन है। इस प्रकार से सत्य पराक्रम वाले भगवान विष्णु ने सुरगणो से कह कर फिर महान् यश वाले वे ब्रह्मा जी के साथ ही स्वर्गलोक को चले गये थे। उस तारकामय सग्राम मे यह एक आश्चर्य हो गया था जिसको दानवो का और भगवान् विष्णु का हो कहना चाहिए और यही आपने मुझसे पूछा था ॥७९। ८० ॥

७२—भव माहात्म्य वर्णन

अतः पद्मोद्भवस्तात विस्तेण त्वयेरितः ।
समासाद्भवमाहात्म्यं भैरवस्य विधीयताम् ॥१
तस्यापि देवदेवस्य श्रृणुध्व कर्म चोत्तमम् ।
आसीद्दैत्योऽन्धको नाम भिन्नाञ्जनचयोपमः ॥२
तपसा महतायुक्तोह्यवध्य स्त्रिदिवौकसाम् ।
स कदाचिन् महादेवपार्वत्या सहितप्रभुम् ॥३
क्रीडमानं तदा दृष्ट्वा हर्तुं देवीं प्रचक्रमे ।
तस्य युद्धं तदा घोरमभवत् सह शम्भुना । ४
आवन्त्ये विषये घोरे महाकालवनं प्रति ।
तस्मिन्युद्धे तदा रुद्रश्चान्धकेनातिपीडितः ॥५
सुषुवे बाणमत्युग्रनाम्ना पाशुपतं हि तत् ।
रुद्राबाणविनिर्भेदाद्रुधिरादन्धकस्य तु ॥६
अन्धकाश्च समुत्पन्नाः शतशोऽथ सहस्रशः ।
तेषां विदार्यमाणानां रुधिरादपरे पुनः ॥७

ऋषिगण ने कहा—हे भगवन् ! आपके द्वारा वर्णित विस्तार-पूर्वक पद्मोद्भव का श्रवण कर लिया है । अब आप संक्षेप से भैरव का भव माहात्म्य वर्णित कीजिए ॥ १ ॥ महा महर्षि सूतजी ने कहा—देवों के देव उसका भी उत्तम कर्म था आप श्रवण करो । एक अन्धक नाम वाला भिन्नाञ्जन चय वाला दैत्य था ॥ २ ॥ वह दैत्येन्द्र महान् तप से युक्त था और देवों का वध न करने के योग्य था । उसने किसी समय में पार्वती के सहित प्रभु महादेव को क्रीडा करते हुए देख लिया था और उसी समय में उस दैत्य ने देवी पार्वती के हरण करने का उपक्रम किया था । उसी समय में उस दैत्य का शम्भु के साथ परम घोर युद्ध हुआ था ॥ ३, ४ ॥ आवन्त्य घोर विषय में महाकाल वन के प्रति

उस समय में उस महायुद्ध में अन्धक के द्वारा रुद्रदेव को अत्यन्त उत्पीडित किया था ।५।। पाशुपत नाम वाले अत्यन्त उग्र बाण को प्रसृत किया था । रुद्रदेव के बाण के द्वारा विशेष निर्भेद को प्राप्त होने वाले अन्धक के रुधिर से सैकडों और सहस्रों अन्धक समुत्पन्न हो गये थे । जब उनका विदारण किया गया तो फिर विदीर्यमाण उनके रुधिर से दूसरे और फिर अन्धक पैदा होगये थे ।। ६, ७ ।।

बभूवुरन्धका घोरा यैर्व्याप्तमखिलं जगत् ।
एवं मायाविनं दृष्ट्वा तञ्च देवस्तदान्धकम् ।।८
पानार्थमन्धकास्रस्य सोऽसृजन्मातरस्तदा ।
माहेश्वरी तथा ब्राह्मी कौमारी मालिनी तथा ।।९
सौपर्णी ह्यथ वायव्या शाक्री वै नैऋती तथा ।
सौरी सौम्या शिवा दूती चामुण्डा चाथ वारुणी ।।१०
वाराहीनारसिंहीच वैष्णवीच चलच्छिखा ।
शतानन्दाभगानन्दा पिच्छिलाभगमालिनी ।।११
बला चातिबला रक्ता सुरभीमुखमण्डिका ।
मातृनन्दा सुनन्दाच बिडाली शकुनी तथा ।।१२
रेवतीच महारक्ता तथैव पिलपिच्छिका ।
जयाच विजया चैव जयन्ती चापराजिता ।।१३
काली चैव महाकाली दूती चैव तथैव च ।
सुभगा दुर्भगा चैव कराली नन्दिनी तथा ।।१४

उस समय में परम घोर अन्धक उत्पन्न हो गये थे जिनसे यह समस्त जगत् एकदम व्याप्त हो गया था । उस समय में इस प्रकार से मायावी उस अन्धक को देव ने देखकर उस अन्धकासृग के पान के लिए उस समय में उन्होंने माताओं का सृजन किया था । अब उन माताओं के नाम बतलाये जाते हैं—माहेश्वरी—ब्राह्मी—कौमारी—मालिनी—सौपर्णि—वायव्या—शाक्री—नैऋती—सौरी—सौम्या—शिवा—दूती—

चामुण्डा—वारुणी ॥ ८ । ९ । १० ॥ वाराही—नारसिंही—वैष्णवी—चलच्छिखा—शतानन्दा—भगानन्दा—पिच्छिला—भगमालिनी—बला—अतिबला—रक्ता—सुरभी—मुखमण्डिका—मातृनन्दा—सुनन्दा—बिडाली—शकुनी—रेवती—महारक्ता—पिलपिच्छिका—जया-विजया—जयन्ती—अपराजिता—काली—महाकाली दूती—सुभगा—दुर्भगा—कराली—नन्दिनी ॥११-१४॥

अदितिश्च दितिश्चैव मारीवं मृत्युरेव च ।
कर्णमोटी तथा ग्राम्या उलूकीच घटोदरी ॥१५
कपाली वज्रहस्ता च पिशाची राक्षसी तथा ।
भुशुण्डी शाङ्करी चण्डा लाङ्गली कुटभी तथा ॥१६
खेटा सुलोचना धूम्रा एकवीरा करालिनी ।
विशालदंष्ट्रिणी श्यामा त्रिजटीकुक्कुटीतथा ॥१७
वैनायकी च वैताली उन्मत्तोदुम्बरी तथा ।
सिद्धिश्च लेलिहाना च केकरी गर्दभीतथा ॥१८
भ्रुकुटी बहुपुत्रीच प्रेतयाना विडम्बिनी ।
क्रौञ्चा शैलमुखी चैव विनता सुरमा दनु ॥१९
उषा रम्भा मेनकाच सलिलाचित्ररूपिणी ।
स्वाहास्वधा वषट्कारा धृतिर्ज्येष्ठाकपर्दिनी ॥२०
माया विचित्ररूपा च कामरूपा च सङ्गमा ।
मुखेविला मङ्गला च महानासा महामुखी ॥२१

अदिति—दिति—मारी—मृत्यु—कर्णमोटी—ग्राम्या—उलूकी—घटोदरी—कपाली—वज्रहस्ता—पिशाची—राक्षसी—भुशुण्डी—शाङ्करी—चण्डा—लाङ्गली—कुटभी—खेटा—सुलोचना—धूम्रा—एक वीरा—करालिनी—विशाली दंष्ट्रिणी—श्यामा—त्रिजटी—कुक्कुटी—वैनायकी—वैताली—उन्मत्ता—उदुम्बरी—सिद्धि—लेलिहाना—केकरी—गर्दभी—भृकुटी—बहुपुत्री—प्रेतयाना—विडम्बिनी—क्रौञ्चा—शैलमुखी—विनता—सुरमा—दनु—उषा—रम्भा—

मेनका–पलिला–विश्वरूपिणी–स्वाहा–स्वधा–वषट्कारा–धृति–ज्येष्ठा–कपर्दिनी–माया–विचित्र रूपा–कामरूपा–सङ्गना–मुखेबिला–मङ्गला–महानासा–महामुखी ॥१५–२१॥

कुमारी रोचनाभीमा सदाहा सा मदोद्धता ।
अलम्बाक्षी कालपर्णी कुम्भकर्णीमहासुरी ॥२२
केशिनी शङ्खिनीलम्बा पिङ्गलालोहितामुखी ।
घण्टारवायदण्ट्राला रोचना काकजङ्घिका ॥२३
गोकर्णिकाच मुण्डिकामहाग्रीवा महामुखी ।
उल्कामुखोधूमशिखा कम्पिनी परिकम्पिनी ॥२४
मोहना कम्पनाक्ष्वेला निर्भया वाहुशालिनी ।
सर्पकर्णी तथैकाक्षी विशोकानन्दिनीतथा ॥२५
ज्योत्स्नामुखोच रभसा निकुम्भा रक्तकम्पना ।
अविकारा महाचित्रा चन्द्रसेना मनोरमा ॥२६
अदर्शना हरत्पापा मातङ्गी लम्बमेखला ।
अबाला वञ्चना काली प्रमोदा लाङ्गलावती ॥२७
चिता चित्तजला कोणा शान्तिकाघविनाशिनी ।
लम्बस्तनी लम्बसटा विसटा वासचूर्णिनी ॥२८

कुमारी–रोचना–भीमा–सदाहा–मदोद्धता–अलम्बाक्षी–कालपर्णी–कुम्भकर्णी–महासुरी–केशिनी–शंखिनी–लम्बा–पिङ्गला–लोहितामुखी–घण्टारवा–दण्ट्राला–रोचना–काक जङ्घिका–गोकर्णिका–मुण्डिका–महाग्रीवा–महामुखी–उल्कामुखी–धूमशिखा–कम्पिनी–परिकम्पिनी–मोहना–कम्पना क्ष्वेला–निर्भया–वाहुशालिनी–सर्पकर्णी–एकाक्षी–विशोका–ज्योत्स्नामुखी–रभसा–निकुम्भा–रक्त कम्पना–अविकारा–महाचित्रा–चन्द्रसेना–मनोरमा–अदर्शना–हरत्पापा–मातङ्गी–लम्ब मेखला–अबाला–वञ्चना–काली–प्रमोदा–लाङ्गलावती–चिन्ता–

चित्त-जला—कोणा-शान्तिका—अघ विनाशनी—लम्बस्तनी—लम्बसटा—विसटा-वास चूर्णिनी ॥२२-२८॥

स्खलन्ती दीर्घकेशीच सुचिरा सुन्दरी शुभा ।
अयोमुखी कटुमखी क्रोधनीच तथाशनी ॥२९
कुटुम्बिका मुक्तिका च चन्द्रिका बलमोहिनी ।
सामान्या हासिनी लम्बा कोविदारी समासवी ॥३०
कङ्कुकर्णी महानादा महादेवी महोदरी ।
हुङ्कारी रुद्रसुसटा रुद्रेशी भूतडामरी ॥३१
पिण्डजिह्वा चलज्ज्वाला शिवा ज्वालामुखी तथा ।
एताश्चान्याश्च देवेश सोऽसृजन्मातरस्तदा ॥३२
अन्धकाना महाघोराः पपुस्तद्रुधिरं तदा ।
ततोऽन्धकासृजः सर्वाः परां तृप्तिमुपागताः ॥३३
तासु तृप्तासु सभूता भूय एवान्धकप्रजाः ।
अर्दितस्तैर्महादेवः शूलमुद्गरपाणिभिः ॥३४
ततः स शङ्करो देवस्त्वन्धकैर्व्याकुलीकृतः ।
जगाम शरण देव वासुदेवमज विभुम् ॥३५

स्खलन्ती, दीर्घकेशी, सुचिरा, सुन्दरी, शुभा, अयोमुखी, कटुमुखी, क्रोधनी, अशनी, कुटुम्बिका, मुक्तिका, चन्द्रिका, बलमोहिनी, सामान्या, हासिनी, लम्बा, कोविदारी, समासवी, कङ्कुकर्णी, महानादा, महादेवी, महोदरी, हुङ्कारी, रुद्रसुसटा, रुद्रेशी, भूतडामरी, पिण्डजिह्वा, चलज्ज्वाला, शिवा, ज्वालामुखी, इन इतनी तथा अन्य माताओं का देवेश्वर ने उस समय में सृजन किया था ॥२९, ३०, ३१, ३२॥ उस समय में इन महा घोराओं ने अन्धकों के रुधिर का पान किया था। इसके अनन्तर अन्धकों के रुधिर से सभी माताएं परम तृप्ति को प्राप्त हुई थी। उनके तृप्त होने पर भी पुनः अन्धकों की प्रजा उत्पन्न हुई थी। शूल और मुद्गर हाथों में धारण करने वाले उनके द्वारा महादेव बहुत ही अर्दित

हुए थे। इसके उपरान्त वह देव शंकर अन्धकों के द्वारा व्याकुल कर दिये गये थे और फिर वे अज—प्रभु वासुदेव भगवान् की शरणागति में प्राप्त हुए थे ॥३३-३५॥

ततस्तु भगवान् विष्णुः सृष्टवान् शुष्करेवतीम् ।
या पपौ सकलन्तेषामन्धकानामसृक् क्षणात् ॥
यथा यथा च रुधिरं पिबन्त्यन्धकसम्भवम् ॥३६॥
तथा तथाऽधिकं देवी सशुष्यति जनाधिप ! ।
पीयमाने तथा तेषामन्धकानां तथासृजि ॥
अन्धकास्तु क्षयन्नीताः सर्वं ते त्रिपुरारिणा ॥३७॥
मूलान्धकन्तु विक्रम्य तदा शर्वस्त्रिलोकधृक् ।
चकार वेगाच्छूलाग्रे सन्तुष्टावशङ्करम् ॥३८
अन्धकस्तु महावीर्यस्तस्य तुष्टोऽभवद्भवः ।
सामीप्यं प्रददौ नित्यं गणेशत्वं तथैव च ॥३९
ततो मातृगणाः सर्व शङ्करं वाक्यमब्रुवन् ।
भगवन् ! भक्षयिष्यामः स देवासुरमानुषान् ॥४०
त्वत्प्रसादाज्जगत् सर्वं तदनुज्ञातुमर्हसि ।
भवतीभिः प्रजाः सर्वा रक्षणीया न संशयः ॥४१
तस्माद्घोरानभिप्रायान्मनः शीघ्रं निवर्त्यताम् ।
इत्येवं शङ्करेणोक्तामनादृत्य वचस्तदा ॥४२

इसके अनन्तर भगवान् विष्णु ने शुष्क रेवती की सृष्टि की थी जिसने क्षण भर में ही उन अन्धकों के रक्त को पी लिया था। हे जनाधिप ! जैसे २ वे उस अन्धक के रुधिर का पान करती थीं वैसे २ ही देवी अधिक शुष्क हो जाया करती थी। उस प्रकार से अन्धकों के रक्त का पान कर लेने पर वे सब अन्धक त्रिपुरारि के द्वारा क्षय को प्राप्त कर दिये गये थे ॥३६, ३७॥ उस समय में जो मूल अधिक था उस पर त्रिलोकी के धारण करने वाले भगवान् शिव ने विक्रम करके वेग के साथ

उसको अपने त्रिशूल के अग्रभाग पर कर दिया था। उस अन्धक ने फिर भगवान् शंकर का स्तवन किया था। वह अन्धक महान् वीर्य वाला था और उससे भगवान् भव परम तुष्ट हो गये थे। फिर तो शंकर ने उसको अपनी समीपता को रहने का पद तथा गणेशत्व पद का प्रदान किया था ।। ३८, ३९ ।। इसके अनन्तर सब मातृगणों ने भगवान् शंकर से यह वाक्य कहा था—हे भगवन् ! हम अब सब देव-असुर और मानवों का भक्षण करेंगी क्योंकि यह सम्पूर्ण जगत् आपके ही प्रसाद से समुत्पन्न हुआ है और स्थित है सो अब आप हमको आज्ञा प्रदान करने के योग्य होते हैं। भगवान् शङ्कर ने उनसे कहा था। शंकर बोले—आप सबको इन प्रजाओं की रक्षा करनी चाहिए। इसमें कुछ भी संशय नहीं है। इसलिये इन घोर जो प्रजाओं के भक्षण कर जाने के अभिप्राय हैं उनसे शीघ्र ही अपने मन को हटाओ। इस प्रकार से कहे हुए इन भगवान् शंकर के वचनों का उन मातृगणों ने उस समय में अनादर कर दिया था ।। ४०, ४१, ४२ ।।

भक्षयामासुरव्यग्रास्त्रैलोक्यं सचराचरम् ।
त्रैलोक्ये भक्ष्यमाणे तु तदा मातृगणेन वै ।।४३
नृसिंहमूर्ति देवेशं प्रदध्यौ भगवाञ्छिवः ।
अनादिनिधनं देवं सर्वलोकभवोद्भवम् ।।४४
दैत्येन्द्रवक्षोरुधिरचर्चिताग्रमहानखम् ।
विद्युज्जिह्वं महादंष्ट्रं स्फुरत्केसरकण्टकम् ।।
कल्पान्तामरुतक्षुब्ध सप्तार्णवसमस्वनम् ।।४५
वज्रतीक्ष्णनखं घोरमाकर्णव्यादिताननम् ।
मेरुशैलप्रतीकाशमुदयार्कसमेक्षणम् ।।४६
हिमाद्रिशिखराकारं चारुदंष्ट्रोज्ज्वलाननम् ।
नखनिःसृतरोषाग्नि ज्वालाकेसरमालिनम् ।।४७
बद्धाङ्गदं सुमुकुटं हारकेयूरभूषणम् ।

श्रोणीसूत्रेण महता काञ्चनेन विराजितम् ॥४८
नीलोत्पलदलश्यामं वासोयुगविभूषणम् ।
तेजसाक्रान्तसकलब्रह्माण्डागारसंकुलम् ॥ ४९

अद्भुत स्वरूप वाली उन माताओं ने इस चराचर सम्पूर्ण जगत् तथा त्रैलोक्य का भ्रमण करना आरम्भ कर दिया था। उस समय में मातृगण के द्वारा इस त्रिलोकी के भक्ष्यमाण होने पर भगवान् शिव ने देवेश श्री नृसिंह मूर्त्ति का ध्यान किया था जिनका स्वरूप आदि और अन्त से रहित है और जो इस सम्पूर्ण लोक के उत्पत्ति को करने वाले हैं। दैत्येन्द्र हिरण्य कशिपु के वक्षः स्थल के रुधिर से चर्चित महान् नखों वाले—विद्युत के तुल्य जीभ से युक्त—महान् दाढों वाले—स्फुरित हुए केसरों के कण्टकों से सम्युत—कल्प के अन्त में श्वास से पूर्ण मारुत से समन्वित तथा सपृवर्ण वृक्षों के तुल्य ध्वनि वाले थे। वज्र के समान तीक्ष्ण नखों वाले—घोर—कानों तक व्याहित मुख वाले—मेरु पर्वत के सदृश—उदय कालीन सूर्य के समान नेत्रों वाले—हिमालय की शिखर के समान आकार से युक्त—सुन्दर दाढ़ों से समुज्ज्वल मुख वाले—नखों से निकली हुई रोषाग्नि की ज्वालाओं की माला वाले—वज्र के अङ्कों के धारण कर्त्ता—मुकुट से युक्त—हार और केयूरों के आभरण से भूषित—तेज से समाक्रान्त सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के आगार से सकुल उनका स्वरूप था। ॥ ४३-४९ ॥

पवनं भ्राम्यमाणानां हुतहव्यवहार्चिषाम् ।
आवर्तसदृशाकारैः संयुक्तं देहलोमजैः ॥५०
सर्वपुष्पविचित्राञ्च धारयन्तं महास्रजम् ।
स ध्यातमात्रो भगवान् प्रददौतस्य दर्शनम् ॥५१
यादृशेनैवरूपेण ध्यातं रुद्रेण धीमता ।
तादृशेनैव रूपेण दुर्निरीक्ष्येण दैवतैः ॥५२

प्रणिपत्य तु देवेशं तदा तुष्टाव शङ्करः ।
नमस्तेऽस्तु जगन्नाथ ! नरसिंहवपुर्धर ! ॥५३
दैत्यनाथासृजापूर्ण ! नखशक्तिविराजित ! ।
ततः सकलसंलग्नहेमपिङ्गलविग्रह ! ॥५४
नतोऽस्मिपद्मनाभ ! त्वां सुशक्र ! जगद्गुरो ।
कल्पान्ताम्भोदनिर्घोष ! सूर्यकोटिसमप्रभ ॥५५
सहस्रयमसंक्रोध ! सहस्रेन्द्रपराक्रम ! ।
सहस्रधनदस्फीत ! सहस्रवरुणात्मक ! ॥५६

हुत की हुई हव्य को वहन करने वाले अग्नि की भ्रम्यमाण अर्चियों के पवन, आवर्त के सदृश आकारों वाले देह के लोमजों से संयुक्त, सभी तरह के पुष्पों से अद्भुत महामाला को धारण करने वाले श्री नृसिंह का स्वरूप था । जैसे ही शिव ने उनका उपर्युक्त स्वरूप से समन्वित वपु का ध्यान किया था वैसे ही तुरन्त उन्होंने शिव को अपना दर्शन दिया था । जिस प्रकार के स्वरूप का धीमान् रुद्रदेव के द्वारा ध्यान किया गया था उसी प्रकार के देवों के द्वारा भी दुर्निरीक्षणीय स्वरूप में वह वहाँ उपस्थित हुए थे । भगवान् शंकर ने उनको प्रणिपत करके फिर स्तुति की थी । भगवान् शंकर ने कहा—हे जगत् के स्वामिन्! आप तो नर और सिंह दोनों के स्वरूप को धारण करने वाले हैं । ऐसे आपको नमस्कार है । हे दैत्यनाथों के रक्त से आपूर्ण—हे नखों की शक्ति से विराजमान ! हे सम्पूर्ण संलग्न हेम के सदृश पिङ्गल विग्रह वाले ! हे पद्मनाभ ! मैं आपको प्रणत होता हूँ । हे गुरों के शक्र ! हे जगत् के गुरो ! हे कल्पान्त में अम्भोद के समान निर्घोष वाले ! आप तो करोड़ों सूर्यों के समान प्रभा वाले हैं । आपका क्रोध सहस्रों यमों के समान है । आप सहस्रों इन्द्रों के समान पराक्रम वाले हैं । आप सहस्रों धनदों के तुल्य स्फीत हैं और आप सहस्रों वरुणों के स्वरूप वाले हैं । ॥ ५०—५६ ॥

सहस्रकालरचित ! सहस्रनियतेन्द्रिय ।
सहस्रभूमिसद्धर्य ! सहस्रानन्त ! मूर्तिमन् ! ॥५७
सहस्रचन्द्रप्रतिम ! सहस्रग्रहविक्रम ! ।
सहस्ररुद्रतेजस्क ! सहस्रब्रह्मसंस्तुत ! ॥५८
सहस्रबाहुवर्गाग्र ! सहस्रास्य निरीक्षण ! ।
सहस्रयन्त्रमथन ! सहस्रवधमोचन ! ॥५९
अन्धकस्य विनाशयया:सृष्टा.मातरो मया ।
अनादृत्य तु मद्वाक्यम्भक्षयन्त्यद्भुता.प्रजाः ॥६०
कृत्वा ताश्च न शक्तोऽहं संहर्तमपराजित ।
स्वयङ्कृत्वा कथन्तासांविनाशमभिकारये ॥६१
एवमुक्तः स रुद्रेण नरसिंहवपुर्धरः ।
ससर्ज देवोजिह्वायास्तदावाणीश्वरी हरि. ॥६२
हृदयाच्च तथा माया गुह्याच्च भवमालिनी ।
अस्थिभ्यश्च तथाकाली सृष्टापूर्व महात्मना ॥६३

हे सहस्र कालों से रचित ! हे सहस्र नियत इन्द्रियों वाले ! हे सहस्र भूमि सद्धैर्य ! हे सहस्रानन्त ! हे मूर्तिमन् ! हे सहस्र चन्द्रों की प्रतिमा वाले ! आप तो सहस्रों ग्रहों के विक्रम वाले हैं और सहस्र चन्द्रों के तेज से संयुत हैं। आप सहस्रों ब्रह्माओं के द्वारा संस्तुत हैं। हे सहस्र बाहु वर्गाग्र ! हे सहस्राक्ष के समान नेत्रों वाले ! हे सहस्र मन्मथ मन ! हे सहस्र वध मोचन ! मैंने अन्धक दैत्य के विनाश के लिये जिन मातृगण का सृजन किया था वे ही आज मेरे वचन का अनादर करके उन प्रजाओं का भक्षण कर रहे हैं। हे अपराजित! उस मातृगण को सृजन करके अब उनके संहार करने में मैं अशक्त हो रहा हूँ क्योंकि स्वयं ही मैंने जिसका बनाया था उसका विनाश मैं ही स्वयं कैसे करूँ। इस प्रकार से रुद्रदेव के द्वारा उन नरसिंह वपु के धारी प्रभु से जब कहा गया था उन हरिदेव ने जिह्वा की वाणीश्वरी की

रचना की थी। हृदय से माया—गुह्य से भवमालिनी और अस्थियों से कोली का पहिले उस महात्मा ने सृजन किया था ॥ ५७-६३ ॥

यया तद्रुधिरम्पीतमन्धकाना महात्मनाम् ।
याचास्मिन्कथिता लोकेनामतःशुष्करेवती ॥६४
द्वात्रिंशन्मातरः सृष्टा गात्रेभ्यश्चक्रिणा ततः ।
तासां नामानि वक्ष्यामि तानि मे गदतः शृणु ॥६५
सर्वास्तासु महाभागा घण्टाकर्णी तथैव च ।
त्रैलोक्यमोहिनी पुण्या सर्वसत्ववशङ्करी ॥६६
तथा च चक्रहृदया पञ्चमी व्योमचारिणी ।
शङ्खिनी लेखिनी चैव कालसङ्कर्षणी तथा ॥६७
इत्येताः पृष्ठगाराजन् ! वागीशानुचराः स्मृताः ।
सङ्कर्षणीतथाश्वत्थाबीजभावापराजिताः ॥६८
कल्याणी मधुदंष्ट्री च कमलोत्पलहस्तिका ।
इति देव्यष्टक राजन् ! मायानुचरमुच्यते ॥६९

जिसने महात्मा अन्धकों का रुधिर पान किया था और जो नाम से लोक में शुष्क रेवती कही गयी थी। इसके पश्चात् चक्रधारी प्रभु ने अपने ही गात्रों से बत्तीस माताओं का सृजन किया था। उन सबके नामों को बतलाने वाले मुझसे अब तुम सुनलो ॥ ६४, ६५ ॥ उनमें सभी महान् भागों वाली थी। घण्टा कर्णी—त्रैलोक्य मोहिनी—पुण्या सर्वसत्व शंकरी—चक्र हृदया—पाँचवी व्योमचारिणी-शखिनी-लेखिनी काल सर्कषिणी ये सब हे राजन्! उस वागीशा के पीछे गमन करने वाली अनुचारिणी थी—ऐसा कहा गया है। सकर्षणी—अश्वत्था—बीजभावा—अपराजिता—कल्याणी—मधुदंष्ट्री और कमला तथा उत्पल हस्तिका हे राजन्! देवियों का जो अष्टक था वह मायानुचर कहा जाता है। ॥ ६६-६९ ॥

अजिता सूक्ष्महृदया वृद्धा वेशाश्मदंशना ।
नृसिंहभैरवा बिल्वा गरुत्महृदया जया ॥७०
भवमालिन्यनुचरा इत्यष्टौ नृपमातरः ।
आकर्णनी सम्मदा च तथैवोत्तरमालिका ॥७१
ज्वालामुखी भीषणिकाकामधेनुश्चबालिका ।
तथापद्मकराराजन् ! रेवत्यनुचराःस्मृता ॥७२
अष्टौ महाबलाः सर्वा देवगात्रसमुद्भवाः ।
त्रैलोक्यसृष्टिसंहारसमर्थाः सर्वदेवताः ॥७३
ताः सृष्टमात्रादेवेन क्रुद्धामातृगणस्य तु ।
प्रधाविता महाराज ! क्रोधविस्फारितेक्षणाः ॥७४
अविपह्यतमन्तासां दृष्टितेजः सुदारुणम् ।
तमेव शरणं प्राप्ता नृसिंहो वाक्यमब्रवीत् ॥७५
यथा मनुष्याः पशवः पालयन्तिचिरात् सुतान् ।
जयन्ति ते तथैवाशु यथार्वदेवतात् सुतान् ॥७६
भवत्तु तथालोकान्पालयन्तु मयेरिताः ।
मनुजैश्च तथा देवैर्यजध्व त्रिपुरान्तकम् ॥७७

अजिता, सूक्ष्महृदया, वृद्धा, वेशाश्म दशना, नृसिंह भैरवा, बिल्वा गरुत्महृदया, जया और भवमालिनी ये आठ अनुचर नृप माताएँ थी। आर्कर्पानी, सम्मदा, उत्तर मालिका, ज्वालामुखी, भीषणिका, कामधेनु, बालिका, देराजन् ! पद्मकरा ये रेवती की अनुचारिणी थी—ऐसा कहा गया है। ये आठ महाबल वाली और सभी देव के गात्रों से समुत्पन्न होने वाली थी। ये सब देवता त्रैलोक्य की सृष्टि एवं संहार करने में समर्थ थी। वे देव के द्वारा सृष्ट मात्र होते ही हे महाराज ! अति क्रुद्ध होकर क्रोध से विस्फारित नेत्रों वाली मातृगण के पीछे प्रधावित हुई थी। उनकी दृष्टि का तेज अविपह्यतम और परम सुदारुण था। उन सबने उन्हीं की शरणागति प्राप्त की थी तब श्री नृसिंह प्रभु ने यह वाक्य कहा था—जिस

प्रकार से मनुष्य और पशु चिरकाल तक सुतों का पालन किया करते हैं उसी भाँति देवगण के समान शीघ्र ही जय को प्राप्त होते है। आप लोग मेरे द्वारा प्रेरित होकर लोकों का पालन करें तथा मनुष्य और देवगण सब त्रिपुरान्तक का अभ्यर्चन किया करें ॥७०, ७१, ७२, ७३, ७४॥ ॥७५, ७६, ७७॥

नच बाधा प्रकर्तव्या ये भक्तास्त्रिपुरान्तके।
येच मा संस्मरन्तीह तेच रक्ष्याः सदानरा. ॥७८
बलिकर्म करिष्यन्ति युष्माकं ये सदा नराः।
सर्वकामप्रदास्तेषा भविष्यध्वन्तथैच ॥७९
उच्छासनादिकं ये च कथयन्ति मयेरितम्।
तेच रक्ष्याः सदालोकारक्षितव्य मदासनम् ॥८०
रौद्री चैव परा मूर्ति महादेवः प्रदास्यति।
युष्मन्मुख्या महादेव्यस्तदुक्तं परिरक्षय ॥८१
मया मातृगण सृष्टो योऽयं विगतसाध्वसः।
एष नित्य विशालाक्ष्यो मयैव सह रंस्यते ॥८२
मया सार्द्धं तथा पूजा नरेभ्यश्चैव लप्स्यथ।
पृथक् सुपूजिता लोकै. सर्वान् कामान् प्रदास्यथ ॥८३
शुष्का संपूजयिष्यन्ति ये च पुत्रार्थिनो जनाः।
तेषा पुत्रप्रदा देवी भविष्यन्तिनसंशयः। ८४

भगवान् त्रिपुरान्तक के जो भी भक्तगण हो उनको कोई भी बाधा नही करनी चाहिए। जो मनुष्य यहां पर मेरा स्मरण किया करते हैं उनकी भी सदा रक्षा करनी चाहिए। जो नर आपका सर्वदा बलिकर्म किया करते हैं अर्थात् आपको बलि समर्पित करते है उनकी समस्त काम-नाओं के प्रदान करने वाले आप लोग उसी भाँति बन जाइये। मेरे द्वारा प्रेरित जो उच्छासनादिक का कथन करते हैं उन लोकों की सदा रक्षा करनी चाहिए और मेरे आसन की भी सुरक्षा करने की कृपा करें। महादेव परा

रौद्री मुक्ति का प्रदान करेंगे। आपमें जो मुख्य महादेवियाँ हैं वे सब इसपर्युक्त सबकी रक्षा करें। मेरे द्वारा इस मातृगण का सृजन किया गया है जो यह इस समय में निगल मत जाता है यह निश्चय ही विशाल नेत्रों वाली मेरे ही साथ रमण में रमण करेंगी। मेरे ही ये नरों से पूजा प्राप्त करेंगी। यदि इन्हें पृथक् भी समर्चन किया जावेगा और लोग ऐसा करेंगे तो ये सभी मनोकामनाओं की प्राप्ति करा देंगी। जो पुत्रों के प्राप्त करने की इच्छा वाले हैं उन जनों को यह देवी पुत्र प्रदा अवश्य ही हो जायँगी— इसमें तनिक भी संशय का कोई अवसर ही नहीं रहता है ॥७८, ७९॥ ॥८०, ८१, ८२, ८३, ८४॥

एवमुक्त्वा तु भगवान् सह मातृगणेन तु।
ज्वालामालाकुलवपुस्तत्रैवान्तरधीयत ॥८५
तत्र तीर्थं समुत्पन्नं कृत्शौचेति यज्जगुः।
तत्रापि पूर्वजो देवो जगदार्तिहरो हरः ॥८६
रौद्रस्य मातृवर्गस्य दत्वा रुद्रस्तु पार्थिव।
रौद्रां दिव्यां तनुं तत्रमातृमध्येव्यवस्थित. ॥८७
सप्त ता मातरो देव्यः सार्द्धनारीनरः शिवः।
निवेश्य रौद्रं तत् स्थानं तत्रैवान्तरधीयत ॥८८
ये मातृवर्गस्य हरस्य मूर्त्तिर्यदा यदा यान्ति च तत्समीपे।
देवेश्वरस्यापि नृसिंहमूर्त्तेः पूजा विधत्ते त्रिपुरान्धकारिः ॥८९

इस प्रकार से कहकर वह भगवान् मातृगण के साथ ही ज्वालाओं की मालाओं से समाकुल वपु वाले वहां पर अन्तर्हित हो गये थे ॥८५॥ वहां पर एक तीर्थ की उत्पत्ति हो गई थी जिसको कृतशौचा—इस नाम से गान किया जाता था। वहां पर भी पूर्वज देव इस जगत् की आर्ति का (पीड़ा का) हरण करने वाले हर ही थे ॥८६॥ हे पार्थिव ! भगवान् रुद्रदेव रौद्र मातवर्ग को रौद्र एवं दिव्य तन प्रदान करके वहां पर मातृ मध्य में व्यवस्थित हो गये थे। वे सात तो माताएं देवियां हैं और सार्द्ध

नारी नर शिव हैं। उस रौद्र स्थान को निवेशित करके वहीं पर अन्तर्धान हो गये थे। वह जब जब भी वह मातृ वर्ग की हर की मूर्ति उसके समीप में आती है तब त्रिपुरान्धकारि शिव देवेश्वर नृसिंह मूर्ति की भी पूजा किया करते हैं ॥८७, ८८, ८९॥

७२—वाराणसी माहात्म्य

श्रुतोऽन्धकवधः सूत ! यथावत्त्वदुदीरितः।
वाराणस्यास्तु माहात्म्यं श्रोतुमिच्छाम साम्प्रतम् ॥१
भगवान् पिङ्गलः केन गणत्वं समुपागतः।
अन्नदत्वञ्च सम्प्राप्तो वाराणस्यां महाद्युतिः ॥२
क्षेत्रपालः कथं जातः प्रियत्वञ्च कथङ्गतः।
एतदिच्छाम कथितं श्रोतुं ब्रह्मसुत ! त्वया ॥३
शृणुध्वं वै यथा लेभे गणेशत्वं स पिङ्गलः।
अन्नदत्वं च लोकानां स्थानं वाराणसी त्विह ॥४
पूर्णभद्रसुतः श्रीमानासीद्यक्षः प्रतापवान्।
हरिकेश इतिख्यातो ब्रह्मण्यो धार्मिकश्च ह ॥५
तस्य जन्मप्रभृत्येव शर्वे भक्तिरनुत्तमा।
तदासीत्तन्नमस्कारस्तन्निष्ठस्तत्परायणः ॥६
आसीनश्च शयानश्च गच्छंस्तिष्ठन्ननुव्रजन्।
भुञ्जानोऽथ पिबन्वापि रुद्रमेवान्वचिन्तयत् ॥७

ऋषि वृन्द ने कहा—हे सूतजी ! आपके द्वारा वर्णित ठीक २ रीति से हमने अन्धक का वध श्रवण कर लिया अब इस समय में वाराणसी पुरी का माहात्म्य हम श्रवण करने की सब अभिलाषा रखते हैं। ॥१॥ भगवान् पिङ्गल किन के द्वारा अथवा किस कारण से गणत्व को प्राप्त हुए थे ? यह महा द्युति से सुसम्पन्न वाराणसी में अन्नदत्व को

भी सम्प्राप्त हो गये हैं ? ॥२॥ यह क्षेत्रपाल कैसे हुए और प्रियत्व की प्राप्ति भी किस तरह से हुई थी ? हे ब्रह्माजी के पुत्र ! यह सब आपके द्वारा वर्णित हम सब श्रवण करना चाहते हैं। महा महर्षि श्री सूतजी ने कहा—उस पिङ्गल ने जिस रीति से गणेशत्व की प्राप्ति की थी उसे आप लोग सुनिये। लोकों को अन्न देने वाले और यहां पर यह वाराणसी का स्थान जैसे प्राप्त हुआ वह भी सुनिये ॥३, ४॥ पूर्णभद्र का पुत्र प्रताप वाला श्रीमान् यक्ष था। वह हरिकेश—इस नाम से विख्यात था और परम धार्मिक तथा ब्रह्मण्य था ॥५॥ उसकी जन्म के आरम्भ से ही लेकर भगवान् शिव में अतीव उत्तम भक्ति थी। उस समय में शिव को ही नमस्कार करने वाला—उन्हीं में पूर्ण निष्ठा रखते हुए वह सर्वदा उन्हीं में परायण रहा करता था ॥६॥ वह बैठा हुआ—शयन करता हुआ—गमन करते हुए—स्थित रहते हुए—अनुव्रजन करते हुए—भोजन करने की दशा में तथा पान करते हुए भी रुद्र का ही सदा अनुचिन्तन किया करता था ॥७॥

तमेव युक्तमनसम्पूर्णभद्रः पिताब्रवीत् ।
न त्वां पुत्रमहं मन्येदुर्जातो यस्त्वमन्यथा । ८
न हि यक्ष कुलीनानामेतद्वृत्तं भवत्युत ।
गुह्यका वत यूयं वै स्वभावात् क्रूरचेतसः ॥९
क्रव्यादाश्चैव किं भक्षा हिंसाशीलाश्च पुत्रक ।
मैवं कार्षीनस्ते वृत्तिरेवं दृष्टा महात्मना । १०
स्वयम्भुवा यथादिष्टा त्यक्तवा यदि नो भवेत् ।
आश्रमान्तरजं कर्म न कुर्युर्गृहिणस्तु तत् ॥११
हित्वा मनुष्यभावं च कर्माणि विविधश्चर ।
यस्त्वमेवं विमार्गस्थो मनुष्याज्जात एव च ॥१२
यथावद्विविधस्तेषां कर्म तज्जातिसंश्रयम् ।
मयापि विहितं पश्य कर्मैतन्नात्र संशयः ॥१३

इस प्रकार से युक्त मन वाले उससे उसके पिता पूर्ण ने कहा था—मैं पुत्र तुझको दुर्जात नहीं मानता हूँ जो कि तू अन्यथा रहा करता है। ॥८॥ यक्ष कुलों मे समुत्पन्नों का यह चरित नहीं हुआ करता है। खेद है आप लोग गुह्यक हैं स्वभाव से क्रूर चित्त वाले हुआ करते हैं ॥९॥ हे पुत्रक ! क्रव्याद लोग सदा भक्षण करने वाले हैं और हिंसा करने के स्वभाव वाले होते हैं। ऐसा मत करो। महान् आत्मा वाले के द्वारा तुम्हारी इस प्रकार की वृत्ति नहीं देखी गयी है ॥१०॥ स्वयम्भू ने जो समादिष्ट की है यदि आपमें हो तो उसे त्याग देना चाहिये। जो गृही होते हैं वे दूसरे आश्रम मे उत्पन्न होने वाले कर्म को नहीं किया करते हैं और न उन्हें करना ही चाहिये ॥११॥ मनुष्यों के भाव को छोड़ कर विविध भाँति के कर्मों के द्वारा चरण करो। जो तू इस प्रकार से विमार्ग मे स्थित है तो तू मनुष्य से ही समुत्पन्न हुआ है। यथावत् उनके अनेक कर्म हैं जो उनकी जाति का संश्रय रखने वाला है। मैंने भी कर्म किया है उसे देखो। इससे इसमे कुछ भी संशय नहीं होगा ॥१२, १३॥

एवमुक्त्वा स तं पुत्रं पूर्णभद्रः प्रतापवान्।
उवाच निष्क्रम क्षिप्रं गच्छ पुत्र! यथेच्छसि। १४
ततः स निर्गतस्त्यक्त्वा गृहं सम्बन्धिनस्तथा।
वाराणसीं समासाद्य तपस्तेपे सुदुश्चरम् ॥१५
स्थाणुभूतो ह्यनिमिषः शुष्ककाष्ठोपलोपमः।
सन्नियम्येन्द्रियग्राममवातिष्ठत निश्चलः ॥१६
अथ तस्यैवमनिशं तत्परस्य तदा शिवः।
सहस्रमेकं वर्षाणां दिव्यमप्यध्ययतत ॥१७
वल्मीकेन समाक्रान्तो भक्ष्यमाणः पिपीलिकैः।
वज्रसूचीमुखैस्तीक्ष्णैर्विध्यमानस्तथैव च ॥१८
निर्मांसरुधिरत्वक् च कुन्दशङ्खेन्दुसप्रभः।
अस्थिशेषोऽभवच्छर्वं देवं वै चिन्तयन्नपि ॥१९

एतस्मिन्नन्तरे देवी विज्ञापयत शङ्करम् ।
उद्यानं पुनरेवेह द्रष्टुमिच्छामि सर्वदा ॥२०
क्षेत्रस्य देव माहात्म्य श्रोतुं कौतूहलं हि मे ।
यतश्च प्रियमेतत्ते तथास्य फलमुत्तमम् ॥२१

श्री सूत महर्षि ने कहा—वह प्रताप वाले पूर्णभद्र ने उस अपने पुत्र से इस प्रकार से कहकर फिर हे पुत्र ! तू यहाँ से निष्क्रमण करते हुए बहुत शीघ्र जहा भी चाहता है चला जा ॥१४॥ इसके उपरान्त वह यहा से निर्गत होकर अपने गृह और समस्त सम्बन्धियो का परित्याग कर चला गया था । फिर वाराणसी पुरी मे प्राप्त होकर उसने परम दुश्चर तप किया था ॥१५॥ वहा पर पलकें पूर्णतया खोले हुए—एक स्थाणु (वृक्ष का ठूठ) के रूप वाला—सूखा हुआ काष्ठ, तथा पाषाण के सदृश होकर अपनी सम्पूर्ण इन्द्रियो के समुदाय को भली भाँति नियन्त्रित करके एक दम निश्चल होकर अवस्थित होगया था ॥१६॥ इसके अनन्तर उसको निरन्तर इस प्रकार से तप मे तत्पर हुए को उस समय मे एक सहस्र दिव्य वर्ष व्यतीत हो गये थे ॥१७॥ उसका शरीर सर्पो की वाँबियो से समाक्रान्त हो गया था—पिपीलिकाऐ (चीटिया) उस शरीर को खा रही थी तथा तीक्ष्ण वज्रसूची मुख कीटो से वह उसका वपु पूर्ण या विधा हुआ सा हो गया था ॥१८॥ यद्यपि उसका शरीर बिना मांस—रुधिर और त्वचा वाला ही था किन्तु फिर भी कुन्द—इन्दु और शङ्ख के समान प्रभा से पूर्ण था । देवेश्वर का ही चिन्तन करते हुए वह पूरा शरीर केवल अस्थियो का ही एक ढाँचा शेष रह गया था । इसी बीच मे देवी ने श्री शङ्कर भगवान् को विज्ञापित किया था ॥१९॥ देवी ने कहा—मैं सर्वदा उस उद्यान को यहाँ पर देखने की अभिलाषा करती हूँ ॥२०॥ हे देव ! इस उत्तम क्षेत्र के माहात्म्य को श्रवण करने के लिये मेरे हृदय मे अत्यधिक कौतूहल हो रहा है । क्योंकि यह आपका प्रिय है तथा इसका उत्तम फल है ॥२१॥

इति विज्ञापितो देवः शर्वाण्या परमेश्वरः ।
शर्वः पृष्टोयथातथ्यमाख्यातुमुपचक्रमे ॥२२
निर्जगाम च देवेशः पार्वत्या सह शङ्करः ।
उद्यानं दर्शयामास देव्या देवः पिनाकधृक् ॥२३
प्रोत्फुल्लनानाविधगुल्मशोभितं लताप्रतानावनतं मनोहरम् ।
विरूढपुष्पैः परितः प्रियङ्गुभिः सुपुष्पितैः कण्टकितैश्च केतकैः ॥२४
तमालगुल्मैर्निचितं सुगन्धिभिः सकर्णिकारैर्बकुलैश्च सर्वशः ।
अशोकपुन्नागवरैः सुपुष्पितैर्द्विरेफमालाकुलपुष्पसञ्चयैः ॥२५
क्वचित्प्रफुल्लाम्बुजरेणुरूषितैर्विहङ्गमैश्चारुकलप्रणादिभिः ।
विनादितं सारसमण्डनादिभिः प्रमत्तदात्यूहरुतैश्च वल्गुभिः ॥२६
क्वचिच्च चक्राह्वरवोपनादितं क्वचिच्च कादम्बकदम्बकैर्युतम् ।
क्वचिच्च कारण्डवनादनादितं
क्वचिच्च मत्तालिकुलाकुलीकृतम् ॥२७॥
मदाकुलाभिस्त्वमराङ्गनाभिर्निषेवितञ्चारु सुगन्धिपुष्पम् ।
क्वचित् सुपुष्पैः सहकारवृक्षैर्लतोपगूढैस्तिलकद्रुमैश्च ॥२८

शर्वाणी के द्वारा परमेश्वर देव को यह विज्ञापित किया गया था और याथातथ्य को जब शिव प्रभु से पूछा गया तो वह पूछे हुए होकर इसे कहने के लिये उपक्रम करने लगे थे ॥२२॥ देवेश्वर भगवान् शङ्कर पार्वती देवी के साथ ही निकलकर चले गये थे। फिर पिनाकधारी देव ने वह उद्यान देवी को दिखलाया था ॥२३॥ देवों के देव बोले—यह उद्यान विकसित नाना भाँति के गुल्मों से शोभा वाला था। लताओं के प्रतानों से अवनत एवं मनोहर था। दोनों ओर विरूढ पुष्पों वाले प्रियंगुओं से—सुन्दर पुष्पों से समन्वित कण्टकित केतकों से—सुगन्ध युक्त तमाल के गुल्मों से निचित और सब ओर कर्णिकारों के सहित बकुलों से वह समन्वित था ॥२४, २५॥ द्विरेफों (भौंरों) की मालाओं से समाकुल पुष्पों के सञ्चय वाले सुपुष्पित अशोक पुन्नाग वरों से संयुत है ॥२५। इस उद्यान में कहीं

यह प्रफुल्ल कमलों के रेणु से रूपित तथा चारु एवं कल (मधुर) प्रणाद करने वाले विहगणों से यह निनादित हो रहा था तथा किसी जगह पर सारस मण्डल आदि से एवं परम वल्गु प्रमत्त दात्यूहों के शब्दों से शब्दायमान था ॥२६॥ किसी स्थल पर चक्रवाकों की ध्वनियों से निनादित और कहीं पर कदम्बों के समूहों से यह उद्यान संयुत था। किसी स्थान में कारण्डवों की कल ध्वनियों से निनादित था और कहीं पर प्रमत्त अलियों के कुलों से आकुलीकृत हो रहा था ॥ २७ ॥ महान् कुलों वाली भ्रमरों की अङ्गनाओं के द्वारा सेवित तथा सुन्दर एवं सुगन्धित पुष्पों से परिपूर्ण यह उद्यान था। कहीं पर सुन्दर पुष्पों वाले सहकार के वृक्षों से तथा लताओं से उपगूढ तिलक के द्रुमों से समन्वित था ॥२८॥

प्रगीतविद्याधरसिद्धचारण प्रवृत्तनृत्याप्सरसाङ्गणाकुलम् ।
प्रहृष्टनानाविधपक्षिसेवित प्रमत्तहारीतकुलोपनादितम् ॥२९
मृगेन्द्रनादाकुलसत्वमानसैः क्वचित् क्वचिद्द्वन्द्वकदम्बकैर्मृगैः ।
प्रफुल्लनानाविधचारुपङ्कजैः सरस्तटाकैरुपशोभित क्वचित् ॥३०
निविडनिचुलनील नीलकण्ठाभिरामं-
मदमुदितविहङ्गव्रातनादाभिरामम् ।
कुसुमिततरुशाखालीनमत्ताद्विरेफ—
नवकिसलयशोभाशोभितप्रान्तशाखम् ॥३१॥
क्वचिच्च दन्तिक्षतचारुवीरुध क्वचिल्लतालिङ्गितचारुवृक्षकम् ।
क्वचिद्विलासालसगामिबर्हिणं निषेवितं किंपुरुषव्रजैः क्वचित् ॥३२
पारावतध्वनिविकूजितचारुशृङ्गैरभ्रङ्कषैः सितमनोहरचारुरूपैः ।
आकीर्णपुष्पनिकुरम्बविमुक्तहासैर्विभ्राजित-
न्त्रिदशदेवकुलैरनेकैः ॥३३॥
फुल्लोत्पलागुरुसहस्रवितानयुक्तैः ।
स्तोयावर्यैस्तमनुशोभितदेवमार्गम् ॥

मार्गान्तरागलितपुष्पविचित्रभक्ति-
सम्बद्धगुल्मविटपैर्विहगैरुपेतम् ॥३४
तुङ्गाग्रै नीलपुष्पस्तबकभरनतप्रान्तशाखैरशोकै-
र्मत्तालिव्रातगीतश्रुतिसुखजननैर्भासितान्तर्मनोज्ञैः ।
रात्रौ चन्द्रस्य भासा कुसुमिततिलकैरेकतां सम्प्रयात-
च्छायासुप्तप्रबुद्धस्थितहरिणकुलालुप्तदर्भाङ्कुराग्रम् ॥३५

यह उद्यान विद्याधर—सिद्ध और चारणों के गीतों से परिपूर्ण—नृत्य करने में प्रवृत्त हुई अप्सराओं के गणों से समाकुल था। परम प्रहर्ष वाले अनेक भाँति के पक्षियों के द्वारा यह उद्यान सेवित था। यह उद्यान प्रसन्न हारीत नाम वाले पक्षियों के समूह से उपनादित था ॥२६॥ किसी स्थल पर मृगेन्द्रों की गर्जनों से सत्वों के मानसों को समाकुलित करने वाला था। कोई भाग उसका मृगों के ओघों के समुदायों से युक्त था। कहीं पर खिले हुए अनेक तरह के चारु कमलों से युक्त सरोवर और तडागों के द्वारा यह उद्यान शोभा वाला था ॥३०॥ यह उद्यान घने निकुलों से नील वर्ण वाला—नीले कण्ठों से अभिराम—मद से परम प्रसन्न पक्षियों के समूहों के नाद से परम मनोहर था। पुष्पों वाले वृक्षों की शाखाओं में जिस उद्यान में भौंरे प्रसन्न होते हुए लीन हो रहे थे और नूतन पत्तों की शोभा से शोभित पल्लव शाखाओं वाला वह उद्यान था। कहीं पर गजों के द्वारा किए गये दाँतों से सुन्दर वीरुधों वाला था और कहीं पर लताओं के द्वारा सुन्दर वृक्षों का आलिङ्गन किया जा रहा था। किसी स्थल पर विलास से अलस गमन करने वाले बर्हि वाला तथा कहीं किम्पुरुषगण उस उद्यान का सेवन कर रहे थे ॥३१, ३२॥ पारावतों की ध्वनि से विशेष रूप से कूजित सुन्दर शिखरों से जो कि आकाश को छूने वाले बहुत ही ऊँचे थे और श्वेत एवं मनोहर चारु रूप से युक्त थे वह उद्यान विभ्राजित हो रहा था और समाकीर्ण पुष्पों के निकुरम्ब से विमुक्त हास्य वाले अनेक देवों के कुलों के द्वारा वह सेवित था ॥३३॥ खिले हुए

बड़े २ सहस्रों उत्पलों के वितानों से युक्त सोपानवर्त्मों से शोभा वाले देवमार्ग वाला वह उद्यान बहुत ही सुन्दर हो रहा था। मार्ग के बीच में गलित हुए पुष्पों से विचित्र भक्ति से सम्बद्ध झाड़ियाँ तथा विटपों से समायुक्त था बहुत ही ऊँचे जिनके अग्रभाग हैं ऐसे नीले पुष्पों के स्तबकों के भार से अवनत शाखाओं वाले अशोक के वृक्षों से समायुक्त था तथा अत्यन्त प्रमत्त भ्रमरों के समुदायों के गुञ्जित गीतों से कानों को सुख समुत्पन्न करने वाले और सत्वर मनोज्ञता को भासित करने वाले तिलकों के कुसुमों के द्वारा तथा रात्रि में चन्द्र की दीप्ति में एकता को प्राप्त हुआ और छाया में प्रसुप्त होकर फिर जगे हुए सुस्थित हिरनों के कुलों से आलुप्त दर्भों के अंकुरों वाला वह उद्यान था अर्थात् वहाँ पर लेटे हुए हरिणों के समूह में डाभों के अंकुर दबे हुए हो गये थे ॥३४, ३५॥

हृष्यन्नानापक्षिमत्तचातकमलहंसव्रजविस्तीर्णतोयम्
तोयान्तीरजातप्रविकचकदलीवाटनृत्यन्मयूरम् ।
मायूरैः पक्षचन्द्रैः क्वचिदपि पतितैः रञ्जितक्ष्माप्रदेशम्
देशे देशे विकीर्णप्रमुदितविलसन्मत्ताहारीतवृक्षम् ॥३६
सारङ्गैः क्वचिदपि सेवितप्रदेशं सञ्छन्नं कुसुमचयैः क्वचिद्विहङ्गैः ।
हृष्टाभिः क्वचिदपि किन्नराङ्गनाभिः
क्षीबाभिः समधुरगीतवृक्षखण्डम् ॥३७
संमृष्टे क्वचिदुपलिप्तकीर्णपुष्पैरावासैः परिवृतपादपं मुनीनाम् ।
आमूलात् फलनिचितैः क्वचिद्विशालैरत्तुङ्गैः
पनसमहीरुहैरुपेतम् ॥३८
फुल्लातिमुक्तकलतागृहसिद्धलीलं,
सिद्धाङ्गनाकनकनूपुरनादरम्यम् ।
रम्यप्रियङ्गुतरुमञ्जरिसक्तभृङ्गं भृङ्गावलीषु
स्खलिताम्बुकदम्बपुष्पम् ॥३९॥
पुन्नागहारानिलविघूर्णितपादपाग्रसद्भ्रमरो भुवि निपातितवंशगुल्मम् ।
गुल्मान्तरप्रसृतिलीनमृगीसमूहं संमुह्यतां तनुभृतामपवर्गदातृ ॥४०

सान्द्रांशुजालधवलैस्तिलकैर्मनोज्ञैः
सिन्दूरकुङ्कुमकुसुम्भनिभैरशोकैः ।
चामीकराभनिचयैरथ कर्णिकारैः
फुल्लारविन्दरचित सुविशालशाखैः ॥४१
क्वचिद्रजतपर्णाभैः क्वचिद्विद्रुमसन्निभैः ।
क्वचित्तप्तकाञ्चनसङ्काशैः पुष्पैराचितभूतलम् ॥ ४२

अभी तक निरन्तर उसी उद्यान की शोभा का ही वर्णन किया जा रहा है वह उद्यान हरे पत्तों के प्रवाह से विलसित होने वाले कमलों के द्वारा परम स्वच्छ एवं विस्तीर्ण जल वाला था। जलाशयों के तट पर समुत्पन्न एवं प्रविकच कदलियों के नाद से नृत्य करने वाले मयूरों से युक्त वह उद्यान था। किसी स्थल पर गिरे हुए मयूरों के पक्ष चन्द्रों के द्वारा रञ्जित शोभा प्रदान वाला था तथा देश-देश में विकीर्ण—प्रमुदित—विलसित मत्त हारीतों से संयुत वृक्षों वाला उद्यान था ॥३६॥ कहीं पर सारङ्गों से सेवित प्रदेश वाला और किसी स्थल पर विचित्र कुसुमों से चयों से संछन्न किसी स्थान पर परम शोभ एवं प्रहर्षित किन्नरों की अङ्गनाओं के द्वारा सुमधुर गीतों वाले वृक्षों के खण्डों से समन्वित वह उद्यान था ॥३७॥ कहीं पर समृष्ट तथा उपलिप्त प्रकीर्ण पुष्पों से युक्त मुनियों के निवास स्थानों से परिवृत पादपों से समन्वित वह उद्यान था। कहीं पर अत्यन्त विशाल एवं उत्तुङ्ग और मूल से ही लेकर फलों से निचित पनस (कटहर) के वृक्षों से उपेत वह उद्यान था ॥३८॥ विकसित और अतिमुक्त लताओं के गृहों में सिद्धों की लीला वाला था तथा सिद्धों की अङ्गनाओं के सुवर्ण रचित नूपुरों के नाद से परम सुन्दर वह उद्यान था। परिपक्व प्रियङ्गु के वृक्षों की मञ्जरियों में आसक्त भ्रमरों से समन्वित तथा भृङ्गों की कतारों से स्खलित होने वाले जल कदम्बों के पुष्पों से संयुत वह उद्यान था ॥३९॥ कुसुमों के उत्करों से मिश्रित वायु से विधूनित वृक्षों के अग्रभाग वाला तथा भूमण्डल में निपातित बालों की

झाड़ियों से युक्त था। कुञ्जों के बीच में लीन होने वाले मृगों के समुदाय वाला—सम्मोह को प्राप्त देहधारियों को अपवर्ग को देने वाला था। चन्द्रमा की किरणों के समान धवल [illegible] से तथा सिन्दूर, कुंकुम और कुसुम्भ के तुल्य अशोकों से—चामीकर (सुवर्ण) की आभा के समान कर्णिकारों से और परम विशाल शाखाओं के द्वारा फूले अरविन्दों से रचित वह उद्यान था। कहीं पर तो रजत वर्णों की आभा वाले—कहीं पर द्रुमों के सदृश—कहीं पर सुवर्ण के समान पुष्पों से समाचित सुगन्ध वाला वह उद्यान था ॥४१, ४२॥

पुन्नागेषु द्विजगणविरुतं रक्ताशोकस्तबकभरनमितम् ।
रम्योपान्तं श्रमहरपवनं फुल्लाब्जेषु भ्रमरविलसितम् ॥४३
सकलभुवनभर्ता लोकनाथस्तदानीं-
तुहिनशिखरिपुत्र्याः सार्द्धमिष्टैर्गणेशैः ।
विविधतरुविशालं मत्तहृष्टान्यपुष्ट-
मुपवनतटरम्यं दर्शयामास देव्याः ॥४४
उद्यानं दर्शितं देव ! शोभया परया युतम् ।
क्षेत्रस्य तु गुणान् सर्वान्पुनर्वक्तुमिहार्हसि ॥४५
अस्य क्षेत्रस्य माहात्म्यमविमुक्तस्य तत्त्वतः ।
श्रुत्वापि हि न मे तृप्तिस्ततो भूयो वदस्व मे ॥४६
इदं गुह्यतमं क्षेत्रं सदा वाराणसी मम ।
सर्वेषामेव भूतानां हेतुर्मोक्षस्य सर्वदा ॥४७
अस्मिन् सिद्धाः सदा देवि ! मदीयं व्रतमास्थिताः ।
नानालिङ्गधरा नित्यं मम लोकाभिकाङ्क्षिणः ॥४८
अभ्यसन्ति परं योगं युक्तात्मानो जितेन्द्रियाः ।
नानावृक्षसमाकीर्णे नानाविहगकूजिते ॥४९

वह दिव्य उद्यान ऐसा मनोरम था जिसमें पुन्नागों में द्विजगणों (पक्षियों) का कूजन हो रहा था और जो रक्त अशोकों के स्तबकों के भार

से नमित था जिसके उपवन परमरम्य थे—शारीरिक श्रम को हरण करने वाला वायु जिसमें वहन कर रहा था तथा विकसित कमलों में जिस उद्यान में भ्रमरों का विलास हो रहा था ॥४३॥ उस समय में समस्त भुवनों के भरण करने वाले—लोकों के नाथ ने अपने इष्ट गणेशों के साथ में तुहिन शिखर हिमालय अद्रिराज की पुत्री देवी पार्वती को अनेक प्रकार के वृक्षों अत्यन्त विशाल—मत्त एवं हृष्ट अण्डजों के द्वारा पुष्प और उपवन के समूहों से रम्य उस उद्यान को दिखा दिया था ॥४४॥ देवी ने कहा—हे देव ! परम शोभा से युक्त इस उद्यान को तो आपने दिखला दिया है । अब समस्त इस क्षेत्र के गुणों को यहाँ पर आप कहने के योग्य हैं । अवि-मुक्त इस क्षेत्र के माहात्म्य को श्रवण करके भी मुझे पूर्ण तृप्ति नहीं हुई है । इसलिए इसको ही आप पुनः मुझे श्रवण कराइये ॥४५, ४६॥ देवों के देव ने कहा—यह अत्यन्त ही गुह्यतम क्षेत्र है जो सदा मेरा वाराणसी है । यह सर्वदा सभी प्राणियों के मोक्ष का हेतु होता है ॥४७॥ हे देवि ! इस क्षेत्र में मेरा सिद्धगण मेरे ही व्रत में समाश्रित रहते हैं । ये लोग विभिन्न प्रकार के चिह्नों के धारण करने वाले और नित्य ही मेरे लोक के पाने की अभिकांक्षा वाले हैं ॥४८॥ मुक्त आत्मा वाले जिते-न्द्रिय लोग अनेक गुह्यों में संयमशील और नाना प्रकार के विघ्नों से कूजित इस स्थल में पर योग का अभ्यास किया करते हैं ॥४९॥

कमलोत्पलपुष्पाढ्यैः सरोभिः समलङ्कृते ।
अप्सरोगणगन्धर्वैः सदा संसेविते शुभे ॥५०
रोचते मे सदा वासो येन कार्येण तच्छृणु ।
मन्मना मम भक्तश्च मयि सर्वार्पितक्रियः ॥५१
यथा मोक्षमिहाप्नोति ह्यन्यत्र न तथा क्वचित् ।
एतन्मम परं दिव्यं गुह्याद्गुह्यतरं महत् ॥५२
ब्रह्मादयस्तु जानन्ति येऽपि सिद्धा मुमुक्षवः ।
अतः प्रियतमं क्षेत्रं तस्माच्चेह रतिर्मम ॥५३

विमुक्तं न मया यस्मान्मोक्ष्यते वा कदाचन ।
महत् क्षेत्रमिदं तस्मादविमुक्तमिदंस्मृतम् ॥५४
नैमिषेऽथ कुरुक्षेत्रे गङ्गाद्वारे च पुष्करे ।
स्नानात्संसेविताद्वापि न मोक्षः प्राप्यते यतः ॥५५
इह संप्राप्यते येन तत एतद्विशिष्यते ।
प्रयागे च भवेन्मोक्ष इह वा मत्परिग्रहात् ॥५६

कमल—उत्पल पुष्पों से आढ्य सरोवरों से समलङ्कृत—अप्सराओं के गण और गन्धर्वों के द्वारा सदा से सेवित शुभ स्थल यह है। जिस कार्य्य के कारण मुझे सदा इसका निवास पसन्द है उसे भी सुनलो। मेरे में ही मनको निवेशित करने वाला मुझ मे ही सर्वस्व समर्पित कर देने वाला तथा सब किये हुए कर्मों को भी मेरी ही सेवा मे अर्पित करने वाला मेरा भक्त जिस प्रकार से यहां मोक्ष की प्राप्ति कर लेता है वैसा अन्य किसी भी स्थान मे नहीं कर सकता है। यह ही मेरा परम दिव्य—महत् और गुह्य में गुह्यतम क्षेत्र है ॥५०, ५१, ५२॥ ब्रह्मादिक देवगण और जो भी मुमुक्षु सिद्ध लोग हैं वे इसे भली भांति जानते है। इसीलिये मेरा यह सबमें अधिक प्रिय क्षेत्र है और इसी कारण से मेरी यहां पर अत्यधिक रति है। इसी से मैंने इसको कभी नहीं छोड़ा है और न भविष्य में भी मेरे द्वारा इसका त्याग किया जायगा इसी से उसका यह महत् क्षेत्र है और यह उसका अविमुक्त कहा गया है ॥५३, ५४॥ नैमिष—कुरुक्षेत्र गङ्गाद्वार और पुष्कर मे स्नान करने से तथा सेवित करने से भी मोक्ष प्राप्त नहीं किया जाता है। वही परम दुर्लभ मोक्ष यहाँ पर सम्प्राप्त कर लिया जाया करता है इसी से यह सब से विशिष्ट होता है। या तो प्रयाग मे इस मोक्ष की प्राप्ति होती है अथवा यहाँ पर मेरे परिग्रह करने से मुक्ति हो जाती है ॥५५, ५६॥

प्रयागादपि तीर्थाग्र्यादिदमेव महत् स्मृतम् ।
जैगीषव्यः परां सिद्धिं योगतः स महातपाः ॥५७

देवि ! यहां पर ही मेरी समाराधना करके सत्युत्तम सिद्धि को प्राप्त करेगा ॥ ६३ ॥

पराशरसुतो योगी ऋषिर्व्यासो महातपाः ।
धर्मकर्त्ता भविष्यश्च वेदसंस्थाप्रवर्तकः ॥६४
रंस्यते सोऽपि पद्माक्षि ! क्षेत्रेऽस्मिन् मुनिपुङ्गवः ।
ब्रह्मा देवर्षिभिः सार्द्धं विष्णुर्वायुर्दिवाकरः ॥६५
देवराजस्तथा शक्रो येऽपि चान्ये दिवौकसः ।
उपासन्ते महात्मानः सर्वे सामेवसुव्रत ॥६६
अन्येऽपि योगिनः सिद्धाश्छन्नरूपा महाव्रताः ।
अनन्यमनसोभूत्वा मामिहोपासतेसदा ॥६७
अलर्कश्च पुरीमेताम् मत्प्रसादादवाप्स्यति ।
स चैना पूर्ववत्कृत्वा चातुर्वर्ण्याश्रमाकुलाम् । ६८
स्फाता जनसमाकीर्णां भक्त्याच सुचिरनृपः ।
मयि सर्वार्पितप्राणो मामेव प्रतिपत्स्यते ॥६९
ततः प्रभृति चार्वङ्गि ! येऽपि क्षेत्रनिवासिनः ।
गृहिणो लिङ्गिनो वापि मद्भक्ता मत्परायणाः ॥७०
मत्प्रसादाद्भजिष्यन्ति मोक्षं परमदुर्लभम् ।
विषयासक्तचित्तोऽपि त्यक्तधर्मरतिर्नरः ॥७१
इहक्षेत्रेमृतः सोऽपिसंसारंन पुनर्विशेत् ।
ये पुनर्निर्ममा धीरा सत्वस्था विजितेन्द्रियाः ॥७२

पराशर मुनि का पुत्र—महान् तपस्वी और योगी ऋषि व्यासदेव धर्मों का करने वाला—आगे भविष्य में होने वाला वेदों की संस्था का प्रवर्तक होगा ॥६४॥ हे पद्माक्षि ! वह मुनियों में परम श्रेष्ठ भी इसी क्षेत्र में रमण करेगा । ब्रह्मा—देवर्षियों के साथ विष्णु–वायु–दिवाकर–देवों का राजा इन्द्र और अन्य जो देवगण हैं वे सभी महान् आत्माओं

वाले हे सुव्रते ! मेरी ही उपासना किया करते है । इनके अतिरिक्त अन्य भी योगीजन—सिद्धगण और छिपे हुए महान व्रतो वाले लोग अनन्य मन वाले होकर यहा पर सर्वदा मेरी ही उपासना किया करते है । अलर्क इस पुरी को मेरे ही प्रसाद से प्राप्त करेगा और वह इस पुरी को पूर्व की ही भांति करके जो चारो वर्णो से समाकुल—स्फीत और जनो से समाकीर्ण है । वह नृप बहुत समय पर्यन्त अपनी भक्ति की उत्कट भावना के द्वारा प्राप्त करेगा और फिर सर्वार्पित प्राण वाला होकर अन्त मे मुझ को ही प्राप्त कर लेगा । हे चार्वङ्गि ! तभी से लेकर जो भी इस क्षेत्र के निवास करने वाले गृही एव लिङ्गो के धारण करने वाले—मुझमे ही परायण रहने वाले मेरे भक्त परम दुर्लभ मोक्ष का सेवन करेंगे और वह मेरे ही प्रसाद से होगा । विषयो मे समासक्त चित्त वाला भी धर्म मे रति के त्याग करने वाला मनुष्य इस परम पुण्य मय क्षेत्र मे मृत्युगत होकर फिर ससार मे प्रवेश प्राप्त नही किया करता है और जो निर्मम एव धीर तथा सत्वस्थ इन्द्रियो को नियन्त्रित रखने वाले है उनकी तो बात ही क्या है ।।६५।।
।।६६, ६७, ६८, ६९, ७०, ७१, ७२।।

निर्ममा निरहङ्कारा. सर्वे ते मयि भाविता ।
देहभङ्ग समासाद्य धीमन्त. सङ्गवर्जिताः ॥
गता एव पर मोक्ष प्रसादान्मम सुव्रते ।७३
जन्मान्तरसहस्रेषु युञ्जन् योगमवाप्नुयात् ।
तमिहैव पर मोक्ष मरणादधिगच्छति ।।७४
एतत्सङ्क्षेपतो देवि ! क्षेत्रस्यास्य महत्फलम् ।
अविमुक्तस्य कथित मया ते गुह्यमुत्तमम् ।।७५
अत परतर नास्ति सिद्धिगुह्य महेश्वरि ! ।
एतद्बुध्यन्ति योगज्ञा ये च योगेश्वरा भुवि ।।७६
एतदेव पर स्थानमेतदेव पर शिवम् ।
एतदेव परब्रह्म एतदेव परपदम् ।। ७७

व्रतों के धारण करने वाले—आरम्भों से रहित जो जन हैं वे सभी मुझमें भावित होते हैं और सर्व सङ्ग से रहित वे धीमान् देहों के भङ्ग को प्राप्त करके हे सुव्रते ! मेरे ही प्रसाद से परम मोक्ष को प्राप्त हो ही गये हैं ॥७३॥ सहस्रों जन्मों में योग का अभ्यास करके जिसकी प्राप्ति की जाती है उसी परम मोक्ष को यहां पर मरण करने से ही मनुष्य प्राप्त कर लेता है ॥७४॥ हे देवि ! यह अति संक्षेप से अविमुक्त इस क्षेत्र का महान् फल जो परम उत्तम और अत्यन्त गुह्यतम है मैंने आपको बतला दिया है। हे महेश्वरि ! इससे परतर कुछ भी सिद्धि गुह्य नहीं है। इसको योग के ज्ञाता और भूमण्डल में स्थित योगेश्वर गण ही जो होते हैं वे ही जानते हैं। यह ही सर्वोपरि परम स्थान है—यह ही परम शिव है—यह ही परम ब्रह्म है और यह ही सर्वोत्कृष्ट परम पद है ॥ ७५ ॥ ॥७६, ७७॥

वाराणसी तु भुवनत्रयसारभूता रम्या—
सदा मम पुरी गिरिराजपुत्रि ! ।
अत्रागता विविधदुष्कृतकारिणोऽपि—
पापक्षयाद्विरजसः प्रतिभान्ति मर्त्याः ॥७८
एतत्स्मृतं प्रियतमं मम देवि !
नित्यं क्षेत्रं विचित्रतरुगुल्मलतासु पुष्पम् ।
अस्मिन्मृतास्तनुभृतः पदमाप्नुवन्ति—
मूर्खागमेन रहितापि न संशयोऽत्र ॥७९
एतस्मिन्नन्तरे देवो देवीं प्राह गिरीन्द्रजाम् ।
दातुं प्रसादाद्यक्षाय वरं भक्ताय भामिनि ॥८०
भक्तो मम वरारोहे ! तपसा हतकिल्बिषः ।
अहो वरमसौ लब्धमस्मत्तो भुवनेश्वरि ! ॥८१
एवमुक्त्वा ततो देवः सह देव्या जगत्पतिः ।
जगाम यक्षो यत्रास्ते कृशोधमनिसन्ततः ॥८२

ततस्तं गुह्यकं देवी दृष्टिपातैर्निरीक्षती ।
श्वेतवर्णं विचार्माणं स्नायुबद्धास्थिपञ्जरम् ॥ ८३
देवी प्राह तदा देव दर्शयन्ती च गुह्यकम् ।
सत्य नाम भवानुग्रो देवैरुक्तस्तु शङ्कर ! ॥८४

यह वाराणसी पुरी हे गिरिराज पुत्रि ! तीनों भुवनों की सारभूता—सदा अतीव रम्य मेरी पुरी है। यहाँ पर आये हुए अनेक प्रकार के दुष्कृतों को करने वाले भी मनुष्य पापों के क्षय हो जाने से परम शुद्ध होकर दीप्तिमान् हो जाया करते हैं। हे देवि ! यह मेरा प्रियतम क्षेत्र है और नित्य है। यहाँ पर विचित्र तरु और लता तथा गुल्मों में पुष्प हुआ करते हैं। इस मृत्यु को प्राप्त होने वाले देहधारी लोग अत्यन्त मूर्ख एवं आगमों रहित होते हुए भी परम पद को प्राप्त किया करते हैं इसमें किञ्चित्मात्र भी संशय नहीं है ॥७८, ७९॥ महामहर्षि श्री सूतजी ने कहा—इसी अन्तर में वह देव गिरीन्द्रजा देवी से भक्त यक्ष के लिये प्रसन्नता से वरदान प्रदान करने के लिये बोले थे-हे भामिनि ! हे वरारोहे ! यह मेरा भक्त है और तपश्चर्या के द्वारा इसने अपने सब पापों को हत कर दिया है। हे भुवनेश्वरि ! इसने हमसे वर प्राप्त कर लिया है। इस प्रकार से कहकर जगत् के पति देव अपनी देवी के साथ वहाँ पर गये थे जहाँ पर अत्यन्त कृश केवल धमनियाँ ही शेष रहने वाला यक्ष तप में निमग्न था। इसके अनन्तर उस देवी ने अपनी दृष्टि के पातों से उस गुह्यक का निरीक्षण किया था। वह एकदम श्वेत वर्ण वाला—चर्म से रहित और स्नायुओं से बद्ध अस्थियों के पञ्जर वाला था। उस समय में देवी ने उस गुह्यक को दिखलाते हुए ही देव से कहा था कि हे शङ्कर ! जैसा कि देवों ने कहा था आप सचमुच ही बहुत उग्र रूप एवं स्वभाव वाले हैं ॥८०, ८१, ८२, ८३, ८४॥

ईदृशे चास्य तपसि न प्रयच्छसि यद्वरम् ।
अत्र क्षेत्रे महादेव ! पुण्यसम्यगुपासिते ॥८५

कथमेवं परिक्लेशं प्राप्तो यक्षकुमारकः ।
शीघ्रमस्य वर यच्छ प्रसादात् परमेश्वर ! ॥८६
एव मन्वादयो देव ! वदन्ति परमर्षयः ।
दृष्टाद्वाचाथ तुष्टाद्वा सिद्धिस्तूभयतोभवेत् ॥८७
भोगप्राप्तिस्तथा राज्यमन्तेमोक्षः सदाशिवात् ।
एवमुक्तस्ततो देव सह देव्या जगत्पतिः ॥८८
जगाम यक्षो यत्रास्ते कृशोधर्मनिसन्ततः ।
त दृष्ट्वा प्रणतं भक्त्या हरिकेश वृषध्वजः ॥८९
दिव्यञ्चक्षुरदात्तस्मै येनापश्यत् स शङ्करम् ।
अथ यक्षस्तदा देशाच्छनैरुन्मील्य चक्षुषी ॥
अपश्यन् सगण देवं वृषध्वजमुपस्थितम् ॥९०॥

हे महादेव ! इस क्षेत्र मे पुण्य की उपासना करने वाले इसके इस प्रकार के तप मे भी आप कोई अभी तक इस को वरदान नही दे रहे है—यही तो आपके स्वभाव की उग्रता है । हे परमेश्वर ! यह यक्ष का कुमार क्यो ऐसे महान् तपस्या के क्लेश को प्राप्त हो गया है ? आप प्रसन्न होकर अति शीघ्र ही इसको वरदान कीजिए प्रदान ।८५,८६। हे देव ! मनु आदि परमर्षिगण तो इसी प्रकार से कहा करते है कि कष्ट से अथवा तुष्ट से दोनो ही प्रकार से सिद्धि हुआ करती है । सदाशिव प्रभु से पहिले भोगो की प्राप्ति और राज्य प्राप्त हुआ करता है और अन्त मे मोक्ष के पाने का लाभ होता है । इस प्रकार से जब देवी के द्वारा देव से कहा गया था तो तुरन्त ही जगत् के स्वामी वह देव देवी के ही साथ मे वहा पर पहुँच गये थे जिस स्थल पर परम दुर्बल और शेष धमनियो वाला वह यक्ष तप मे लीन होकर समुपस्थित था । भक्ति से हरिकेश को प्रणाम करते हुए उसको देखकर भगवान् वृषध्वज ने दिव्य चक्षु प्रदान कर दी थी जिससे उसने शङ्कर को देख लिया था । इसके उपरान्त उसी समय मे वह यक्ष अपने चक्षुओ को उन्मीलित करके स्थान से धीरे से उठा था

और उसने गणो के सहित वहा पर समुपस्थित वृषध्वज देव को देखा था ॥८७, ८८, ८९, ९०॥

वरं ददामि ते पूर्वं त्रैलोक्ये दर्शनं तथा ॥९१
सावर्ण्यं च शरीरस्य पश्य मां विगतज्वरः ।
ततः स लब्ध्वा तु वरं शरीरेणाक्षतेन च ॥९२
पादयोः प्रणतस्तथाकृत्वा शिरसिसाञ्जलिम् ।
उवाचाथतदातेन वरदोऽस्मीतिचोदितः ॥९३
भगवन् ! भक्तिमव्यग्रा त्वय्यनन्या विधत्स्व मे ।
अन्नदत्वं च ते लोकानां गाणपत्यं तथाऽव्ययम् ॥९४
अविमुक्तं च ते स्थानं पश्येयं सर्वदा यथा ।
एतदिच्छामि देवेश त्वत्तो वरमनुत्तमम् ॥९५
जरा मरणसन्त्यक्तः सर्वरोगविवर्जितः ।
भविष्यसि गणाध्यक्षो धनदः सर्वपूजितः ॥९६
अजेयश्चापि सर्वेषां योगैश्वर्यं समाश्रितः ।
अन्नदश्चापि लोकेभ्यः क्षेत्रपालोभविष्यसि ॥९७
महाबलो महासत्वो ब्रह्मण्यो मम च प्रियः ।
त्र्यक्षश्च दण्डपाणिश्च महायोगी तथैव च ॥९८
उद्भ्रमः सम्भ्रमश्चैव गणौ तु परिचारकौ ।
तवाज्ञाञ्च करिष्येते लोकस्योद्भ्रमौ ॥९९
एवं स भगवांस्तत्र यक्षं कृत्वा गणेश्वरम् ।
जगाम वामदेवेशः सह तेनामरेश्वरः ॥१००

देवो के भी देव ने कहा—मैं पहिले तुझे वरदान देता हूं तथा त्रैलोक्य में दर्शन देता हूं । फिर विगत ज्वर वाला होकर शरीर की सवर्णता और मुझको देखना ॥९१ ॥ श्री सूतजी ने कहा—इसके उपरान्त उसने वरदान को पाकर अक्षत शरीर से शिव के चरणों में प्रणत होते हुए शिव पर दोनों हाथों की अञ्जलि बांधकर वहां पर

स्थित हो गया था फिर उसने उस समय में कहा था कि हे भगवन् ! मैं वर प्राप्त होने वाला हो गया हूं। अब तो आप अपने में अव्यग्र और अनन्य भक्ति मेरी को देवें तथा लोकों को अन्न का देने वाला एवं उच्चक्षय गाणपत्य पद प्रदान कीजिए। ६२, ६३, ६४॥ मुझे ऐसा ही बना दीजिये कि मैं सर्वदा आपके अविमुक्त स्थान का दर्शन करता रहूं। हे देवेश्वर ! आप से मैं यही उत्तम वरदान चाहता हूं ॥६५॥ देवों के देव ने कहा—जरा (वृद्धता) और मौत इन दोनों से सन्त्यक्त होता हुआ तू एवं रोगों से वर्जित रहेगा तथा सबके द्वारा पूजित गणों का अध्यक्ष छनद हो जायगा। योग के ऐश्वर्य का समाश्रय करके सबका तू अजेय होगा और लोकों के लिये अन्न का प्रदान करने वाला क्षेत्रपाल होगा। इसके अतिरिक्त तू महान् बल वाला-महान् सत्व से युक्त-ब्राह्मण्य त्र्यक्ष (तीन नेत्रों वाला)-दण्डपाणि-महायोगी और मेरा प्रिय हो जायगा ॥६६, ६७, ६८॥ उद्भ्रम और सम्भ्रम ये दो गण तुम्हारे परिचारक होंगे। लोक के उद्भ्रम और सम्भ्रम तेरी आज्ञा को करेंगे सूत जी ने कहा – इस तरह भगवान् ने उस यक्ष को गणेश्वर बनाकर अमरेश्वर वामदेव उसी के साथ चले गये थे। ॥ ६६, १०० ॥

॥ वाराणसी क्षेत्रमाहात्म्य ॥

इमापुण्योद्भवा स्निग्धाकथा पापप्राशिनीम्।
शृण्वन्तु ऋषय सर्वेसुविशुद्धास्तपोधनाः ॥१
गणेश्वरपति दिव्य रुद्रतुल्यपराक्रमम्।
सनत्कुमारो भगवानपृच्छन्नन्दिकेश्वरम् ॥२
ब्रूहि गुह्य यथा तत्व यत्र नित्य भव स्थितः।
माहात्म्यं सर्वभूताना परमात्मामहेश्वरः ॥३
घोररूप समास्थाय दुष्करं देवदानवैः।
आभूतसप्लव यावत् स्थाणुभूतो महेश्वरः ॥४

पुरा देवेन यत्प्रोक्तं पुराणं पुण्यमुत्तमम् ।
तत्सर्वं सम्प्रवक्ष्यामि नमस्कृत्य महेश्वरम् ॥५
तता देवेनतुष्टेन उमाया प्रियकाम्यया ।
कथितं भुविविख्यातं यत्र नित्यं स्वयंस्थितः ॥६
रुद्रस्यार्धासनगता मेरुशृङ्गे यशस्विनी ।
महादेवं ततो देवी प्रणता परिपृच्छति ॥७

महर्षि श्री सूतजी ने कहा—सुविशुद्ध—तप के धन वाले सब ऋषिगण आप लोग इस पुण्य से उत्पन्न हुई—पापों के नाश करने वाली अत्यन्त स्निग्ध कथा का श्रवण करिये ॥१॥ भगवान् सनत्कुमार ने गणेश्वरों के स्वामी—दिव्य और रुद्र के तुल्य पराक्रम से सम्पन्न नन्दिकेश्वर से पूछा था ॥२॥ हे भगवन् ! परम गुह्य तत्त्व जहाँ पर भगवान् नित्य ही स्थित रहा करते हैं—समस्त भूतों का माहात्म्य और परमात्मा महेश्वर देव—दानवों के साथ अतिदुष्कर और परम घोर रूप में समास्थित होकर स्थाणु भूत महेश्वर सब भूतों का संप्लव होता है तब तक रहा करते हैं। ॥३, ४॥ नन्दिकेश्वर ने कहा—पहिले समय में जो परम उत्तम पुराण पुण्य से संयुत देव ने कहा था वही सब मैं अब भगवान् महेश्वर को नमनमस्कार करके कहूँगा ॥५॥ इसके अनन्तर परम सन्तुष्ट हुए देव ने उमा के प्रिय की कामना से भूमण्डल में विख्यात को कहा था जहाँ कि वह स्वयं संस्थित थे ॥६॥ रुद्र के अर्द्धासन पर स्थित—मेरु शृङ्ग में संस्थित यशस्विनी देवी महादेव के सामने प्रणत हुई पूछती है ॥७॥

भगवन् ! देवदेवेश ! चन्द्रार्द्धकृतशेखर ! ।
धर्मं प्रब्रूहि मर्त्यानां भुवि संयोन्यरेलगाम् ॥८
जप्तं दत्तं हुतं चेष्टं तपस्तप्तं कृतञ्च यत् ।
ध्यानाध्ययनसम्पन्नं सर्वं भवति चाक्षयम् ॥९
जन्मान्तरसहस्रेण यत्पापं पूर्वसञ्चितम् ।
कथं तत्क्षयमायाति तन्ममाचक्ष्व शङ्कर ! ॥१०

यस्मिन् व्यवस्थितो भक्त्या तुष्यसे परमेश्वर ! ।
व्रतानि नियमाश्चैवआचारो धर्मएवच ॥११
सर्वसिद्धिकरं यत्र:ह्यक्षय्यगतिदायकम् ।
वक्तुमर्हसि तत्सर्वं परं कौतूहलं हि मे ॥१२
शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि गुह्यानां गह्यमुत्तमम् ।
सर्वक्षेत्रेषु विख्यातमविमुक्तं प्रिये मम ॥१३
अष्टषष्टि:पुराप्रोक्तास्थानानास्थानमुत्तमम् ।
यत्रसाक्षात्स्वयंरुद्र कृत्तिवासा स्वयंस्थित: ॥१४

हे भगवन् ! हे देवदेवेश ! हे आधे चन्द्र को शिर में धारण करने वाले ! आप कृपया भूमण्डल में मनुष्यों का और ऊर्ध्व देवताओं का धर्म्म बतलाओ ॥८॥ जाप–दान–हवन–इष्ट–तप और किया हुआ ध्यान—अध्ययन आदि यह सभी किस प्रकार से अक्षय होता है जो कभी भी क्षीण ही न होवे ? हे शङ्कर देव ! सहस्रो अन्य जन्मो में पूर्व से ही सञ्चित किया हुआ जो पाप है वह किस प्रकार से क्षय को प्राप्त हुआ करता है–यह सभी आप मुझको बतलाइये ॥९, १०॥ जिसमें विशेष रूप से अवस्थित होकर भक्ति से आप सन्तुष्ट हुआ करते हैं हे परमेश्वर ! उन व्रतों को—नियमों को—आचार को और धर्म को आप बतलाने के योग्य हैं जिसमें अक्षय गति के देने वाला और जो सम्पूर्ण सिद्धियों के करने वाले हों—यह सभी आप मुझे परम अनुग्रह करके बतलाइये । मेरे हृदय में इसके श्रवण करने का बड़ा भारी कौतूहल हो रहा है ॥११, १२॥ भगवान् महेश्वर ने कहा–हे देवि ! आप सुनिये ! मैं गोपनीय से भी अधिक गोपनीय और उत्तम जो भी है उसे सब तुमको बतला दूंगा । हे प्रिये ! समस्त क्षेत्रों में विख्यात अविमुक्त क्षेत्र मेरा अत्यन्त प्रिय होता है ॥१३॥ पहिले अड़सठ स्थानों में अत्युत्तम स्थान बतलाये हैं जहां पर कृत्तिका वसन धारण करने वाले साक्षात् स्वयं रुद्र स्थित रहा करते हैं ॥१४॥

यत्र सन्निहितो नित्यमविमुक्ते निरन्तरम् ।

तत्क्षेत्र न मयामुक्तमविमुक्तं ततः स्मृतम् ॥१५
अविमुक्तेपरा सिद्धिरविमुक्ते परा गतिः ।
जप्तं दत्तं हुतं नेष्टं तपस्तप्तं कृतं च यत् ॥१६
ध्यानमध्ययनं दानं सर्वं भवति चाक्षयम् ।
जन्मान्तरसहस्रेण यत्पापं पूर्वसञ्चितम् ॥१७
अविमुक्तं प्रविष्टस्य तत्सर्वं व्रजति क्षयम् ।
अविमुक्ताग्निना दग्धमग्नौ तूलमिवाहितम् ॥१८
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा वै वर्णसङ्कराः ।
कृमिम्लेच्छाश्च ये चान्ये सङ्कीर्णाः पापयोनयः ॥१९
कीटाः पिपीलिकाश्चैव ये चान्ये मृगपक्षिणः ।
कालेन निधनं प्राप्ता अविमुक्ते शृणु प्रिये ! ॥२०
चन्द्रार्द्धमौलिनः सर्वे ललाटाक्षा वृषध्वजाः ।
शिवे मम पुरे देवि ! जायन्ते तत्र मानवाः ॥२१

जिस अविमुक्त में निरन्तर नित्य ही मैं सन्निहित रहा करता हूँ और मेरे द्वारा वह क्षेत्र कभी भी मुक्त नहीं किया जाता है इसीलिये वह अविमुक्त-इस नाम से कहा गया है ॥१५॥ उस अविमुक्त स्थान में सर्वोत्तम परा सिद्धि होती है और उस अविमुक्त में परागति हुआ करती है। जाप-दान-हुत-नेष्टा-तप्त तपस्या और किया हुआ धर्म का कार्य-ध्यान-अध्ययन-दानादि यह सभी वहाँ पर अक्षय होता है। सहस्रों पूर्व में हुए जन्मों में जो भी कुछ पाप कर्म सञ्चित हो गया है वह भी सब अविमुक्त नामक मेरे परम प्रिय स्थान में प्रवेश करने वाले पुरुष के सभी कुछ तुरन्त ही क्षय को प्राप्त हो जाया करते हैं। वह सब अग्नि में आहित तूल की ही भाँति अविमुक्त स्थल की अग्नि से दग्ध हो जाया करता है ॥१६, १७, १८॥ ब्राह्मण—क्षत्रिय-वैश्य शूद्र और वर्णसङ्कर—कृमि—म्लेच्छ और भी अन्य सङ्कीर्ण पाप योनि वाले हैं तथा कीट—पिपीलिका (चींटियाँ) और जो अन्य मृग एवं पक्षिगण हैं हे प्रिये! वे सब

काल मे अविमुक्त क्षेत्र में मृत्यु को प्राप्त होते हैं उनके विषय में श्रवण करलो। हे देवि ! वे सभी चन्द्रार्द्ध मौलि वाले—वृषध्वज और ललाट मे नेत्र वाले होकर मेरे शिवपुर मे मानव होकर जन्म ग्रहण किया करते हैं ॥१६, २०, २१॥

अकामो वा सकामोवाह्यपितिर्यग्गतोऽपि वा ।
अविमुक्तेत्यजन्प्राणान्ममलोकेमहीयते ॥२२
अविमुक्तं यदागच्छेन्कदाचित्कालपर्ययात् ।
अश्मनाचरणौ वद्ध्वा तत्रैवनिधन व्रजेत् ॥२३
अविमुक्तं गतोदेवि ! ननिर्गच्छेत्ततः पुन. ।
सोऽपिमत्पदमाप्नोति नात्रकार्याविचारणा ॥२४
वस्त्रप्रद रुद्रकोटि सिद्धेश्वरमहालयम् ।
गोकर्णं रुद्रकर्णञ्च सुवर्णाक्ष तथैव च ॥२५
अमरञ्च महाकाल तथा कायावरोहणम् ।
एतानि हि पवित्राणि सान्निध्यात् सन्ध्ययोर्द्वयोः ॥२६
कालिञ्जरवनञ्चैव शकु कर्णं स्थलेश्वरम् ।
एतानि च पवित्राणि सान्निध्याद्धि ममप्रिये ॥
अविमुक्ते वरारोहे ! त्रिसन्ध्य नात्र संशयः ॥२७॥
हरिश्चन्द्र पर गुह्यं गुह्यमाम्रातकेश्वरम् ।
जलेश्वर पर गुह्य गुह्यं श्रीपर्वत तथा ॥२८

बिना कामना वाला हो अथवा सकाम हो अथवा तिर्यग् योनि मे रहने वाला हो कोई भी कैसा ही हो अविमुक्त क्षेत्र मे प्राणो का त्याग करता हुआ फिर मेरे ही लोक में जाकर प्रतिष्ठित हुआ करता है। किसी भी समय मे काल के पर्यय से अब भी उस अविमुक्त मे चला जावे तो पाषाण से अपने चरणो को बाँधकर वही पर निधन को प्राप्त हो जाना चाहिए अर्थात् वहाँ पहुँच कर फिर उस क्षेत्र को किसी भी तरह से मृत्यु तक नही छोड़ना चाहिये ॥२२, २३॥ जो कोई भी किसी भी तरह से

यदि मेरे परम प्रिय अविमुक्त क्षेत्र मे एक बार प्राप्त हो जावे तो फिर उससे कभी भी निकल कर नहीं जाना चाहिये। वह पुरुष भी मेरे पद को प्राप्त हो जाया करता है—इसमें कुछ भी विचार करने की आवश्यकता नहीं है ॥२४॥ अम्बपद—रुद्र कोटि—सिद्धेश्वर महालय—गोकर्ण—रुद्रकर्ण—सुवर्णाक्ष—अमर—महाकाल—कायावरोहण ये स्थल भी दोनों सन्ध्याओं के सान्निध्य होने से परम पवित्र स्थल है ॥२५॥ कालिञ्जर वन—शङ्कुकर्ण—स्थलेश्वर ये स्थल भी पवित्र है हे प्रिये! मेरे सान्निध्य होने के कारण से ही ये पवित्र होते हैं। हे वरारोहे! अविमुक्त मे सिन्निध्य है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥२६, २७॥ हरिश्चन्द्र परम गुह्य है और आम्रातकेश्वर भी गोपनीय है। जलेश्वर गुह्य है तथा श्रीपर्वत भी उसी भाँति गुह्य स्थल होता है ॥२८॥

महालयं तथा गुह्यं कृमिचण्डेश्वरं शुभम्।
गुह्यातिगुह्यं केदारं महाभैरवमेव च ॥२९
अष्टावेतानि स्थानानि सान्निध्यादि मम प्रिये!।
अविमुक्तेवरारोहे! शिव ध्यन्तःसमाय ॥३०

यानि स्थानानि श्रूयन्ते त्रिषु लोकेषु सुव्रते!।
अविमुक्तस्य पादेषु नित्यसन्निहितानि वै ॥३१
अथोत्तरा कथा दिव्याविमुक्तस्य शोभने।
स्कन्दो वक्ष्यति माहात्म्यमृषीणां भावितात्मनाम् ॥३२

महालय उसी भाँति गुह्य है और कृमि चण्डेश्वर परम शुभ है। गुह्य से भी अधिक गुह्य केदार तथा महाभैरव है ॥२९॥ हे प्रिये! ये आठ स्थान हे प्रिये! मेरे ही सान्निध्य से हे वरारोहे! अविमुक्त मे सिन्निध्य हैं—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥३०॥ हे सुव्रते! तीनों लोकों मे जो भी स्थान सुने जाते है वे सभी अविमुक्त क्षेत्र के पादों मे नित्य ही सन्निहित रहा करते हैं। इसके अनन्तर दिव्य उत्तर कथा जो कि अवि-

मुक्त की है उसे हे शोभने ! उसको जिसमें भावितात्मा ऋषियों का माहात्म्य है अब स्कन्द बतलायेगा ॥३१, ३२॥

७५—नर्मदामाहात्म्य

माहात्म्यमविमुक्तस्य यथावत् कथितन्त्वया ।
इदानीं नर्मदायास्तु माहात्म्यंवदसत्तम ! ॥१
यत्रोङ्कारस्य माहात्म्यं कपिलासङ्गमस्य च ।
अमरेशस्य चैवाहुर्माहात्म्यं पापनाशनम् ॥२
कथं प्रलयकाले तु न नष्टा नर्मदा पुरा ।
मार्कण्डेयश्च भगवान्न विनष्टस्तदा किल ॥
त्वयोक्तं तदिदं सर्वं पुनर्विस्तरतो वद ॥३
एतदेव पुरा पृष्टः पाण्डवेन महात्मना ।
नर्मदायास्तु माहात्म्यं मार्कण्डेयो महामुनिः ॥४
उग्रेण तपसा युक्तो वनस्था वनवासिना ।
दृष्ट. पूर्वा महाभाग्या धर्मपुत्रेण धीमता ॥५
श्रुता मे विविधा धर्मास्त्वत्प्रसादाद्द्विजोत्तम ! ।
भूयश्चश्रोतुमिच्छामि तन्मे कथयसुव्रत ! ॥६
कथमेषा महापुण्या नदी सर्वत्र विश्रुता ।
नर्मदा नाम विख्याता तन्मे ब्रूहि महामुने ! ॥७

ऋषिगण ने कहा—हे श्रेष्ठतम ! आपने अविमुक्त क्षेत्र का माहात्म्य यथा रीति से कह दिया है अब नर्मदा का माहात्म्य वर्णन करने की कृपा कीजिए ॥ १ ॥ जिसमें ओङ्कार का माहात्म्य—कपिला सङ्गम का माहात्म्य तथा पापों के नाश करने वाले अमरेश का माहात्म्य कहा जाता है ॥२॥ पहिले प्रलय काल में जब सभी विनिष्ट हो जाया करते हैं यह नर्मदा कैसे नष्ट नहीं हुई थी और उस समय में भगवान् मार्कण्डेय भी विनष्ट नहीं हुए थे—यह सभी आपने पूर्व में वर्णित किया था अब पुनः

इस सबका विस्तार पूर्वक वर्णन करने की आप कृपा कीजिए ॥३॥ श्री सूतजी ने कहा—यह ही प्रश्न इसी तरह से महात्मा पाण्डव ने महामुनि मार्कण्डेय से पूछा था जिसमे नर्मदा का माहात्म्य भी था। मार्कण्डेय महामुनि परम उग्र तप मे युक्त थे उनसे वन मे ही निवास करने वाले धीमान् धर्म्म पुत्र ने पहिली इस महा गाथा को पूछा था ॥४, ५॥ युधिष्ठिर ने कहा—हे द्विजो मे परम उत्तम ! आपके ही प्रसाद से मैंने अनेक प्रकार के धर्मों का श्रवण किया था। हे सुव्रत ! अब मैं पुनः उनको ही सुनना चाहता हूँ सो आप मेरे सामने उन्हें कहिए ॥६॥ यह महान् पुण्यो वाली नदी सर्वत्र कैसे प्रसिद्ध हुई है ? तथा इसका नर्मदा—यह नाम भी किस प्रकार से हे महामुने ! विख्यात हुआ है—इसे ही आप सर्व प्रथम मुझे बतलाइये ॥७

नर्मदा सरिता श्रेष्ठा सर्वपापप्रणाशिनी।
तारयेत सर्व भूतानि स्थावराणि चराणि च ॥८
नर्मदायास्तु माहात्म्य पुराणे यन्मया श्रुतम्।
तदेतद्धि महाराज ! तत्सर्वं कथयामि ते ॥९
पुण्या कनखले गङ्गा कुरुक्षेत्रे सरस्वती।
ग्रामे वा यदि वाऽरण्ये पुण्या सर्वत्र नर्मदा ॥१०
त्रिभिः सारस्वत तोय सप्ताहेन तु यामुनम्
सद्यः पुनाति गाङ्गेय दर्शनादेव नार्मदम् ॥११
कलिङ्गदेशे पश्चार्द्धे पर्वतेऽमरकण्टके।
पुण्ये च त्रिषु लोकेषु रमणीया मनोरमा ॥१२
सदेवासुरगन्धर्वा ऋषयश्च तपोधनाः।
तपस्तप्त्वा महाराज ! सिद्धिश्च परमाङ्गता ॥१३
तत्र स्नात्वानरो राजन्नियमस्थो जितेन्द्रियः।
उपोष्य रजनीमेका कुलानां तारयच्छताम् ॥१४

मार्कण्डेय जी ने कहा—यह नर्मदा समस्त सरिताओ मे श्रेष्ठ है

और सम्पूर्ण पापों का विनाश कर देने वाली है। यह सभी स्थावर तथा चर प्राणियों का तारण कर दिया करती है। नर्मदा नदी का माहात्म्य जो कि मैंने पुराणों में श्रवण किया है हे महाराज! इसका सम्पूर्ण माहात्म्य अब मैं आपसे कहता हूँ ॥८॥९॥ गङ्गा कनखल में—सरस्वती कुरुक्षेत्र में—पुण्यमयी है किन्तु नर्मदा ग्राम तथा अरण्य में सर्वत्र परम पुण्यमयी होती है ॥१०॥ सरस्वती का जल तीन दिन में—यमुना का जल एक सप्ताह मे और गङ्गा भागीरथी का जल तुरन्त पान करते ही मनुष्य को पवित्र कर उसके पापो का नाश कर देता है किन्तु नर्मदा के जलके तो दर्शन मात्र से ही पापो का विनाश हो जाया करता है ॥११॥ कालिङ्ग देश मे पीछे के अर्द्ध भाग मे अमर कण्टक पर्वत मे जो कि परम पुण्यमय है तथा तीनों लोकों मे यह नर्मदा अतीव मनोरम और रमणीय है ॥१२॥ हे महाराज! देव—गन्धर्व—असुर और तप के ही धन वाले ऋषिगण यहां पर तपश्चर्या करके परम सिद्धि को प्राप्त हुए हैं। उसमे स्नान करके हे राजन्! नियमो से संस्थित तथा इन्द्रियो को जीतने वाला एक रात्रि मे ही निवास करके अपने सौ कुलो का उद्धार कर दिया करता है ॥१३॥१४॥

जलेश्वरे नरः स्नात्वा पिण्डं दत्त्वा यथाविधि।
पितरस्तस्य तृप्यन्ति यावदाभूतसम्प्लवम् ॥१५
पर्वतस्य समन्तात्तु रुद्रकोटिः प्रतिष्ठिता।
स्नात्वा यः कुरुते तत्र गन्धमाल्यानुलेपनं ॥१६
प्रीतस्तस्य भवेच्छर्वो रुद्रकोटिर्न संशयः।
पश्चिमे पर्वतस्यान्ते स्वयं देवो महेश्वरः ॥१७
तत्र स्नात्वा शुचिर्भूत्वा ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः।
पितृकार्यञ्च कुर्वीत विधिवन्नियतेन्द्रियः ॥१८
तिलोदकेन तत्रैव तर्पयेत् पितृदेवताः।
आसप्तमं कुलं तस्य स्वर्गे मोदेत पाण्डव! ॥१९

षष्टिवर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ।
अप्सरोगणसंकीर्णे सिद्धचारण सेविते ॥२०
दिव्यगन्धानुलिप्तश्च दिव्यालङ्कार भूषितः ।
ततः स्वर्गात्परिभ्रष्टो जायते विपुले कुले ॥२१

जलेश्वर मे मनुष्य स्नान करके विधि पूर्वक पिण्डदान करके पितृगण भूतो के सम्प्लव पर्य्यन्त संतृप्त रहा करते हैं ॥१५॥ पर्वत के चारो ओर रुद्र कोटि प्रतिष्ठित है वहाँ पर स्नान करके जो कोई गन्ध माल्यो और अनुलेपनो मे अभ्यर्चन किया करता है उससे रुद्र कोटि शर्व परम प्रसन्न होते हैं—इसमे कुछ भी संशय नही है । पर्वत के अन्त मे पश्चिम मे स्वयं महेश्वर देव समवस्थित रहा करते हैं ॥१६॥१७॥ वहां पर स्नान करके और परम शुचि होकर ब्रह्मचर्य से रहने वाले जितेन्द्रिय पुरुष को इन्द्रियो को नियत रखते हुए विधि पूर्वक पितृ कार्य्य करना चाहिए ॥ १८ ॥ वहीं पर तिलोदक के द्वारा पितृ देवताओ का तर्पण करना चाहिये । हे पाण्डव ! उसके सात कुल तक स्वर्ग मे आनन्द पूर्ण निवास किया करते हैं ॥१९॥ अप्सराओ के गणो से सेवित एव संकीर्ण तथा सिद्धो एवं चारणो से निषेवित स्वर्ग लोक मे वह साठ हजार वर्ष पर्य्यन्त प्रतिष्ठित रहा करता है ॥ २० ॥ दिव्य गन्धो से अनुलिप्त एवम् दिव्य आभरणो से विभूषित वह स्वर्गीय सुख भोग करके जब वहां से परिभ्रष्ट होता है तो इस भूखण्ड मे किसी बडे श्री सम्पन्न कुल मे जन्म ग्रहण किया करता है ॥२१॥

धनवान् दानशीलश्च धार्मिकश्चैव जायते ।
पुनः स्मरति तत्तीर्थं गमनं तत्र रोचते ॥२२
कुलानि तारयेत् सप्त रुद्रलोकं स गच्छति ।
योजनानां शतं साग्रं श्रूयते सरिदुत्तमा ॥२३
विस्तारेण तु राजेन्द्र ! योजनद्वयमायता ।
षष्टितीर्थसहस्राणि षष्टिकोट्यस्तथैव च ॥ २४

सर्वं तस्य समन्तात्तु तिष्ठतेऽमरकण्टके ।
ब्रह्मचारी शुचिर्भूत्वा जितक्रोधो जितेन्द्रियः ॥२५
सर्वहिंसानिवृत्तस्तु सर्वभूतहिते रतः ।
ब्रह्मचारी शुचिर्भूत्वा जितक्रोधो परित्यजेत् ॥२६
तस्य पुण्यफलं राजन् ! शृणुष्वावहितो मम ।
शतवर्षसहस्राणि स्वर्गे मोदेत पाण्डव ! ॥२७
अप्सरोगणसंकीर्णे सिद्धचारणसेविते ।
दिव्यगन्धानुलिप्तश्च दिव्यपुष्पोपशोभितः ॥२८
क्रीडन् देवलोकस्थो दैवतैः सह मोदते ।
ततः स्वर्गात्परिभ्रष्टो राजा भवति वीर्यवान् ॥२९

वह यहां पृथ्वी तल में समुत्पन्न होकर बहुत बड़ा धनी—दान करने के स्वभाव वाला और धार्मिक हुआ करता है। वह फिर उसी तीर्थ का स्मरण करता है और वहां पर गमन करना उसे अच्छा लगता है। वह अपने सात कुलों को तार दिया करता है और वह रुद्र लोक में चला जाता है। यह उत्तम सरित् डेढ़ सौ योजनों के विस्तार वाली सुनी जाती है ॥२२, २३॥ हे राजेन्द्र ! यह दो योजन विस्तार में आयत है। साठ सहस्र तथा साठ करोड़ तीर्थ उसके चारों ओर अमर कण्टक में स्थित है। जो कोई ब्रह्मचर्य पालन करने वाला—परम शुचि—क्रोध को जीतने वाला और इन्द्रियों को वश में रखने वाला होकर सभी प्रकार की हिंसा से निवृत्त—समस्त प्राणियों के हित में रति रखने वाला भगवान् ध्यान में ही समाचरण करते हुए अपने प्राणों का परित्याग किया करता है। हे राजन् ! उसके इस वाले पुण्यों के फल को तुम परम सावधान होकर श्रवण करो। हे पाण्डव ! वह सौ सहस्र वर्ष तक स्वर्ग में आनन्दित जीवन यापन किया करता है ॥२४, २५, २६, २७॥ अप्सराओं के गणों से समाकुल सिद्ध और चारणों के द्वारा सेवित स्वर्ग में दिव्य गन्ध से अनुलिप्त एवं दिव्य पुष्पों से उपशोभित होता हुआ देव लोक में स्थित

होकर देवगणों के साथ क्रीडा और आनन्द किया करता है फिर उस स्वर्ग से जब परिभ्रष्ट होता है तो परम बल—वीर्य वाला राजा होता है।
॥२८, २९॥

गृहन्तु लभते स वै नानारत्नविभूषितम् ।
स्तम्भैर्मणिमयैर्दिव्यैर्वज्रवैदूर्यभूषितैः ॥३०

आलेख्यसहितं दिव्यं दासीदाससमन्वितम् ।
मत्तमातङ्गशब्देन हयानां हेषितेन च ॥३१

क्षुभ्यते तस्य तद्द्वारं इन्द्रस्य भवनं यथा ।
राजराजेश्वरः श्रीमान् सर्वस्त्रीजनवल्लभः ॥३२

तस्मिन् गृहे वसित्वा तु क्रीडाभोगसमन्वितः ।
जीवेद्वर्षशतं साग्रं सर्वरोगविवर्जितः ॥३३

एवं भोगो भवेत्तस्य यो मृतोऽमरकण्टके ।
अग्नौ विषजले वापि तथा चैव ह्यनाशके ॥३४

अनिवर्तिका गतिस्तस्य पवनस्याम्बरे यथा ।
पतनं कुरुते यस्तु अमरेशे नराधिप ! ॥३५

उस को वहाँ पर गृह भी अनेक रत्नों से समलंकृत—हीरा और वैदूर्य मणियों से परिपूर्ण, दिव्य स्तम्भों से समन्वित—आलेख्यों से चित्रित—दास और दासियों से संयुत था। प्रमत्त हाथियों के चिंघाड़ों से तथा अश्वों की हिनहिनाहट से उसके गृह का द्वार इन्द्र के भवन की भाँति क्षुब्ध रहा करता था। उस घर में श्री सम्पन्न सब स्त्री जनों का वल्लभ वह राज राजेश्वर निवास किया करता है जो पूर्ण क्रीडा और भोगों से युक्त था। वहाँ पर सभी प्रकार के रोगों से रहित होकर वह डेढ़ सौ वर्ष तक जीवित रहता है। जो कोई पुरुष उस अमर कण्टक में मृत्यु को प्राप्त होता है उसे इसी प्रकार के भोगों के उपभोग करने का अवसर प्राप्त होता है। जो अग्नि में—विषजल में तथा अनाशक में हे नराधिप ! अमरेश में पतन किया करता है उसकी अम्बर में पवन की भाँति अनिवर्तित गति हुआ करती है ॥३०, ३१, ३२, ३३, ३४, ३५॥

कन्यानां त्रिसहस्राणि एकैकस्यापि चापरे ।
तिष्ठन्ति भुवने तस्य प्रेपणं प्रार्थयन्ति च ॥३६
दिव्यभोगैः सुसम्पन्नः क्रीड़ते कालमक्षयम् ।
पर्वतस्य समन्तात्तु रुद्रकोटिः प्रतिष्ठिताः ॥३७
स्नानं यः कुरुते तत्र गन्धमाल्यानुलेपनैः ।
प्रीतःसोऽस्य भवेत् सर्वो रुद्रकोटिर्नसंशय· ॥३८
पश्चिमे पर्वतस्यान्ते ह्यय देवो महेश्वरः ।
तत्र स्नात्वा शुचिर्भूत्वा ब्रह्मचारीजितेन्द्रिय. ॥३९
पितृकार्यञ्च कुर्वीत विधिवन्नियतेन्द्रियः ।
तिलोदकेन विधिवत्तर्पयेत् पितृदेवताः ॥४०
आसप्तम कुलन्तस्य स्वर्गे मोदेत पाण्डव ! ।
षष्टिवर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥४१
दिव्यगन्धानुलिप्तश्च दिव्यालङ्कारभूषित. ।
तत. स्वर्गात्परिभ्रष्टो जायते विपुले कुले ॥४२

तीन सहस्र कन्याएं और एक-एक की दूसरे उसके भुवन में स्थित रहती है एवं प्रेपण की प्रार्थनाएं किया करती है। इस प्रकार से परम दिव्य भोगों से सुसम्पन्न होकर वह अक्षय काल पर्यन्त क्रीडा करता है। उस पर्वत के चारों ओर रुद्र कोटि प्रतिष्ठित हैं। जो पुरुष वहां पर स्नान किया करता है और दिव्य गन्धों के अनुलेपनों से संयुत होता है उस पर वह सम्पूर्ण रुद्र कोटि परम प्रसन्न होता है—इसमें तनिक भी संशय नहीं है ॥३६, ३७, ३८॥ इस पर्वत के पश्चिमीय अन्त भाग में यह महेश्वर देव स्वयं विराजमान हैं। वहां पर स्नान करके और शुचि होकर—ब्रह्मचारी एवं इन्द्रिय जीत रहकर जो नियत इन्द्रियों वाला अपने पितृगण के अभ्यर्चन—तर्पण आदि का विधि के साथ कार्य किया करता है और तिलों के सहित उदक से विधि पूर्वक पित देवताओं का तर्पण करता है हे पाण्डव ! उसके सात कुलों तक के सब लोग स्वर्ग का आनन्द निवास

प्राप्त करते है और साठ हजार वर्ष तक वे सब और स्वय वह स्वर्ग लोक में प्रतिष्ठित पद पर समारूढ रहता है फिर स्वर्गीय सुखोपभोग की अवधि समाप्त होने पर वहा से परिभ्रष्ट होकर दिव्यगन्ध से समनुलिप्त तथा परम दिव्य आभूषणो से परिष्कृत होकर यहाँ किसी बहुत बड़े कुल मे समुत्पन्न हुआ करता है ॥३६, ४०, ४१, ४२॥

धनवान् दानशीलश्च धार्मिकश्चैव जायते ।
पुनः स्मरति तीर्थं गमनं तत्र रोचते ॥४३
तारयेत्तु कुलान् सप्त रुद्रलोकं स गच्छति ।
योजनानां शतं साग्रं श्रूयते सरिदुत्तमा । ४४
विस्तारेण तु राजेन्द्र ! योजनद्वयमायता ।
षष्टितीर्थसहस्राणि षष्टिकोट्यस्तथैव च ॥४५
पर्वतस्य समन्तात्तु तिष्ठत्यमरकण्टके ।
ब्रह्मचारी शुचिर्भूत्वा जितक्रोधो जितेन्द्रियः ॥४६
सर्वहिंसानिवृत्तस्तु सर्वभूतहिते रतः ।
एवं सर्वसमाचारो यस्तु प्राणान् परित्यजेत् ॥४७
तस्य पुण्यफलं राजन् ! शृणुष्वावहितो मम ।
शतं वर्षसहस्राणां स्वर्गे मोदेत पाण्डव ! ॥४८
पृथिव्यामासमुद्रायामीदृशो नैव जायते ।
यादृशोऽयं नृपश्रेष्ठ ! पर्वतेऽमरकण्टके ॥४९

वह यहाँ पर उत्पन्न होकर बहुत बड़ा धनी—दाता धार्मिक होता है और फिर भी वह उसी तीर्थ का स्मरण किया करता है तथा वहीं पर गमन करने की उसकी रुचि रहती है। वह अपने सात कुलों को तार दिया करता है और अन्त में रुद्र लोक को चला जाता है। यह उत्तम सरिता सौ और अधिक योजनों के विस्तार वाली सुनी जाती है ॥४३, ४४॥ हे राजेन्द्र यह दो योजन के विस्तृत आयत वाली है। अमर कण्टक में इसके चारों ओर बहुत तीर्थ है जिनकी संख्या साठ हजार तथा साठ करोड़

बताई जाती है। वहां पर ब्रह्मचारी—शुचि—जितक्रोध—जितेन्द्रिय—सब प्रकार की हिंसा से निवृत—सवभूतों के हित में रत और शिव में समाचरण करने वाला जो अपने प्राणों का त्याग करता है हे राजन्! उस का जो परम महान् पुण्य-फल हुआ करता है उसे अवहित होकर सुन लो। हे पाण्डव! वह पुरुष एक सौ सहस्र वर्ष पर्यन्त स्वर्ग में आनन्द प्राप्त किया करता है समुद्र पर्यन्त पृथ्वी में इस प्रकार का कोई भी उत्पन्न नहीं होता है, हे नृप श्रेष्ठ! जैसा यह अमरकण्टक पर्वत में हुआ करता है ॥४५, ४६, ४७, ४८, ४९॥

तावत्तीर्थं तु विज्ञेयं पर्वतस्य तु पश्चिमे।
ह्रदो जलेश्वरो नाम त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ॥५०
तत्र पिण्डप्रदानेन सन्ध्योपासनकर्मणा।
पितरो दशवर्षाणि तर्पितास्तु भवन्ति वै ॥५१
दक्षिणे नर्मदाकूले कपिलेति महानदी।
सरलार्जुनसंछन्ना नातिदूरे व्यवस्थिता ॥५२
सापि पुण्या महाभागा त्रिषु लोकेषु विश्रुता।
तत्र कोटिशतं साग्रं तीर्थानां तु युधिष्ठिर ॥५३
पुराणेश्रूयतेराजन्! सर्वंकोटिगुणं भवेत्।
तस्यास्तीरेतु ये वृक्षाः पतिताः कालपर्ययात् ॥५४
नर्मदातोयसंस्पृष्टास्तेऽपियान्तिपरांगतिम्।
द्वितीया तु महाभागाविशल्यकरणीशुभा ॥५५
तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा विशल्यो भवति क्षणात्।
तत्रदेवगणाः सर्वे सकिन्नरमहोरगाः ॥५६
यक्षराक्षसगन्धर्वा ऋषयश्च तपोधनाः।
सर्वे समागतास्तत्र पर्वतेऽमरकण्टके ॥५७

उस पर्वत के पश्चिम भाग में उस तीर्थ को जान लेना चाहिये जिस का जलेश्वर ह्रद है और वह तीनों लोकों में बहुत ही विख्यात है ॥५०॥

यहां पर पिण्डों का प्रदान करने से तथा सन्ध्योपासना के कर्म्म से पितृगण दशवर्षों तक परम तृप्त रहा करते है। नर्मदा नदी के दक्षिण तट पर कपिला नाम वाली एक महानदी है। यह सम्पूर्ण अर्जुन के वृक्षों से सच्छन्न रहने वाली है और वह उससे अधिक दूर मे व्यवस्थित नही है अर्थात् बहुत ही समीप मे ही है ॥५१, ५२॥ वह नदी भी अति पुण्यमयी और महाभागा है तथा लोकों मे बहुत प्रसिद्ध भी है। हे युधिष्ठिर ! वहां पर डेढ़ सौ करोड़ तीर्थ है ॥५३॥ हे राजन् ! पुराण मे यह श्रवण किया जाता है कि सब कोटि गुण वाला होता है। उस के तट पर जो वृक्ष काल के विपर्यय से पतित हो गये है और नर्मदा नदी के जल से जिनका स्पर्श हो गया है वे जड़ भी परमोत्तम गति को प्राप्त किया करते है। दूसरी एक नदी परम शुभ महाभागा व शल्य करणी है। उस तीर्थ मे मनुष्य स्नान करके क्षणमात्र मे ही विगत शल्य वाला हो जाया करता है। वहां पर उसी अमरकण्टक पर्वत मे समस्त देवगण—किन्नर—महोरग—यक्ष—राक्षस—गन्धर्व और तप के ही धन वाले ऋषि वृन्द समागत होते है ॥५४, ५५, ५६, ५७॥

तैस्तु सर्वै समागम्य मुनिभिश्च तपोधनैः।
नर्मदामाश्रिता पुण्या विशल्यानाम नामतः ॥५८
उत्पादिता महाभागा सर्वपापप्रणाशिनी।
तत्र स्नात्वा नरो राजन् ! ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः ॥५९
उपोष्य रजनीमेकां कुलानां तारयेच्छतम्।
कपिला च विशल्या च श्रूयते राजसत्तम ! ॥६०
ईश्वरेण पुरा प्रोक्तं लोकानां हितकाम्यया।
तत्र स्नात्वा नरो राजन्नश्वमेधफलं लभेत् ॥६१
अनाशकं तु यः कुर्यात् तस्मिन्तीर्थे नराधिप !।
सर्वपापविशुद्धात्मा रुद्रलोकं स गच्छति ॥६२

नर्मदायास्तु राजेन्द्र ! पुराणेयन्मया श्रुतम् ।
यत्र तत्र नरः स्नात्वा चाश्वमेधफललभेत् ॥६३

इन सबने जो तपोधन मुनिगण थे वहा पर एकत्रित होकर नर्मदा नदी का समाश्रय प्राप्त किया था तथा विशल्या नाम वाली पुण्यमयी नदी को समुत्पादित किया था। जो महान् भाग वाली और सभी प्रकार के पापो का विनाश करने वाली थी। हे राजन् ! उसमे मनुष्य स्नान करके जितेन्द्रिय तथा ब्रह्मचारी रहकर एक रात्रि मे वहा पर निवास करता है सो वह अपने सौ कुलो का उद्धार कर दिया करता है। हे राजाओ में परम श्रेष्ठ ! कपिला और विशल्या इनके विषय मे सुना जाता है कि प्राचीन काल मे ईश्वर ने लोकों के हित की कामना से ही इनको कहा था। हे राजन् ! वहा पर स्नान करके मनुष्य अश्वमेध यज्ञ के पुण्य फल को प्राप्त किया करता है ॥५८।५९।६०।६१।६२।६३॥

ये वसन्त्युत्तरे कूले रुद्रलोके वसन्ति ते ।
सरस्वत्याञ्च गङ्गाया नर्मदाया युधिष्ठिरः ।॥६४
सम स्नान च दानञ्च यथा मे शङ्करोऽब्रवीत् ।
परित्यजति यः प्राणान् पर्वतेऽमरकण्टके ।६५
वर्षकोटिशत साग्र रुद्रलोके महीयते ।
नर्मदाया जल पुण्य फेनोर्मिभिरलङ्कृतम् ॥६६
पवित्र शिरसा वन्द्य सर्वपापे प्रमुच्यते ।
नर्मदा सर्वत पुण्या ब्रह्महत्यापहारिणी । ६७
अहोरात्रोपवासेन मुच्यते ब्रह्महत्यया ।
एव रम्या च पुण्या नर्मदा पाण्डुनन्दन ! । ६८
त्रयाणामपि लोकाना पुण्या ह्येषा महानदी ।
वटेश्वरे महापुण्ये गङ्गाद्वारे तपोवने । ६९
एतेषु सर्वस्थानेषु द्विजाः स्युः संशितव्रताः ।
श्रुत दशगुण पुण्य नर्मदोदधिसङ्गमे ॥७०

जो लोग इसके उत्तर दिशा वाले तट पर निवास किया करते हैं वे अन्त में जाकर रुद्रलोक में वास पाते हैं। हे युधिष्ठिर ! सरस्वती में-गङ्गा में और नर्मदा में स्नान और दान सम होता है जैसा कि भगवान् शङ्कर ने मुझे बतलाया था। जो अमरकण्टक पर्वत में अपने प्राणों का परित्याग किया करता है वह डेढ़ सौ करोड़ वर्ष पर्यन्त रुद्रलोक में प्रतिष्ठित होता है। नर्मदा महानदी का जल परम पुण्यमय है और फेनकी ऊर्मियों से समलङ्कृत है। यह परम पवित्र है तथा शिर से वन्दना करने के योग्य है इसके जल का स्पर्श करके ही मनुष्य सब पापों से छुटकारा पा जाया करता है। नर्मदा सर्वतःपुण्या है और ब्रह्महत्या के महा पातक का हरण करने वाली है। एक अहोरात्र वहाँ पर स्थित रहकर उपवास करने से ब्रह्म हत्या से छुटकारा हो जाया करता है। हे पाण्डु नन्दन ! इस प्रकार से यह नर्मदा रम्य और पुण्य शालिनी महानदी है ॥६४।६५।६६।६७॥ ॥६८॥ यह तीनों लोकों में परम पुण्य शालिनी महानदी है जो वटेश्वर में—महापुण्य मय गङ्गा द्वार में और तपोवन में इन स्थानों में द्विजगण संशित व्रत वाले होते हैं उनके उस पुण्य से दश गुना अधिक पुण्य नर्मदा और उदधि के सङ्गम में सुना गया है ॥६९, ७०॥

७६—नर्मदा से सम्बन्धित अन्य तीर्थों का माहात्म्य

ततो गच्छेत् राजेन्द्र ! हुङ्कुशेश्वरमुत्तमम् ।
दर्शनात्तस्य देवस्य मुच्यते सर्वपातकैः ॥१
ततो गच्छेच्च राजेन्द्र ! नर्मदेश्वरमुत्तमम् ।
तत्र स्नात्वा नरो राजन् ! स्वर्गलोके महीयते ॥२
अश्वतीर्थं ततो गच्छेत् स्नानं तत्र समाचरेत् ।
सुभगो दर्शनीयश्च भोगवान् जायते नरः ॥३

पितामह ततो गच्छेत् ब्रह्मणा निर्मितं पुरा ।
तत्र स्नात्वा नरो भक्तया पितृपिण्डन्तु दापयेत् ॥४
तिलदर्भविमिश्रन्तु ह्युदकं तत्र दापयेत् ।
तस्य तीर्थप्रभावेण सर्वं भवति चाक्षयम् ॥५
सावित्रीतीर्थमासाद्य यस्तु स्नानं समाचरेत् ।
विधूय सर्वपापानि ब्रह्मलोके महीयते ॥६
मनोहर ततो गच्छेत् तीर्थं परमशोभनम् ।
तत्र स्नात्वा नरो राजन् ! पितृलोकेमहीयते ॥७

महामुनि मार्कण्डेय जी ने कहा—हे राजेन्द्र ! इसके अनन्तर उत्तम अमुरेश्वर पर जाना चाहिए । वहाँ पर उन देव के दर्शन से ही मनुष्य सब प्रकार के पापों से मुक्त हो जाया करता है ॥ १ ॥ इसके उपरान्त फिर हे राजेन्द्र ! उत्तम नर्मदेश्वर तीर्थ में गमन करे । हे राजन् ! वहाँ पर स्नान करके मनुष्य स्वर्गलोक में एक परम प्रतिष्ठित पद पर समारूढ़ हुआ करता है ॥ २ ॥ फिर अश्वतीर्थ को गमन करना चाहिये और वहाँ पर पहुँच कर स्नान करे । इसका ऐसा फल होता है कि वह मनुष्य परम सुभग दर्शनीय और भोगों के करने वाला हुआ करता है । इसके पीछे पितामह नाम वाले तीर्थ पर जावे जिसको पहिले ब्रह्माजी ने निर्मित किया था । वहाँ पर मनुष्य को स्नान करके भक्ति-भाव से पितृगणों को पिण्डदान करना चाहिए ॥ ३ । ४ ॥ तिलों और डाभों से मिश्रित जल भी तर्पण के लिये पितृगणों को देवे । उस तीर्थ का ऐसा अद्भुत प्रभाव है कि वहाँ पर किया सभी अक्षय हो जाया करता है ॥ ५ ॥ सावित्री तीर्थ पर पहुँच कर जो भी व्यक्ति उसमें स्नान किया करता है वह अपने समस्त पापों को विधूनित करके अन्त में ब्रह्म लोक में प्रतिष्ठित होता है । फिर मनोहर नामक तीर्थ पर गमन करे जो कि एक परम शोभन तीर्थ है । हे राजन् ! उस तीर्थ में स्नान करने वाला मानव रुद्रलोक में प्रतिष्ठित होता है ॥ ६ । ७ ॥

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र ! मानसं तीर्थमुत्तमम् ।
तत्र स्नात्वा नरा राजन् ! रुद्रलोके महीयते ॥८
ततो गच्छेच्च राजेन्द्र ! कुब्जतीर्थमनुत्तमम् ।
विख्यातं त्रिषु लोकेषु सर्वपापप्रणाशनम् ॥९
यान्यान्कामयते कामान् पशुपुत्रधनानि च ।
प्राप्नुयात्तानि सर्वाणि तत्र स्नात्वा नराधिप ॥१०
ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र ! त्रिदशज्योतिविश्रुतम् ।
यत्र ता ऋषिकन्यास्तु तपोऽतप्यन्त सुव्रताः ॥११
भर्त्ता भवतु सर्वासामीश्वरः प्रभुरव्ययः ।
प्रीतस्तासां महादेवो दण्डरूपधरो हरः ॥१२
विकृताननो बीभत्सुस्तु तीर्थमुपागतः ।
तत्र कन्या महाराज ! वरयन् परमेश्वरः ॥१३
कन्या ऋषेर्वरयतः कन्यादानं प्रदीयताम् ।
तीर्थं तत्र महाराज ! ऋषिकन्येति विश्रुतम् ॥१४

इसके अनन्तर हे राजेन्द्र ! उत्तम मानस तीर्थ पर गमन करना चाहिए। हे राजन् ! वहाँ पर स्नान करके मनुष्य रुद्रलोक में प्रतिष्ठित हो जाता है। फिर हे राजेन्द्र ! सर्वोत्तम कुब्जतीर्थ में गमन करे जो सभी लोकों में अत्यधिक विख्यात है और सब प्रकार के पापों के विनाश करने वाला है। उस तीर्थ पर जो—जो भी कामनाओं के प्राप्त करने की इच्छा करता है जैसे पुत्र—पशु और धन आदि उन सभी को प्राप्ति हे नराधिप वहाँ पर स्नान करके प्राप्त कर लेता है। इसके पश्चात् हे राजेन्द्र ! त्रिदश ज्योति विश्रुत नाम वाले तीर्थ पर जाना चाहिये जहाँ पर वे ऋषि कन्याएं सुन्दर व्रतों वाली होकर तपश्चर्या करती थीं ॥ ८। ९। १०। ११॥ उन कन्याओं का यही मनोरथ था कि हम सबका भर्त्ता अविनाशी प्रभु ईश्वर होवे। उनकी तपस्या से दण्डरूप के धारण करने वाले हर महादेव परम प्रसन्न हो गये थे। वह देवेश्वर विकृत मुख वाले

वीमन्यु यहीं उस तीर्थ पर समागत हुए थे। वहाँ पर हे महाराज! परमेश्वर ने उन कन्याओं का वरण किया था। कन्या का वरण करने को ऋषियों ने कन्यादान दी। हे महाराज! ऋषि कन्या इस नाम वाला एक प्रसिद्ध तीर्थ था ॥१३-१४॥

तत्र स्नात्वा नरो राजन्! सर्वपापैः प्रमुच्यते।
ततो गच्छेच्च राजेन्द्र! स्वर्णबिन्दुरिति स्मृतम् ॥१५
तत्र स्नात्वा नरो राजन्! दुर्गतिं न च पश्यति।
अप्सरेशं ततो गच्छेत् स्नानं तत्र समाचरेत् ॥१६
क्रीडते नागलोकस्थो ह्यप्सरैः सह मोदते।
ततो गच्छेत् राजेन्द्र! नरकं तीर्थमुत्तमम् ॥१७
तत्र स्नात्वार्चयेद्देवं नरकं च न पश्यति।
भारभूतिं ततो गच्छेदुपवासपरो जनः ॥१८
एतत्तीर्थं समासाद्य चावतारं तु शाम्भवम्।
अर्चयित्वा विरूपाक्षं रुद्रलोके महीयते ॥१९
अस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वाभारभूतो महात्मनः।
यत्र तत्र मृतस्यापि ध्रुवं गाणेश्वरी गतिः ॥२०
कार्तिकस्य तु मासस्य ह्यर्चयित्वा महेश्वरम्।
अश्वमेधाद्दशगुणं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥२१

हे राजन्! उस तीर्थ में मनुष्य स्नान करके सभी पापों से प्रमुक्त हो जाता है। हे राजेन्द्र! इसके पश्चात् स्वर्ण बिन्दु इस नाम से विश्रुत तीर्थ में जाना चाहिये ॥१५॥ हे राजन्! उस तीर्थ में स्नान करके मनुष्य दुर्गति को कभी भी नहीं देखता है। इसके अनन्तर अप्सरेश नामक तीर्थ पर गमन करे और वहाँ पर स्नान कर समाचरण करना चाहिए ॥१६॥ इस तीर्थ के स्नान का यह फल होता है कि वह नागलोक में समवस्थित होकर अप्सराओं के साथ आनन्दानुभव किया करता है। हे राजेन्द्र! फिर वहाँ से नरक नामक उत्तम तीर्थ में गमन

करे । उस तीर्थ में स्नान करके देव का अभ्यर्चन करे तो वह मनुष्य कभी भी नरक को नहीं देखता है । इसके अनन्तर भारभूति नाम वाले तीर्थ पर जावे और उपवास में परायण होवे ॥ १७ । १८ ॥ फिर इसके उपरान्त शूलावतार शाम्भव तीर्थ का समासादन करे तथा वहाँ पर भगवान् विष्णु का अर्चन करने से वह मनुष्य रुद्रलोक में प्रतिष्ठित होता है ॥ १९ ॥ इस तीर्थ में जिसका नाम भारभूति है स्नान करके जहाँ-तहाँ मृत हुए महात्मा की भी निश्चय ही गणेश्वरी (गणेश सम्बन्धिनी) गति हुआ करती है । कार्तिक मास में महेश्वर का समर्चन करके अश्वमेध यज्ञ के पुण्य से दशगुना फल प्राप्त हुआ करता है—ऐसा महामनीषी लोग कहा करते हैं ॥ २० । २१ ॥

दीपकानां शतं तत्र घृतपूर्णन्तु दापयेत् ।
विमानं सूर्यसङ्काशं व्रजते यत्र शङ्करः ॥२२
वृषभं यः प्रयच्छेत् शङ्खकुन्देन्दुसप्रभम् ।
वृषयुक्तेन यानेन रुद्रलोकं स गच्छति ॥२३
धेनुमेकान्तु यो दद्यात्तस्मिंस्तीर्थे नराधिप ! ।
पायसं मधुसंयुक्तं भक्ष्याणि विविधानि च ॥२४
यथाशक्त्या च राजेन्द्र ! ब्राह्मणान् भोजयेत्ततः ।
तस्य तीर्थप्रभावेण सर्वं कोटिगुणं भवेत् ॥२५
नर्मदाया जलं पीत्वा ह्यर्चयित्वा वृषध्वजम् ।
दुर्गतिं न च पश्यति तस्मिंस्तीर्थे नराधिप ! ॥२६
हंसयुक्तेन यानेन रुद्रलोकं स गच्छति ।
यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च हिमवांश्च महोदधिः ॥२७
गङ्गाद्याः सरितो यावत्तावत् स्वर्गे महीयते ।
अनाशकन्तु यः कुर्यात्तस्मिंस्तीर्थे नराधिप ॥२८
गर्भवासे तु राजेन्द्र ! न पुनर्जायते पुमान् ।
ततो गच्छेत् राजेन्द्र ! आषाढीतीर्थमुत्तमम् ॥२९

तत्र स्नात्वा नरो राजन्निन्द्रस्यार्द्धासनं लभेत् ।
स्त्रियास्तीर्थं ततो गच्छेत् सर्वपापप्रणाशनम् ॥३०

वहाँ पर एक सौ दीपकों को घृत से पूर्ण करके प्रज्वलित करे और उनका दान करे। वह पुरुष जहाँ भगवान् शङ्कर होते हैं सूर्य के सदृश विमानों के द्वारा गमन किया करता है ॥ २२ ॥ जो आदमी, शङ्ख-कुन्द और इन्दु के समान प्रभा से सम्पन्न वहाँ पर वृषभ का दान किया करता है वह वृष से समन्वित यान के द्वारा रुद्रलोक में गमन किया करता है ॥ २३ ॥ हे नराधिप ! उस तीर्थ में जो कोई एक धेनु का दान किया करता है—मधु से संयुक्त पायस और अनेक प्रकार के भक्ष्यों को यथा शक्ति हे राजेन्द्र ! ब्राह्मणों के लिये भोजन कराता है। उस तीर्थ के प्रभाव से वह सभी करोड़ गुना फल वाला होता है ॥ २४।२५॥ हे नराधिप ! नर्मदा के जल का पान करके और वृषध्वज का अभ्यर्चन करके उस तीर्थ में जाने वाला मनुष्य कभी भी अपनी दुर्गति को नहीं देखता है। वह मनुष्य हंस से युक्त यान के द्वारा सीधा रुद्रलोक को चला जाता है। जब तक चन्द्र—सूर्य—हिमवान्—महोदधि और गङ्गा आदि सरिताऐं संसार में स्थित हैं तब तक वह स्वर्गलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त किया करता है। हे राजेन्द्र ! गर्भ के वास को फिर कभी भी प्राप्त नहीं किया करता है। इसके अनन्तर हे राजेन्द्र ! आम आपादी तीर्थ में गमन करना चाहिए। हे राजन् ! उस तीर्थ में स्नान करके मनुष्य इन्द्र के आधे आसन पर अपनी सुस्थिति प्राप्त किया करता है। इसके पीछे स्त्री के तीर्थ में गमन करे जो सब प्रकार के पापों का नाश करने वाला है ॥२६-३०॥

तत्रापि स्नातनात्रस्य ध्रुव गाणेश्वरी गतिः ।
ऐरण्डीनर्मदयोश्च सङ्गमं लोकविश्रुतम् ॥३१
तच्च तीर्थं महापुण्यं सर्वपापप्रणाशनम् ।
उपवासपरो भूत्वा नित्यव्रतपरायणः ॥३२

तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र ! मुच्यते ब्रह्महत्यया ।
ततो गच्छेच्च राजेन्द्र ! नर्मदोदधिसङ्गमम् ॥३३
जामदग्न्यमिति ख्यात सिद्धोयत्र जनार्दनः ।
यत्रेष्ट्वा बहुभिर्यज्ञैरिन्द्रो देवाधिपोऽभवत ॥३४
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र ! नर्मदादधिसङ्गमे ।
त्रिगुण चाश्वमेधस्य फलप्राप्नोतिमानव. ॥३५

वहाँ पर भी केवल स्नान मात्र कर लेने वाले की निश्चय ही गाणेश्वरी गति हुआ करती है । एरण्डी और नर्मदा इन दोनो सरिताओ का सङ्गम लोक मे परम प्रसिद्ध है । यह तीर्थ महान् पुण्य वाला है और समस्त पापो के नाश करने वाला भी है । वहाँ पर उपवास मे परायण होकर तथा नित्य ही व्रतो मे तत्पर होकर वहाँ स्नान करके हे राजेन्द्र ! मनुष्य ब्रह्महत्या से भी मुक्त हो जाया करता है । इसके उपरान्त हे राजेन्द्र ! नर्मदा और उदधि का जहाँ सङ्गम होता है वहाँ जाना चाहिए । वहाँ जाने वाला मानव अश्वमेध यज्ञ के पुण्य से तिगुना पुण्य-फल प्राप्त किया करता है ॥ ३२–३५ ॥

पश्चिमस्योदधे सन्धौ स्वर्गद्वारविघट्टनम् ।
तत्र देवाः सगन्धर्वा ऋषयः सिद्धचारणाः ॥३६
आराधयन्ति देवेश त्रिसन्ध्यं विमलेश्वरम् ।
तत्र स्नात्वा नरोराजन् ! रुद्रलोकेमहीयते ॥३७
विमलेश परं तीर्थं न भूत न भविष्यति ।
तत्रोपवासं कृत्वा ये पश्यन्ति विमलेश्वरम् ॥३८
सप्तजन्मकृतं पाप हित्वा यान्त्यमरालयम् ।
ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र ! कौशिकीतीर्थमुत्तमम् ॥३९
तत्र स्नात्वा नरो राजन्नुपवासपरायणः ।
उपोष्य रजनीमेका नियतो नियताशन. ॥४०

एतत्तीर्थप्रभावेण मुच्यते ब्रह्महत्यया ।
सर्वतीर्थाभिषेकन्तु यः पश्येत् सागरेश्वरम् ॥४१
योजनाभ्यन्तरे तिष्ठन्नावर्ते संस्थितः शिवः ।
तं दृष्ट्वा सर्वतीर्थानि दृष्टान्येव न संशयः ॥४२

पश्चिमोदधि की सन्धि में स्वयं हर विराजमान हैं। वहाँ पर देव-गण—गन्धर्व—ऋषिवृन्द—सिद्ध और चारण ये सब तीनों सन्ध्याओं में विमलेश्वर देवेश की समाराधना किया करते हैं। हे राजन् ! वहाँ पर मनुष्य स्नान करके रुद्रलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त किया करता है। यह विम-लेश परम प्रमुख तीर्थ है जो न हुआ और न होगा। वहाँ पर उपवास करके जो भगवान् विमलेश्वर का दर्शन किया करते हैं वे सब अपने पहिले जन्मों में सात जन्मों के किये हुए पापों से मुक्त होकर सीधे अन्त समय में शिवालय को चले जाया करते हैं। इसके पीछे हे राजेन्द्र ! उत्तम कौशिकी तीर्थ में गमन करे ॥ ३६। ३७। ३८। ३९ ॥ हे राजन् ! वहाँ पर स्नान करके उपवासों में परायण होवे और एक रात्रि में वहाँ निवास करके नियत अशन वाला तथा नियत जो रहता है वह इस तीर्थ के प्रभाव से ब्रह्महत्या से मुक्त हो जाया करता है। जो मनुष्य सर्व तीर्थों के अभिषेक सागरेश्वर का दर्शन किया करता है। योजन के अभ्यन्तर में आवर्त में प्रभु शिव स्थित रहते हुए वहाँ पर समवस्थित रहते हैं। उनका केवल एक ही तीर्थ का दर्शन करके उस दर्शक ने सभी तीर्थों को देखा हुआ ही समझ लेना चाहिये अर्थात् उसने अन्य सभी का दर्शन कर लिया है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥ ४०–४२ ॥

सर्वपापविनिर्मुक्तो यत्र रुद्रः स गच्छति ।
नर्मदासङ्गमं यावद्यावच्चामरकण्टकम् ॥४३
दशान्तरे महाराज ! तीर्थकोट्यो दशस्मृताः ।
तीर्थात्तीर्थान्तरं यत्रऋषिकोटिनिषेवितम् ॥४४

साग्निहोत्रैस्तु विद्वद्भिः सर्वैर्ध्यानपरायणैः ।
सेवितानेन राजेन्द्र ! त्वीप्सितार्थप्रदायिका ॥४५
यस्त्विदं वै पठेन्नित्यं शृणुयाद्वापि भारतः ।
तस्य तीर्थानि सर्वाणि ह्यभिषिञ्चन्ति पाण्डव ! ॥४६
नर्मदा च सदा प्रीता भवेद्वै नात्र संशयः ।
प्रीतस्तस्य भवेद्रुद्रो मार्कण्डेयो महामुनि ॥४७
वन्ध्या चैव लभेत् पुत्रान् दुर्भगा सुभगा भवेत् ।
कन्या लभेत भर्तारं यश्च वाञ्छेत् तु यत् फलम् ॥४८
तदेव लभते सर्वं नात्र कार्या विचारणा ।
ब्राह्मणो वेदमाप्नोति क्षत्रियो विजयी भवेत् ॥४९
वैश्यस्तु लभते लाभं शूद्रः प्राप्नोति सद्गतिम् ।
मूर्खस्तु लभते विद्यां त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नरः ॥
नरकञ्च न पश्येत् वियोगञ्च न गच्छति ॥५०॥

वह पुरुष सभी पापों से छुटकारा पाकर वहाँ पर ही चला जाता है जहाँ पर साक्षात् भगवान् रुद्र विराजमान रहा करते हैं और वहाँ पर वह तब तक रहता है जब तक नर्मदा का सङ्गम और अमरकण्टक संसार में स्थित है ॥४३॥ इसी बीच में हे महाराज ! दश तीर्थ कोटियाँ बताई गई हैं। तीर्थ से दूसरे तीर्थ में जहाँ पर ऋषि कोटि निषेवित है। अग्निहोत्र करने वाले—ध्यान में परायण समस्त विद्वानों के द्वारा सेवित हुए इसमें हे राजेन्द्र ! यह अभीष्ट अर्थ को प्रदान करने वाली हुआ करती है ॥४४, ४५॥ हे पाण्डव ! जो तीर्थों के माहात्म्य का नित्य ही पाठ किया करता है तथा इसका भक्तिभाव से श्रवण किया करता है उसका सभी तीर्थ समवेत अभिषेक किया करते हैं ॥४६॥ वह नर्मदा सरिता सर्वदा उस पर परम प्रसन्न होती है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है। उस पर रुद्र देव भी प्रसन्न होते हैं तथा महामुनि मार्कण्डेय भी प्रसन्न हुआ करते हैं। इसके पठन एवं श्रवण से वन्ध्या स्त्री पुत्रों का लाभ लिया करती है

और जो दुर्भगा होती है वह सुभगा होजाया करती है। जो कन्या होती है मनोभीष्ट स्वामी की प्राप्ति कर लेती है और जो भी कोई जैसा भी कुछ फल चाहता है वह उसी समय में तुरन्त ही सब कुछ पा जाया करता है—इस विषय में कुछ भी विचारणा (चर्चा) करने की आवश्यकता ही नहीं है। जो ब्राह्मण होता है उसको वेद के ज्ञान का लाभ होता है और जो क्षत्रिय है वह सदा युद्ध में विजय प्राप्त करने वाला होता है। वैश्य अपने व्यवसाय में धनान्वित होता है तथा शूद्र की सद्गति हो जाया करती है। जो महाशूद्र होता है उसे विद्या का लाभ होता है। जो नर इसका तीनों संध्याओं में पाठ किया करता है वह कभी भी नरक का दर्शन नहीं किया करता है और न कभी किसी से उस का वियोग ही हुआ करता है। ॥४७, ४८, ४९, ५०॥

७७—भृगु वंशज ऋषियों के नाम गोत्र वंश प्रवर वर्णन

इत्याकर्ण्य स राजेन्द्र ओङ्कारस्याभिवर्णनम् ।
ततः पप्रच्छ देवेशं मत्स्यरूपं जलार्णवे ॥१
ऋषीणां नाम गोत्राणि वंशावतरणं तथा ।
प्रवराणां तथा साम्यमसाम्यं विस्तराद् वद ॥२
महादेवेन ऋषयः शप्ताः स्वायम्भुवान्तरे ।
तेषां वैवस्वते प्राप्ते सम्भवं मम कीर्त्तय ॥३
दाक्षायणीनां च तथा प्रजां कीर्त्तय मे प्रभो ।
ऋषीणां च तथा वंशं भृगुवंशाभिवर्धनम् ॥४
मन्वन्तरेऽस्मिन् सम्प्राप्ते पूर्वं वैवस्वते तथा ।
चरित्रं कथ्यते राजन् ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ॥५
महादेवस्य शापेन त्यक्त्वा देहं स्वयं तथा ।
ऋषयश्च समुद्भूता हुते शुक्रे महात्मनः ॥६

देवानां मातरो दृष्ट्वा देवपत्न्यस्तथैव च ।
स्कन्नशुक्र महाराज ! ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ॥७

महर्षि श्री सूतजी ने कहा—हे राजेन्द्र ! इस प्रकार से इस लोकहार के अभिकथन का श्रवण करके फिर इसके उपरान्त उस मत्स्य के स्वरूप वाले देवेश्वर से उस जलार्णव में पूछा गया था। श्री मनुजी ने कहा—हे भगवन् ! अब ऋषियों के शुभ नाम तथा गोत्र—वंशों का अब तारण एवं प्रवरों की समता और असमता आप कृपा करके विस्तार के साथ वर्णन कीजिएगा ।।१, २।। स्वायम्भुव मन्वन्तर में महादेव जी के द्वारा ऋषियों को शाप दे दिया गया था वैवस्वत प्राप्त होने पर उनका जो सम्भव आप मुझे कीर्तन करके श्रवण कराइये ।।३।। हे प्रभो ! आप मेरे सामने दाक्षायणी (दक्ष प्रजापति से समुत्पन्न) जो प्रजा हुई थी उसका भी वर्णन करिए तथा ऋषियों का वंश एवं भृगु के वंश की विशेष वृद्धि भी बतलाइए ।।४।। श्री मत्स्य भगवान ने कहा—हे राजन् ! पहिले इस वैवस्वत मन्वन्तर के सम्प्राप्त होने पर परमेष्ठी ब्रह्माजी का जो चरित्र है वह कहा जाता है। महादेव जी के शाप से स्वयं ही देह का त्याग करके महात्मा के शुक्र के च्युत हो जाने पर ऋषिगण समुत्पन्न हुए थे। देवों की मातायें देख कर उसी भाँति देव पत्नियाँ भी समुत्पन्न हुई थीं हे महाराज ! परमेष्ठी ब्रह्माजी का शुक्र (वीर्य) स्कन्न हो गया था। ।।५, ६, ७।।

तज्जुहाव ततो ब्रह्मा ततो जाता हुताशनात् ।
ततो जातो महातेजा भृगुश्च तपसां निधिः ॥८
अङ्गारेष्वङ्गिरा जातो ह्यर्चिभ्योऽत्रिस्तथैव च ।
मरीचिभ्यो मरीचिस्तु ततो जातो महातपाः ॥९
केशैस्तु कपिशो जातः पुलस्त्यश्च महातपाः ।
केशैः प्रलम्बैः पुलहस्ततो जातो महातपाः ॥१०
वसुमध्यात् समुत्पन्नो वसिष्ठस्तु तपोधनः ।

भृगुःपुलोम्नस्तुसुतांदिव्यांभार्यामविन्दत ॥११
यस्यामस्य सुता जाता देवा द्वादशयाज्ञिकाः ।
भुवनो भौवनश्चैव सुजन्यः सुजनस्तथा ॥१२
शुचिक्रतुश्च मूर्धा च त्याज्यश्च वसुदश्च ह ।
प्रभवश्चाऽव्ययश्चैव दक्षोऽथद्वादशस्तथा ॥१३
इत्येते भृगवो नाम देवा द्वादश कीर्तिताः ।
पौलोम्यांजनयन् विप्रान्देवानानुकनीयसः ॥१४

इसके अनन्तर ब्रह्माजी ने हवन किया था फिर हुताशन से उत्पत्ति हुई थी। इसके उपरान्त महान् तेज वाले तपों की निधि भृगुदेव समुत्पन्न हुए थे ॥८॥ अङ्गारों में अङ्गिरा उत्पन्न हुए और हुताशन की अचियों से अत्रि ऋषि की उत्पत्ति हुई थी और इसके अनन्तर मरीचियों में महान् तपस्वी महर्षि मरीचि उत्पन्न हुए थे ॥९॥ कशों में कपिश और महान् तपस्वी पुलस्त्य उत्पन्न हुए। पुलस्त्य कशों से फिर महान् तपस्वी पुलह समुत्पन्न हुए ॥१०॥ वसु के मध्य से तप के ही धन वाले वसिष्ठ ऋषि प्रसूत हुए थे। भृगु महर्षि ने पुलोमा की पत्नी को अपनी दिव्य भार्य्या बनाई थी ॥११॥ इसी भार्य्या में उस महर्षि के द्वादश याज्ञिक सुत उत्पन्न हुए थे। उन बारह सुतों के नाम ये हैं—भुवन—भौवन—सुजन्य—सुजन—शुचि क्रतु—मूर्द्धा—त्याज्य—वसुद—प्रभव—अव्यय और दक्ष ये द्वादश हैं। ये सब भृगु वंश वाले बारह देव कीर्तित हुए थे जो पौलोमी में देवों के छोटे भाई विप्रों को जन्म ग्रहण कराया था ॥१२, १३, १४॥

च्यवनन्तु महाभागमाप्नुवान तथैव च ।
आप्नुवानात्मजश्चौर्वो जमदग्निस्तदात्मजः ॥१५
और्वो गोत्रकरस्तेषां भार्गवाणां महात्मनाम् ।
तत्र गोत्रकरास्त्वन्ये भृगोर्वै दीप्ततेजसः ॥१६
भृगुश्च च्यवनश्चैव आप्नुवानस्तथैव च ।
और्वश्च जमदग्निश्च वात्स्यो दण्डिर्नडायनः ॥१७

वैंगायनो वीतिहव्यः पैलश्चैवात्र शौनकः ।
शौनकायन जीवन्ति रावेद.कार्पणिस्तथा ॥१८
वैहीनरिर्विरूपाक्षो रौहित्यायनिरेव च ।
वैश्वानरिस्तथा नीलो लुब्धः सावर्णिकश्चसः ॥१६
विष्णुपौरोऽपि वालाकिरैलिकोऽनन्तभागिनः ।
मृतभार्गवमार्कण्डजविनो वीतिनस्तथा ॥२०
मण्डमाण्डव्यमाडूकफेनपास्तनितस्तथा ।
स्थलपिण्ड शिखावर्ण शार्कराक्षिस्तथैवच ॥२१

महाभाग च्यवन तथा आप्नुवान् उत्पन्न हुए । आप्नुवान का आत्मज और्व हुआ और उसका पुत्र जमदग्नि हुआ था । उन महान् आत्मा वाले भार्गवों के गोत्र के करने वाला और्व हुआ था तथा अन्य भी दीप्त-तेज वाले भृगु के गोत्रकर हुए थे ॥१५, १६॥ अब उन सब के नामों का उल्लेख किया जाता है—भृगु—च्यवन—आप्नुवान—और्व—जमदग्नि—वात्स्य—दण्डि—नडायन—वैगायन—वीति हव्य—शौनकायन—जीवन्ति—आवेद—कार्पणि—वैहीनरि—विरूपाक्ष—रौहित्यायनि—वैश्वानरि—नील—लुब्ध—सावर्णिक—विष्णु—पौर—बालाकि—ऐलिक—अनन्त भागिन—मृत—भार्गव—मार्कण्ड—जविन—वीतिन—मण्ड—माण्डव्य—माण्डूक—फेनप—स्तनित—स्थल पिण्ड—शिखावर्ण और शार्कराक्षि ॥१७।१८।१९।२०।२१॥

जालधिः सौधिकः क्षुभ्य कुत्सन्यो मौद्गलायनः ।
कर्मायनो देवपति पाण्डुरोचि सगालवः ॥२२
साङ्कृत्यश्चातकिः सार्पियज्ञपिण्डायनस्तथा ।
गार्ग्यायनो गायनश्च ऋषिर्गार्ह्यगिनस्तथा ॥२३
गोष्ठायनो वात्यायना वैशम्पायन एव च ।
वैरणिनि शाङ्गरवो याज्ञेयिर्भाष्ट्रकायनिः ॥२४
लालाटिर्नाकुलिश्चैव लौक्षिण्योपरिमण्डलौ ।

आलुकिः सौचकिः कोत्सस्तथान्यः पैङ्गलायनिः ॥२५
सात्यायनिर्मालायनिः कौटिलिः कौचहस्तिक. ।
सोहमोक्ति. सकौबाक्षिः कौसिश्चान्द्रमसिस्तथा ॥२६
नैकजिह्वो जिह्वकश्च व्याधाच्यो लोहवैरिणः ।
शारद्वतिकनेतिष्यौलोलाक्षिश्चलकुण्डल. ॥२७
वागायनिश्चानुमतिः पूर्णिमागतिकोऽसकृत् ।
सामान्येन यथा तेषां पञ्चैते प्रवरामता ॥२८

जालधि–सौधिक–क्षुभ्य–कुत्सन्य–मौद्गलायन–कर्मायन–देवपति–पाण्डरोचि–सगालव–साङ्कृत्य–चातकि–सापि–यज्ञपिण्डायन–गार्ग्यायन–गायन–ऋषि–गाहायिन–गोष्ठायन–वात्मायन–वैशम्पायन–वैकणिनि–शाङ्करव–पालेयि–श्राद्ध कायनि–लालाटि–नाकुलि–लौक्षिण्य–परिमण्डल–आलुकि–सौचकि–कौत्स–पैङ्गलायनि–सात्यायनि–मालायनि–कौटिलि–कौच हस्तिक–सौहमोक्ति–सकौबाक्ष–कौसि–चान्द्रमसि–नैकजिह्व–जिह्वक–व्याधाच्य–लोहवैरिण–शारद्वतिक–नेत्य–लोलाक्षि–चल कुण्ड–वागायनि–अनुमति–पूर्णिमा गतिक ये सब सामान्य रूप से थे। इनमें पाँच सब में प्रवर माने गये हैं ॥२२।२३।२४।२५।२६।२७।२८॥

भृगुश्च च्यवनश्चैव आप्नुवानस्तथैव च ।
और्वश्च जमदग्निश्च पञ्चैते प्रवरा मता ॥२९
अत. परं प्रवक्ष्यामि शृणु त्वन्यान् भृगूद्वहान् ।
जमदग्निर्विदश्चैव पौलस्त्या वैजभृतया ॥३०
ऋषिश्चभयजातश्च कायनि शाकटायन. ।
और्वेया मारुताश्चैव सर्वपाप्रवरा शुभाः ॥३१
भृगुश्च च्यवनश्चैव आप्नुवानस्तथैव च ।
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ॥३२
भृगुदासा मार्गपथा ग्राम्यायनिकटायना ।
आपस्तम्बिस्तथा बिल्वि नैकशिः कपिश्च ॥३३

आर्ष्टिषेणो गार्दभिश्च कार्दमायनिरेवच।
आश्वायनिस्तथारूपिर्य चार्षेया: प्रकीर्त्तिता: ॥३४
भृगुश्च च्यवनश्चैव आप्नुवानस्तथैवच।
आर्ष्टियेणस्तथारूपि: प्रवरा पञ्चकीर्तिता: ॥३५

वे पाँचो प्रवरो के नाम ये हैं—भृगु—च्यवन—आप्नुवान—और्व और जमदग्नि ये ही पाँच प्रवर माने गये हैं ॥२६॥ इसके आगे मैं अन्य भृगूद्वहो को बतलाता हू। उनका श्रवण तुम करलो—जमदग्नि—विद—पौलस्त्य—वैजभृत्त—ऋषि—उभय जात—कायनि—शाकटायन—और्वेय और मारत्त सबमे प्रवर एव शुभ थे ॥३०।३१॥ भृगु—च्यवन और आप्नुवान ये सब परस्पर मे अवैवाह्य ऋषिगण कीर्त्तित किये गये है ॥३२॥ भृगुदास—मार्गपथ—ग्राम्यायनि—कटायनि—आपस्तम्बि—विल्वि—नैकशि—कपि—आर्ष्टिषेण—रूपि—ये सब आर्षेय परिकीर्तित हुए है। इनमे भृगु—च्यवन—आप्नुवान—आर्ष्टिषेण और रूपि ये पाँच प्रवर माने गये हैं ॥३३।३४।३५॥

परस्परमवैवाह्या ऋषय: परिकीर्तिता:।
यास्को वा वीतिहव्यो वा मथितस्तु तथादम. ॥३६
जैवन्त्यायनिमौञ्जश्च पिलिश्चैव चलिस्तथा।
भागिलो भगावित्तिश्च कौशापिस्त्वथ काश्यपि: ॥३७
वाल्पि: श्रमादगोपि: सोरस्तिथिस्तथैव च।
गार्गीयस्त्वथ जावालिस्तथा पौष्णायनो ह्यृपि: ॥३८
रामदश्च तथैतेषामार्षेया: प्रवरा मता:।
भृगुस्तु वीतहव्यश्च तथा रैवसवैवसौ ॥३९
परस्परमवैवाह्या ऋषय परिकीर्तिता:।
शालायनि. शाकटाक्षो मैत्रेय: खाण्डवस्तथा ॥४०
द्रोणायनो रौक्मायणा पिशली चापि वायनि:।
हंसजिह्वस्तथैतेषामार्षेया प्रवरा मता: ॥४१

ये परस्पर मे अवैवाह्य ऋषिगण कीर्तित हुए है। यास्क—वीति

हव्य—मथित—दम—जैवान्त्यायनि—मौञ्ज—पिलि—चलि—भगिल—मार्गावित्ति—कौशापि—काश्यपि—बालपि—श्रमदागोपि—सौर—तिथि—गार्गीय—जाबालि—पौष्ण्यायन—ऋषि और प्रामद ये सब आर्षेय एवं प्रवर माने गये हैं। भृगु—वीतहव्य—रैवस ये सब परस्पर में अवैवाह्य ऋषिगण कहे गये हैं। शालयनि—शाकटाक्ष—मैत्रेय—खाण्डव—द्रोणायन—रौक्मायन—पिशली—कायनि—हंसजिह्व ये सब आर्षेय प्रवर माने गये हैं ॥३६॥ ॥३७, ३८, ३९, ४०, ४१॥

भृगुश्चैवाथ वध्यश्वो दिवोदासस्तथैव च ।
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ॥४२
एकायनो याज्ञपतिर्मत्स्यगन्धस्तथैव च ।
प्रत्यूहश्च तथा सौरिश्चौक्षिर्वै कार्दमायनिः ॥४३
तथा गृत्समदो राजन्! सनकश्च महान् ऋषिः ।
प्रवरास्तु तथोक्तानामार्षेया परिकीर्तिताः ॥४४
भृगुर्गृत्समदश्चैव आर्षावेतौ प्रकीर्तितौ ।
परस्परमवैवाह्या ऋषी वै परिकीर्तितौ ॥४५
एते तवोक्ता भृगुवंशजाता महानुभावा नृप गोत्रकाराः ।
एषां तु नाम्ना परिकीर्तितेन पापं समग्रं विजहाति जन्तुः ॥४६

भृगु—वध्यश्व—दिवोदास ये सब परस्पर में अवैवाह्य ऋषिगण परिकीर्तित किये गये हैं। एकायन—याज्ञपति—मत्स्यगन्ध—प्रत्यूह—सौरि—औक्षि—कार्दमायनि—हे राजन्! गृत्समद और महान् ऋषि सनक ये कहे हुए ऋषियों में प्रवर तथा आर्षेय कहे गये हैं। भृगु—गृत्समद ये दोनों आर्ष कीर्तित किये गये हैं। ये दोनों परस्पर में ऋषि अवैवाह्य कीर्तित हुए हैं। ये भृगु के वंश में उत्पन्न महानुभाव गोत्र करने वाले हैं। हे नृप! इन नामों के कीर्तन से जन्तु समग्र पापों को त्याग दिया करता है ॥४२, ४३, ४४, ४५, ४६॥

७८—आङ्गिरसवंशज ऋषियों के नाम गोत्र वंश प्रवर वर्णन

मरीचितनया राजन् ! सुरूपा नाम विश्रुता ।
भार्या चाङ्गिरसो देवास्तस्याः पुत्रा दश स्मृताः ॥१
आत्मायुर्दमनो दक्षः सदःप्राणस्तथैव च ।
हविष्मांश्च गविष्ठश्चऋतः सत्यश्च ते दश ॥२
एते चाङ्गिरसोनाम देवा वै सोमपायिनः ।
सुरूपा जनयामास ऋषीन् सर्वेश्वरानिमान् ॥३
बृहस्पतिङ्गौतमञ्च संवर्त्तमृषिमुत्तमम् ।
उतथ्य वामदेव च अजस्यमृषिजन्तथा ॥४
इत्येते ऋषय सर्वेगोत्रकाराःप्रकीर्त्तिताः ।
तेषा गोत्रसमुत्पन्नान् गोत्रकारान्निबोध मे ॥५
उतथ्योगौतमश्चैव तौलेयोऽभिजितस्तथा ।
साधनेमि सलौगाक्षिःक्षीरः कौष्टिकिरेवच ॥६
राहुकर्णिः सौपुरिश्च कैराति सामलोमकिः ।
पौषजितिर्भागवतो ह्यृषिश्चैरीडवस्तथा ॥७

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—हे राजन् मरीचि के पुत्री सुरूपा—इस नाम से प्रसिद्ध भार्या थी । आङ्गिरस देव उनके दश पुत्र बताये गये है ॥१॥ आत्मायु—दमन—दक्ष—सदः प्राण—हविष्मान्—गविष्ठ—ऋत—सत्य ये दश उनके नाम थे । ये सब आङ्गिरस नाम वाले सोमपायी देव थे । इन सर्वेश्वर सब ऋषियो को सुरूपा ने ही जन्म दिया था ॥२, ३॥ बृहस्पति—गौतम-सम्वर्त्त—उत्तम ऋषि—उतथ्य—वामदेव—अजस्य—ऋषिज—ये सब ऋषिगण गोत्रकार कहे गये है । अब उनके गोत्र मे समुत्पन्न जो गोत्र कार है उनको भी मुझसे जान लेना चाहिये । उतथ्य—गौतम—तौलेय—अभिजित—साधनेमि—सलौगाक्षि—क्षीर—कौष्टिक—राहुकर्णि—सौपुरि—कैराति—सामलोमकि—पौषजिति—भागवत—ऋषि—ऐरीडव ॥४-७॥

कारोटकः सजीवी च उपबिन्दुर्मुरैषिणो ।
वाह्निोपतिर्वैशाली क्रोष्टा चैवारुणायनिः ॥८
सोमोत्रायनिकासोरुकौशल्यथाः पार्थिवास्तथा ।
रौहिण्यायनिरेवाग्नी मूलपः पाण्डुरेव च ॥६
क्षपाविश्वकरोऽरिश्च पारिकारारिरेव च ।
इत्यार्षेयाः प्रवराश्चैव तेषां च प्रवरान् शृणु ॥१०
अङ्गिरा सुवचोतथ्य उशिजश्च महानृषिः ।
परस्परमववाह्या ऋषय. परिकीर्तिताः ॥११
आत्रेयायनिर्सौवेष्टयो अग्निवेश्यः शिलास्थलिः ।
बालिशायनिश्चैकेपी वाराह्निर्बाष्कलिस्तथा ॥१२
सौटिश्चत्रिणकर्णिश्च प्रावहिश्चाश्वलायनिः ।
वाराहिर्बर्हिसादी च शिखाग्रीविस्तथैव च ॥१३
कारकिश्च महाकापिस्तथा चोडुपतिः प्रभु ।
कौचकिर्धूमितश्चैव पुष्पान्वेपिस्तथैव च । १४

कारोटक—सजीवी—उपबिन्दु—मुरैषिण—वाह्निोपति—वैशाली—क्रोष्टा—वारुणायनि—सोमोत्रायनि—कासोरु—कौशल्य—पार्थिव—रौहिण्यायनि—अग्नि—मूलप—पाण्डु—क्षपाविश्वकर—अरि—पारिकारारि—ये आर्षेय और प्रवर थे अब आगे उनके प्रवरों का श्रवण करो। अङ्गिरा—सुवचोतथ्य—उशिज—महानृषि—ये सब परस्पर में अवैवाह्य ऋषिगण कीर्तित किये गये हैं। आत्रेयायनि—सौवेष्टय—अग्निवेश्य—शिलास्थलि—बालिशायनि—एकेपि—वाराहि—बर्हिसादी—शिखाग्रीवि—कारकि—महाकापि—उडुपति प्रभु—कौचकि—धूमित—पुष्पान्वेपी ॥८, ६, १०, ११, १२॥ ॥१३, १४॥

सोमतन्त्रिर्ब्रह्मतन्त्रि. सालडिर्बालडिस्तथा ।
देवरारिर्देवस्थानिर्हा रकार्णिः सरिद्भुविः ॥१५
प्राबेपिः सायमुग्राविस्तथा गोमेदगन्धिकः ।

मत्स्याच्छायो मूलहरः फलाहारस्तथैव च ॥१६
गाङ्गोदधिः कौरुपतिः कौरुक्षेत्रिस्तथैव च ।
नायकिर्जत्यद्रौणिश्च जैह्वलायनिरेव च ॥१७
आपस्तम्बिर्मौञ्जवृष्टिर्मार्ष्टिपिङ्गलिरेव च ।
पैलश्चैव महातेजा शालङ्कायनिरेव च ॥१८
द्व्यार्षेयो मारुतश्चैषां त्र्यार्षेयः प्रवरो नृप ! ।
अङ्गिरा प्रथमस्तेषां द्वितीयश्च बृहस्पतिः ॥१९
तृतीयश्च भरद्वाजः प्रवराः परिकीर्तिताः ।
परस्परमवैवाह्या इत्येते परिकीर्तिताः ॥२०
काण्वायनाः कोपचयास्तथा वात्स्यतरायणाः ।
भ्राष्ट्रकृद्राष्ट्रपिण्डी च लैन्द्राणिः सायकायनिः ॥२१

सोमतन्वि-ब्रह्मतन्वि-मालडि-बालडि-देवरारि देव स्थानि-हारिकर्णि-सरिद्भुवि-प्राचेयि-साद सुग्रीवि-गोपेद नग्धिक-मत्स्याच्छाय-मूलहर-फलाहार-गङ्गोदधि-कोरुपति-कौरुक्षेत्रि-नायकि-जैत्यद्रोणि-जैह्वलायनि-आपस्तम्ब-मौञ्ज वृष्टि-मार्ष्टपिङ्गलि-पैल-महातेजा-शालङ्कायनि-द्व्यार्षेय-मारुत-त्र्यार्षेय-प्रवर-हे नृप ! उनमें अंगिरा प्रथम था और द्वितीय बृहस्पति था। तीसरा भरद्वाज ये तब प्रवर कीर्तित किये गये हैं। ये परस्पर में अवैवाह्य कहे गये हैं। काण्वायन-कोपचय-वात्स्य तरायण-भ्राष्ट्रकृत-राष्ट्रपिण्डी-लैन्द्राणि-सायकायनि ॥१५॥ ॥१६, १७, १८, १६, २०, २१॥

क्रोष्टाक्षी बहुवीती च तालकृन्मधुरावहः ।
लावकृद्गालविद्गाथी मार्कण्डिः पौलिकायनिः ॥२२
स्कन्दसश्च तथा चक्री गार्ग्यः श्यामायनिस्तथा ।
बालाकिः साहरिश्चैव पञ्चार्षेयाः प्रकीर्तिताः ॥२३
अङ्गिराश्च महातेजा देवाचार्यो बृहस्पतिः ।
भरद्वाजस्तथा गर्गः सैत्यश्च भगवानृषिः ॥२४

परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ।
कपीतरः स्वस्तितरो दाक्षिःशक्तिःपतञ्जलिः ॥२५
भूयसिर्जलसन्धिश्च बिन्दुर्मादिःकुसीदकिः ।
ऊर्वस्तु राजकेशी च वौषडि शंसपिस्तथा ॥२६
शालिश्चकलशीकण्ठःऋषिःकारीरयस्तथा ।
काट्यो धान्यायनिश्चैव भावास्यायनिरेव च ॥२७
भारद्वाजि सौबुधिश्च लघ्वी देवमतिस्तथा ।
श्यापेयाःसमसत्र्चैव प्रवरो भूमिपोत्तम ॥२८

ओष्टाक्षी—बहुशोभी—शालङ्कायन—मधुरावह—मावदुर—गालविद्—गार्गी—मार्कण्डि—पौरायणि—स्कन्दस—क्रोष्टी—गार्ग्य—श्यामायनि—सान्त्यकि, सात्वकि, ये पाँच आपस प्रवर्तित होते हैं। अङ्गिरा, महातेजा, देवाचार्य बृहस्पति, भरद्वाज, गर्ग, सैन्य, भगवान् ऋषि के परस्पर में अवैवाह्य ऋषिगण कहे गये हैं। कपीतर, स्वस्तितर, दाक्षि, शक्ति, पतञ्जलि, भूयसि, जलसन्धि, बिन्दु, मादि, कुसीदकि, ऊर्व, राजकेशी, वौषडि, शंसपि, शालि, कलशीकण्ठ, ऋषि कारीरय, काट्य, धान्यायनि, भावास्यायनि, भारद्वाजि, सौबुधि, लघ्वी, देवमति और भूमिपोत्तम! ये श्यापेय, अभिमत प्रवर वाले हैं ॥२०, २३, २४, २५, २६, २७, २८॥

अङ्गिरा दमवाह्यश्च तथा चैवाप्युरुक्षयः ।
परस्परमवैवाह्यो लौक्षिर्गार्ग्यो हरिस्तथा ॥२९
गालविश्चैव श्यापेयः प्रवरः पञ्चमो मतः ।
अङ्गिरा सङ्कृतिश्चैव गौरवीतिस्तथैव च ॥३०
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ।
बृहदुक्थो वामदेवस्तथा त्रि प्रवरा मताः ॥३१
अङ्गिरा बृहदुक्थश्च वामदेवस्तथैव च ।
कुत्साकुत्सैश्चवाह्यस्य एवमाहुः पुरातना ॥३२

रथीतराणां प्रवरा त्र्यार्षेया: परिकीर्तिता: ।
अङ्गिराश्च विरूपश्च तथैव च रथीतर: ॥३३
रथीतराह्यवैवाह्या नित्यमेव रथीतरै: ।
विष्णुवृद्धि शिवमतिर्जतृण: कत्तृणस्तथा ॥३४
पुत्रवश्च महातेजास्तथा वरपरायण: ।
त्र्यार्षेयोऽभिमतस्तेषां सर्वेषां प्रवरो नृप ! ॥३५

अङ्गिरा, दमवाह्य, उरुक्षय, परस्परायण्त्रपर्णी, लौक्षि, गार्ग्य, हरि, गालवि, त्र्यार्षेय, सबका प्रवर माना गया है। अङ्गिरा, संकृति, गौर बीति ये सब परस्पर में अवैवाह्य ऋषिगण कीर्तित किये गये हैं। बृहदुक्थ, वामदेव ये त्रिप्रवर माने गए हैं। अङ्गिरा, बृहदुक्थ, वामदेव, कुत्साकुत्स से ये अवैवाह्य थे-ऐसा पुरातन मनीषीगण कहते है। रथीतरों में प्रवर ये त्र्यार्षेय परिकीर्तित हुए हैं। अङ्गिरा, विरूप और उसी भाँति से रथीतर। रथीतरों में नित्य ही विवाहन करने के योग्य थे। विष्णुवृद्धि, शिवमति जतृण कत्तृण, पुत्रव, महातेजा, वरपा यण हे नृप ! इन सबका त्र्यार्षेय प्रवर अभिमत था ॥२९।३०।३१।३२।३३।३४।३५॥

अङ्गिरा मत्स्यदग्धश्च मुद्गलश्च महातपा: ।
परस्परमवैवाह्या ऋषय: परिकीर्तिता: ॥३६
हंसजिह्वो देवजिह्वो ह्यग्निजिह्वो विराडप: ।
अपाग्नेयस्त्वश्वयुश्च परण्यस्ताविमौद्गला: ॥३७
त्र्यार्षेयाभिमतास्तेषां सर्वेषां प्रवरा: शुभा: ।
अङ्गिराश्चैव ताण्डिश्च मौद्गल्यश्च महातपा: ॥३८
परस्परमवैवाह्या ऋषय: परिकीर्तिता: ।
अपाण्डुश्च गुरुश्चैव तृतीय: शाकटायन: ॥३९
तत: प्रागाथमा नारी मार्कण्डो मरण: शिव: ।
कटुमर्कटपश्चैव तथा नाडायन ऋषि: ॥४०
श्यामायनस्तथैवैषां त्र्यार्षेया: प्रवरा शुभा: ।

अङ्गिराश्चाजमीणश्च कट्यश्चैव महातपाः ॥४१
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ।
तित्तिरिः कपिभूश्चैव गार्ग्यश्चैव महानृपिः ॥४२

अङ्गिरा, मत्स्यदग्ध, मुद्गल, महातपा ये ऋषिगण आपस में अवैवाह्य कहे गये हैं। हंसजिह्व, देवजिह्व, अग्नि जिह्व, विराडप, अपाग्नेय, अश्वयु, परण्यास्नाविमद्गल य इनके ह्यार्षेय सबके परम शुभ प्रवर अभिमत हुए हैं। अङ्गिरा, ताण्डि, मौद्गल्य, महातपा ये सब ऋषिगण आपस में विवाह न करने के योग्य थे—ऐसे कहे गये हैं। अपाण्डु, गुरु, तृतीय शाकटायन, इसके उपरान्त प्रागाथमा नारी, मार्कण्ड, मरण, शिव, कटुपकटप, नाडायन, ऋषि, श्यामायन उसी प्रकार से ह्यार्षेय इनके शुभ प्रवर थे। अङ्गिरा, आजमीढ, कट्य, महातपा ये सब परस्पर में ऋषिगण अवैवाह्य कहे गये हैं। तित्तिरि, कपिभू, गार्ग्य और महान् ऋषि ॥३६, ३७, ३८, ३९, ४०, ४१, ४२॥

ह्यार्षेयो हि मतस्ते सर्वेषां प्रवरः शुभः ।
अङ्गिरस्तित्तिरिश्चैव कपिभूश्च महानृपिः ॥४३
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ।
अथ ऋक्षभरद्वाजौ ऋषिवान् मानवस्तथा ॥४४
ऋषिमैत्रवरश्चैव पञ्चार्षेयाः प्रकीर्तिताः ।
अङ्गिराः सभरद्वाजस्तथैव च बृहस्पतिः ॥४५
ऋषिमित्रवरश्चैव ऋषिवान् मानवस्तथा ।
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ॥४६
भारद्वाजो हुतःशौङ्गःशैशिरेयस्तथैव च ।
इत्येते कथिताः सर्वे ह्यामुष्यायणगोत्रजाः ॥४७
पञ्चार्षेयास्तथा ह्येषां प्रवराः परिकीर्तिताः ।
अङ्गिराश्च भरद्वाजस्तथैव च बृहस्पतिः ॥
मौद्गल्यः शैशिरश्चैव प्रवराः परिकीर्तिताः ॥४८

एते तवोक्ताङ्गिरसस्तु वंशे महानुभावा ऋषिगोत्रकाराः।
येषान्तु नाम्ना परिकीर्तितेन पापं समग्रं पुरुषो जहाति ॥४९

उन सबका त्र्यार्षेय शुभ प्रवर माना गया है। अङ्गिरा, तित्तिरि, कपिभू, महानृषि, ये सब परस्पर में अवैवाह्य ऋषिगण कीर्तित किये गये हैं। इसके उपरान्त ऋक्ष, भरद्वाज, ऋषिवान्, मानव ऋषि और मैत्रवर ये पाँच आर्षेय कीर्तित किये गये है। अङ्गिरा, भरद्वाज बृहस्पति ऋषि, मित्रवर, ऋषिवान् मानव ये सब परस्पर में अवैवाह्य ऋषिगण कहे गये हैं। भारद्वाज, हुत, शौङ्ग, शैशिरेय, ये सब द्व्यामुष्यायण गोत्र में समुत्पन्न कहे गए थे ॥४३, ४४, ४५, ४६, ४७॥ इन सबके पाँच आर्षेय प्रवर परिकीर्त्तित हुए हैं उनमें अंगिरा, भरद्वाज, बृहस्पति, मौद्गल्य, शैशिर ये प्रवर कहे गये है ॥४८॥ ये सब आङ्गिरस के वंश में महानुभाव गोत्रकार ऋषिगण आपको बतला दिये गये हैं। जिनके केवल नाम मात्र के ही कीर्तन करने से पुरुष अपना समग्र पाप को त्याग दिया करता है ॥४९॥

७७–अत्रिवंशज ऋषियों के नाम गोत्र वंश प्रवर वर्णन

अत्रिवंशसमुत्पन्नान् गोत्रकारान्निबोध मे।
कर्दमायनशाखेयास्तथा शारायणाश्च ये ॥१
उद्दालकिः शौणकर्णिरथो शौक्रतवश्च ये।
गौरग्रीवा गौरजिनस्तथा चैत्रायणाश्च ये ॥२
अर्द्धपण्या वामरथ्या गोपनास्तकिबिन्दवः।
कर्णजिह्वो हरप्रीतिर्नैद्राणिः शाकलायनिः ॥३
तैलपश्च सवैलेय अत्रिर्गोणीपतिस्तथा।
जलदो भगपादश्च सौपुष्पिश्च महातपाः ॥४

छन्दोगेयस्तथैतेषां त्र्यार्षेयाः प्रवरा मताः ।
श्यावाश्च तथा त्रिश्चआर्चनानसाश्च च ॥५
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ।
दाक्षिवलिः पर्णविश्च ऊर्णनाभि शिलार्दनिः ॥६
बीजवापी शिरीषश्च मौञ्जकेशो गविष्ठिरः ।
भलन्दनस्तथैतेषां त्र्यार्षेया प्रवरा मताः ॥७

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—अत्रि के वंश में उत्पन्न होने वाले गोत्रकारों का ज्ञान मुझसे प्राप्त करो जो कर्दमायन शारेय तथा शारायण थे। उद्दालकि, शोण, कर्णिरथ और जो सौक्रतव थे। जो गौर ग्रीव, गौरजिन तथा चैत्र यण थे। अर्द्धपण्य वामरथ्य, गोपन, तकिविन्दु, कर्णजिह्व, हरप्रीति, नैद्राणि, शाकलायनि, तैलप, सवैलेय, अत्रि, गोणीपति-जलद, भगपाद, सौ पुष्पि, महानद और छन्दोगेय इनके त्र्यार्षेय प्रवर माने गये हैं। श्यावाश्व, त्रिश्च और आर्चनानस ये परस्पर में अवैवाह्य ऋषिगण कहे गये हैं। दाक्षि वलि, पर्णवि, ऊर्णनाभ शिलार्दान, बीजवापी शिरीष, मौञ्जकेश, गविष्ठिर और भलन्दन ये इनके प्रवर और त्र्यार्षेय माने गये हैं ॥१-७॥

अत्रिर्गविष्ठिरश्चैव तथा पूर्वातिथि स्मृतः ।
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ॥८
आत्रेयपुत्रिकापुत्रानत ऊर्ध्वं निबोध मे ।
कालेयाश्च सवालेया वासरथ्यास्तथैव च ॥९
धात्रेयाश्चैव मैत्रेयास्त्र्यार्षेयाः परिकीर्तिताः ।
अत्रिश्च वामरथ्यश्च पौत्रिश्चैव महातपाः ॥
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ॥१०
इत्यत्रिवंशप्रभवास्तवोक्ता महानुभावा नृपगोत्रकाराः ।
येषां तु नाम्ना परिकीर्तितेन पापं समग्रं पुरुषो जहाति ॥११

अत्रि, गविष्ठिर, पूर्वातिथि ये ऋषिगण परस्पर मे अवैवाह्य परिकीर्तित किये गये हैं ।।८।। अब आत्रेय पुत्रिका के पुत्रों को भी मुझसे समझ लो । कात्रेय, सचालेय, वामरथ्य आत्रेय मैत्रेय, मार्षेय कीर्तित किये गये हैं । अत्रि, वामरथ्य, पौत्रि, महान् ऋषि के सब ऋषिगण आपस मे विवाह न करने के ही योग्य थे । ये सब अत्रि के वंश मे उत्पन्न होने वाले नृपश्रेष्ठकार महानुभाव हैं जो तुम्हारे सामने वर्णित कर दिये गए हैं । जिनके शुभ नामों के कीर्तन मात्र से ही पुरुष समस्त पाप का त्याग कर दिया करता है ।।८-११।।

८०—कुशिकवंशज ऋषियों के नाम गोत्र वंश प्रवर वर्णन

अत्रेरेवापर वंशन्तव वक्ष्यामि पार्थिव ! ।
अत्रेः सोमः सुतः श्रीमांस्तस्य वंशोद्भवान्नृप ।।१
विश्वामित्रस्तु तपसा ब्राह्मण्य समवाप्तवान् ।
तस्य वंशमहं वक्ष्ये तन्मे निगदतः शृणु ।।२
विश्वामित्रो देवरातस्तथा वैकृतिगालव ।
वतण्डश्च सलङ्कुश्च ह्यभयश्चायताायनः ।।३
श्यामायना याज्ञवल्क्या जाबाला. सैन्धवायनाः ।
बाभ्रव्याश्च करीषाश्च संश्रुत्याः अथ संश्रुताः ।।४
उलूपा औपगहवा पयोदजनपादपाः ।
खरवाचो हलयमा साधिता वास्तुकौशिकाः ।।५
त्र्यार्षेया प्रवरास्तेषा सर्वेषा परिकीर्तिताः ।
विश्वामित्रो देवरात उद्दालश्च महायशाः ।।६
परस्परमवैवाह्या ऋषय. परिकीर्तिताः ।
देवश्रवाः सुजातेयाः सोमुका. कारकायनाः ।।७

तथा दैवरातः ये कुशिकाश्च नराधिप ! ।
आर्षेयोऽभिमतस्तेषां सर्वेषां प्रवरः शुभः ॥८

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—हे पार्थिव ! अब मैं अत्रि के दूसरे वंश का वर्णन करूँगा । हे नृप ! सोम अत्रिका सुत श्रीमान् सोम इसका वंशोद्भव था । विश्वामित्र ने तपश्चर्या के द्वारा ब्राह्मणत्व की प्राप्ति कर ली थी । मैं अब उसके वंश का भी वर्णन करूँगा । बतलाने वाले मुझसे उसको आप लोग श्रवण कर लेवें । विश्वामित्र—देवरात—वैकृतिगालव—वतण्ड—सलङ्क—अभय—आयतायन—श्यामायन—याज्ञवल्क्य—जाबाल—सैन्धवायन—बाभ्रव्य—करीष—सश्रुत्य—संश्रुत—उलूप—औपगहय—पयोद—जनपादप—खरवाच—हलयम—साधित—वास्तु कौशिक—इन सबके आर्षेय प्रवर कीर्तित किए गए हैं । विश्वामित्र—देवरात—महायशा उद्दाल ये परस्पर में विवाह न करने के योग्य ही हैं—ऐसे ही ऋषिगण कह गए हैं । देवश्रवा—सुजातेय—सौमुक—कारकायन—तथा देवरात—हे नराधिप ! जो कुशिक हैं इन सबका शुभ प्रवर आर्षेय अभिमत है ॥१-८॥

देवश्रवा देवरातो विश्वामित्रस्तथैव च ।
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ॥९
धनञ्जय कपर्देय परिकूटश्च पार्थिव ! ।
पाणिनिश्चैव आर्षेया सर्व एते प्रकीर्तिता ॥१०
विश्वामित्रस्तथाद्यश्च माधुच्छन्दस एव च ।
आर्षेया प्रवरा ह्येते ऋषयः परिकीर्तिता ॥११
विश्वामित्रा मधुच्छन्दास्तथा चैवाघमर्षणः ।
परस्परमवैवाह्याऋषयः परिकीर्तिताः ॥१२
कमलायजिनश्चैव अश्मरथ्यस्तथैव च ।
वञ्जुलिश्चापि त्र्यार्षेयः सर्वेषां प्रवरो मतः ॥१३
विश्वामित्रश्चाश्मरथ्यो वञ्जुलिश्च महातपाः ।

परस्परमवैवाह्या ऋषयःपरिकीर्तिताः ॥१४

देवश्रवा, देवरात तथा विश्वामित्र ये ऋषिगण परस्पर विवाह न करने के योग्य कहे गये हैं ॥६॥ हे पार्थिव ! धनञ्जय, कपर्देय, परिकूट और पाणिनि ये सब आर्षेय कीर्तित किए गये हैं ॥१०॥ विश्वामित्र तथा आद्य और मधुच्छन्दस ये त्र्यार्षेय प्रवर ऋषिवर्ग बताये गए हैं ॥११॥ विश्वामित्र, मधुच्छन्द, अघमर्षण ये आपस में अवैवाह्य ऋषिगण कीर्तित हुए हैं ॥१२॥ कमलायजनि, अश्मरथ्य, वञ्जुलि अथवा त्र्यार्षेय प्रवर माना गया है। १३। विश्वामित्र, अश्वरथ, महातपा वञ्जुलि ये परस्पर में अवैवाह्य ऋषिगण परिकीर्तित हुए हैं ॥१४॥

विश्वामित्रोलोहितश्च अष्टकः पूरणस्तथा ।
विश्वामित्रः पूरणश्च तयोर्द्वौप्रवरौ स्मृतौ ॥१५
परस्परमवैवाह्याः पूरणाश्च परस्परम् ।
लोहिता अष्टकाश्चैषा त्र्यार्षेया परिकीर्तिताः ॥१६
विश्वामित्रो लोहितश्च अष्टकश्च महातपाः ।
अष्टका लोहितैर्नित्यमवैवाह्या परस्परम् ॥१७
उदरेणः क्रथकश्च ऋषिश्चोदावहिस्तथा ।
शाटचायनिः करीराशी शालङ्कायनिलावकी ॥१८
मौञ्जायनिश्चभगवान्त्र्यार्षेयाःपरिकीर्तिताः ।
खिलिखिलीस्तथाविद्योविश्वामित्रस्तथैव च ॥
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ॥१६॥
एते तवोक्ताः कुशिका नरेन्द्र ! महानुभावाःसततद्विजेन्द्रा ।
येषान्तु नाम्ना परिकीर्तितेन पापं समग्रं पुरुषो जहाति ॥२०

विश्वामित्र और लोहित—अष्टक—पूरण—विश्वामित्र और पूरण इन दोनों के दो प्रवर कहे गए हैं। पूरण आपस में अवैवाह्य हैं। लोहित और अष्टक इनके त्र्यार्षेय बताये गए हैं ॥१५, १६॥ विश्वामित्र, लोहित, महातपा अष्टक, ये अष्टक लोहितों के साथ आपस में अवैवाह्य हैं ॥१७॥

उदरेणु, क्रथक, ऋषि उदालकि, शाटचायनि, कार्षीगाशी, शालयङ्काय, निम्बक्रि, मौञ्जायनि; भगवान् ये ऋषिगण कीर्तित हुए हैं। खिलिखिलि, विध तथा विश्वामित्र ये परस्पर में ऋषिगण अवैवाह्य कहे गए हैं ॥१८,१९॥ हे नरेन्द्र ! ये आपको द्विजेन्द्र महानुभाव सतत कुशिक सब बतला दिए गए हैं जिनके परम शुभ नामों के सङ्कीर्तन मात्र से ही पुरुष अपने समस्त पापों को त्याग कर विशुद्ध हो जाया करता है ॥२०॥



८१—कश्यपवंशज-ऋषियों के नाम गोत्र वंश प्रवर वर्णन

मरीचेः कश्यपः पुत्रः कश्यपस्य तथा कुले ।
गोत्रकारान् ऋषीन् वक्ष्ये तेषां नामानि मे शृणु ॥१
आश्रायणि ऋषिगणा मेषकिरिटकायना ।
उदग्रजा माठराश्च भोजा विनयलक्षणा ॥२
शालाहलेया, कौरिष्टा कन्यकाश्चासुरायणा ।
मन्दाकिन्या वै मृगया श्रुतया भौतपायना: ॥३
देवयाना गोमयानाअधश्छाया अभयाश्च ये ।
कात्यायना शाक्रायणा बर्हियोगगदायना, ॥४
भवनन्दि महाचक्रि दाक्षपायण एव च ।
बोधयाना कार्निवया हस्तिदानास्तथैव च ॥५
वात्स्यायनानि कृतजा ह्याश्वलायनिनस्तथा ।
प्रागायणा पैलमौलिराश्वावतायनस्तथा ॥६
कौबेरकाश्च श्याकारा अग्निशर्मायणाश्च ये ।
मेषपा, कैकरसपास्तथा चैव तु बभ्रव ॥७

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—महामहर्षि मरीचि का कश्यप पुत्र हुआ था तथा कश्यप के कुल में जो गोत्रकार ऋषिगण हुए थे उनको शुभ

नामावली अब आप मुझसे श्रवण करलो ॥१॥ आथ्यायणि ऋषिगण, मेष-कीरिटकायन, उदग्रजमाठर, भोज, विनय लक्षण, शालाहलेय, कौरिष्ट, कन्यक, आसुरायण, मन्दाकिनी में मृगय, श्रुतम, भोजयापन, देवयान, गोमपान, अधश्छाया, भया, कात्यायन, शाक्रयाण, बहिर्योग गदायन, भव-नन्दि, महाचक्रि, दाक्ष पायन, बोधमान, कात्तिवय हस्तिदान, वात्स्यायनि कृतज, आश्वलायनि, प्रागायण, पौतमौलि, आदव वातायन, कौवेरक, श्याकार, अग्निशर्मायण, मेषप, कंकरसप, तथा बभ्रव ॥२-७॥

प्राचेयो ज्ञानसंज्ञेया आग्ना प्रासेव्य एव च ।
श्यामोदरा वैवशपास्तथाचैवोद्वलायनाः ॥८
काष्ठाहारिणमारीचाआजिहायनहास्तिकाः ।
वैकर्णेया काश्यपेया सासिसाहारितायना ॥६
मान्तगिनश्च भृगवस्त्र्यार्षेयाः परिकीर्तिताः ।
वत्सरः काश्यपश्चैव निध्रवश्चमहातपा. ॥१०
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ।
अत. पर प्रवक्ष्यामि द्व्यामुष्यायणगोत्रान् ॥११
अनसूयो नाकुरय स्नातपो राजवतप ।
शैशिरोदवहिश्चैव सैरन्ध्रोरोपसेवकिः ॥१२
या मुनि कात्रपिङ्गाक्षिः सजातम्बिस्थैव च ।
दिवावष्टाश्च इत्येते भवन्त्या ज्ञेयाश्च काश्यपाः ॥१३
त्र्यार्षेयाश्च तथैवेषां सर्वेषां प्रवरा शुभा. ।
वत्सरः काश्यपश्चैव वसिष्ठश्चमहातपाः ॥१४

प्राचेय, ज्ञान संज्ञेय, अग्नि, प्रासेव्य, श्यामोदर, वैवशप, उद्वलायन, काष्ठाहारिण, मारीच, आजिहायन, हास्तिक, वैकर्णेय, काश्यपेय, सासि-साहारितायन, मान्तगिन, भृगुगण ये सब त्र्यार्षेय परिकीर्तित हुए हैं। अब यहाँ से आगे हम द्व्यामुष्यायण गोत्रों के विषय में वर्णन करेंगे। अनसूय, नाकुरय, स्नातप, राज वतप शैशिरोदवहि, सैरन्ध्रोरोप सेवकि,

यामुनि, काद्र पिङ्गाक्षि, सजातम्बि, दिवावष्टाश्च ये इतने भक्ति भाव से काश्यपों का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। इनके सबके त्र्यार्षेय शुभ प्रवर हैं। वत्सर, काश्यप, वसिष्ठ महातपा ॥८-१४॥

परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः।
संयातिश्च नभश्चोभौ पिप्पल्योऽथ जलन्धरः ॥१५
भुजातपूरः पूर्यश्च कर्दमो गर्दभीमुखः।
हिरण्यबाहुकैरातावुभौ काश्यपगोभिलौ ॥१६
कुलहो वृषकण्डश्च मृगकेतुस्तथोत्तरः।
निदाघमसृणौ मत्स्या महान्तः केवलाश्च ये ॥१७
शाण्डिल्यो दानवश्चैव तथा व देवजातयः।
पैप्पलादिस्स प्रवरा ऋषयःपरिकीर्तिता. ॥१८
त्र्यार्षेयाभिमतास्त्वेषा सर्वेषां प्रवराः शुभाः।
असितो देवलश्चैव कश्यपश्च महातपा ॥
परस्परमवैवाह्या ऋषय. परिकीर्तिता ॥१९॥
ऋषिप्रधानस्य च कश्यपस्य दाक्षायणीभ्यः सकलप्रसूतम्।
जगत्समग्रं मनुसिंह पुण्यं किं ते प्रवक्ष्याम्यहमन्तरेण ॥ २०

ये समस्त ऋषिगण परस्पर में अवैवाह्य बतलाये गये है। संयाति, नभ ये दोनों, पिप्पल्य, जलन्धर, भुजातपूर, पूर्व, कर्दम, गर्दभी मुख, हिरण्य वाहुक, काश्यप, गोभिल, कुलह, वृषकण्ड, मृगकेतु, उत्तर, निदाघ, मसृण, मत्स्य, महान्त, केवल, शाण्डिल्य, दानव, देवजाति, पैप्पल दिस, ये सब ऋषिवृन्द प्रवर कहे गए हैं इन सबके शुभ प्रवर त्र्यार्षेय अभिमत हुए हैं। असित, देवल और महातपा कश्यप ये ऋषिगण परस्पर में अविवाह्य हैं—ऐसा कीर्तित किया गया है। समस्त ऋषियों में परम प्रधान कश्यप के दाक्षायणीयों से यह सम्पूर्ण प्रसूत हुआ है। यह सम्पूर्ण जगत् सिंह के तुल्य मनु का पुण्य रूप है। अब मैं इसके उपरान्त आपको क्या बतलाऊँ ॥१५-२०॥

८२-वशिष्ठ वंशज ऋषियों के नाम गोत्र वंश प्रवर वर्णन

वसिष्ठवंशजान् विप्रान् निबोध वदतो मम ।
एकार्षेयस्तु प्रवरो वासिष्ठानां प्रकीर्तितः ॥१
वसिष्ठा एव वासिष्ठा अविवाह्या वसिष्ठजैः ।
व्याघ्रपादा औपगवा वैक्लवाः शाद्वलायनाः ॥२
कपिष्ठला औपलोमा अलब्धाश्च शठाः कठाः ।
गौपायना बोधपाश्च दाकव्या ह्यथ वाह्यकाः ॥३
वालिशया पालिशयास्ततो वाग्ग्रन्थयश्च ये ।
आपस्थूणाः शीतवृत्तास्तथा ब्राह्मपुरेयकाः ॥४
लोमायना स्वस्तिकराः शाण्डलिर्गौडिनिस्तथा ।
वाडोहलिश्च सुमनाश्चोपावृद्धिस्तथैव च ॥५
चौलिर्बौलिर्ब्रह्मबलः पौलिः श्रवस एव च ।
पौडवो याज्ञवल्क्यश्च एकार्षेया महर्षयः ॥६
वसिष्ठ एषां प्रवर अवैवाह्याः परस्परम् ।
शैलालयो महाकर्णः कौरव्यः क्रोधिनस्तथा ॥७

श्रीमत्स्य भगवान ने कहा—वसिष्ठ वंश में समुत्पन्न विप्रों को बतलाते हुए मुझसे श्रवण करो। वासिष्ठों का एकार्षेय प्रवर प्रकीर्तित किया गया है ॥१॥ वसिष्ठ ही वासिष्ठ हैं जो वसिष्ठ से समुत्पन्न होने वालों के साथ अविवाह्य हैं। व्याघ्रपाद, औपगव, वैक्लव, शाद्वलायन, कपिष्ठल, औपलोम, अलब्ध, शठ, कठ, गौपायन, बोधप, दाकव्य, वाह्यक, वालिशय, पालिशय, वाग्ग्रन्थय, आपस्थूण, शीतवृत्त, ब्राह्म पुरेयक, लोमायन, स्वस्तिकर, शाण्डलि, गौडिनि, वाडोहलि, सुमना, उपावृद्धि, चौलि, बौलि, ब्रह्मबल, पौलि, श्रवस, पौडव, याज्ञवल्क्य, ये सब एकार्षेय महर्षिगण हैं। इनका वसिष्ठ प्रवर है और परस्पर में अवैवाह्य हैं। शैलालय, महाकर्ण, कौरव्य, क्रोधिना ॥१-७॥

कपिञ्जलावालखिल्याभार्गवित्तायनाश्चये ।
कौलायनःकालशिखःकोरकृष्णा सुरायणाः ॥८
शाकाह्वार्याः शाकधियः काण्वा उपलपाश्चये ।
शाकायनाउहाकाश्चअथमापणगावयः ॥९
दाकायनावालवयोवाकयो गोरथास्तथा ।
लम्बायना श्यामवयो ये चकोडोदरायणाः ॥१०
प्रलम्बायनाश्च ऋषय औपमन्यव एव च ।
साङ्ख्यायनाश्चऋषयस्तथावै वेदशेरकाः ॥११
पालङ्कायन उद्गाहा ऋषयश्च वलेक्षव ।
मातेया ब्रह्मवालिन पर्णागारिस्तथैव च ॥१२
त्र्यार्षेयोऽभिमतश्चैषां सर्वेषां प्रवरस्तथा ।
भिगीवसुर्वशिष्ठश्च इन्द्रप्रमदिरेवच ॥१३
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ।
औपस्थलास्वस्थलयो पालोहाला हलाश्च य ॥१४

कपञ्जिल, बाल खिल्य, भार्ग वित्तायन, कौलायन, काल शिख, कोर कृष्ण, सुरायण, शाकाह्वार्य, शाकधी, काण्व, उपलप, शाकायन, उहाक, मापणगावय, दाकायन, बालवय, वाकय, गोरथ, लम्बायन, श्याम-वय कोडोदरायण, प्रलम्बायन ऋषिगण, औपमन्यव, साङ्ख्यायन ऋषि-वर्ग, वैदशेरक, पलङ्कायन, उद्गाह ऋषिगण, वलेक्षव, मातेय, ब्रह्मवलिन, पर्णागारि, इन सबके प्रवर त्र्यार्षेय अभिमत है। भिगावसु वशिष्ठ और इन्द्र प्रमाद ये ऋषिगण आपस में विवाह किया नहीं करने के योग्य होते हैं—ऐसा ही कहा गया है। औपस्थल स्वस्थल ये—पालोहल—हल ॥८-१४॥

माध्यन्दिनो माक्षनय पैप्पलादिर्विचक्षणः ।
सैंशृङ्खायन संवल्का. कुण्डिनश्च नगोत्तम ! ॥१५
त्र्यार्षेयाभिमताश्चैषां सर्वेषां प्रवरा शुभाः ।

वसिष्ठमित्रावरुणौ कुण्डिनश्च महातपाः ॥१६
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ।
शिवकर्णो वयश्चैव पादपश्च तथैव च ॥१७
त्र्यार्षेयोऽभिमतश्चैषां सर्वेषां प्रवरस्तथा ।
जातूकर्ण्योवसिष्ठश्च तथैवात्रिश्च पार्थिव ! ॥
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ॥१८
वसिष्ठवंशेऽभिहिता मयैते ऋषिप्रधानाः सततं द्विजेन्द्राः ।
येषां तु नाम्ना परिकीर्तितेन पापं समग्रं पुरुषो जहाति ॥१९

माध्यन्दिन, माक्षतय, पैप्पलादि, विचक्षुप, शैभृङ्गायन, सैवल्य, कुण्डिन हे नरोत्तम ! इन सब के परम शुभ प्रवर त्र्यार्षेय अभिमत हैं। वसिष्ठ, मित्रावरुण, महातपा, कुण्डिन ये ऋषि वृन्द परस्पर में अवैवाह्य है—ऐसा कीर्तित किया गया है। शिवकर्ण, वय, पादप, इन सबका त्र्यार्षेय प्रवर अभिमत है। हे पार्थिव ! जातूकर्ण्य वसिष्ठ तथा अत्रि ये ऋषि वृन्द आपस में विवाहन करने के योग्य ही कहे गये हैं। १५-१८॥ मैंने आपको वसिष्ठ के वंश में ऋषियों में प्रधान और निरन्तर द्विजेन्द्र आपको कह दिये गये हैं जिनके परम शुभ नामों के परिकीर्तन से पुरुष अपने सम्पूर्ण पापों का त्याग कर दिया करता है ॥१९॥

८३—ऋषियों के आख्यान में निमि का वर्णन

वसिष्ठस्तु महातेजा निमेः पूर्वपुरोहितः ।
बभूव पार्थिवश्रेष्ठ ! यज्ञास्तस्य समन्ततः ॥१
श्रान्तात्मा पार्थिवश्रेष्ठ ! विशश्राम तदा गुरुः ।
तं गत्वा पार्थिवश्रेष्ठो निमिर्वचनमब्रवीत् ॥२
भगवन्यष्टुमिच्छामि तन्मा याजय माचिरम् ।

तमुवाच महातेजा वसिष्ठःपार्थिवोत्तमम् ॥३
कञ्चित्कालं प्रतीक्षस्व तव यज्ञैः सुसत्तमैः ।
श्रान्तोऽस्मि राजन् ! विश्रम्य याजयिष्यामि ते नृपः॥४
एवमुक्तः प्रत्युवाच वसिष्ठं नृपसत्तम ! ।
पारलौकिककार्ये तु कः प्रतीक्षितुमुत्सहेत् ॥५
न च मे सौहृदं ब्रह्मन् ! कृतान्तेन बलीयसा ।
धर्मकार्ये त्वरा कार्या चलं यस्माद्धि जीवितम् ॥६
धर्मपथ्योदनो जन्तुर्मृतोऽपि सुखमश्नुते ।
श्व कार्य्यमद्य कुर्वीत पूर्वाह्णेचापराह्निकम् ॥७

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—महर्षि वसिष्ठ महान् तेजस्वी थे और निमि के पूर्व पुरोहित थे। हे पार्थिव श्रेष्ठ उनके चारों ओर यज्ञ थे उस समय में श्रान्त आत्मा गृह में विश्राम किया था। उनके समीप में जाकर निमि ने यह वचन कहा था। हे भगवन् ! मैं देखना चाहता हूँ—मुझे शीघ्र यजन कराइये। महान् तेज वाले वसिष्ठ जी ने उस श्रेष्ठ राजा से कहा था—कुछ समय तक प्रतीक्षा करो। आपके परम श्रेष्ठ यज्ञों से हे राजन् ! मैं थक-सा गया हूँ मैं कुछ समय तक विश्राम करके ही याजन कराऊँगा ॥१-४॥ इस प्रकार से जब कहा गया था उसने हे नृपश्रेष्ठ ! वसिष्ठ जी से कहा था कि पारलौकिक कार्य में कौन मनुष्य होगा जो प्रतीक्षा करने का उत्साह करेगा। हे ब्रह्मन् ! उस महान् बली यमराज से मेरी कोई मित्रता नहीं है। धर्म के कार्य्य में तो शीघ्रता करनी चाहिए क्योंकि यह मानव का जीवन तो चल और अस्थिर हुआ करता है ॥५, ६॥ धर्म रूपी पथ्य ओदन वाला यह जन्तु मृत होकर भी सुख का आनन्दोपभोग किया करता है। जो कार्य्य अर्थात् धर्म सम्बन्धी कर्म्म कल करने का विचार हो उसे आज ही करना चाहिए और जो दोपहर के बाद करने का हो उसको दोपहर के पूर्व ही कर डाले—इसी प्रकार धार्म्मिक कृत्य को ही जितनी

शीघ्रता हो सके उतनी शीघ्रता से सम्पादित करने का सर्वदा विचार रखना मनुष्य का परम कर्त्तव्य है ॥७॥

न हि प्रतीक्षते मृत्युः कृतञ्चास्य न वा कृतम् ।
क्षेत्रापणगृहासक्तमन्यत्र गतमानसम् ॥८
वृकश्चोरणमासाद्य मृत्युरादाय गच्छति ।
नैवास्तेन प्रियः कश्चिद्द्वेष्यश्चास्य न विद्यते ॥९
आयुष्ये कर्मणि क्षीणे प्रसह्य हरते जनम् ।
प्राणवायोश्चलत्वञ्च त्वया विदितमेव च ॥१०
यदत्र जीव्यते ब्रह्मन् ! क्षणमात्रन्तदद्भुतम् ।
शरीरं शाश्वतं मन्ये विद्याभ्यासे धनार्जने ॥११
अशाश्वतं धर्मकार्ये ऋणवानस्मि सङ्कटे ।
सोऽहं सम्भृतसम्भारो भवन्मूलमुपागतः ॥१२
न चेद्याजयसे मां त्वमन्यं यास्यामि याजकम् ।
एवमुक्तस्तदा तेन निमिना ब्राह्मणोत्तमः ॥१३
शशाप तं निमिं क्रोधाद्विदेहस्त्वं भविष्यसि ।
श्रान्तं मां त्वं समुत्सृज्य यस्मादन्यं द्विजोत्तमम् ॥१४

मृत्यु इसने कुछ किया है या अभी तक धर्म का कार्य नहीं किया है—इसकी बिल्कुल भी प्रतीक्षा नहीं किया करती है। यह तो एक वृक के ही समान चुपचाप समय पर आकर क्षेत्र—गृह—आपण आदि में समासक्त और दूसरे-दूसरे विषयों में मन लगाने वाले मनुष्य को लेकर चल दिया करता है। इसका न तो कोई प्यारा है और न किसी से इसका द्वेष ही है। यह तो कर्म में समासक्त जन को आयुष्य के क्षीण हो जाने पर बलात् पकड़ कर हरण कर लिया करता है। यह प्राण वायु चल है और इसकी चलता को आप भली भाँति से जानते ही हैं। हे ब्रह्मन्! जो यहाँ पर जीवित रहा करता है उसका एक क्षणमात्र जीवित रहना भी एक अद्भुत आश्चर्य ही है। मैं तो विद्याभ्यास और धन के अर्जन में

हीं इस शरीर को शाश्वत मानता हूँ। धर्म कार्य में मैं इसको अशाश्वत मानता हूँ। इस सङ्कट में ऋणवान् हूँ। वह मैं सम्भृत सम्भार वाला मूल को उपागत हुआ हो गया था। यदि आप मुझे याजन नहीं करायेंगे तो मैं किसी अन्य याजक के समीप में चला जाऊँगा। इस प्रकार से उस समय में उस निमि के द्वारा वह श्रेष्ठ ब्राह्मण जब कहा गया था तो उसने महान् क्रोध से उस निमि को शाप दे दिया था कि तू विदेह हो जायेगा क्योंकि परम शान्त मुझ को त्याग करके किसी अन्य द्विजोत्तम के समीप जाना चाहता है ॥८-१४॥

धर्मज्ञस्तु नरेन्द्र ! त्वं याजकं कर्तुमिच्छसि ।
निमिस्तं प्रत्युवाचाथ धर्मकार्यरतस्य मे ॥१५
विघ्नङ्करोषि नान्येन याजनञ्च तथेच्छसि ।
शापं ददासि यस्मात्त्वं विदेहोऽद्य भविष्यसि ॥१६
एवमुक्ते तु तौ जातौ विदेहौ द्विजपार्थिवौ ।
देहहीनौ तयोर्जीवौ ब्रह्माणमुपजग्मतुः ॥१७
तावागतौ समीक्ष्याथ ब्रह्मा वचनमब्रवीत् ।
अद्यप्रभृति ते स्थानं निमिजीव ददाम्यहम् ॥१८
नेत्रपक्ष्मसु सर्वेषां त्वं वसिष्यसि पार्थिव ।
त्वत्सम्बन्धात्तथा तेषां निमेषः संभविष्यति ॥१९
चालयिष्यन्ति तु तदा नेत्रपक्ष्माणि मानवाः ।
एवमुक्ते मनुष्याणां नेत्रपक्ष्मसु सर्वशः ॥२०
जगाम निमिजीवस्तु वरदानात् स्वयम्भुवः ।
वसिष्ठजीवं भगवान् ब्रह्मा वचनमब्रवीत् ॥२१

हे नरेन्द्र ! धर्म के ज्ञाता आप हैं और आप याजक करना चाहते हैं। इसके अनन्तर निमि ने उसको इसका उत्तर दिया था कि धर्म में रति रखने वाले मेरे कार्य में विघ्न करते हैं और अन्य के द्वारा कराये जाने वाले याजन को नहीं चाहते हैं। इसीलिए आप शाप दे रहे हैं कि

तू विदेह हो जायगा तो तू भी विदेह हो जायगा। इस प्रकार से कहने पर वे दोनों ही द्विज और पार्थिव विदेह हो गये थे। उन दोनों के देह से हीन जीवात्मा ब्रह्माजी के समीप में पहुँचे थे। उन दोनों को समागत हुए देखकर ब्रह्माजी ने यह वचन कहा—आज से लेकर हे निमि के जीव! तुझको मैं स्थान देता हूँ हे पार्थिव! तुम सब के नेत्रों के पक्ष्म में निवास करोगे ॥१८-१९॥ मनुष्य उस समय में नेत्रों के पक्ष्मों का चालन करेंगे। इस तरह से कहने पर सब ओर मनुष्यों के नेत्रों के पक्ष्मों पर वह निमि का जीव स्वयम्भू प्रभु के वरदान से चला गया था। फिर ब्रह्माजी ने वसिष्ठ महर्षि के जीव से यह वचन कहा था—॥२०, २१॥

मित्रावरुणयोः पुत्रो वसिष्ठ ! त्वं भविष्यसि ।
वसिष्ठेतिच ते नाम तत्रापि च भविष्यति ॥२२
जन्मद्वयमतीतञ्च तत्रापि त्वं स्मरिष्यसि ।
एतस्मिन्नेव काले तु मित्रश्च वरुणस्तथा ॥२३
बदर्याश्रममासाद्य तपस्तेपतुरव्ययम् ।
तप्यतोस्तयोरेव कदाचिन्माधवे ऋतौ ॥२४
पुष्पितद्रुमसंस्थाने शुभे दयितमारुते ।
उर्वशी तु वरारोहा कुर्वती कुसुमोच्चयम् ॥२५
सुसूक्ष्मरक्तवसना तयोर्दृष्टिपथङ्गता ।
तां दृष्ट्वा सुमुखी सुभ्रू नीलनीरजलोचनाम् ॥२६
उभौ चुक्षुभतुर्धैर्यात्तद्रूपपरिमोहितौ ।
तपस्यतोस्तयो वीर्यमस्खलच्च मृगासने ॥२७
स्कन्नं रेतस्ततो दृष्ट्वा शापभीतौ परस्परम् ।
चक्रतुः कलशे शुक्रं तोयपूर्णे मनोरमे ॥२८

हे वसिष्ठ ! तू मित्रावरुणों का पुत्र होगा। वहाँ पर भी "वसिष्ठ"—यह तेरा नाम होगा ॥२२॥ वहाँ पर भी तुझे बीते हुए दो जन्मों का स्मरण होगा। इसी समय में मित्र और वरुण बदर्याश्रम को

प्राप्त करके अव्यय तपस्या का सतपन करने लगे थे। उन दोनों के इस प्रकार से तपश्चर्या करने पर किसी समय माधव ऋतु में परम शुभ और वहन करने वाली वायु से युक्त पुष्पित द्रुमों के समस्थल में फलों के स्तवकों उछालती हुई वरारोहवाली उर्वशी जो कि अत्यन्त वागीक और रक्तवर्ण के वस्त्र धारण कर रही थी तप करने वाले उन दोनों की दृष्टि में आ गई थी अर्थात् दोनों ने उर्वशी को देख लिया था। उस नीले कमलों के सदृश लोचनों वाली सुन्दर मुख से सम्पन्न सुभ्रू को देख कर उसके रूप लावण्य पर मोहित हुए वे दोनों ही धैर्यहीन होकर काम वाले हो गये थे। तपस्या करते हुए उन दोनों का वीर्य मृगासन पर स्खलित हो गया था। इसके उपरान्त जब उन्होंने अपने स्खलित हुए वीर्य को देखा तो वे दोनों शाप से भयभीत हो गये थे और उन्होंने वहाँ पर स्थित जल से भरे हुए मनोहर कलश में उस वीर्य्य को डाल दिया था ॥ २३, २४, २५ २६, २७, २८ ॥

तस्मादृषिवरौ जातौ तेजसा प्रतिमौ भुवि ।
वसिष्ठश्चाप्यगस्त्यश्च मित्रावरुणयोर्द्वयोः ॥२९
वसिष्ठस्यग्रजेमेऽथ भागिनी नारदस्य तु ।
अरुन्धती वरारोहा तस्याः शक्तिमजीजनत् ॥३०
शक्तेः पराशरः पुत्रस्तस्य वंश निबोध मे ।
यस्य द्वैपायनः पुत्रः स्वयं विष्णुरजायत ॥३१
प्रकाशो जनितो येन लोके भारत चन्द्रमाः ।
पराशरस्य तस्य त्वं शृणु वंशमनुत्तमम् ॥३२
काण्डपवो वाहनपो जैह्मपो भौमतापन ।
गोपालिरेषां पञ्चम एते गोत्र पराशराः ॥३३
प्रपोह्यावाह्य मयाः ख्याते या कौतुजातयः ।
हर्यश्विः पञ्चमो ह्येषां नीलाज्ञेयाः पराशराः ॥३४
कार्ष्णायनाः कपि मुखाः काकेयस्थाजपातयः ।

पुष्करः पञ्चमश्चैषां कृष्णाज्ञेया पराशराः ॥३५

उसी वीर्य से भूमण्डल में तेज से समन्वित उन दोनों मित्रावरुणों के दो ऋषियों से परम श्रेष्ठ समुत्पन्न हुए थे। उनमें एक का नाम वसिष्ठ था और दूसरे का नाम अगस्त्य था ॥ २६ ॥ वसिष्ठ ने नारद की भगिनी के साथ विवाह किया था जिस वरारोहा का नाम अरुन्धती था। उस अरुन्धती में उसने शक्ति को समुत्पन्न किया था। शक्ति का पुत्र पराशर हुआ था। अब उसका जो भी वंश हुआ उसे मुझसे समझ लो। जिस पराशर का स्वयं विष्णु द्वैपायन पुत्र उत्पन्न हुआ था ॥ ३०, ३१ ॥ यह ऐसा था जिसने लोक में भारत चन्द्रमा प्रकाश को प्रसूत किया था। उस पराशर मुनि का जो उत्तम वंश था उसे तुम श्रवण करलो ॥३२॥ काण्डशय—वाहनय—जैह्मप—भौम तापन और इनमें पाँचवा गोपालि था। ये गौर पराशर थे ॥ ३३ ॥ प्रय—ह्याश्वाह्य-मय और ख्यात में जो कौतुक जातियाँ हैं तथा पञ्चम हर्यश्वि ये नीलाभेय पराशर हैं ॥ ३४ ॥ कार्ष्णायन—कपिमुख—काकेयस्थ—जपाति और इनमें पाँचवा पुष्कर ये सब कृष्णा ज्ञेय पाराशर हैं ॥ ३५ ॥

> श्राविष्टायन वालेयास्वायष्टाश्चोपयाश्च ये।
> इषीकहस्ताश्चैते व पञ्चश्वेता पराशराः ॥३६
> पाटिका बादरिश्चैवस्तम्बा वै क्रोधनायनाः।
> क्षौमिश्चैषां पञ्चमस्तु एते श्यामा पराशराः ॥३७
> खल्यायना वार्ष्णायनास्तैलेयः खलु यूथपाः।
> तन्तिश्चैषां पञ्चमस्तु एते धूम्राः पराशराः ॥३८
> इत्येतास्वैते नृप। वंशमुख्याः पराशराः सूर्यसमप्रभावाः।
> येषां तु नाम्ना परिकीर्तितेन पापं समग्रं पुरुषो जहाति ॥ ३९

श्राविष्टायन—वालेय—स्वायष्ट—उपय—इषीक हस्त ये पाँच श्वेत पराशर थे ॥ ३६ ॥ पाटिक—बादरि—स्तम्ब क्रोधनायन और इनका पाँचवाँ क्षौमि ये श्याम पराशर हुए थे। खल्यायन—वार्ष्णायन—तैलेय—

शूपर और इनमें पञ्चम तन्ति ये सब छः पराशर हैं। हे नृप! ये सूर्य के समान प्रभाव वाले वंश में प्रमुख पराशर सब आपके समक्ष में वर्णित कर दिये गये हैं जिनके शुभ नामों के ही कीर्तन करने से मनुष्य अपने समस्त पापों से छुटकारा पाकर परम विशुद्ध हो जाया करता है ॥ ३७, ३८ । ३९ ॥

८४—ऋषियों के नाम गोत्र वंश प्रवर वर्णन

अतः परमगस्त्यस्य वक्ष्ये वंशोद्भवान्द्विजान् ।
अगस्त्यश्चकरम्भश्चकौशल्य करटस्तथा ॥१
सुमेधसोमयोभुश्चतथा गान्धारकायणाः ।
पौलस्त्याः पौलहाश्चैवक्रतुवंशभवास्तथा ॥२
आर्षेयाभिमताश्चैषां सर्वेषां प्रवराः शुभाः ।
अगस्त्यश्च महेन्द्रश्च ऋषिश्चैव मयोभुव ॥३
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ।
पौर्णमासाः पारणाश्च आर्षेयाः परिकीर्तिताः ॥४
अगस्त्यः पौर्णमासश्च पारणश्च महातपाः ।
परस्परमवैवाह्याः पौर्णमासास्तु पारणाः ॥५
एवमुक्तो ऋषीणान्तु वंश उत्तमपौरुषः ।
अतः परं प्रवक्ष्यामि किम्भवानद्य कथ्यताम् ॥६
पुलहस्य पुलस्त्यस्य क्रतोश्चैवमहात्मनः ।
अगस्त्यस्य तथा चैवकथं वंशस्तदुच्यताम् ॥७

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—अब इसके आगे मैं अगस्त्य मुनि के वंश में समुत्पन्न द्विजों का वर्णन करता हूँ—अगस्त्य—करम्भ—कौशल्य—करट—सुमेधस—मयोभुव—गान्धारकायण—पौलस्त्य—पौलह—क्रतुवंश भव—

इन सबके शुभ प्रवर आर्षेय अभिमत हैं। अगस्त्य–महेन्द्र और मयोभुव ऋषि ये समस्त ऋषिगण परस्पर में असंवाह्य हैं ऐसा परिकीर्तित किया गया है। पौर्णमास और पारण आर्षेय कीर्तित किये गये हैं। अगस्त्य–पौर्णमास तथा महान् तपस्वी पारण—ये आपस में विवाह करने के योग्य नहीं थे और पौर्णमास पारणों के साथ विवाह्य नहीं था। इस प्रकार से ऋषियों का उत्तम पौरुष वाला वंश मैंने कह दिया है। इससे आगे आज क्या कहूँ ? आप ही यह मुझे बतलाइये। महर्षि मनु ने कहा—पुलह–पुलस्त्य–क्रतु जो महान् आत्मा वाला था तथा अगस्त्य का वंश कैसे हुआ—यही सब बतलाइये ॥ १–७ ॥

ऋतुः खल्वनपत्योऽभूद्राजन्वैवस्वतेऽन्तरे ।
इध्मवाहं स पुत्रत्वे जग्राह ऋषिसत्तमः ॥८
अगस्त्यपुत्रं धर्मज्ञ आगस्त्याः क्रतवस्ततः ।
पुलहस्य तथा पुत्रास्त्रयश्च पृथिवीपते ॥९
तेषान्तु जन्म वक्ष्यामि उत्तरत्र यथाविधि ।
पुलहस्तु प्रजां दृष्ट्वा नातिप्रीतमना स्वकाम् ॥१०
अगस्त्यजं दृढास्यन्तु पुत्रत्वे वृतवांस्ततः ।
पौलहाश्च तथा राजन् आगस्त्याः परिकीर्तिताः ॥११
पुलस्त्यान्वयसम्भूतान् दृष्ट्वा रक्षः समुद्भवान् ।
अगस्त्यस्य सुतं धीमान् पुत्रत्वे वृतवांस्ततः ॥१२
पौलस्त्याश्च तथा राजन्नागस्त्याः परिकीर्तिताः ।
सगोत्रत्वादिमे सर्वे परस्परमनन्वयाः ॥१३
एते तवोक्ताः प्रवरा द्विजानां महानुभावा नृप वंशकाराः ।
एषान्तु नाम्ना परिकीर्तितेन पापं समग्रं पुरुषो जहाति ॥१४

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—हे राजन् ! वैवस्वत मन्वन्तर में क्रतु बिना सन्तान वाला हुआ था। उस श्रेष्ठ ऋषि ने इध्मवाह को पुत्र के रूप में ग्रहण किया था ॥ ८ ॥ वह धर्म का ज्ञाता अगस्त्य का

पुत्र था। इसके पश्चात् ऋतुगण्य आगस्त्य कहे गये थे। हे पृथिवी पते! पुलह के तीन पुत्र थे। अब मैं उत्तर में यथाविधि उनके जन्म के विषय में वर्णन करूँगा। पुलह ने अपनी प्रजा को देखा था तो वह—अत्यन्त प्रीति युक्त मन वाला नहीं था। इसके उपरान्त उसने दृढ़ास्य अगस्त्य से समुत्पन्न को पुत्रत्व के रूप में वरण कर लिया था। हे राजन्! उसी प्रकार से पौलह आगस्त्य परिकीर्तित हुए थे। पुलस्त्य के अन्वय में समुद्गतों को राक्षसों से समुद्भव वाले देख कर धीमान् ने अगस्त्य के सुत को ही पुत्रत्व में वृत कर लिया था। ॥९॥१०॥११॥१२॥ तथा हे राजन्! वे पौलस्त्य आगस्त्य कीर्तित हुये। सगोत्र होने से ये सब परस्पर में अन्वय वाले नहीं थे। ये सब ऋषियों के वंशकर महानुभाव द्विजों में, प्रवर थे? इनका वर्णन आपको सुना दिया है। इनके नामों के कीर्तन से मनुष्य अपने सम्पूर्ण पापों को त्याग देता है ॥१३।१४।



८५—मनुमत्स्य संवादे धर्म वंश वर्णन

अस्मिन्वैवस्वते प्राप्ते शृणु धर्मस्य पार्थिव ! ।
दाक्षायणीभ्य. सकल वंश दैवतमुत्तमम् ॥१
पर्वतादिमहादुर्गाणि गीर्वाण नराधिप ! ।
अरुन्धत्या. प्रसूतानि धर्माद्वैवस्वतेऽन्तरे ॥२
अष्टौ च वसव. पुत्रा. सोमपाश्चविभास्तथा ।
धराध्रुवश्चसोमश्चआपश्चैवानिलानलौ ॥३
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोऽष्टौ प्रकीर्तिता ।
धरस्य पुत्रो द्रविण कालःपरोध्रुवस्यतु ॥४
कालस्मात्ववयवानान्तु शरीराणि नराधिप ! ।
मूर्तिमन्ति च कालाद्धि सत्वमूतान्यशेषतः ॥५

सोमस्य भगवान् वर्चाः श्रीमांश्चापस्य कीर्त्यते ।
अनेकजन्मजननः कुमारस्त्वनलस्यतु ॥६
पुरोजवाश्चानिलस्य प्रत्यूषस्य तु देवलः ।
विश्वकर्मा प्रभासस्य त्रिदशानां स वर्धकिः ॥७

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—हे पार्थिव ! इस वैवस्वत अन्तर के प्राप्त होने पर दाक्षायणियों से सम्पूर्ण उत्तम अदिति दैवत वंश का श्रवण कीजिएगा ॥ १ ॥ हे नराधिप । इस वैवस्वत अन्तर में धर्म से दक्षपत्नी में पर्वत आदि महा दुर्ग शरीर प्रसूत हुए थे ॥ २ ॥ आठ वसुगण पुत्र—विश्व के सोमप—धर—ध्रुव—सोम—आप—अनिल—अनल—प्रत्यूष प्रभास ये सब अष्ट वसुगण कीर्तित किये गये हैं । धर का पुत्र द्रविण हुआ और काल ध्रुव का पुत्र हुआ था । हे नराधिप ! काल के अवयवों के शरीर मूर्तिमान् सम्पूर्ण काल से ही समत्रसूत हुए थे ॥ ३, ४ ५ ॥ सोम का पुत्र भगवान् वर्चा था और जल का पुत्र श्रीमान् हुआ था—ऐसा कहा जाता है । अनल का पुत्र अनेक जन्म जनन कुमार था । अनिल का आत्मज पुरोजवा तथा प्रत्यूष का पुत्र देवल प्रसूत हुआ था । प्रभास का पुत्र विश्वकर्मा था तथा त्रिदशों का वह वर्धकि था ॥६, ७ ॥

गर्दीहितकरा प्रोक्ता नागवीथ्यादयो नव ।
लम्बापुत्र स्मृतो घोषो भानोः पुत्राश्च भानवः ॥८
ग्रहर्क्षाणाञ्च सर्वेषामन्येषां चामितौजसाम् ।
मरुत्वत्यां मरुत्वन्तः सर्वे पुत्राः प्रकीर्तिताः ॥९
सङ्कल्पायाश्च सङ्कल्पस्तथा पुत्र प्रकीर्तितः ।
मुहूर्ताश्च मुहूर्तायाः साध्याः साध्यासुताः स्मृताः ॥१०
मनोऽनुमन्ता प्राणश्च नरोऽपानौ च वीर्यवान् ।
निरहायोऽनयश्चैव हंसो नारायणस्तथा ॥११
विभुश्चापि प्रभुश्चैव साध्या द्वादश कीर्तिताः ।
विश्वायाश्च तथा पुत्रा विश्वेदेवाः प्रकीर्तिताः ॥१२

क्रतुर्दक्षोवसुः सत्यः कालकामोमुनिस्तथा ।
कुरजोमनुजोबीजोरोचमानश्च ते दश ॥ १३
एतावदुक्तस्तव धर्मवंश· सक्षेपतः पार्थिववंशमुख्य ! ।
व्यासेन वक्तु ंन हि शक्यमस्ति राजन् विना वर्षशतैरनेकै.॥१४

सभी हितकारो वाले नागवीथी आदि नौ बताये गये है । लम्बा का पुत्र घोष कहा गया है और भानु के पुत्र भानुगण है ॥ ८ ॥ अन्य अमित ओज वाले ग्रह और नक्षत्रो के सबके मरुत्वती मे मरुत्वन्त सब पुत्र प्रकीर्तित हुए हैं ॥ ९ ॥ सङ्कल्पा का पुत्र सङ्कल्प कहा गया है । मुहूर्त्ता के पुत्र मुहूर्त और साध्य साध्या के सुत उत्पन्न हुए थे ऐसा कहा गया है । मनु न मनु और प्राण —नर—उपान —वीर्यवान् —द्राय॑ —अयन —हम —नागायण—विभु और प्रभु ये द्वादश साध्य कहे गये है । विश्वा के जो पुत्र थे व विश्वेदेवा कीर्तित हुए थे । क्रतु-दक्ष —वसु-सत्य--काल काम--मुनि--कुरज- मनुज--बीज -रोचमान ये दश थे । हे पार्थिवो के वंश मे प्रधान ! हमने यह धर्म का वंश सक्षेप से आपके समक्ष मे बतला दिया है । हे राजन् ! यह अनेकों सैकडो वर्षों के बिना भगवान् व्यासदेव के द्वारा भी बतलाया नही जा सकता है ॥ १०, ११, १२, १३, १४ ॥

८६—पतिव्रतामाहात्म्य में सावित्री उपाख्यान

तत. स राजा देवेश पप्रच्छामितविक्रमः ।
पतिव्रताना माहात्म्य तत्सम्बन्धाकथामपि ॥१
पतिव्रताना का श्रेष्ठा कयामृत्युः पराजितः ।
नामसङ्कीर्तनं कस्याः कीर्तनीयसदा नरः ॥
सर्वपापक्षयकरमिदानी कथयस्व मे ॥२॥
चलोम्य धमराजाऽपिनाचरत्यपमापताम् ।

पतिव्रतानांधर्मज्ञ ! पूज्यास्तस्यापि ता सदा ॥३
अत्र ते वर्णयिष्यामि कथां पापप्रणाशिनीम् ।
यथा विमोक्षितो भर्त्ता मृत्युपाशाद्यतः स्त्रिया ॥४
मद्रेषु शाकलो राजा बभूवाश्वपतिः पुरा ।
अपुत्रस्तप्यमानोऽसौ पुत्रार्थी सर्वकामदाम् ॥५
आराधयति सावित्रीलक्षितोऽसौद्विजोत्तमैः ।
सिद्धार्थकैर्हूयमानासावित्रीप्रत्यहद्विजैः ॥६
शतसंख्यैश्चतुर्थ्यान्तु दशमासागते दिने ।
कालं तु दर्शयामास स्वान्तनुं मनुजेश्वरम् ॥७

महर्षि प्रवर सूतजी ने कहा—इसके उपरान्त मे अपरिमित बल-विक्रम वाले उस राजा ने देवेश से पूछा था कि पतिव्रता नारी का क्या कैसा माहात्म्य है और इससे सम्बन्धित यदि कोई उपाख्यान हो तो उसके लिये भी पूछ लिया था। मनुदेव ने कहा था—हे भगवन् ! पतिव्रता नारियो मे कौन सी नारी श्रेष्ठ है और किसने अपने पातिव्रत बल के द्वारा मृत्यु को भी पराजित कर दिया था। मनुष्यो को किसके परम शुभ नाम का कीर्तन सदा करना चाहिए ? हे भगवन् ! यह समस्त पापो के क्षय करने वाला है। अब इसी का आप बतलाइये ॥१, २॥ श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—धर्मराज भी पतिव्रताओं के वैलोम्य का आचरण नहीं किया करता है। हे पतिव्रताओं के धर्म के ज्ञाता ! उसकी भी सदा वे पूज्या होती हैं ॥ ३ ॥ यहाँ पर मैं आपको एक पापो के प्रणाश कर देने वाली कथा का वर्णन करता हूँ कि जिस प्रकार से एक परम श्रेष्ठ पतिव्रता नारी के द्वारा अपना स्वामी मृत्यु के भी पाश से विमुक्त कर दिया गया था ॥ ४ ॥ पुरातन काल मे मद्र देशों मे एक शाकल राजा अश्वपति हुआ था। यह पुत्रहीन था तथा पुत्र की प्राप्ति की अभिलाषा रखते थे उसने सर्व कामदा देवी को प्रसन्न करने के लिए समाराधना की थी ॥ ५ ॥ द्विजोत्तमों के द्वारा लक्षित होते हुए उसकी

सावित्री देवी की समाराधना की थी। सिद्धार्थक द्विजों के द्वारा प्रतिदिन वह सावित्री देवी हूयमान हुई थी ॥ ६ ॥ वे द्विज शत संख्या वाले थे और जब दश मास व्यतीत हो गये तो चतुर्थी के दिन में समय आने पर उस मनुजेश्वर को सावित्री ने प्रत्यक्ष होकर अपना साक्षात् दर्शन दिया था ॥ ७ ॥

राजन् ! भक्तोऽसि मे नित्यं दास्यामि त्वां सुतां सदा ।
तां दत्तां मत्प्रसादेन पुत्रीं प्राप्स्यसि शोभनाम् ॥८
एतावदुक्त्वा सा राज्ञः प्रणतस्यैव पार्थिव ! ।
जगामादर्शनं देवी यथा वै नृप ! चञ्चला ॥९
मालती नाम तस्यासीद्राज्ञः पत्नी पतिव्रता ।
सुषुवे तनयां काले सावित्रीमिव रूपतः ॥१०
सावित्र्याहुतया दत्ता तद्रूपसदृशी तथा ।
सावित्री च भवत्वेषा जगादे नृपतिर्द्विजान् ॥११
कालेन यौवनं प्राप्तां ददौ सत्यवते पिता ।
नारदस्तु ततः प्राह राजानं दीप्ततेजसम् ॥१२
संवत्सरेण क्षीणायुर्भविष्यति नृपात्मजः ।
सकृत्कन्याः प्रदीयन्ते चिन्तयित्वा नराधिपः ॥१३
तथापि प्रददौ कन्यां द्युमत्सेनात्मजे शुभे ।
सावित्र्यपि च भर्तारमासाद्य नृपमन्दिरे ॥१४

सावित्री ने कहा—'राजन् ! आप मेरे नित्य ही परम भक्ति करने वाले हैं। मैं भी आपसे प्रसन्न होकर तुमको एक सुता दूँगी। मेरे प्रसाद से दी हुई परम शोभन उस पुत्री को आप प्राप्त कर लेंगे ॥ ८ ॥ हे पार्थिव ! बस केवल इतना ही कहकर वह देवी प्रणाम करते हुए राजा के सामने से अदर्शन को प्राप्त हो गई थी जैसे विद्युत छिप जाया करती है ॥ ९ ॥ उस राजा की एक मालती नाम वाली पतिव्रता पत्नी थी उसने समय के उपरान्त होने पर रूप-लावण्य में साक्षात् सावित्री

देवी ने सदृश तनया को प्रसूत किया था ॥१०॥ समाहूत हुई सावित्री ने उसके ही रूप के समान उसे प्रदान किया था। राजा ने द्विजों से कहा था कि यह नाम से सावित्री ही होवे ॥११॥ समय आने पर वह यौवन को प्राप्त हो गई थी और उसके पिता ने सत्यवान नाम वाले वर को उसका दान कर दिया था। इसके उपरान्त देवर्षि नारदजी ने दीप्त तेज वाले राजा से कहा था कि यह नृप का आत्मज एक ही वर्ष में क्षीण आयु वाला हो जायगा। नराधिप! भली भाँति विचार करके ही कन्या को एक ही बार प्रदान किया जाया करता है ॥ १२।१३ ॥ तो भी उस राजा ने द्युमत्सेन के पुत्र को जो शुभ था अपनी कन्या सावित्री का दान कर दिया था। उस सावित्री ने भी नृप के मन्दिर में अपने स्वामी को प्राप्त कर लिया था ॥ १४ ॥

नारदस्य तु वाक्येन दूयमानेन चेतसा ।
शुश्रूषां परमां चक्रे भर्तुः श्वशुरयोर्वने ॥१५
राज्याद् भ्रष्टः सभार्यस्तु नष्टचक्षुर्नराधिप ।
न तुतोष समासाद्य राजपुत्रीं तथा स्नुषाम् ॥१६
चतुर्थेऽहनि मर्तव्यं तथा सत्यवता द्विजाः ।
श्वशुरेणाभ्यनुज्ञाता तदा राजसुतापि सा ॥१७
चक्रे त्रिरात्रं धर्मज्ञा प्राप्ते तस्मिंस्तदा दिने ।
शाकपुष्पफलाहारः सत्यवान् तु ययौ वनम् ॥१८
श्वशुरेणाभ्यनुज्ञाता याचनाभङ्गभीरुणा ।
सावित्र्यपि जगामार्ता सह भर्त्रा महद्वनम् ॥ १९
चेतसा दूयमानेन गूहमाना महद्भयम् ।
वने पप्रच्छ भर्तारं द्रुमांस्तानादृशांस्तथा ॥२०
आश्वासयामास स राजपुत्रीं वनान्तावनेष्वविनीतनेत्राम् ।
संदर्शनेनापि द्रुमद्विजानां तथा मृगाणां विपिने नृवीरः ॥२१

श्री नारदजी के वाक्य से दुःखमान हृदय से उस सावित्री ने परम

में अपने स्वामी और श्वसुर की अत्यधिक शुश्रूषा करती थी ॥ १५ ॥ राज्य में भ्रष्ट-चक्षुओं के नष्ट हो जाने वाले भार्या से श्वसुर नराधिप उस राजपुत्री स्नुषा को प्राप्त करके सन्तुष्ट नहीं हुए थे ॥ १६ ॥ हे द्विजगण ! सत्यवान को आज से चौथे दिन में मरना है । उस समय में उस राज-सुता को श्वसुर ने अभ्यनुज्ञात किया था अर्थात् आज्ञा दी । उस समय में उस दिन के आने पर धर्म की आत्मा त्रिरात्र (व्रत) किया था । शाक पुष्प और फलों के आहार करने वाले सत्यवान् वन में चले गये थे । याचना के भङ्ग में भयभीत श्वसुर के द्वारा आज्ञा प्राप्त करने वाली वह सावित्री भी अपने स्वामी के साथ ही उस महान् वन को चली गयी थी । बहुत ही दुःखित चित्त से उस महान् भय को अन्दर ही छिपाती हुई उसने वन में भर्ता से और सनह । द्रुमों से पूछा था । वन में उसने परम कान्त-पद्म के समान विशाल नेत्रों वाली उस राजपुत्री को नृवीर ने विपिन में मृगों तथा द्रुमों और द्विजों (पक्षियों) के सन्दर्शन के द्वारा समाश्वासन दिया था ॥ १७ । १८ । १९ । २० । २१ ॥

८७—सावित्री उपाख्यान (२)

वनेऽस्मिन् शाद्वलाकीर्णे सहकारे मनोहरम् ।
नेत्रघ्राणसुखं पश्य वसन्ते रतिवर्द्धनम् ॥१
वनमप्यशोकं दृष्ट्वेमं रागवन्तं सुपुष्पितम् ।
वसन्तो हसतीवायं समवायतलोचने ॥२
दक्षिणे दक्षिणेनैतां पश्य रम्यां वनस्थलीम् ।
पुष्पितैः किंशुकैर्युक्तां ज्वलितानलसप्रभैः ॥३
सुगन्धिकुसुमामोदो वनराजिविनिर्गतः ।
करोति वायुर्दाक्षिण्यमावयोः क्लमनाशनम् ॥४

पश्चिमेन विशालाक्षि ! कर्णिकारैः सुपुष्पितैः ।
काञ्चनेन विभात्येषा वनराजीमनोरमा ॥५
अतिमुक्तलताजालरुद्धमार्गा वनस्थली ।
रम्या सा चारुसर्वाङ्गी कुसुमोत्करभूषणा ॥६
मधुमत्तालिझङ्कारव्याजेन वरवर्णिनी ।
चापाकृष्टिं करोतीव कामः पार्श्वे जिघांसया ॥७

नन्दिशम्भु ने कहा—इस वन में जो शाद्वल से एकदम समाकीर्ण है मनोहर मन्दार को तथा नेत्रों एवं घ्राण को सुखकर—रति के वर्धन करने वाले वसन्त को देखो ॥ १ ॥ हे चञ्चल लोचनों वाली ! यह वसन्त इस वन में शाख से सुसम्पन्न और सुन्दर पुष्पों से समन्वित अशोक को देखकर मानो हँसा उपहास कर रहा है ॥ २ ॥ दक्षिण में दाहिनी ओर जलती हुई अग्नि की प्रभा के सदृश प्रभा वाले पुष्पित किंशुकों (ढाक के वृक्षों) से युक्त—परम रम्य इस वनस्थली को देखो ॥ ३ ॥ वन की पङ्क्ति से निकला हुआ सुगन्धित कुसुमों के आमोद (गन्ध) से युक्त यह वायु हम दोनों के सेवन के लिए करने वाला दाक्षिण्य को कर रहा है । ॥ ४ ॥ हे विशालाक्षि ! पश्चिम दिशा में यह परम मनोरम वनों की राजि सुन्दर पुष्पों वाले कर्णिकारों से काञ्चन के समान के तुल्य शोभित हो रही है ॥ ५ ॥ अतिमुक्तक लताओं के जाल से अवरुद्ध मार्गों वाली यह वनस्थली चारु (सुन्दर) सम्पूर्ण अङ्गों वाली तथा कुसुमों के उत्करों से भूषणों वाली वरवर्णिनी ललना के तुल्य शोभा दे रही है ॥ ६ ॥ यह वर-वनिता के समान ही है और पार्श्व में कामदेव मारने की इच्छा से चाप का आकर्षण मानो कर रहा है ॥ ७ ॥

पश्यान्यादनलङ्कारपुष्कोकिलविनादिता ।
विभाति चारुतिलका त्वामियपा वनस्थली ॥८
कोकिलालापविरुत मत्तभृङ्गारवरञ्जित ।
सर्वैरेभिर्गुणा यान्ति कुलीनस्त्रीष्टतामिव ॥९

पुष्परेणुविलिप्ताङ्गो प्रियामनु सरिद्वने ।
कुसुमं कुसुमं याति कूजन् कामी शिलीमुखः ॥१०
मञ्जरीं सहकारस्य कान्तावच्चानुपीडिताम् ।
स्वदते बहुपुष्पेऽपि पुंस्कोकिलयुवा वने ॥११
काकः प्रसूतां वृक्षाग्रे स्वामेकाग्रेण चञ्चुना ।
काकीं सम्भावयत्येष पक्षाच्छादितपुत्रिकाम् ॥१२
भूमाङ्गनिम्नमासाद्य दयितासहितो युवा ।
नाहारमपि चादत्ते कामाक्रान्तः कपिञ्जलः ॥१३
कलविङ्कस्तु रमयन् प्रियोत्सङ्ग समास्थितः ।
मुहुर्मुहुर्विशालाक्षि ! उत्कण्ठयति कामिनः ॥१४

फलों के आस्वाद से शोभित मुख वाली कोयलों की ध्वनियों से विशेष नाद वाला—चारु तिलक से मधुर यह वनस्थली तुम्हारी ही तरह शोभित हो रही है ॥ ८ ॥ आम्र वृक्ष की शाखाओं के शिखर पर मञ्जरी के पराग से पिञ्जर वर्ण वाली कोकिल अपनी मधुर ध्वनि से ही अपने चेष्टिता से कुलीन की भांति ही प्रकटता को प्राप्त हुआ करता है ॥ ९ ॥ इस सरिता से समन्वित वन में यह महाकामी भौंरा पुष्पों के पराग से विशेष रूप से लिप्त अङ्गों वाली अपनी प्रिया के पीछे-पीछे गुञ्जार करता हुआ फूल से फूल पर जाया करता है। वन में पुंस्कोकिल बहुत प्रकार के पुष्पों से समन्वित होने पर भी कान्ता की भांति अनुपीडित सहकार की मञ्जरी का आस्वाद लिया करता है ॥ १०, ११ ॥ यह कौआ वृक्ष के अग्रभाग में प्रसूता और पक्षों से आच्छादित पुत्रिका वाली अपनी प्रिया काकी (कौआ की पत्नी) को एकाग्र चोंच से प्यार करता है। ॥ १२ ॥ काम से समाक्रान्त हुआ—दयिता के साथ रहने वाला युवा कपिञ्जल भूमाङ्ग निम्न को प्राप्त कर आहार को ग्रहण नहीं कर रहा है ॥ १३ ॥ हे विशालाक्षि ! अपनी प्रिया के उत्सङ्ग में संस्थित हुआ

रमण करने वाला कलविङ्क बारम्बार कामी पुरुष को उत्कण्ठित कर रहा है ॥ १४ ॥

वृक्षशाखां समारूढः शुकोऽयं सह भार्यया ।
करेण लम्बयन् शाखां करोति सफलं शिरः ॥१५
वनेऽस्मिन् पिशितास्वादतृप्तो निद्रामुपागतः ।
शेते सिंहयुवा कान्ता चरणान्तरगामिनी ॥१६
व्याघ्रयोर्मिथुनं पश्य शैलकन्दरसंस्थितम् ।
ययोर्नेत्रप्रभालोके गुहाभिन्नेव लक्ष्यते ॥१७
अयं द्वीपी प्रियां लेढि जिह्वाग्रेण पुनः पुनः ।
प्रीतिमायाति च तथा लिह्यमानः स्वकान्तया ॥१८
उत्सङ्गकृतमूर्धानं निद्रापहृतचेतनम् ।
जन्तूद्धरणतः कान्तं सुखयत्येव वानरी ॥१९
भूमौ निपतितां रामां मार्जारो दशनैर्नखैः ।
नखैर्दन्तैर्दशत्येव न च पीडयते तथा ॥२०
शशकः शशिका चाभे संश्लिष्टे पीडिते इमे ।
संलीनगात्रचरणे कर्णाभ्यासमुपागते ॥२१

वृक्ष की शाखा पर अपनी प्रिय भार्या के साथ समारूढ़ यह शुक अपने कर से शाखा को लम्बित करता हुआ शिर को सफल करता है ॥ १५ ॥ इस वन में मांस के स्वाद से तृप्त हुआ सिंह निद्रा को उपगत हो गया है और उसकी कान्ता उस अपने स्वामी सिंह के चरणों के मध्य में लेटी हुई है ॥ १६ ॥ पर्वत की कन्दरा में संस्थित दो व्याघ्रों के जोड़े को देखो जिन दोनों के नेत्रों की प्रभा के प्रकाश में गुहा भिन्न-सी हुई लक्षित हुआ करती है ॥ १७ ॥ यह द्वीपी अपनी जिह्वा के अग्र भाग से पुनः-पुनः अपनी प्रिया को चाट रहा है । और अपनी कान्ता के द्वारा जिस समय में वह स्वयं लिह्यमान होता है तो उसको परम प्रसन्नता हुआ करती है । यह वानरी गोद में मस्तक को रखने वाले तथा निद्रा से

अपहृत चेतना वाले अपने कान्त का जन्तुओं के उद्धरण के द्वारा सुखित ही किया करती है ॥ १८ । १९ ॥ यह मार्जार भूमि में पड़ी हुई और अपने उदर को दिखाने वाली अपनी रम्या पत्नी को नाखून और दशनों से उसका दशन करता है किन्तु उसको किसी प्रकार की पीड़ा नहीं पहुँचाता है ॥ २० ॥ ये शशक और शशकी दोनों पीड़ित होकर सो गये हैं। इनके गात्र और चरण सप्रक्त थे और कानों के द्वारा ही प्रकटता को प्राप्त होते हैं ॥ २१ ॥

स्नात्वा सरसि पद्माढ्ये नागस्तु मदनप्रियः ।
सम्भावयति तन्वङ्गीमृणालकवलैः प्रियाम् ॥२२
कान्तप्रोथसमुत्थानैः कान्तमार्गानुगामिनी ।
करोति कवलं मुस्तैवराही पोतकानुगा ॥२३
दृढाङ्गसन्धिमहिष कर्दमाक्ततनुर्वने ।
अनुव्रजति धावन्तीं प्रियवद्धचतुष्करः ॥२४
पश्य चार्वङ्गि ! सारङ्ग त्व कटाक्षविभावनं ।
सभार्यमाहिपश्यन्तं कौतूहलसमन्वितम् ॥२५
पश्य पश्चिमपादेन रोही कण्डूयते मुखम् ।
स्नेहार्द्रभावात्कर्पन्त भर्तारं शृङ्गकोटिना ॥२६
हारिमाञ्चमरीं पश्य सितवालामगकस्थीम् ।
अन्वास्ते चमरः कामी माञ्चपश्यतिगर्वितः ॥२७
अतिपं गवय पश्य प्रकृष्टं भार्यया सह ।
रामन्थन प्रकुर्वाण काकङ्कुर्दि वारयन् ॥२८

पद्मों से आढ्य सरोवर में मदन प्रिय नाग अपनी तन्वङ्गी प्रिया को मृणाल के कवलों के द्वारा प्रणय का प्रदर्शन कर रहा है ॥ २२ ॥ अपने बच्चों के पीछे अनुगमन करने वाली वाराही अपने कान्त के प्रोथ समुत्थानों से कान्त के ही मार्ग का अनुसरण करने वाली होती हुई मुस्तों से कवल किया करती है ॥ २३ ॥ वन में दृढ अङ्गों की सन्धि वाला—

बीच में अवन शरीर वाला और प्रिय बद्ध चनुष्कर महिष धावन करती हुई महिषी के पीछे दौड़ लगा रहा है ॥ २४ ॥ हे चारु अङ्गों वाली ! तुम इस सारङ्ग को देखो जो अपने कटाक्षों के विभावनों से भार्या के सहित एवं कौतूहल से युक्त मुझको देख रहा है ॥ २५ ॥ स्नेह के आर्द्र भाव से अपने सींग की नोंक से स्वामी का घर्षण करती हुई रोही अपने पीछे के पैर से मुख को खुजला रही है—इसे भी देखलो ॥ २६ ॥ बहुत ही शीघ्र इस सित वाला वाली और गमन न करती हुई चमरी को देखिए। यह कामी चमर इसके पीछे है तथा अत्यन्त गर्वित होता हुआ मुझको देखता है ॥ २७ ॥ रोमन्थन करता हुआ ककुद पर कौए का निवारण करने वाले अपनी भार्या के साथ आतप में प्रकृष्ट इस गवय को देखलो ॥ २८ ॥

पश्येम भार्यया सार्द्धं न्यस्ताग्रचरणद्वयम् ।
विपुले बदरीस्कन्धे बदराशनकाम्यया ॥२९
हंस समार्यं सरसि विचरन्तं सुनिर्मलम् ।
सुसुतस्येन्दुबिम्बस्य पश्य व श्रियमुद्वहन् ॥३०
समार्यश्चक्रवाकोऽयं कमलाकरमध्यगः ।
करोति पद्मिनी कान्ता सुपुष्पामिव सुन्दरी ॥३१
मया फलोच्चयः सुभ्रु ! त्वया पुष्पोच्चयः कृतः ।
इन्धनं न कृतं सुभ्रु ! तत्करिष्यामि साम्प्रतम् ॥३२
त्वमस्य सरसस्तीरे द्रुमच्छायां समाश्रिता ।
क्षणमात्रप्रतीक्षस्व विश्रमस्व च भामिनि ॥३३
एवमेतत्करिष्यामि मम दृष्टिपथस्थया ।
दूरं कान्त ! न गन्तव्यो बिभेमि गहने वने ॥३४
ततः स काष्ठानि चकार तस्मिन्वने तदा राजसुतासमक्षम् ।
तस्या ह्यदूरे सरसस्तदानीं मेने च सा तं मृतमेव राजन् ॥३५

भार्या के साथ में रहने वाले—दोनों चरणों को आगे न्यस्त

करने वाले बेरों के खाने की कामना से विपुल बदरी स्कन्ध में दोनों चरणों को आगे रखकर स्थित इसको देखो ॥ २९ ॥ सम्पूर्ण इन्दु के बिम्ब की श्री को उद्वहन करते हुए भार्या के सहित सरोवर में सुनिर्मल विचरण करते हुए हंस को देख लो ॥ ३० ॥ भार्या के सहित रहने वाला यह चक्रवाक पक्षी जो कि इस रत्नाकर (तालाब) के मध्य में गमन कर रहा है । यह अपनी सुन्दरी कान्ता को सुन्दर पुष्पों वाली पद्मिनी के समान कर रहा है ॥ ३१ ॥ हे सुभ्रु ! मैंने तो फलों का उच्चय किया है और तुमने पुष्पों का उच्चय किया है किन्तु हे सुभ्रु ! हममें से किसी ने भी ईंधन एकत्रित नहीं किया है सो अब मैं उसे करूँगा ॥ ३२ ॥ हे भामिनि ! तुम इस सरोवर के तट पर स्थित वृक्ष की छाया में समाश्रित होकर रहो और एक क्षण के लिये मेरे आने की प्रतीक्षा करना ॥ ३३ ॥ सावित्री ने कहा—मैं जैसा भी आप कहते हैं वही करूँगी । आप मेरी दृष्टि से ही मार्ग में रहेंगे अर्थात् इतनी दूरी पर ही रहिए कि मैं आपको देखती रहूँ । हे कान्त ! आपको अधिक दूर नहीं जाना चाहिए । मैं गहन वन में डरती हूँ ॥ ३४ ॥ श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—इसके पश्चात् उसने उस वन में काष्ठों को एकत्रित किया था और उस समय में राजसुता के सामने ही किया था । हे राजन् ! उस सर के समीप में ही उस समय में उस सावित्री ने उसे मृत ही मान लिया था ॥३५॥

८८—सावित्री उपाख्यान (२)

तस्य पाटयतः काष्ठं जज्ञे शिरसि वेदना ।
स वेदनार्तः संक्रम्य भार्यां वचनमब्रवीत् ॥१
आयासेन ममानेन जाता शिरसि वेदना ।

तमश्च प्रविशामीव न च जानामि किञ्चन ॥२
त्वदुत्सङ्गे शिरः कृत्वा स्वप्तुमिच्छामि सांप्रतम् ।
राजपुत्रीमेवमुक्त्वा तदा सुष्वाप पार्थिवः ॥३
तदुत्सङ्गे शिरः कृत्वा निद्रयाविललोचनः ।
पतिव्रता महाभागा ततः सा राजकन्यका ॥४
ददर्श धर्मराज तु स्वय त देशमागतम् ।
नीलोत्पलदलश्याम पीताम्बरधर प्रभुम् ॥५
विद्युल्लतानिबद्धाङ्ग सतोयमिव तोयदम् ।
किरीटेनार्कवर्णेन कुण्डलैश्च विराजितम् ॥६
हारभारार्पितोरस्क तथाङ्गदविभूषितम् ।
तथानुगम्यमान च कालेन सह मृत्युना ॥७

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा— काष्ठ का पाटन करते हुए उस के सिर में बड़ी वेदना समुत्पन्न हो गई थी। वह उस समय में उस वेदना से समुत्पीड़ित होकर अपनी भार्या सावित्री के समीप में आकर उससे यह वचन बोला—बिना अभ्यास वाले इस काष्ठ-सञ्चय के कार्य करने से मेरे सिर में वेदना समुत्पन्न हो गई है। मुझे ऐसा अनुभव हो रहा है कि किसी अन्धकार में मैं प्रवेश कर रहा हूँ—मैं कुछ भी नहीं जान पा रहा हूँ कि क्या कारण है। अब तो मैं तुम्हारी गोद में अपना सिर रखकर सोना चाहता हूँ। वह पार्थिव उस राजपुत्री सावित्री से इस प्रकार से कहकर सो गया था ॥१, २, ३॥ उसके उत्सङ्ग में अपना मस्तक रख कर वह निद्रा से आविल (मलिन) लोचनों वाला हो गया था। इसके अनन्तर उस महाभागा राज कन्या पतिव्रता ने स्वयं ही उस स्थान पर समागत हुए धर्म्म राज को देखा था जो नील कमल के दल के समान श्याम वर्ण वाला—पीताम्बर धारी—विद्युल्लता से निबद्ध अङ्ग वाले जल से युक्त मेघ के सदृश था तथा सूर्य्य समान वर्ण वाले किरीट और कुण्डलों से शोभित था। वह धर्मराज उरःस्थल में हारों के भार से भूषित था

तथा भुजाओं में अङ्गद धारण किये हुए था और उसके पीछे काल मृत्यु साथ में चला आ रहा था ॥५-७॥

स तु संप्राप्य तं देशं देहात्सत्यवतस्तदा ।
अंगुष्ठमात्रं पुरुषं पाशबद्धं वशागतम् ॥८
आकृष्य दक्षिणामाशां प्रययौ सत्वरं तदा ।
सावित्र्यपि वरारोहा दृष्ट्वा तं गतजीवितम् ॥६
अनुवव्राज गच्छन्तं धर्मराजमतन्द्रिता ।
कृताञ्जलिरुवाचाथ हृदयेन प्रवेपता ॥१०
इमं लोकं मातृभक्त्या पितृभक्त्या तु मध्यमम् ।
गुरुं शुश्रूषया चैवं ब्रह्मलोकं समश्नुते ॥११
सर्वे तस्यादृता धर्मा यस्यैतेत्रय आदृताः ।
अनादृतास्तु यस्यैतेसर्वास्तस्याफला क्रिया ॥१२
यावत्त्रयस्तेजीवेयुस्तावन्नान्यं समाचरेत् ।
तेषां च नित्यं शुश्रूषां कुर्यात्प्रियहिते रतः ॥१३
तेषामनुपरोधेन पारतन्त्र्यं यदाऽऽचरेत् ।
तत्तन्निवेदयेत्तेभ्यो मनोवचनकर्मभिः ॥
त्रिष्वध्येतेषु कृत्यं हि पुरुषस्य समस्यते ॥ १४॥

वह धर्मराज उस स्थल पर आकर सत्यवान् के शरीर से उस समय में अंगुष्ठ मात्र जो लिङ्ग शरीरधारी पुरुष था उसको पाशबद्ध करके अपने वश में कर खींचकर शीघ्रता से दक्षिण दिशा की ओर उसी समय चल दिया था। वह वरारोहा सावित्री भी उस अपने स्वामी को जीवित रहित देखकर अतन्द्रित होती हुई उसी के पीछे अर्थात् गमन करने वाले धर्मराज के पीछे २ चल दी थी। इसके उपरान्त वह हाथ जोड़ कर काँपते हुए हृदय से यह बोली—॥८, ६, १०॥ यह जीवात्मा माता की भक्ति से इस लोक को—पिता की भक्ति से मध्यम को और गुरु की शुश्रूषा से ब्रह्मलोक को प्राप्त किया करता है। जो पुरुष ने सभी धर्मों

का समादर कर लिया है जिसने इन तीनों ऊपर बताये हुए धर्मों को पूर्ण कर लिया है। जिसने इन तीनों का आदर नहीं किया है उसकी समस्त अन्य क्रियाएँ बिल्कुल ही फलहीन हुआ करती हैं। जब तक ये तीनों ही जीवित हैं तब तक अन्य किसी का समाचरण नहीं करना चाहिए। जो प्रिय के हित में रत है उसे उनकी नित्य ही शुश्रूषा करनी चाहिए। उनके अनुरोध से जब भी पारतन्त्र्य का आचरण करे वह—वह सब उनको मन वचन और कर्म के द्वारा निवेदन कर देना चाहिये। पुरुष का इन तीनों में भी पूर्ण कृत्य स्थित रहा करता है ॥११-१४॥

श्रुतेन कामेन निवर्त्तयाशु धर्मो न तेभ्योऽपि हि उच्यते।
ममोपरोधस्तव च क्लमः स्यात्तथाऽधुना तेन तव ब्रवीमि ॥१५
गुरुपूजारतिर्भक्ता त्वञ्च साध्वी पतिव्रता।
विनिवर्त्तस्व धर्मज्ञे ! ग्लानिर्भवति तेऽधुना ॥१६
पतिर्हि दैवतं स्त्रीणां पतिरेव परायणम्।
अनुगम्यः स्त्रिया साध्व्या पतिः प्राणधनेश्वरः ॥१७
मितन्ददाति हि पिता मितं भ्राता मितं सुतः।
अमितस्य च दातारं भर्त्तारं का न पूजयेत् ॥१८
नीयते यत्र भर्त्ता मे स्वयं वा यत्र गच्छति।
मयापि तत्र गन्तव्यं यथाशक्ति सुरोत्तम ! ॥१९
पतिमादाय गच्छन्तमनुगन्तुमहं यदा।
त्वां देव ! न हि शक्ष्यामि तदा त्यक्ष्यामि जीवितम्॥२०
मनस्विनी तु या काचित् वैधव्याक्षरदूषिता।
मुहूर्त्तमपि जीवेत मण्डनार्हा ह्यमण्डिता ॥२१

श्रुत काम से अब तुम अति शीघ्र निवृत्त हो जाओ उनसे लिये भी धर्म नहीं है—यह कहा जाता है। मेरा उपरोध और तुम्हारा क्लम (श्रम) होगा। अब इसी कारण से मैं कहता हूँ ॥१५॥ आप तो गुरुजनों की पूजा में रति वाली—भक्त—साध्वी और परम पतिव्रता हैं। हे धर्मज्ञे ! यहाँ

आप वापिस लौट जाइये । अब आपको बहुत ग्लानि हो रही है ॥१६॥ सावित्री ने कहा—स्त्रियों का परम देवता पति ही होता है और पति ही परायण होता है । अतएव साध्वी स्त्री के द्वारा प्राण धनेश्वर पति का सर्वदा अनुगमन करना चाहिए ॥१७॥ स्त्री को उसका पिता परिमित ही दिया करता है—भाई और सुत भी स्त्री को परिमित ही दिया करते हैं । अपरिमित का दाता अपने स्वामी का पूजन कौन सी स्त्री नहीं करेगी ? ॥१८॥ हे सुरोत्तम ! जहाँ पर मेरे स्वामी को ले जाया जा रहा है अथवा स्वयं आप जहाँ पर जा रहे हैं । मुझको भी यथा शक्ति वहीं पर जाना चाहिए ॥१९॥ जब मैं मेरे पति को लेकर गमन करने वाले आपका हे देव ! मैं अनुगमन नहीं कर सकूँगी तो मैं अपने भी जीवन का त्याग कर दूँगी ॥२०॥ जो कोई भी मण्डन के योग्य मनस्विनी स्त्री जब वैधव्य के अक्षरों से दूषित होकर अमण्डित हो जाती है तो वह एक मुहूर्त भर भी जीवित रहेगी ? ॥२१॥

पतिव्रते ! महाभागे ! परितुष्टोऽस्मि ते शुभे ! ।
विना सत्यवतः प्राणैर्वरं वरय माचिरम् ॥२२
विनष्टचक्षुषो राज्यं चक्षुषा सह कारय ।
च्युतराज्यस्य धर्मज्ञ ! श्वशुरस्य महात्मनः ॥२३
दूरे पथे गच्छ निवर्त भद्रे ! भविष्यतीदं सकलं त्वयोक्तम् ।
ममापि खेदस्तव च क्लमः स्यात्पुना तेन तव ब्रवीमि ॥२४

यमराज ने कहा—हे पतिव्रते ! हे महान् भाग वाली ! हे शुभे ! मैं तुम से बहुत ही सन्तुष्ट हो गया हूँ । अब तुम सत्यवान् के प्राणों के बिना अन्य कोई भी वरदान मुझसे माँग लो और अधिक विलम्ब मत करो ॥ २२ ॥ सावित्री ने कहा—हे धर्मज्ञ ! विनष्ट नेत्रों वाले मेरे महान् आत्मा वाले श्वशुर को जिनका कि राज्य च्युत हो गया है अब आप उनको आँखों के सहित पुनः राज्य प्राप्त करा दीजिये ॥ २३ ॥ यमराज ने कहा—हे भद्रे ! दूर मार्ग में तुम चली आओ और वापिस

लौट जाओ। जो आपने कहा है वह सभी कुछ हो जायगा। अब मेरी ओर से रोक होगी और तुमको परिश्रम होगा इसीलिए मैं उक्त तुमसे यह कह रहा हूँ ॥ २४ ॥

८६—सावित्री उपाख्यान (३)

कुतः क्लमः कुतो दुःखं सद्भिः सह समागमे ।
सतां तस्मान्न मे ग्लानिस्त्वत्समीपे सुरोत्तम ! ॥१
साधूनां वाप्यसाधूनां सन्त एव सदा गतिः ।
नैवासतां नैव सतामसन्तो नैवमात्मन ॥२
विषाग्निसर्पशस्त्रेभ्यो न तथा जायते भयम् ।
अकारण जगद्वैरिखलेभ्यो जायते यथा ॥३
सन्तः प्राणानपि त्यक्त्वा परार्थं कुर्वते यथा ।
तथाऽसन्तोऽपि सन्त्यज्य परपीडासु तत्पराः ॥४
त्यजन्त्यसत्यं लोकस्तु लोकद्वयं कारणात् ।
परोपकारनिरतास्ते परलोके तथा सतः ॥५
विवादेषु विषादेषु तथा ब्रह्मा जगद्गुरुः ।
असतां दर्शनात् राजन् ज्ञातवान् वचः ॥६
सतां परोपदेशात्मा साधून् सम्मानयेत्सदा ।
निग्रहश्चासतां कुर्याल्लोके लोकजितस्तमः ॥७

सावित्री ने कहा—सत्पुरुषों के साथ समागम होने पर दुःख कहाँ है और क्लम भी कहाँ है। हे सुरोत्तम ! आपके समीप में जो कि सत्पुरुष हैं मुझे तो किञ्चित् भी ग्लानि नहीं होती है ॥ १ ॥ साधु पुरुष हों अथवा असाधु जन हों इन सबकी सन्त ही सदा गति हुआ करते हैं अर्थात् सबका उद्धार सन्त ही किया करते हैं। जो असन्त हैं वे न तो

सत्पुरुषों का—न असत्पुरुषों का और अपने आपका ही उद्धार किया करते हैं असन्तों में उद्धार करने की कोई भी क्षमता ही नहीं हुआ करती है ॥ २ ॥ विष—अग्नि—सर्प और शस्त्र से उतना भय नहीं होता है जैसा बिना ही कारण के इस जगत् के वैरी खलों से भय उत्पन्न हो जाया करता है। सन्त पुरुष तो अपने प्राणों का भी परित्याग करके सदा दूसरों के अर्थ को किया करते हैं उसी भाँति असन्त पुरुष भी प्राणों तक परित्याग कर दूसरों को पीड़ा देने में परायण रहा करते हैं ॥३, ४॥ यह लोक जिसके कारण से प्राणों को तिनके के समान त्याग देता है। उसी प्रकार से सत्पुरुष जो परायो उपकार में समर्थ होते हैं वे परलोक को भी त्याग किया करते हैं ॥ ॥ उसी प्रकार से इस जगत् के गुरु श्री ब्रह्माजी ने निकाय—निकायों में असत्पुरुषों के उपशान्त के लिए स्वयं ही राजा को सृजन किया है ॥६॥ राजा का कर्त्तव्य है कि वह नरों की परीक्षा करे और सदा साधुपुरुषों का सम्मान करना चाहिए। जो राजा असत्पुरुषों का निग्रह किया करता है और उसको ऐसा करना भी चाहिए क्योंकि उसका यह कर्त्तव्य भी है वही इस लोक में लोकों का परम श्रेष्ठ नेता होता है ॥७॥

निग्रहेणासतां राज्ञा सताञ्च परिपालनम् ।
एतावदेव कर्त्तव्यं राज्ञा स्वर्गमभीप्सुना ॥८
राजकृत्यं हि लोकेषु नान्यदत्र जगतीपते ।
असतां निग्रहादेव सताञ्च परिपालनात् ॥९
राजशिरःप्रदाम्नानामसतां शासिता भवान् ।
तेन स्वमाधवो देवो देवस्य: प्रतिभासि मे ॥१०
जगत् धारयसेमद्धि समासन्ततयाभवान् ।
तेन त्वामनुपालयाः स वलमादव ! न विद्यते ॥११
नष्टाःजिता ते विसानताः ! धचनैपसंगतैः ।
जिता मन्यसे प्राणाद् वर वरय मा चिरम् ॥१२

सहोदराणां भ्रातृणां कामयामि शतं विभो ! ।
अनपत्यः पिता प्रीतिं पुत्रलाभात् प्रयातु मे ॥१३
तामुवाच यमो गच्छ यथागतमनिन्दिते ! ।
और्ध्वदेहिककार्येषु यत्नं भर्तुः समाचर ॥१४

असतों का निग्रह और सत्पुरुषों का परिपालन करने से वह वस्तुतः राजा कहलाने के योग्य होता है जो स्वर्ग की प्राप्ति करने का इच्छुक है उस राजा का यही इतना कर्त्तव्य होता है। हे जगतीपते ! लोकों में राजा का यही कृत्य होता है इसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है असतों का निग्रह और सतों के परिपालन का कर्त्तव्य ही तो राजाओं का काम हुआ करता है। राजाओं के द्वारा भी जो शासित नहीं होते हैं उन असतों के सबके शासन करने वाले फिर आप होते हैं। इसी कारण से मुझे तो समस्त देवों से भी अधिक देव आप ही प्रतीत हो रहे हैं। ॥८।९।१०॥ यह जगत् तो सत्पुरुषों के द्वारा ही धारण किया जाता है और उन सत्पुरुषों में आप सब प्रधान हैं। इसी कारण से आपके पीछे अनुगमन करने वाली मुझको हे देव ! कोई भी क्लम नहीं होता है। यमराज ने कहा—हे विशालाक्षि ! तुम्हारे इन धर्मसंयुक्त वचनों से मैं तुमसे परम सन्तुष्ट एवं प्रसन्न हो गया हूँ। सत्यवान् के प्राणों को छोड़कर अन्य जो भी आप चाहें वह वरदान मुझसे माँगलो। विलम्ब मत करो ॥११।१२॥ सावित्री ने कहा—हे विभो ! मैं अपने सौ सहोदरों के प्राप्त करने की कामना रखती हूँ। मेरे पिता सन्तान हीन हैं सो वे पुत्रों के लाभ से प्रसन्न हो जावें। फिर यमराज ने उस सावित्री से कहा—हे अनिन्दिते ! अब तुम जिस मार्ग से आई हो वापिस चली जाओ और अपने स्वामी के और्ध्व देहिक कार्यों के करने में यत्न करो ॥१३, १४॥

तानुग-सुमत शास्यन्नाया लोकान्तरं गतः ।
पतिव्रतास्मि तेन त्वं मुहूर्त्तमम यास्यसि ॥१५

गुरुशुश्रूषणाद्भद्रे ! तथा सत्यवतो महत् ।
पुण्यं समर्जितं येन न याम्येनमहं स्वयम् ।।१६
एतावदेव कर्तव्यं पुरुषेण विजानता ।
मातुः पितुश्च शुश्रूषा गुरोश्च वरवर्णिनि ! ।।१७
तोषितं त्रयमेतच्च सदा सत्यवता वने ।
पूजितं विजितः स्वर्गस्त्वयानेन चिरं शुभे ! ।।१८
तपसा ब्रह्मचर्येण अग्निशुश्रूषया शुभे ! ।
पुरुषाः स्वर्गमायान्ति गुरुशुश्रूषया तथा ।।१९
आचार्यश्च पिता चैव माता भ्राता च पूर्वजः ।
नार्तेनाप्यवमन्तव्या ब्राह्मणा न विशेषतः ।।२०
आचार्यो ब्रह्मणो मूर्तिः पिता मूर्तिः प्रजापतेः ।
माता पृथिव्या मूर्तिस्तु भ्राता वै मूर्तिरात्मनः ।।२१

दूसरे लोक में गये हुए इनका अनुगमन तुम नहीं कर सकती हो। तुम पतिव्रता हो इसी कारण से मुहूर्त मात्र मेरे साथ चल सकोगी। हे भद्रे ! गुरुओं की सेवा से इस सत्यवान् ने महान् पुण्य का अर्जन किया है और इसी कारण से मैं स्वयं ही इनको ले जा रहा हूँ ।।१५, १६।। हे वरवर्णिनि ! विशेष ज्ञान वाले पुरुष का इतना ही कर्त्तव्य हुआ करता है कि वह माता-पिता और गुरु की शुश्रूषा करता रहे ।।१७।। इस सत्यवान् ने सदा वन में इन तीनों को परम सन्तुष्ट किया है और समर्चित किया है। इसने स्वर्ग को जीत लिया है और तुमने भी ऐसा ही चिरकाल तक हे शुभे ! किया है ।।१८।। हे शुभे ! तपश्चर्या से—ब्रह्मचर्य से—अग्नि शुश्रूषा से तथा गुरु वर्ग की सेवा से पुरुष स्वर्ग में जाया करते हैं ।।१९।। आचार्य—पिता—माता—पूर्वज भ्राता और विशेष रूप से ब्राह्मण इनका आर्त दशा में भी पुरुष को कभी अपमान नहीं करना चाहिए ।।२०।। यह आचार्य साक्षात् ब्रह्मा की मूर्ति है—पिता प्रजापति की मूर्ति है—

माता पृथिवी की मूर्ति है और भाई तो अपनी आत्मा की ही मूर्ति होता है ॥२१॥

जन्मना पितरौ क्लेशं सहेते सम्भवे नृणाम् ।
न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि ॥२२
तयोर्नित्यं प्रियं कुर्यादाचार्यस्य तु सर्वदा ।
तेष्वेव त्रिषु तुष्टेषु तपः सर्वं समाप्यते ॥२३
तेषां त्रयाणां शुश्रूषा परमन्तप उच्यते ।
न च तैरननुज्ञातो धर्ममन्यं समाचरेत् ॥२४
त एव हि त्रयो लोकास्त एव त्रय आश्रमाः ।
त एव च त्रयो वेदास्तथैवोक्तास्त्रयोऽग्नयः ॥२५
पिता वै गार्हपत्योऽग्निर्माता दक्षिणतः स्मृतः ।
गुरुराहवनीयश्च साग्नित्रेता गरीयसी ॥२६
त्रिषु प्रमाद्यते तेषु त्रीन् लोकान् जयते गृही ।
दीप्यमानः स्ववपुषा देववद्दिवि मोदते ॥२७
कृतेन कामेन निवर्त भद्रे ! भविष्यतीदं सकलं त्वयोक्तम् ।
ममोपरोधस्तव च क्लमः स्यात् तथाऽधुना तेन तव ब्रवीमि ॥२८

मनुष्यों के समुत्पन्न होने में उनके माता-पिता जन्म से ही पूर्ण क्लेश को सहा करते हैं उस क्लेश की निष्कृति मनुष्य सौ वर्षों में भी नहीं कर सकता है ॥२२॥ अतएव मनुष्य का यह परम कर्त्तव्य होता है कि उनका नित्य ही उन्हें प्रिय करना चाहिए तथा जो आचार्य हो उनका भी सर्वदा प्रिय करे। इन तीनों के तुष्ट होने पर ही मनुष्य का सभी प्रकार का तप समाप्त हो जाया करता है। ये तीनों ही उसके तीन लोक हैं—ये तीनों उसके तीन आश्रम हैं—ये तीनों ही तीन वेद हैं तथा ये ही तीन मनुष्य की तीन अग्नियाँ हैं। पिता गार्हपत्य अग्नि—माता दक्षिणाग्नि और गुरु आहवनीय अग्नि है। ये ही सबसे बड़ी तीन अग्नियाँ मानी जाया करती हैं। इन तीनों के विषय में कभी भी प्रमाद नहीं करना चाहिए। जो इस कर्त्तव्य का पालन करता है वह गृही तीनों लोकों

को जीत लिया करता है और अपने शरीर की कान्ति से वह दीप्यमान होता हुआ देव के ही समान दिवलोक में आनन्द का अनुभव किया करता है ।।२३-२७।। यमराज ने कहा—हे भद्रे ! कृत काम से निवृत्त हो जाओ जो तुमने कहा है वह सम्पूर्ण हो जायगा । मेरी ओर से उपरोध होगा और तुमको क्लम होगा । इसी से तुमसे यह मैं बोलता हूँ ।।२८।।

२०—सावित्री उपाख्यान (४)

धर्मार्जने सुरश्रेष्ठ ! कुतो ग्लानिः क्लमस्तथा ।
त्वत्पादमूलसेवा च परम धर्मकारणम् ।।१
धर्मार्जनन्तथा कार्य पुरुषेण विजानता ।
तल्लाभ सर्वलाभेभ्यो यदा देव विशिष्यते ।।२
धर्मश्चार्थश्च कामश्च त्रिवर्गो जन्मनः फलम् ।
धर्महीनस्य कामार्थो वन्ध्यासुतसमौ प्रभो ! ।।३
धर्मादर्थस्तथा कामो धर्माल्लोकद्वय तथा ।
धर्मएकोऽनुयात्येन यत्र क्वचन गामिनम् ।।४
शरीरेण सम नाश सर्वमन्यद्धि गच्छति ।
एको हि जायते जन्तुरेकएव विपद्यते ।।५
धर्मस्तमनुयात्येको न सुहृन्न च बान्धवाः ।
क्रियासौभाग्यलावण्य सर्व धर्मेण लभ्यते ।।६
ब्रह्मेन्द्रोपेन्द्रशर्वेन्दुयमार्काग्न्यनिलाम्भसाम् ।
वस्वश्विधनदादीना ये लोकाः सर्वकामदाः ।।७

हे सुरश्रेष्ठ ! धर्म के अर्जन करने में ग्लानि और क्लम क्यों होगा ? आपके चरणों की मूल सेवा ही परम धर्म का कारण है ।। १ ।। विशेष ज्ञान रखने वाले पुरुष को इसी भाँति से धर्म का अर्जन करना

चाहिए। हे देव ! क्योंकि उस धर्म का लाभ सभी प्रकार के लाभों से विशिष्ट हुआ करता है ॥२॥ धर्म—अर्थ और काम यही त्रिवर्ग मनुष्य जन्म का परम फल होता है। हे प्रभो ! जो धर्म से हीन पुरुष है उसके काम और अर्थ वन्ध्या के सुतों के ही समान हुआ करते हैं ॥३॥ धर्म से अर्थ तथा काम और धर्म से दोनों लोक होते हैं। जहाँ पर भी यह गमन करता है उसके पीछे एक धर्म ही अनुगमन किया करता है ॥४॥ अन्य सभी कुछ शरीर के ही साथ में नाश को प्राप्त हो जाया करता है। यह जन्तु एक ही अकेला समुत्पन्न हुआ करता है और एक ही अकेला मृत्यु को प्राप्त होता है ॥५॥ जब यह मृत्युगत होता है तो उस समय में केवल एक मात्र धर्म ही उसका अनुगमन किया करता है। उस समय में न तो कोई मित्र साथ में जाया करता है और न बान्धव ही उसके साथ जाते हैं। विद्या—सौभाग्य और रूप लावण्य ये सभी कुछ धर्म के द्वारा ही प्राप्त किये जाया करते हैं ॥६॥ ब्रह्मा—इन्द्र—उपेन्द्र—शर्व—इन्दु—यम—अर्क—अग्नि—अनिल—अम्बु—वसु—अश्विनी कुमार और धनद आदि के जो समस्त कामनाओं के प्रदान करने वाले लोक हैं इनकी प्राप्ति मनुष्य धर्म के ही द्वारा किया करता है। हे पुरुषों के अन्त करने वाले ! धर्म से ही मनोहर द्वीप और सुन्दर सुख देने वालों को यह पुरुष प्राप्त करता है ॥७॥

धर्मेण तानवाप्नोति पुरुषः पुरुषान्तक ! ।
मनोहराणि द्वीपानि वर्षाणि सुसुखानि च ॥८
प्रयान्ति धर्मेण नरास्तथैव नरपुङ्गवाः ।
नन्दनादीनि मुख्यानि देवोद्यानानियानि च ॥९
तानि पुण्येन लभ्यन्ते नाकपृष्ठन्तथा नरैः ।
विमानानि विचित्राणि सप्सरोभिर्गणैः शुभाः ॥१०
तत्कामानि सर्वाणि गन्धर्वाणां पुरन्दरम् ।
राजन् नृत्यादिरूपा च कामिनीभिः समन्विता ॥११

सत्काराणि च मुख्यानि फलंपुण्यस्य दृश्यते ।
रुक्मवैदूर्यदण्डानि चण्डांशुसदृशानिच ॥१२
चामराणि सुराध्यक्ष ! भवन्ति शुभकर्मणाम् ।
पूर्णेन्दुमण्डलाभेन रत्नांशुकविकाशिना ॥१३
धार्यतां याति छत्रेण नरः पुण्येन कर्मणा ।
जयशङ्खस्वरौघेण सूतमागधनिः स्वनैः ॥१४

मनुष्य धर्म्म के द्वारा ही नरर्गाधिकार को प्राप्त किया करते हैं और नन्दन आदि मुख्य देवो के जो स्थान है उनमे चले जाया करते हैं । पुण्य के द्वारा ही इन सबकी प्राप्ति होती है तथा मनुष्यो के द्वारा नाक-पृष्ठ को भी प्राप्त किया जाता है । विचित्र विमान तथा परम शुभ अप्सराऐं और तैजस शरीर आदि सब सदा पुण्य वालो का ही फल है । राज्य-नृपतियो के द्वारा पूजा—ईप्सित काम सिद्धि एवं मुख्य सत्कार यह सभी पुण्य का ही फल दिखाई देता है । हे सुराध्यक्ष ! सावर्ण एवं वैदूर्य के दण्ड जो कि सूर्य के ही समान है और चामर इन सबकी प्राप्ति होना शुभ कर्म्मो का ही फल होता है । पूर्ण चन्द्र की आभा वाले और रत्नांशुक विनाशी छत्र के धारण करने का अवसर मनुष्य पुण्य कर्म्म के द्वारा ही प्राप्त किया करता है । जयकार बतलाने वाले शङ्खो के स्वर-समूह से तथा सूत और मागधो की ध्वनियो से समन्वित भी मनुष्य पुण्य धर्म्म से ही होता है ॥ ६— ४ ॥

वरासन सभृङ्गार फल पुण्यस्य कर्मणः ।
वरान्नपान गीतञ्च भृत्यमाल्यानुलेपनम् ॥१५
रत्नवस्त्राणि मुख्यानि फल पुण्यस्य कर्मण. ।
रूपौदार्यगुणोपेतास्त्रियश्चातिमनोहरा ॥१६
वासः प्रासादपृष्ठेषु भवन्ति शुभकर्मिणः ।
सुवर्णकिङ्किणीमिश्रचामरापीडधारिणः । १७
वहन्ति तुरगा देव नर पुण्येन कर्मणा ।

तस्य द्वाराणि यजनन्तपोदानन्दमः क्षमाः ॥१८
ब्रह्मचर्यं तथा सत्यन्तीर्थानुसरणं शुभम् ।
स्वाध्यायसेवासाधूनां सहवासः सुरार्चनम् ॥१९
गुरूणां चैव शुश्रूषा ब्राह्मणानां च पूजनम् ।
इन्द्रियाणां जयश्चैव ब्रह्मचर्यममत्सरम् ॥२०
तस्माद्धर्मः सदा कार्यो नित्यमेव विजानता ।
नहि प्रतीक्षते मृत्युः कृतमस्य न वा कृतम् ॥२१

शृङ्गार के सहित वरासन भी पुण्य कर्म का फल होता है। श्रेष्ठ अन्न—पान—गीत—नृत्य—माल्य और अनुलेपन—रत्न और वस्त्र इस प्रकार की मुख्य वस्तुएँ प्राप्त होना भी परम पुण्य कर्म का फल होता है। रूप लावण्य एवं अनेक सद्गुणों से सम्पन्न अतीव मनोहर स्त्रियाँ—बड़े महलों में निवास शुभ कर्म वालों को ही होता है। हे देव! सुवर्ण की किंकणी से निर्मित चामर एवं आपीड़ के धारण करने वाले पुरुष मनुष्य को पुण्य कर्म से वहन किया करते हैं। उस पुरुष के द्वार—यजन—तप—दान—क्षमा—ब्रह्मचर्य—सत्य—शुभ तीर्थानुसरण—स्वाध्याय—साधु सेवा—सहवास—सुरों का अर्चन—गुरुओं की शुश्रूषा—शास्त्रों का अध्ययन—इन्द्रियों के ऊपर विजय—मत्सरता का अभाव—इन सबकी प्राप्ति पुण्य कर्म के द्वारा हुआ करती है ॥ १४, १५, १७, १८, १९, २० ॥ इस कारण से ज्ञानवान पुरुषों को नित्य ही धर्म का समाचरण करना चाहिए क्योंकि मृत्यु इसके कृत तथा अकृत की कुछ भी प्रतीक्षा नहीं किया करती है ॥२१॥

बाल एव चरेद्धर्ममनित्यं देव! जीवितम् ।
को हि जानाति कस्याद्य मृत्युरापतिष्यति ॥२२
पश्यतोऽप्यस्य लोकस्य मरणं पुरतः स्थितम् ।
अमरस्येव चरितमत्याश्चर्यं सुरोत्तम! ॥२३
युवत्वापेक्षया बालो वृद्धत्वापेक्षया युवा ।

मृत्योरुदसङ्गमारूढः स्थविरः किमपेक्षते ॥२४
तत्रापि विण्ड(न्ह)तस्त्र.ण मृत्युनातस्यका गतिः ।
न भयमरणच्चैवप्राणिनामभय क्वचित् ॥
तथापि निर्भयाः सन्तः सदा सुकृतकारिणः ॥२५
तुष्टाऽस्मितेविशालाक्षि ! वचनैर्धर्मसङ्गतैः ।
विना सत्यवतः प्राणान् वरंवरयमाचिरम् ॥२६
वरयामि त्वया दत्त पुत्राणा शतमौरसम् ।
अनपत्यस्य लोकेषु गति किल न विद्यते ॥२७
कृतेन कामेन निवर्त भद्रे ! भविष्यतीद सकलं यथोक्तम् ।
ममोपरोधस्तव च वलमः स्यात्तयाऽधुना तेन तव ब्रवीमि ॥२८

हे देव ! बालक को ही नित्य धर्म्म का आचरण करना चाहिए क्योंकि यह जीवन अनित्य है। कौन जानता है कि किसकी मृत्यु आज ही आ जायगी। इस लोक के देखते ही हुए मौत सामने भिड़ रहा करती है। हे सुरोत्तम ! देव के समान इसका चरित होता है—यही महान् आश्चर्य की बात है। युवावस्था में स्थित की अपेक्षा बालक और बूढ़ा की अपेक्षा युवा इस मृत्यु की गोद में समारूढ़ हो रहा है। जो एकदम स्थविर है वह फिर किस अवस्था की अपेक्षा किया करता है। ॥२२, २३, २४॥ इस दशा में भी मृत्यु के द्वारा भाग की प्राप्ति करने वाले उसकी क्या गति होगी। मरण भय नहीं है। प्राणियों को अभय कहा है। जो सुकृत के करने वाले हैं वे यहाँ पर भी सदा सन्त पुरुष निर्भय होते हैं ॥२५॥ यमराज ने कहा—हे विशालाक्षि ! तुम्हारे धर्म्म से सङ्गत वचनों से अत्यन्त ही परितुष्ट हो गया हूँ किन्तु सत्यवान के प्राणों को छोड़कर शीघ्र ही मुझसे कोई सा वरदान माँगले। सावित्री ने कहा—हे भगवन् ! आपके द्वारा दिये हुए सौ औरस पुत्रों का वरदान मैं चाहती हूँ क्योंकि जो सन्तान से हीन है उनकी लोकों में कोई भी गति नहीं है। यमराज ने कहा—हे भद्रे ! अब तेरा काम पूर्ण हो गया है

तुम वापिस लौट जाओ। जो भी तुमने कहा है वह सभी हो जायगा। साथ चलने में मेरा उपरोध (रुकावट) है और तुमको स्वयं श्रम होता है। इसी से मैं तुमसे यह बोल रहा हूँ ॥ २६, २७, २८ ॥

६१—सावित्री उपाख्यान (५)

धर्ममर्मविधानज्ञ ! सर्वधर्मप्रवर्तक ! ।
त्वमेव जगतो नाथः प्रजासंयमनो यमः ॥१
कर्मणामनुरूपेण यस्माद्यमयसे प्रजाः ।
तस्माद्वै प्रोच्यसे देव ! यम इत्येव नामतः ॥२
धर्मेणेमाः प्रजाः सर्वा यस्माद्रञ्जयसे प्रभो ! ।
तस्मात्ते धर्मराजेति नाम सद्भिर्निगद्यते ॥३
सुकृतं दुष्कृतं चोभे पुरोधाय यदा जनाः ।
त्वत्सकाशं मृता यान्ति तस्मात्त्वं मृत्युरुच्यसे ॥४
कालं कलार्द्धं कलयन् सर्वेषां त्वं हि तिष्ठसि ।
तस्मात् कालेति ते नाम प्रोच्यते तत्त्वदर्शिभिः ॥५
सर्वेषामेव भूतानां यस्मादन्तकरो महान् ।
तस्मात्त्वमन्तकः प्रोक्तः सर्वदेवैर्महाद्युते ! ॥६
विवस्वतस्त्वं तनयः प्रथमं परिकीर्तितः ।
तस्माद्वैवस्वतो नाम्ना सर्वलोकेषु कथ्यसे ॥७

सावित्री ने कहा—हे सब धर्मों के प्रवर्तक ! आप तो धर्म के मर्म का जो विधान है उसके ज्ञाता हैं और आप ही इन जगतों के नाथ हैं तथा प्रजाओं के संयमन करने वाले यम हैं ॥ १ ॥ कर्मों के अनुरूप जिस कारण से आप प्रजाओं का दमन किया करते हैं हे देव ! इसी कारण से "यम"—इस नाम से आपको पुकारा जाया करता है। हे

प्रभो ! क्योंकि धर्म्म के द्वारा इन समस्त प्रजाओं का आप रञ्जन किया करते हैं इसी से सत्पुरुषों के द्वारा आप "धर्मराज"—इस नाम से पुकारे जाया करते हैं ॥ २, ३ ॥ जब मनुष्य सुकृत और दुष्कृत इन दोनों को आगे रखकर मृत्युगत होकर आपके समीप में जाया करते हैं इसी कारण से आपको "मृत्यु"—इस नाम से कहा जाया करता है। काल की कलाएं कलन करते हुए सबके मध्य में आप स्थित रहा करते हैं इसी कारण से तत्वदर्शियों के द्वारा "काल"—यह नाम आपका कहा जाता है। क्योंकि सभी प्राणियों के आप महान् अन्त कर देने वाले हैं इसी कारण से हे महाद्युते ! समस्त देवों के द्वारा आपका अन्तक कहा गया है। आप विवस्वान् के पुत्र प्रथम कहे गये हैं इसीलिये समस्त लोकों में 'वैवस्वत'—इस नाम से आपको कहा जाता है ॥४–७॥

आयुष्ये कर्मणि क्षीणे गृह्णासि प्रसभञ्जनम् ।
तदा त्व कथ्यसे लोके सर्वप्राणिहरेतिवै ॥८
तव प्रसादाद्देवेश ! सङ्करो न प्रजायते ।
सतां सदा गतिर्देव ! त्वमेव परिकीर्तितः ॥९
जगतोऽस्यजगन्नाथ ! मर्यादापरिपालक. ।
पाहि मां त्रिदशश्रेष्ठ ! दुःखितांशरणागताम् ॥
पितरौ च तथैवास्य राजपुत्रस्य दुःखितौ ॥१०
स्तवेन भवत्याधर्मज्ञे ! मया तुष्टेन सत्यवान् ।
तव भर्ता विमुक्तोऽयलब्धकामाव्रजाबले ! ॥११
राज्यं कृत्वा त्वया सार्द्धं वत्सराणीतिपञ्चकम् ।
नाकपृष्ठमथारुह्य त्रिदशैः सहरंस्यते ॥१२
त्वयि पुत्रशतञ्चापिसत्यवान् जनयिष्यति ।
ते चापिसर्वे राजानःक्षत्रियास्त्रिदशोपमाः । १३
मुख्यास्त्वन्नाम पुत्राख्या भविष्यन्ति हि शाश्वताः ।
पितुश्च ते पुत्रशतं भविता तव मातरि ॥१४

आयुष्य में कर्म के क्षीण होने पर आप मनुष्य को बलपूर्वक ग्रहण किया करते हैं उस समय में लोक में आप "सर्व प्राणिहर" इस नाम से कहे जाते हैं। हे देवेश ! आपके प्रसाद से सङ्कर नहीं होता है। हे देव ! मनुष्यों की सदा आप ही गति कीर्तित किये गये हैं। हे जगन्नाथ ! आप इस जगत् के मर्यादा के परिपालक हैं। हे देवों में परमश्रेष्ठ ! शरणागति में समागत दुःखिता मेरी रक्षा करो। इस राजपुत्र के माता पिता इसी भाँति परम दुःखित हो रहे हैं ॥ ८, ९, १० ॥ यमराज ने कहा—हे धर्मज्ञे ! तेरे इस स्तव से और भक्तिभाव से तुष्ट हुए मेरे द्वारा तेरा स्वामी सत्यवान् छोड़ दिया गया है। हे अबले ! अवसाद भाव वाली तुम यहाँ से चली जाओ। यह अब तेरे साथ राज्य का सुख भोग कर चार सौ वर्ष तक जीवित रह कर फिर अन्त में स्वर्ग पर समारोहण कर देवों के साथ रमण करेगा। यह सत्यवान् तुझमें सौ पुत्र समुत्पन्न करेगा। वे भी सब देवताओं के समान क्षत्रिय राजा लोग होंगे। तुम्हारे नाम से पुत्रों की आख्या वाले प्रमुख एवं शाश्वत होंगे और तुम्हारी माता में तुम्हारे पिता से भी एक सौ पुत्र उत्पन्न होंगे ॥ ८, ९, १०, ११, १२, १३, १४ ॥

मालव्यां मालवानामशाश्वताः पुत्रपौत्रिणः ।
भ्रातरस्ते भविष्यन्ति क्षत्रियास्त्रिदशोपमाः ॥१५
स्तोत्रेणानेन धर्मज्ञे ! कल्यमुत्थाय यस्तु माम् ।
कीर्तयिष्यति तस्यापि दीर्घमायुर्भविष्यति ॥१६
एतावदुक्त्वा भगवान् यमस्तु प्रमुच्य तं राजसुतं महात्मा ।
अदर्शनं तत्र यमो जगाम कालेन सार्द्धं सह मृत्युना च ॥१७

मालवों के नाम वाले मालवी में शाश्वत पुत्र एवं पौत्र होंगे। वे देवों के समान उपमा वाले क्षत्रिय तेरे भाई होंगे। हे धर्मज्ञे ! जो पुरुष प्रातःकाल में उठकर इस स्तोत्र के द्वारा मेरा कीर्तन करेगा उसकी भी दीर्घ आयु हो जायगी ॥ १५। १६ ॥ मत्स्य भगवान् ने कहा—इतना

कहकर महात्मा भगवान् यमराज ने उस राजपुत्र को छोड़कर वहीं पर वह यमराज काल और मृत्यु के साथ ही अदर्शन को प्राप्त हो गये थे ॥ १७ ॥

६२—सावित्री उपाख्यान (६)

सावित्री तु ततः साध्वीजगामवरवर्णिनी ।
यथा यथा गतेनैव यत्रासीत्सत्यवान् मृतः ॥१
सा समासाद्य भर्तारं तस्योत्सङ्गगत शिरः ।
कृत्वा विवेश तन्वङ्गी लम्बमाने दिवाकरे ॥२
सत्यवानपि निर्मुक्तो धर्मराजाच्छनैः शनैः ।
उन्मीलयत नेत्राभ्यां प्रास्फुरच्च नराधिप ! ॥३
ततः प्रत्यागतप्राणः प्रियां वचनमब्रवीत् ।
क्वासौ प्रयातः पुरुषो यो मामप्यपकर्षति ॥४
न जानामिवरारोहे ! कश्चासौपुरुषःशुभे ।
वनेऽस्मिन्चारुसर्वाङ्गि ! सुप्तस्यचादिनंगतम् ॥५
उपवासपरिश्रान्ता दुःखिता भवती मया ।
अस्मद्दुर्हृदयेनाद्य पितरौ दुःखितौ तथा ॥
द्रष्टुमिच्छाम्यहं सुभ्रु ! गमने त्वरिता भव ॥६

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—इसके अनन्तर वर वर्णिनी साध्वी सावित्री जैसे २ मार्ग से गयी थी और जहाँ पर मृत सत्यवान् था वैसे ही वह चली गयी थी। उसने अपने स्वामी को प्राप्त करके जिसका सिर उसके गोद में था इस तरह से उसके सिर को रखकर दिवाकर के लम्बमान होने पर उस तन्वङ्गी ने उस स्थल पर प्रवेश किया था ॥ १ ॥ ॥ २ ॥ सत्यवान् का जीवात्मा धर्मराज से धीरे धीरे निर्मुक्त होकर हे नराधिप ! उसने नेत्रों का उन्मीलन किया था और वह प्रस्फुरित हुआ।

इसके पश्चात् प्रत्यागत प्राण वाला वह होकर अपनी प्रिया से यह वचन बोला—वह पुरुष कहाँ चला गया जो मुझको भी अपकर्षित कर रहा है। हे वरारोहे! हे शुभे! मैं नहीं जानता हूँ यह कौन पुरुष था। हे चारु-सर्वाङ्गि! आज इस वन में सोते हुए मुझको पूरा दिन व्यतीत हो गया है। मैंने उपवास से परिश्रान्त आपको भी दुःखित किया है। हमारे बुरे हृदय से आज हमारे माता-पिता भी बहुत दुःखित हुए हैं। हे सुभ्रु! मैं माता-पिता के दर्शन करना चाहता हूँ अब गमन करने में शीघ्रता वाली हो जाओ। ३-६ ॥

आदित्येऽस्तमनुप्राप्ते यदि ते रुचितं प्रभो ।
आश्रमन्तु प्रयास्यावः श्वशुरौ हीनचक्षुषौ ॥७
यथा वृत्तश्च तत्रैव शृणु वक्ष्ये यथाश्रमे ।
एतावदुक्त्वा भर्तारं सह भर्त्रा तदा ययौ ॥८
आससादाश्रमं चैव सह भर्त्रा नृपात्मजा ।
एतस्मिन्नेव काले तु लब्धचक्षुर्महीपतिः ॥९
द्युमत्सेनः समायंस्तु पर्यतप्यत भार्गव ।
प्रियपुत्रमपश्यन्वै स्नुषाञ्चैवाथ कर्शिताम् ॥१०
आश्वास्यमानस्तु तदा स तु राजा तपोधनैः ।
ददर्श पुत्रमायान्तं स्नुषया सह काननं ॥११
सावित्री तु वरारोहा सह सत्यवता तदा ।
ववन्दे तत्र राजानं सभार्यं क्षत्रपुङ्गवम् ॥१२
परिष्वक्तस्तदा पित्रा सत्यवान् राजनन्दन. ।
अभिवाद्य तत. सर्वान् वने तस्मिंस्तपोधनान् ॥१३
उवास तत्र सा रात्रिमृषिभिः सर्वधर्मवित् ।
सावित्र्यपि जगादाथ यथावृत्तमनिन्दिता ॥१४

सावित्री देवी ने कहा—हे प्रभो! भगवान् सूर्य के अस्तता को प्राप्त होने पर यदि आपको पसन्द हो तो आश्रम में चले जायें श्वशुर

तो दोनों हीन नेत्रों वाले हैं। जिस प्रकार से जो कुछ हुआ है वह सब आश्रम में ही बतलाऊँगी उसका श्रवण करना। इस तरह से अपने भर्त्ता से इतना मात्र कहकर स्वामी के साथ ही उसी समय में वह सावित्री चली गयी थी ॥ ७। ८ ॥ वह नृपात्मजा भर्त्ता के आश्रम में प्राप्त हो गई थी। इसी समय में नेत्रों को प्राप्त करने वाला वह महीपति द्युम-त्सेन भार्य्या के सहित हे भार्गव ! परितृप्त हुआ था क्योंकि उसने अपने प्रिय पुत्र को और अपनी परम कृश पुत्र वधू को देखा था। वह राजा वहाँ पर तपस्वियों के द्वारा समाश्वस्त होता हुआ स्नुषा के साथ वन में आये हुए पुत्र को देखा था। वह वर आरोह वाली सावित्री ने उस समय में सत्यवान के साथ वहाँ आकर क्षत्रियों में श्रेष्ठ भार्या के सहित राजा की वन्दना की थी। तब वह राजनन्दन सत्यवान् अपने पिता के द्वारा भली भाँति आलिङ्गन किया गया था। इसके अनन्तर उसने वन में उन समस्त तपोधनों का अभिवादन किया था। वह सब धर्म का वेत्ता उस रात्रि में उन ऋषियों के साथ वहीं पर रहा था और इसके उपरान्त सावित्री ने भी जो परम आनन्दित थी जो कुछ भी घटित हुआ था वह सारा हाल कहकर सुना दिया था ॥ ९-१४ ॥

व्रतं समापयामास तस्यामेव यथाविधि।
ततस्तुर्य्यस्त्रियामान्ते ससैन्यस्तस्य भूपतेः ॥१५
आजगाम जनः सर्वो राज्यार्थाय निमन्त्रणे।
विज्ञापयामास तदा तत्र प्रकृतिशासनम् ॥१६
विचक्षुपस्ते नृपते येन राज्यं पुरा हृतम्।
अमात्यैः स हतो राजा भवांस्तस्मिन् पुरेनृपः ॥१७
एतच्छ्रुत्वा ययौ राजा बलेनचतुरङ्गिणा।
लेभे च सकलं राज्यं धर्मराजान् महात्मनः ॥१८
भ्रातृणां तु शतं लेभे सावित्र्यपि वराङ्गना।
एवम्पतिव्रता साध्वीपितृपक्षं नृपात्मजा ॥१९

उज्जहार वरारोहा भर्तृपक्षं तथैव च ।
मोक्षयामास भर्तारं मृत्युपाशगतं तदा ॥२०
तस्मात्साध्व्यः स्त्रियः पूज्याः सततं देववन्नरैः ।
तासां राजन् ! प्रसादेन धार्यते वै जगत्त्रयम् ॥२१
तासान्तु वाक्यं भवतीह मिथ्या न जातु लोकेषु चराचरेषु ।
तस्मात्सदा ताः परिपूजनीयाः कामान् समग्रानभिकामयानैः ॥२२

उसी रात्रि में जो महाव्रत ग्रहण किया था उसको समाप्त किया था । इसके अनन्तर सभी जन उस राजा को स्त्रियों के समीप में सेना के सहित हुए वाद्यों से समन्वित राज्यार्थ के लिये निमन्त्रण में यहाँ पर समागत हुए और उस समय में उन्होंने प्रकृति शासन को विज्ञापित किया था । हे नृपते ! नेत्रहीन आपका जिसने पहिले राज्य अपहृत किया था उस राजा को आपके ही अमात्यों ने मार डाला है और अब आप ही उस पुर के राजा हैं । यह श्रवण करके वह राजा द्युमत्सेन चतुरङ्गी बल के साथ वहाँ पर चला गया था और महात्मा धर्मराज से अपने सम्पूर्ण राज्य को पुनः प्राप्त कर लिया था । वराङ्गना सावित्री ने भी सौ भाइयों की प्राप्ति करली थी । इस प्रकार से उस परम साध्वी पतिव्रता ने जो नर की आत्मजा थी अपने पिता के पक्ष का भी उद्धार कर दिया था तथा उस वरारोहा ने भाइयों के पक्ष का भी उद्धार कर दिया । उस समय में सावित्री के महान् प्रभावमय बल से अपने भर्ता को मृत्यु के परम घोर पाश से मुक्त करा दिया था । इसी कारण से मनुष्यों को पूजा करनी चाहिए । हे राजन् ! उनके ही प्रसाद से ये तीनों भुवन धारण किये जाते हैं ॥ १५, १६, १७, १८, १९, २०, २१ ॥ इन चराचर लोकों में कभी भी उन सतीसाध्वी महिलाओं के वचन मिथ्या नहीं हुआ करते हैं इसी कारण से सम्पूर्ण कामनाओं को प्राप्त करने वाले मनुष्यों के द्वारा सर्वदा उन नारियों की अभ्यर्चना अवश्य ही करनी चाहिए॥२२॥

६३—अभिषिक्त राजा का कृत्य वर्णन

राज्ञोऽभिषिक्तमात्रस्य किन्नु कृत्यतमं भवेत् ।
एतन्मे सर्वमाचक्ष्व सम्यग्वेत्तियतोभवान् ॥१
अभिषेकार्द्रशिरसा राज्ञा राज्यावलोकिना ।
सहायवरण कार्यं तत्र राज्यं प्रतिष्ठितम् ॥२
यदप्यल्पतरं कर्म तदप्येकेन दुश्चरम् ।
पुरुषेणासहायेन किमु राज्यं महोदयम् ॥३
तस्मात्सहायान् वरयेत् कुलीनान्नृपतिः स्वयम् ।
शूरान् कुलीनजातीयान् बलयुक्तान् श्रियान्वितान् ॥४
रूपसत्वगुणोपेतान् सज्जनान् क्षमयान्वितान् ।
क्लेशक्षमान् महोत्साहान् धर्मज्ञांश्च प्रियंवदान् ॥५
हितोपदेशकान्राज्ञः स्वामिभक्तान्यशोऽर्थिनः ।
एवंविधान्सहायांश्च शुभकर्मसु योजयेत् ॥६
गुणहीना अपि तथा विज्ञाय नृपतिः स्वयम् ।
कर्मस्वेव नियुञ्जीत यथायोग्येषु भागशः ॥७

महर्षि मनु ने कहा—जिस राजा का राज्यासन पर अभिषेक कर दिया जावे उस अभिषिक्त नृपति का क्या कर्त्तव्य है क्योंकि केवल उसका अभिषेक भर ही हुआ है। यह सभी कुछ मुझे बतलाइये क्योंकि आप तो सभी कुछ को भली भाँति जानते हैं ॥ १ ॥ श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—अभिषेक के द्वारा भीगे हुए मस्तक वाले और राज्य के कार्यों के देखने वाले राजा को चाहिए कि वह उस प्रतिष्ठित राज्य में वहाँ पर अपनी सहायता करने वालों का वरण करे ॥ २ ॥ चाहे बहुत ही छोटा सा भी कोई कार्य हो किन्तु वह भी एक के द्वारा पूर्ण कर लेना महान् कठिन हुआ करता है जिस पुरुष का कोई भी सहायक न हो। यह साधारण से साधारण कार्यों के विषय में भी ऐसा ही देखा जाता है किन्तु राज्य

शासन तो महान् उदय वाला एक परम विशाल कार्य है ॥३॥ अतएव नृपति को स्वयं ही कुलीन सहायकों का वरण करना चाहिए वे सहायक ऐसे होने चाहिए जो शूरवीर हों—अच्छे कुल और उत्तम जाति में समुत्पन्न होने वाले हों—बल से सम्पन्न एवं श्री से समन्वित होवें ॥४॥ राजा को अपने सहायकों के वरण करने में देखना चाहिए कि वे रूप और सत्त्व गुण से युक्त हों—सज्जन हों—क्षमा से संयुक्त हों—क्लेशों के सहन करने में समर्थ हों—महान् उत्साह वाले हों—धर्म के ज्ञाता हों—प्रिय वचन बोलने वाले हों। राजा को सदा हित का उपदेश करने वाले—स्वामी के परम भक्त और यश के चाहने वाले हों। इस तरह के सभी भाँति खूब ध्यान कर सहायकों का वरण राजा को करना चाहिए और फिर उनको शुभ कर्मों में योजित करना चाहिए। जो गुणों से हीन हों उनको भी राजा स्वयं जानकर यथा योग्य कर्मों में भाग करके नियुक्त करना चाहिए ॥५, ६, ७॥

कुलीनः शीलसम्पन्नो धनुर्वेदविशारदः।
हस्तिशिक्षाश्वशिक्षासु कुशलः श्लक्ष्णभाषिता ॥८
निमित्ते शकुने ज्ञाने वेत्ता चैव चिकित्सिते।
कृतज्ञः कर्मणां शूरस्तथा क्लेशसहोऽप्यृजुः ॥९
व्यूहतत्त्वविधानज्ञः फल्गुसारविशेषवित्।
राज्ञा सेनापतिः कार्यो ब्राह्मणः क्षत्रियोऽथवा ॥१०
प्रांशुः सुरूपो दक्षश्च प्रियवादी न चोद्धतः।
चित्तग्राहश्च सर्वेषां प्रतीहारो विधीयते ॥११
यथोक्तवादी दूतः स्याद्देशभाषाविशारदः।
शक्तः क्लेशसहो वाग्मी देशकालविभागवित् ॥१२
विज्ञातदेशकालश्च दूतः स स्यान्महीक्षिताम्।
वक्ता नयस्य यः काले स दूतो नृपतेर्भवेत् ॥१३
प्रांशवो व्यायताः शूरा दृढभक्ता निराकुलाः।

राज्ञा तु रक्षिणः कार्याः सदा क्लेशसहा हिताः ॥१४

सेनापति राजा का एक परम सहायक अङ्ग होता है। वह कैसा होना चाहिए यह बतलाया गया है। राजा का सेनापति—शील स्वभाव से युक्त—धनुर्विद्या का महान् विद्वान्—हाथियों और अश्वों की शिक्षा में परम प्रवीण कोमल और मधुर भाषण करने वाला—शकुन के निमित्तों का जानने वाला—चिकित्सा के विषय का ज्ञाता—कृतज्ञ—कर्मों में शूर—क्लेशों का सहिष्णु—सरल—गूढ़ तत्त्वों के विधान का ज्ञाता—निरर्थक एक सार के तत्त्वों का जानकार ऐसे अनेक गुणों से विशिष्ट सेना का स्वामी राजा को बनाना चाहिये क्योंकि सेना ही राज्य एवं प्रजा की रक्षा करने वाली होती है और सेनापति उसका प्रधान होता है। वह सेनापति जाति का ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय होना चाहिए। वह प्रांशु—सुन्दर रूप वाला—दक्ष और प्रियवादी होना चाहिये उद्धत स्वभाव वाला उसको नहीं रहना चाहिये। राजा का दूत सभी के चित्त को ग्रहण करने वाला और प्रतीहार बनाना चाहिये। दूत को जैसा भी कहा जावे वही कहने वाला तथा देश भाषा का विज्ञ होना चाहिए। जो राजा का दूत हो उसको शक्तिशाली—क्लेशों का सहन करने वाला—वाग्मी—देश और काल के विभाग का ज्ञान रखने वाला तथा देश एवं काल का विज्ञाता होना आवश्यक है। जो किसके काल में बकता नहीं है वही दूत राजा का होना है ॥ ८, ६, १०, ११, १२, १३ ॥ राजा को अपनी रक्षा करने वाले ऐसे ही व्यक्तियों को करना चाहिए जो प्रांशु—व्यायत—शूर दृढ़ भक्त—निराकुल—सदा क्लेशों के सहन करने के स्वभाव वाले तथा हित हो ॥ १४ ॥

अनाहार्यो नृणाञ्च दृढभक्तिश्च पार्थिवे।
ताम्बूलधारी भवति नारी वाऽथ लक्षणा ॥१५
षाड्गुण्यविधितत्त्वज्ञो देशभाषाविशारदः।
सन्धिविग्रहकः कार्यो राज्ञा नयविशारदः ॥१६

कृताकृतज्ञो भृत्यानां ज्ञेयः स्याद्देशरक्षिता ।
आयव्ययज्ञो लोकज्ञो देशोत्पत्तिविशारदः ॥१७
सुरूपस्तरुणः प्रांशु दृढभक्तिः कुलोचितः ।
शूरः क्लेशसहश्चैव खड्गधारी प्रकीर्तितः ॥१८
शूरश्च बलयुक्तश्च गजाश्वरथकोविदः ।
धनुर्धारी भवेद्राज्ञः सर्वक्लेशसहः शुचिः ॥१९
निमित्तशकुनज्ञानी हयशिक्षाविशारदः ।
हयायु र्वेदतत्त्वज्ञो भुवोभागविचक्षणः ॥२०
बलाबलज्ञो रथिनः स्थिरदृष्टिः प्रियम्वदः ।
शूरश्च कृतविद्यश्च सारथिः परिकीर्तितः ॥२१

राजा का ताम्बूलधारी सनाढ्यार्य—सनृगत और राजा में दृढ़ भक्ति वाला होना चाहिए अथवा इन्हीं गुणों वाली पुरुष न होकर ताम्बूलधारिणी नारी भी हो सकती है ॥ १५ ॥ राजा के द्वारा षाड्गुण्य विधि के तत्त्व का ज्ञाता—इस भाषा का विद्वान् और नीति शास्त्र का पण्डित, सन्धि एवं विग्रह करने वाला निपुण होना चाहिए । देश का रक्षिता भृत्यों के कृत और अकृत के जानने योग्य होवे । जो आय और व्यय का ज्ञाता होता है वह लोक का वेत्ता तथा देश की उत्पत्ति का मर्मज्ञ मनुष्य होना चाहिए । राजा का खड्गधारी सुन्दर रूप वाला—तरुण—प्रांशु—दृढ़ भक्ति वाला—समुचित कुल में समुत्पन्न—शूरवीर—क्लेशों के सहन करने वाला निपुण होना चाहिए । राजा का धनुर्धारी ऐसा ही होना चाहिए जो शूर—बल से संयुत—गज, अश्व और रथ के विषय में पूर्ण ज्ञान रखने वाला शुचि और सभी तरह के क्लेशों को सहन करने वाला हो । राजा को ऐसा सारथि बहुत ही सोचकर नियत करना चाहिए जो निमित्त और शकुनों का ज्ञान वाला हो—अश्वों की शिक्षा का विशारद—अश्वों की आयु व वेद के तत्त्वों का ज्ञाता—भूभाग का [illegible] का जानने वाला आदि सभी के

विषय में भलीभाँति विज्ञता रखता हो । स्थिर दृष्टि वाला-प्रिय बोलने वाला-शूर-कुलविद हो ॥ १७-२१ ॥

अनाहार्यः कृचिदंष्ट्रिचिकित्सितविदाम्बरः ।
सूपशास्त्रविशेषज्ञ सूपाध्यक्षः प्रशस्यते ॥२२
सूदशास्त्रविधानज्ञा, पराभेद्या कुलोद्गताः ।
सर्वे महानसे धार्या, कृत्तकेशनखा नरा, ॥२३
समः शत्रौ च मित्रे च धर्मशास्त्रविशारदः ।
विप्रमुख्य कुलीनश्च धर्माधिकरणी भवेत् ॥२४
कार्यास्तथाविधास्तत्र द्विजमुख्या, सभासद ।
सर्वदेशाक्षराभिज्ञ सर्वशास्त्रविशारद, ॥२५
लेखकः कथितो राज्ञः सर्वाधिकरणेषु वै ।
शीर्षोपेतान् सुसम्पूर्णान् समश्रेणिगतान् समान् ॥२६
अन्तरान्वै लिखेद्यस्तु लेखकः स वरः स्मृतः ।
उपायवाक्यकुशलः सर्वशास्त्रविशारद ॥२७
बह्वर्थवक्ता चाल्पेन लेखकः स्यान्नृपोत्तम ! ।
पुरुषान्तरतत्त्वज्ञा प्रांशवश्चाप्यलोलुपाः ॥२८

नृपति का सूपाध्यक्ष वही प्रशस्त होता है जो आहार्य न हो—हस्ति-दंष्ट्र-चिकित्सा के ज्ञाताओं में परम श्रेष्ठ तथा सूपशास्त्र की विशेषताओं का ज्ञाता होता है ॥ २२ ॥ सूद शास्त्र के विधान के ज्ञाता—दूसरों को भेदन के योग्य अच्छे कुल में उद्गत ऐसे ही मनुष्य सब महानस में (रसोई में) रखने चाहिए जिनके केश और नाखून कटे हुए हों ॥२३॥ नृप का धर्माधिकारी पुरुष विप्रों में प्रमुख-कुलीन-धर्मशास्त्र का महान् विद्वान् और शत्रु तथा मित्र में समान रहने वाला होना चाहिए । वहाँ पर राजा की सभा में ऐसे ही सदस्य होने चाहिए जो सभासद द्विजों में मुख्य हों—समस्त देशों की भाषाओं के अभिज्ञ हों तथा सम्पूर्ण शास्त्रों के विशारद होवें । राजा के यहाँ जो लेखक परम श्रेष्ठ भी कहा गया है

है—इसके ज्ञाता अनाहार्य—सदा शुचि—निपुण और अप्रमत्त मनुष्य ही राजा के धन (कोष) का अध्यक्ष होना चाहिए। समस्त आयके द्वारों में धनाध्यक्ष के तुल्य ही नर नियुक्त होने चाहिए ॥ २९, ३०, ३१॥ व्यय द्वारों में भी राजा को उसी प्रकार के मनुष्यों की नियुक्ति करनी चाहिए। जो अष्टाङ्गों में भली भाँति चिकित्सा का ज्ञान रखता हो—परम्परा से समागत हो—धर्मात्मा—अच्छे कुल में समुत्पन्न हो और अनाहार्य हो वही पुरुष राजघर में वैद्य होने का अधिकारी होता है। राजा के द्वारा वचन में उसका वह प्राणाचार्य मानना चाहिए। हे राजन्! राजा के द्वारा सदा जनों से पृथक् यथा कार्य्य वन आदि का पण्डित और हाथियों की शिक्षा के विधान का ज्ञाता एवं क्लेशों के सहन करने में समर्थ ऐसा राजा का गजाध्यक्ष परम प्रशस्त माना जाता है और इन्हीं गुणों से समन्वित अपने आसन वाला भी विशेष रूप से प्रशस्त होता है ॥ ३२, ३३, ३४, ३५ ॥

गजारोही नरेन्द्रस्य सर्वकर्मसु शस्यते ।
हयशिक्षाविधानज्ञश्चिकित्सितविशारदः ॥३६
अश्वाध्यक्षो महीभर्तुः स्वासनश्च प्रशस्यते ।
अनाहार्यश्च शूरश्च तथा प्राज्ञः कुलोद्गतः ॥३७
दुर्गाध्यक्षः स्मृतो राज्ञ उद्युक्तः सर्वकर्मसु ।
वास्तुविद्याविधानज्ञो लघुहस्तो जितश्रमः ॥३८
दीर्घदर्शी च शूरश्च स्थपतिः परिकीर्तितः ।
यन्त्रमुक्ते पाणिमुक्ते विमुक्ते मुक्तधारिते ॥३९
अस्त्राचार्यो निरुद्वेगः कुशलश्च विशिष्यते ।
वृद्धः कुलोद्गतः सूक्तः पितृपैतामहः शुचिः ॥४०
राज्ञामन्तःपुराध्यक्षो विनीतश्च तथेष्यते
एवं सप्ताधिकारेषु पुरुषाः सप्त ते पुरे ॥४१
परीक्ष्य चाधिकार्याः स्यू राज्ञा सर्वेषु कर्मसु ।

स्थापनाजातितत्त्वज्ञः सततं प्रतिजागृता ॥४२

राजा का गज पर समारोहण करने वाला सभी प्रकार के कर्मों में प्रशंसनीय होता है। अश्वों की शिक्षा के विधान को जानने वाला तथा चिकित्सा के विषय में पण्डित राजा का अश्वों पर रहने वाला अध्यक्ष और स्थापन प्रशस्त माना जाता है। अनाहार्य और शूर तथा प्राज्ञ एवं अच्छे कुल में उत्पन्न राजा का दुर्ग का अध्यक्ष कहा गया है जो सभी प्रकार के कर्मों में उद्यत रहा करता है। वास्तु कला की विद्या में महा पण्डित—हलके हाथ वाला—श्रम को जीत लेने वाला—दीर्घदर्शी और शूर स्थपति कीर्तित किया गया है। यन्त्र मुक्त में—पाणि मुक्त में—विमुक्त में और मुक्त धारित में अस्त्राचार्य उद्वेग से रहित एवं कुशल विशिष्ट हुआ करता है। पिता-पितामह से चले आने वाला—स्थविर—वृद्ध तथा कुलीन सुवच एवं विनीत राजाओं का अन्तःपुर का अध्यक्ष अर्थात् हुआ करता है। इस प्रकार से इन सात अधिकार के पदों पर पुर में सात पुरुष राजा के द्वारा भली भाँति परीक्षा करके अधिकार के पात्र नियुक्त करना चाहिए जो कि सभी कार्यों में उद्युक्त होवें और सभी कर्मों में निरन्तर प्रतिजागरण और जाति के तत्त्व के ज्ञाता को स्थापन करना चाहिए ॥३६-४२॥

राज्ञः स्यादायुधागारे दक्षः कर्मसु चोद्यतः ।
कर्माण्यपरिमेयानि राज्ञो नृपकुलोद्वह ॥४३
उत्तमाधममध्यानि बुद्ध्वा कर्माणि पार्थिवः ।
उत्तमाधममध्येषु पुरुषेषु नियोजयेत् ॥४४
नरः कर्मविपर्यासाद्राजा नाशमवाप्नुयात् ।
नियोगं पौरुषं भक्तिं श्रुतं शौर्यं कुलं नयम् ॥४५
ज्ञात्वा वृत्तिर्विधातव्या पुरुषाणां महीक्षिता ।
पुरुषान्तरतत्त्वज्ञः [illegible] ॥४६
चतुर्भिर्मन्त्रिभिः [illegible] राजा मन्त्रं पृथक् पृथक् ।

मन्त्रिणामपि नो कुर्यान्मन्त्रिमन्त्रप्रकाशनम् ॥४७
क्वचिन्न कस्य विश्वासो भवतीह सदा नृणाम् ।
निश्चयस्तु सदामन्त्रे कार्यएकेनसूरिणा ॥४८
भवेद्वा निश्चयावाप्तिः परबुद्ध्युपजीवनात् ।
एकस्यैव कार्यमनुभूय कार्यो विनिश्चयः ॥४९

नृपति के आयुधों के आगार में ऐसा ही व्यक्ति नियुक्त किया जाना चाहिये जो दक्ष हो और सभी कर्मों में उद्यत रहता हो । हे नृप कुलोद्वह ! राजा के यहाँ अनेक अपरिमेय कर्म हुआ करते हैं । पार्थिव का कर्त्तव्य है कि कर्मों की उत्तम–मध्यम और अधम श्रेणियों को समझ कर ही उत्तम–मध्यम–अधम पुरुषों में से तदनुसार ही पुरुषों को नियोजित करें । यदि उत्तम कर्म में मध्यम और मध्यम कर्म में उत्तम पुरुष की विपर्यास से नियुक्ति की जावेगी तो इस विपरीतता से नृप का नाश हो जायगा । राजा को नियोग–पौरुष–भक्ति—श्रुत–शौर्य–कुल और नय इन सबको भली भाँति समझ बूझ कर ही पुरुषों की वृत्तिका विधान करना चाहिये और दूसरे पुरुषों के विज्ञान एवं तत्वसार के विवरण से ही नियुक्त करने की नितान्त आवश्यकता होती है ॥ ४३, ४४, ४५, ४६ ॥ राजा को चाहिए कि वह पृथक्–पृथक बहुत से लोगों से स्वेच्छया मन्त्रणा करे और अपने मन्त्रियों में भी अपने मन्त्र का प्रकाशन कभी नहीं करना चाहिए ॥ ४७ ॥ इस संसार में राजाओं का कहीं पर भी किसी का विश्वास नहीं हुआ करता है और सदा किसी भी एक सूरि से अपने विचारणीय मन्त्र में निश्चय कर लेना चाहिए । अथवा राजा को अपने निश्चय की प्राप्ति पर बुद्धि के उपजीवन में किसी भी एक से ही हो जावे तो भी पुनः उसका विशेष निश्चय अवश्य ही अन्यों के द्वारा भी करना चाहिये ॥ ४८, ४९ ॥

ब्राह्मणान् पर्युपासीत त्रयीशास्त्रसमुनिश्चितान् ।
नासच्छास्त्रवतो मूढास्ते हि लोकस्य कण्टकाः ॥५०

वृद्धान् हि नित्यं सेवेत विप्रान् वेदविदः शुचीन् ।
तेभ्यः शिक्षेत विनयं विनीतात्मा च नित्यशः ॥५१
समग्रां वशगां कुर्य्यात् पृथिवीं नात्र संशयः ।
बहवोऽविनयाद्भ्रष्टा राजानः सपरिच्छदाः ॥५२
वनस्थाश्चैव राज्यानि विनयात्प्रतिपेदिरे ।
त्रैविद्येभ्यस्त्रयीविद्यां दण्डनीतिं च शाश्वतीम् ॥५३
आन्वीक्षिकीं त्वात्मविद्यां वार्तारम्भांश्च लोकतः ।
इन्द्रियाणां जये योगं समातिष्ठेद्दिवानिशम् ॥५४
जितेन्द्रियो हि शक्नोति वशे स्थापयितुं प्रजाः ।
यजेत राजा बहुभिः क्रतुभिश्च सदक्षिणैः ॥५५
धर्मार्थं चैव विप्रेभ्यो दद्याद्भोगान्धनानि च ।
सांवत्सरिकमाप्तैश्च राष्ट्रादाहारयेद्बलिम् ॥५६

राजा का परम कर्तव्य है कि वह ऐसे ही ब्राह्मणों की उपासना करे जो वेदत्रयी और समस्त शास्त्रों में सुनिश्चय वाले हों तथा अन्य शास्त्रों वाले पर मूढ़ न हों। मूढ़ लोग का संसर्ग नाश के लिए कष्टद ही हुआ करता है ॥५०॥ विनीत आत्मा वाले नृप को नित्य ही वृद्ध—वेदों के वेत्ता और परम शुचि विप्रों का सेवन करना चाहिए और उनसे ही नित्य विनय की शिक्षा का ग्रहण भी करना चाहिए ॥५१॥ इस तरह से विनय की शिक्षा सर्वदा ग्रहण करने वाला राजा सम्पूर्ण पृथ्वी को अपने वश-वर्तिनी कर लिया करता है—इसमें लेश मात्र भी संशय नहीं है। बहुत से भूपगण सपरिच्छद होते हुए भी केवल अविनय के कारण ही अपने राज्य शासन कर्म से भ्रष्ट हो जाया करते हैं ॥५२॥ वन में स्थित रहने वाले भी केवल विनय होने के कारण से ही राज्यों को प्राप्त कर चुके हैं। जो लोग तीनों विद्या के ज्ञाता होते हैं उनसे त्रयी विद्या को—शाश्वती दण्ड नीति को—आन्वीक्षिकी तथा आत्म-विद्या को ग्रहण करे। लोक से वार्तारम्भों को—और इन्द्रियों के विजय में योग को अहर्निश

पीछे में समाश्रित होना चाहिए ॥५३, ५४॥ जो राजा इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखकर जितेन्द्रिय होता है वह अपनी प्रजा को वश मे रख सकता है। राजा का परम कर्त्तव्य है कि वह दक्षिणा से संयुत बहुत से क्रतुओं के द्वारा यजन किया करे। धर्म और अर्थ के लिये विप्रों को भोग एवं धनों का दान देना चाहिए। प्रति सम्वत्सरों तथा मासों के हिसाब से उसे राष्ट्रों से बलि का आहरण करना चाहिए ॥५५, ५६॥

स्यात्स्वाध्यायपरोलोके वर्तेतपितृवन्धुवत् ।
आवृत्तानागुरुकुलाद्द्विजानापूजकोभवेत् ॥५७
नृपाणामक्षयो ह्येष विधिर्ब्राह्मोऽभिधीयते ।
सतस्तेनानवा मित्रा हरन्ति न विनश्यति ॥५८
तस्माद्राज्ञा विधातव्यो ब्राह्मो वै ह्यक्षयो विधिः ।
समोत्तमाधमं राजा ह्याहूय पालयेत्प्रजाः ॥५९
न निवर्तेत संग्रामात् क्षात्रं व्रतमनुस्मरन् ।
संग्रामेस्वनिवर्तित्वं प्रजानां परिपालनम् ॥६०
शुश्रूषा ब्राह्मणानाञ्च राज्ञां निःश्रेयसम्परम् ।
कृपणानाथवृद्धानां विधवानाञ्च पालनम् ॥६१
योगक्षेमञ्च वृत्तिञ्च तथैव परिकल्पयेत् ।
वर्णाश्रमव्यवस्थानं तथाकार्यं विशेषतः ॥६२
स्वधर्मप्रच्युतान् राजा स्वधर्मे स्थापयेत्तथा ।
आश्रमेषुतथा कार्यमन्नं तैलञ्च भाजनम् ॥६३

नृप को लोक में सर्वदा स्वाध्याय परायण होना चाहिए और प्रजाजनों में सबके साथ तदनुकूल पिता एवं बन्धु के तुल्य ही व्यवहार करे। जो द्विज गुरुकुलों से अपनी अवधि पूर्ण कर वापिस आवें उनकी पूजा राजा को करनी चाहिए ॥५७॥ राजाओं के लिए यह विधि अक्षय एवं ब्राह्म कही जाती है। इससे वह अनव मित्रों का हरण किया करते हैं तथा कभी विनाश को प्राप्त नहीं होता है। अतएव राजा को इस ब्राह्म

प्रसाद विधि को करना ही चाहिए। राजा का कर्त्तव्य है कि वह साम—दान और अधर्मों के द्वारा समाहृत्य कर प्रजाजनों का पालन किया करे ॥५८, ५९॥ नृप को कभी भी अपने क्षत्रियों के व्रत एवं धर्म का स्मरण करते हुए संग्राम से मुँह नहीं मोड़ना चाहिए। संग्रामों से अनिवृत्त होना भी प्रजा का पूर्ण परिपालन ही होता है। ब्राह्मणों की शुश्रूषा राजाओं के कल्याण करने वाली परम श्रेष्ठ ही होती है। राजा का कर्त्तव्य है कि जो कृपण–अनाथ–वृद्ध एवं विधवा हों उनका भली भाँति पालन करे और उनका योग क्षेम तथा वृत्ति की परिकल्पना कर देवे। विशेष रूप से वर्णों एवं आश्रमों की व्यवस्था का कार्य सम्पन्न करना राजा का नितान्त आवश्यक कर्म है। जो मनुष्य अपने धर्म का त्याग करके कर्त्तव्य से च्युत हो गये हैं उनको पुनः अपने उचित धर्म के मार्ग पर राजा को स्थापित करना चाहिए। जो आश्रम वासी हैं उनके आश्रमों में अन्न–पान और भोजन आदि की व्यवस्था नृप को ही कर देनी चाहिए ॥६०-६३॥

स्वयमेवानयेद्राजा सत्कृतानवमानयेत् ।
तापसे सर्वकार्याणि राज्यमात्मानमेव च ॥६४
निवेदयेत्प्रयत्नेन देववच्चिरमर्चयेत् ।
द्वे प्रज्ञे वेदितव्ये च ऋज्वी वक्रा च मानवैः ॥६६
गूहेत्कूर्म इवाङ्गानि रक्षेद्विवरमात्मनः ।
न विश्वसेदविश्वस्ते विश्वस्ते नातिविश्वसेत् ॥६७
विश्वासाद्भयमुत्पन्नं मूलान्यपि निकृन्तति ।
विश्वासयेच्चाप्यपरं तत्त्वभूतेन हेतुना ॥६८
बकवच्चिन्तयेदर्थान् सिंहवच्च पराक्रमे ।
वृकवच्चापि लुम्पेत शशवच्च विनिःपतेत् ॥६९
दृढप्रहारी च भवेत् तथा शूकरवन्नृपः ।
चित्राकारश्च शिखिवद्दृढभक्तिस्तथा श्ववत् ॥७०

आश्रमों में जो आवश्यक वस्तुएँ हों उनकी व्यवस्था राजा को स्वयं ही मालयन कर करनी चाहिए। जो सत्कार करने के योग्य पुरुष हैं उनका कभी भूलकर भी राजा को अपमान नहीं करना चाहिए। राजा को अपने समस्त कार्य्य—राज्य और अपने आपको भी तपस्वियों के लिये समर्पित कर देना चाहिये और प्रयत्न पूर्वक निवेदन करके देवों की भाँति ही चिरकाल पर्यन्त उनकी अभ्यर्चना करे। मनुष्यों के द्वारा दो प्रकार की बुद्धियों का ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिये जो कि ऋज्वी और वक्रा नाम वाली कही जाया करती हैं। जो वक्रा बुद्धि है उसका ज्ञान प्राप्त करके उसे कभी भी सेवन नहीं करना चाहिए। जब भी वह आकर वक्राबुद्धि उपस्थित हो तो उसका प्रतिबाध कर देना चाहिए। ऐसे ढग से रहना चाहिए कि कोई भी दूसरा इसके छिद्र को न जान सके और दूसरे के छिद्र को स्वयं समझ ले ॥६४, ६५, ६६॥ अपने गुप्त अङ्गों की भाँति ही अपने कर्म को गोपनीय रखना चाहिये तथा अपने आपके छिद्र की रक्षा करे। जो पुरुष विश्वास करने के योग्य नहीं है उस पर कभी विश्वास नहीं करे किन्तु जो विश्वास का पात्र हो उस पर भी अत्यधिक पूर्ण विश्वास नहीं करना चाहिए। विश्वास के घात से जो भय समुत्पन्न होता है वह मूलों का भी छेदन कर दिया करता है। तत्वमूल हेतु से दूसरे को भी विश्वास दिला देना चाहिए ॥६७, ६८॥ बगुला की भाँति अर्थों का चिन्तन करे और सिंह के समान पराक्रम से यत्न करे। वृक (भेड़िया) के तुल्य लुप्त होकर छिप जावे तथा शश के सदृश विनिक्षेप करने वाला होवे। नृप को एक शूकर के समान दृढ़ प्रहार करने वाला होना चाहिये। शिखि के तुल्य चित्रकार तथा कुत्ते के तुल्य दृढ़भक्ति वाला होना चाहिए ॥६९, ७०॥

तथा च मधुराभाषी भवेत्कोकिलवन्नृपः।
काकशङ्की भवेन्नित्यमज्ञातवसतिं वसेत् ॥७१
नापरीक्षितपूर्वञ्च भोजनं शयनं व्रजेत्।

वस्त्रं पुष्पमलङ्कारं यच्चान्यन्मनुजोत्तम ! ॥७२
न गाहेज्जनसम्बाधं न चाज्ञातजलाशयम् ।
अपरीक्षितपूर्वञ्च पुरुषैराप्तकारिभिः ॥७३
नारोहेत्कुञ्जरं व्यालं नादान्तं तुरगं तथा ।
नाविज्ञातां स्त्रियञ्च गच्छेन्नैव देवोत्सवे वसेत् ॥७४
नरेन्द्रलक्ष्म्या धर्मज्ञ त्राता यत्नोभवेन्नृपः ।
सद्भृत्याश्च तथा पुष्टाः सततं प्रतिमानिताः ॥७५
राज्ञा सहायाः कर्तव्याः पृथिवीं जेतुमिच्छता ।
यथार्हञ्चाप्यगुणतो राजा कर्मसु योजयेत् ॥७६
धर्मिष्ठान् धर्मकार्येषु शूरान् संग्रामकर्मसु ।
निपुणानर्थकृत्येषु सर्वत्रैव तथा शुचीन् ॥७७

नृप को कोकिल के समान मधुर आलापन करने वाला होना चाहिए। जो वसति अज्ञात है उसी में निवास करना चाहिए। राजा को चोर के तुल्य शङ्कायुक्त रहना चाहिये। बिना परीक्षा किए हुए कभी भी राजा को भोजन एवं शयन नहीं करना चाहिए। हे मनुजोत्तम ! इसी भाँति से वस्त्र परीक्षा करके ही वस्त्र-पुष्प-अलङ्कार तथा अन्य वस्तु को उपयोग में लाना चाहिए। ७१, ७२। किसी भी जन सम्बाध का गाहन न करे और जो जलाशय अज्ञात है उसमें भी उतर कर अवगाहन राजा को नहीं करना चाहिए। इन सबकी परीक्षा भी आप्तकारी पुरुषों के द्वारा ही पहिले करा लेनी चाहिए। राजा का कर्तव्य है कि जिसका पहिले अच्छी तरह से ज्ञान न किया गया हो ऐसे गज-व्याल तथा अदान्त अश्व पर समारोहण नहीं करे। जिन स्त्रियों के विषय में पूर्ण ज्ञान प्राप्त न कर लिया जावे उनका गमन नृप को नहीं करना चाहिए और देवोत्सव में कभी भी निवास न करे। हे धर्मज्ञ ! क्योंकि नृप नरेन्द्र लक्ष्मी का त्राता होता है उसको यत्नवान् भृत्यों को सर्वदा परिपुष्ट और प्रतिमानित रखना चाहिए। जो राजा इस समस्त भूमि के ऊपर जय

प्राप्त करने की इच्छा रखता है उसको चाहिए कि अपने सहायता करने वाले लोगों को बनावे। राजा को उचित योग्यता रखने वाले प्राणधारियों को ही कर्म्मों में योजित करना चाहिए।।७३-७६।। जो पुरुष परम धर्म्मिष्ठ हों उनको ही धर्म के कार्यों में और जो अतीव शूरवीर हों उन्हें संग्राम के कार्यों मे एवं जो परम निपुण हों उन्हें अर्थ सम्बन्धी कृत्यों में और जो पवित्र हो उनको ही सभी कर्म्मों मे योजित करना चाहिए।।७७।।

स्त्रीषु षण्ढ नियुञ्जीत तीक्ष्णं दारुण दारुणकर्मसु।
धर्मे चार्थेच कामे च नये च रविनन्दन ! ।।७८
राजा यथार्हं कुर्याच्च उपधाभिः परीक्षणाम्।
समतीतोपदान् भृत्यान् कुर्याच्छस्तवनेचरान् ।।७९
तत्पादान्वेषणो यत्तांस्तदध्यक्षांस्तु कारयेत्।
सवमादीनि कर्माणिनृप कार्याणिपार्थिव ।।८०
सर्वथा नेष्यते राज्ञस्तीक्ष्णोपकरणक्रमः।
कर्माणि पापसाध्यानियानि राज्ञो नराधिप ! ।।८१
सन्तस्तानि न कुर्वन्तितस्मात्तानित्यजेन्नृपः।
नेष्यतेपृथिवीशातान्तीक्ष्णोपकरणक्रिया ।।८२
यस्मिन् कर्मणि यस्य स्याद्विशेषेण च कौशलम्।
तस्मिन् कर्मणि त राजा परीक्ष्य विनिवेशयेत् ।।८३
पितृपैतामहान् भृत्यान् सर्वकर्मसु योजयेत्।
विनादायादकृत्येषुपरीक्षां स्वकृतान्तरान् ।।८४

स्त्रियों से सम्बन्धित सभी कार्यों में नपुंसक पुरुषों की नियुक्ति करे तथा जो अत्यन्त दारुण कर्म्म हों उनमें तीक्ष्ण प्रकृति वाले पुरुषों को रखे। हे रविनन्दन ! धर्म—अर्थ—काम और नय मे राजा को उपधाओं के द्वारा भली भाँति परीक्षण करके ही जो जिस कार्य के करने की क्षमता रखता हो उसी की उसमें नियुक्ति करनी चाहिए। समतीतोपद दर्रो

को मन्त्रकर्म में मुख्य बनावे ॥७८, ७९॥ उनके पादान्वेषण करने वाले उनके अध्यक्षों को भी नियोजित करे। इसी प्रकार के सभी कर्मों को नरों के द्वारा पूर्ण करना चाहिए। हे पार्थिव ! राजा का सर्वदा तीक्ष्ण उपकरण का क्रम अभीष्ट नहीं हुआ करता है। हे नराधिप ! राजा के जो कुछ ऐसे कर्म होते हैं जो कि पापों द्वारा साध्य हुआ करते हैं सन्त पुरुष उनको कभी नहीं किया करते हैं अतएव राजा का कर्त्तव्य है कि उनको त्याग देवे। राजाओं को तीक्ष्ण उपकरणों की क्रिया कभी भी अभीष्ट नहीं—हुआ करती है। जिस कर्म में जिस पुरुष की विशेष रूप से कुशलता हो उस कर्म में राजा को उसकी परीक्षा करके ही उस पुरुष का विनिवेश करना उचित होता है। जो ऐसे पुरुष हैं कि उनके और अपने पिता—पितामह के समय से ही चले आने वाले हैं उनको सभी प्रकार के कर्मों में नियुक्त कर देना चाहिए। स्वकृतान्तरों को दायाद कृत्यों में परीक्षा के बिना भी नियुक्त कर देवे ॥८०-८४॥

नियुञ्जीत महाभाग ! तस्य ते हितकारिणः ।
परराजगृहात्प्राप्तान् जनसंग्रहकाम्यया ॥८५

दुष्टान् वाप्यथवादुष्टान् आश्रयीत प्रयत्नतः ।
दुष्टं विज्ञाय विश्वासं न कुर्यात्तस्य भूमिपः ॥८६
वृत्तिं तस्यापि वर्तेत जनसंग्रहकाम्यया ।
राजा देशान्तरप्राप्तं पुरुषं पूजयेद् भृशम् ॥८७
मानयेद् देशसम्प्राप्तो बहुमानेन चिन्तयेत् ।
कामं भृत्यार्जनं राजा नैव कुर्यान्नराधिप ॥८८

न च वा संविभक्तांस्तान् भृत्यान् कुर्यात्प्रपीडनम् ।
कश्चिदपि नरो विविधज्ञ इति निर्दिशेत् ॥८९
भृत्या मनुजशार्दूल ! यदि स्युः सद्गुणान्विताः ।
तेषां पार्थिव चारित्रं राजा विज्ञाननिपुणः ॥९०

हे महाभाग ! जन-संग्रह की कामना से दूसरे राज गृह से प्राप्त हुए उसके उन हितकारियों को नियुक्त करना चाहिए। दुष्ट हों अथवा अदुष्ट हों प्रयत्न से उनको आश्रय देवे। राजा को दुष्ट को जानकर उसका विश्वास नहीं करना चाहिए। जन-संग्रह की कामना से उसकी वृत्ति कर देनी चाहिए। राजा को अन्य देश से प्राप्त हुए पुरुष की अत्यधिक पूजा करनी चाहिए ॥८५, ८६, ८७॥ यह मेरे देश में प्राप्त हुआ है अतएव उसके विषय में बहुमान चिन्तन करना चाहिए। हे नराधिप ! राजा को इच्छापूर्वक भृत्यार्जन नहीं करना चाहिये ॥८८॥ उन भृत्यों को किसी भी प्रकार से सविभक्त नहीं करे। शत्रुओं को अग्नि—विष-सर्प और विस्त्रिंश ऐसा ही चिन्तन करना चाहिए ॥८९॥ हे मनुज शार्दूल ! जो भृत्य शापत हो जावें उनके विषय में एक ओर से राजा को चारों के द्वारा नित्य ही चरित्र का विशेष ज्ञान करते रहना चाहिये ॥९०॥

गुणिनां पूजनं कुर्यात् निर्गुणानाञ्चशासनम् ।
कथिता:सततराजन् ! राजानश्चारचक्षुष: ॥९१
स्वके देशे परे देशे ज्ञानशीलान् विचक्षणान् ।
अनाहार्यान् क्लेशसहान्नियुञ्जीत तथाचरान् ॥९२
जनस्याविदितान् सौम्यान् तथा ज्ञातान् परस्परम् ।
वणिजो मन्त्रकुशलान् सांवत्सरचिकित्सकान् ॥९३
तथा प्रव्राजिताकाराश्चारान् राजा नियोजयेत् ।
नैकस्य राजा श्रद्दध्यात् चारस्यापि सुभाषितम् ॥९४
द्वयो: सम्बन्धमाज्ञाय श्रद्दध्यान्नृपतिस्तदा ।
परस्परस्याविदितौ यदिस्यातां च तावुभौ ॥९५
तस्माद्राजा प्रयत्नेन गूढाश्चारान्नियोजयेत् ।
रागापरागौभृत्यानां जनस्यचगुणागुणान् ॥९६
सर्वं राज्ञां चरायत्तन्तेषु यत्नपरोभवेत् ।

धर्मज्ञा येन मे लोके जनः सर्वोऽनुरज्यते ॥८७
विरज्यते येन तथा विज्ञेयं तन्महीक्षिता ।
विरागजनकं लोके वर्जनीयं विशेषतः ॥८८
तथा च सायम्भुवा हि लक्ष्यो राज्ञा महाभास्करवंशचन्द्र ।
तस्मात्प्रयत्नेन नरेन्द्रमुख्यैः कार्योऽनुरागो भुवि मानवेषु ॥८९

राजा का कर्तव्य है कि जो गुणीजन हों उनका सत्कार एवं पूजन करे तथा जो गुणहीन हों उन पर शासन करे। हे राजन्! राजा लोग निरन्तर चारों के चक्षुओं वाले ही कहे जाया करते हैं ॥ ९१ ॥ अपने राष्ट्र तथा देश में तथा दूसरे देश में ज्ञान के शील वाले—विचक्षण—अज्ञात वेश और बहुत सहचरों को नियुक्त करना चाहिए ॥ ९२ ॥ राजा का कर्तव्य है कि ऐसे गुप्तचरों को नियुक्त करे जिनको साधारणतया मनुष्य नहीं जानते हों—गोचर—परस्पर में ज्ञात—वणिक् मन्त्र में कुशल—सांवत्सर चिकित्सक—प्रव्राजकों (साधु-सन्यासियों) के आकार अर्थात् वेश-भूषा वाले हों। राजा को किसी भी एक गुप्तचर के वचन पर भी श्रद्धा कभी नहीं कर लेनी चाहिए ॥ ९३, ९४॥ जब दो चार उसी एक विषय का समान रूप से प्रतिपादन करें तभी राजा को विश्वास करना चाहिए किन्तु दोनों के सम्बन्ध को पहिले समझ कर ऐसा करे। यदि वे दोनों भी परस्पर में परिचित हों तो उनके सम्बन्ध का ज्ञान लेना बहुत-ही आवश्यक है। इसी कारण से राजा को अत्यन्त गूढ़ चरों को नियुक्त करना उचित है। भृत्यों के राग और अपराग तथा जनों के गुण और दुर्गुण का ज्ञान लेना सब कुछ गुप्तचरों के ही (राजा को का) अधीन होता है अतएव राजाओं को उन के विषय में परम तत्पर होना ही चाहिए। राजा का परम कर्तव्य यही है कि वह यह सब ज्ञात-अज्ञात रहे कि कैसे किन कर्मों के करने से सब लोग में अनुरक्त होते हैं और और क्या कैसा काम है जिससे लोगों को बुरा मालूम होता है और लोगों में विराग उत्पन्न करने वाला कार्य है। उनको पूर्ण रूप से वर्जित

धर देना चाहिए । हे भास्कर वंश के चन्द्र ! राजाओं की लक्ष्मी राग से समुत्पन्न होने वाली हैं—ऐसा ही माना गया है । इस कारण से राज-प्रमुखों को चाहिए कि प्रयत्न पूर्वक भूमण्डल में मानवों में राजाओं को भली भाँति अनुराग करना चाहिए ॥६५-६६॥

६४—राजकृत्य वर्णन (१)

यथा न वर्तितव्य स्यान्मनो राज्ञोऽनुजीविना ।
तथा ते कथयिष्यामि निबोध गदता मम ॥१
राजा यत्तु वदेद्वाक्यं श्रोतव्य तत्प्रयत्नतः ।
आक्षिप्य वचन तस्य न वक्तव्यं तथा वचः ॥२
अनुकूल प्रिय तस्य वक्तव्य जनसंसदि ।
रहोगतस्य वक्तव्यमप्रिय यद्धित भवेत् ॥३
परार्थमस्य वक्तव्यं स्वे चेतसि पार्थिव ।
स्वार्थः सुहृद्भिः वक्तव्यो न स्वय तु कथञ्चन ॥४
कार्य्यातिपातः सर्वेषु रक्षितव्यः प्रयत्नतः ।
नच हिंस्य धन किञ्चित् नियुक्तेनचकर्मणि ॥५
नोपेक्ष्यस्तस्यमानश्च तथा राज्ञ. प्रियो भवेत् ।
राज्ञश्चनतथाकार्य्यं वेषभाषितचेष्टितम् ॥६
राजलीला न कर्तव्या तद्विद्विष्टञ्च वर्जयेत् ।
राज्ञ समोऽधिकोवानकार्य्योवेषोविजानता ॥७

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—राजा के अनुजीवी के द्वारा मन जिस प्रकार से नहीं बरतना चाहिए वही मैं आपको बतलाऊँगा । अब आप मुझसे इसको समझ लो । जिसको कि मैं कह रहा हूँ ॥१॥ राजा जो कुछ भी वचन कहे उसे प्रयत्न पूर्वक श्रवण कर लेना चाहिए । उसके

वचन पर आक्षेप करके फिर कुछ भी अपना वचन नहीं कहना चाहिए। ॥२॥ जन समुदाय में उस नृप का प्रिय और अनुकूल ही वचन बोलना चाहिए। यदि कोई उसके हित को बतलाने वाला भी वचन कहना हो तो उसे चाहे वह अप्रिय भी हो उसी समय में उससे कहना चाहिए जब एकान्त में स्थित हो ॥३॥ हे पार्थिव! इसका परमार्थ चित्त में शम होने पर ही बोलना चाहिए। यदि अपना कोई स्वार्थ हो तो उसे स्वयं कभी भी न कहकर मित्रों के द्वारा ही कहलाना चाहिए ॥४॥ सब में कार्यातिपात प्रयत्न पूर्वक रक्षित रखना चाहिये। कर्म में नियुक्त होने पर कुछ भी धन नहीं मारना चाहिए ॥५॥ उसके मान की कभी भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। इसी प्रकार से मनुष्य राजा का प्रिय हो जाया करता है। राजा के गुप्त धन — भाषित और चेष्टित जैसा भी वैसा ही स्वयं नहीं करना चाहिए ॥६॥ राजा की शोभा नहीं करे और उसका जो भी कुछ विशिष्ट हो वह भी वर्जित कर देना चाहिए। राजा के ही समान अथवा उससे भी अधिक वेष अच्छी तरह से जानते हुए कभी नहीं करना चाहिए ॥७॥

द्यूतादिषु तथैवान्यत् कौशलं तु प्रदर्शयेत्।
प्रदर्श्य कौशलं चास्य राजानं तु विशेषयेत् ॥८
अन्तःपुरजनाध्यक्षं वैरदूतं निराकृतम्।
संसर्गं न व्रजेद्राजन् विना पार्थिवशासनात् ॥९
निःस्नेहतां चावमानं प्रयत्नेन तु गोपयेत्।
यच्च गुह्यं भवेद्राज्ञो न तल्लोके प्रकाशयेत् ॥१०
नृपेण श्रावितं यत्स्याद् वाच्यावाच्यं नृपोत्तम!।
न तत् संश्रावयेल्लोके तथा राज्ञोऽप्रियो भवेत् ॥११
आज्ञाप्यमाने वान्यस्मिन् किङ्करं मामिति ब्रुवन्।
[illegible] ॥१२

सततं म्रियमाणेऽस्मिन् लाघवन्तु व्रजेद् ध्रुवम् ॥१३
राज्ञः प्रियाणि वाक्यानि चात्यर्थं पुनःपुनः ।
महासुशीलस्तु भवेन्नचापि भ्रुकुटीमुखः ॥१४

इसी भाँति द्यूत (खेल) आदि में अन्य कौशल का प्रदर्शन करे और इसका कौशल प्रदर्शित करके राजा की विशेषता का प्रदर्शन करना चाहिए। हे राजन्! राजा के शासन के बिना अन्तःपुर के जनाध्यक्षों के साथ—शत्रु के दूतों के साथ और जो राजा के द्वारा निराकृत हों उनके साथ संसर्ग नहीं करना चाहिए ॥८, ९॥ स्नेह के अभाव को और अपमान को प्रयत्न के साथ गोपन करके रखना चाहिए और जो राजा का कोई भी गोपनीय विषय हो उसका भी कभी प्रकाशन नहीं करे। हे नृपोत्तम! वाच्य तथा अवाच्य नृप के द्वारा जो भी भाषित हो उसे लोक में कभी भी श्रावित न करे। ऐसा करने से राजा का वह उसे अप्रिय हो जाया करता है। किसी भी दूसरे को आज्ञा देने पर भी शीघ्रता से स्वयं उठकर राजा से यह कहना चाहिये कि क्या मैं इस कार्य का सम्पादन करूँ—यही एक ज्ञाता पुरुष का कर्त्तव्य है ॥१०, ११, १२॥ कार्य की अवस्था को विशेष रूप से जानकर जैसा भी वह कार्य होवे उसको निरन्तर करते हुए भी लाघव निश्चय रूप से करे ॥१३। राजा के प्रिय वाक्यों को अत्यधिक और बारम्बार नहीं कहे। राजा के समक्ष में महान् सुशील ही रहना चाहिए तथा कभी भृकुटियों को चढ़ाकर न रखे ॥१४॥

नातिवक्ता न निर्वक्ता न च मात्सरिकस्तथा ।
आत्मसम्भावितश्चैव न भवेत्तु कथञ्चन ॥१५
दुष्कृतानि नरेन्द्रस्य न तु सङ्कीर्तयेत् क्वचित् ।
वस्त्रमस्त्रमलङ्कारं राज्ञा दत्तं तु धारयेत् ॥१६
औदार्येण न तद्देयमन्यस्मै भूतिमिच्छता ।
तत्रैवात्मानमं कार्यं दिवा स्वप्नं न कारयेत् ॥१७
नानिर्दिष्टे तथाद्वारे प्रविशेत्तु कथञ्चन ।

न च पश्येत् राजानमयोग्यासु न भूमिषु ॥१८
राज्ञस्तु दक्षिणे पार्श्वे वामे चोपविशेत्तदा ।
पुरस्ताच्च तथा पश्चादासनन्तु विगर्हितम् ॥१९
जृम्भा निष्ठीवनङ्कासं कोपं पर्यङ्किकाश्रयम् ।
भृकुटिं वान्तमुद्गारन्तत्समीपे विवर्जयेत् ॥२०
स्वयं तत्र न कुर्वीत स्वगुणाख्यापनं बुधः ।
स्वगुणाख्यापने युक्त्या परमेव प्रयोजयेत् ॥२१

राजा के सामने न तो अत्यधिक बोलने वाला ही रहे और न बिल्कुल न बोलने वाला मौन होकर ही रहे। मत्सरता से युक्त भी होकर न रहे तथा किसी भी प्रकार से आत्म सम्भावित भी नहीं रहना चाहिए ॥१४॥ जो कुछ भी राजा के द्वारा किये हुए दुष्कृत हों उनका कभी भी कहीं पर प्रकाशन नहीं करना चाहिए। जो भी कभी दैवात् राजा के द्वारा प्राप्त वस्त्र—अस्त्र और अलङ्कार हों तो उनको धारण करके रहना चाहिए ॥१५॥ भूप के वाहन यानों का उपयोग न उनको कभी दूसरे को नहीं दे डाले और वहीं पर अपना आसन रखना चाहिए तथा दिन में शयन नहीं करे ॥१७॥ जो द्वार अनिर्दिष्ट हो या मार्ग हो उसमें किसी भी प्रकार से प्रवेश नहीं करना चाहिए। अयोग्य भूमियों में समवस्थित राजा को कभी नहीं देखना चाहिए। सर्वदा राजा के दक्षिण तथा वाम भाग में ही उपविष्ट होना चाहिए। राजा के आगे अथवा पीछे अपना आसन रखना गर्हित होता है ॥१८, १९॥ राजा के समीप में जब भी कभी उपस्थित होवे तो मनुष्य को चाहिए कि जंभाई—थूक का फेंकना—खांसना—क्रोध (प्रकट) करना—पर्यङ्क का आश्रय लेकर बैठना—भृकुटि चढ़ाना—वान्त करना—डकार लेना इन सबका वर्जन कर देवे। बुध पुरुष को राजा के समीप में स्वयं अपने गुणों का ख्यापन अपने मुख से [illegible] ॥२०॥ [illegible] ॥२१॥

हृदयं निर्मलं कृत्वा परां भक्तिमुपाश्रितैः ।
अनुजीविगणैर्भाव्यं नित्यं राज्ञामतन्द्रितैः ॥२२
शाठ्यं लौल्यं च पैशुन्यं नास्तिक्यं क्षुद्रता तथा ।
चापल्यञ्च परित्याज्यं नित्यं राज्ञोऽनुजीविभिः ॥२३
श्रुतिविद्यासुशीलैश्च संयोज्यात्मानमात्मना ।
राजसेवान्ततः कुर्याद् भूतयेभूतिवर्द्धनीम् ॥२४
नमस्कार्याः सदा चास्य पुत्रवल्लभमन्त्रिणः ।
स-चिवैश्चास्यविश्वासोनतुकार्यः कथञ्चन ॥२५
अपृष्टश्चास्य न ब्रूयात् कामं ब्रूयात्तथा यदि ।
हितं तथ्यञ्च वचनहितैः सहमुनिद्विजनम् ॥२६
चित्तञ्चैवास्य विज्ञेयं नित्यमेवानुजीविना ।
भर्त्तुराराधनंकुर्याच्चित्तज्ञोमानवः सुखम् ॥२७
रागापरागौ चैवास्य विज्ञेयौ भूतिमिच्छता ।
त्यजेद्विरक्तो नृपती रक्तवृत्तिन्तु कारयेत् ॥२८
विरक्तः कारयेन्नाशं विपक्षाभ्युदयं तथा ।
आशावर्द्धनकं कृत्वा फलनाशं करोति च ॥२९
अकोपोऽपि सकोपाभः प्रसन्नोऽपि च निष्फलः ।
वाक्यं च समदं वक्ति वृत्तिच्छेदं करोति वै ॥३०

जो राजाओं के अनुजीवी गण हों उनको अपना हृदय निर्मल करके पराभक्ति का उपाश्रय करते हुए नित्य ही अतन्द्रित रहना चाहिए। राजा के अनुजीवियों को शठता–लौल्य–पैशून्य–नास्तिकता–क्षुद्रता–चापल्य—इन दोषों का सर्वदा परित्याग कर देना चाहिए ॥२२, २३॥ श्रुति–विद्या और सुशीलता गुणों वाले पुरुषों को आत्मा के द्वारा अपनी आत्मा को संयोजित करके अन्ततः वैभव की प्राप्ति के लिये भूति के वर्धन करने वाली राजा की सेवा करनी चाहिए। राजा के पुत्र–वल्लभ और मन्त्रियों को सदा नमस्कार करना उचित है। सचिवों के द्वारा इसका किसी प्रकार से

भी विश्वास नहीं करना चाहिए ॥२४, २५॥ बिना कुछ पूछे हुए इनसे भाषण करे। यदि इच्छा होवे तो हितों के सहित और सुनिश्चित हित और सत्य वचन बोलना चाहिये ॥ २६॥ जो राजा के अनुजीवी हों उनको नित्य ही इनके चित्त की वृत्ति को जानते रहना चाहिये। चित्त की वृत्ति का ज्ञान रखने वाले मानव को सुख पूर्वक स्वामी का समाराधन करना चाहिए। विभूति के प्राप्त करने की इच्छा वाले पुरुष को इस राजा के राग एवं अपराग को अच्छी तरह से जान लेना अत्यन्त आवश्यक है। इनको जान कर फिर त्याग करे। विरक्त नहीं रहे। नृपति रक्त वृत्ति करावे। विरक्त नाश कराता है और विपक्ष का अभ्युदय कराता है। आशा की वृद्धि करके फल का नाश किया करता है। बिना काम वाला भी कोप से युक्त के समान होता है। प्रसन्न होता हुआ भी निष्फल है तथा मर्म से युक्त वाक्य बोलता है और वृत्ति का छेदन कर देता है। ॥२७-३०॥

प्रदेशवाक्यमुदितो न सम्भावयतेऽन्यथा।
आराधनासु सर्वासु सुप्तारव विचेष्टते ॥३१
कथासु दोषं क्षिपति वाक्यभङ्गं करोति च।
लक्षयेद् विमुखस्तस्य गुणसङ्कीर्तनेऽपि च ॥३२
दृष्टिं क्षिपत्यथान्यत्र क्रियमाणे च कर्मणि।
विरक्तलक्षणं चैतत् शृणु रक्तस्य लक्षणम् ॥३३
दृष्ट्वा प्रसन्नो भवति वाक्यं गृह्णाति चादरात्।
कुशलादिपरिप्रश्नं सम्प्रयच्छति चासनम् ॥३४
विविक्तदर्शने चास्य रहस्येनं न शङ्कते।
जायते हृष्टवदनः श्रुत्वा तस्य तु तत्कथाम् ॥३५
अप्रियाण्यपि वाक्यानि तदुक्तान्यभिनन्दति।
उपायनं गृह्णाति स्तोकमप्यादरात्तथा ॥३६

कथान्तरेषु स्मरति प्रहृष्टवदनस्तथा ।
इति रक्तस्य कर्तव्या सेवा रविकुलोद्वह ! ॥३७
मित्रं न चापत्सु तथा च भृत्या भजन्ति ये निर्गुणमप्रमेयम् ।
विभुं विशेषेण च ते व्रजन्ति सुरेन्द्रधामामरवृन्दजुष्टम् ॥३८

उदित हुआ प्रदेश वाक्य को अन्यथा सम्भावित नहीं होता है और सब आराधनाओं मे मुख को भांति विचेष्टित किया करता है। कथाओं मे दोषों का क्षेप किया करता है और वाक्य का भङ्ग करता है। गुणों के सङ्कीर्तन करने पर भी विमुख के समान दिखलाई देता है। कर्मों के करने पर भी अन्यत्र दृष्टि डालता है— ये ही एक विरक्त पुरुष के लक्षण हुआ करते है। अब जो अनुरक्त होता है उसके लक्षणों का भी श्रवण करलो। देखकर परम प्रसन्न अनुरक्त हुआ करता है और जो भी वाक्य कहा जाता है उसे बड़े ही आदर मे ग्रहण करता है। कुशल-क्षेम के प्रश्न आदि करता है और उपविष्ट होने के लिये आसन दिया करता है विविक्त दर्शन में और इसके एकान्त मे इसकी शङ्का नहीं करता है। उसकी उस कथा को श्रवण करके प्रसन्न मुख हो जाया करता है॥ ३१-३५॥ उसके द्वारा कहे हुए अप्रिय वाक्यों को भी अभिनन्दित किया करता है तथा थोड़े से भी उपायन को बड़े आदर से ग्रहण करता है। अन्य कथाओं मे प्रहृष्ट मुख वाला होकर स्मरण करता है। हे रविकुलोद्वह ! इस प्रकार के अनुरक्त की सेवा करनी चाहिए। आपत्ति के समयों मे मित्र को उस प्रकार से नहीं जिस तरह भृत्यगण है वे अप्रमेय और निर्गुण की सेवा करते है। वे भृत्य देववृन्दों के द्वारा सेवित सुरेन्द्र के धाम को तथा विशेष रूप से विभु को प्राप्त किया करते हैं॥ ३६। ३७। ३८॥

६५—राजकृत्य वर्णन (२)

राजा सहायसंयुक्तः प्रभूतयवसेन्धनम् ।
रम्यमानतसामन्तं मध्यमं देशमावसेत् ॥१
वैश्यशूद्रजनप्रायमनाहार्यं तथा परैः ।
किञ्चिद्ब्राह्मणसंयुक्तं बहुकर्मकरं तथा ॥२
अदेवमातृकं रम्यमनुरक्तजनान्वितम् ।
करैरपीडितञ्चापि बहुपुष्पफलं तथा ॥३
अगम्यं परचक्राणां तद्वासगृहमापदि ।
समदुःखसुखं राज्ञः सततं प्रियमास्थितम् ॥४
सरीसृपविहीनञ्च व्याघ्रतस्करवर्जितम् ।
एवंविधं यथालाभं राजा विषयमावसेत् ॥५
तत्र दुर्गं नृपः कुर्यात् षण्णामेकतमं बुधः ।
धनुर्दुर्गं महीदुर्गं नरदुर्गं तथैव च ॥६
वार्क्षं चैवाम्बुदुर्गं च गिरिदुर्गं च पार्थिव ! ।
सर्वेषामेव दुर्गाणां गिरिदुर्गं प्रशस्यते ॥७

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—राजा को अपने सहायकों से समन्वित होकर बहुत यवस और इन्धन वाले—रम्य एवं आनत सामन्तों वाले मध्यम देश में निवास करना चाहिए ॥ १ ॥ वह स्थल ऐसा होना चाहिए जिसमें राजा का निवास हो वैश्य और शूद्रजन बहुतायत से रहते हों एवं दूसरों के द्वारा भी अनाहार्य न हो सके। ब्राह्मणों का निवास स्वल्प हो तथा बहुत कर्मों के करने वाला होवे ॥ २ ॥ अदेव मातृक—रम्य—अनुरक्त जनों से युक्त—करों से अपीड़ित तथा बहुत पुष्प एवं फलों वाला—पर (शत्रु) के चक्रों को अगम्य ऐसा आपत्ति काल में वास गृह होना चाहिए। सुख और दुःख में सम—निरन्तर राजा का प्रिय—सरीसृपों से विहीन—व्याघ्र और तस्करों से

रहित इस प्रकार का यथा लाभ देश में राजा को अपना निवास करना चाहिये ॥ ३।४।५ ॥ बुध राजा को वहाँ पर छै प्रकार के दुर्गों में से एक तरह के दुर्ग की रचना करनी चाहिए। छै प्रकार के दुर्गों के नाम ये हैं—धनुर्दुर्ग—महीदुर्ग—नर दुर्ग—वार्क्ष दुर्ग—अम्बुदुर्ग—और हे पार्थिव! छटवाँ गिरि दुर्ग है। इन समस्त दुर्गों में गिरि दुर्ग सबसे प्रशस्त माना जाता है ॥ ६।७ ॥

दुर्गं च परिखोपेतं वप्राट्टालकसंयुतम् ।
शतघ्नीयन्त्रमुख्यैश्च शतशश्च समावृतम् ॥८
गोपुरं सकपाटञ्च तत्र स्यात्सुमनोहरम् ।
सपताकङ्गजारूढोयेन राजा विशेत्पुरम् ॥६
चतस्रश्च तथात्र कार्यास्त्वायतवीथयः ।
एकस्मिंस्तत्र वीथ्यग्रे देववेश्म भवेद्दृढम् ॥१०
वीथ्यग्रे च द्वितीये च र जिवेश्म विधीयते ।
धर्माधिकरणं कार्यं वीथ्यग्रे च तृतीयके ॥११
चतुर्थेत्वथ वीथ्यग्रे गोपुरञ्च विधीयते ।
आयतञ्चतुरस्रं वा वृत्तं वा कारयेत् पुरम् ॥१२
मुक्तिहीनं त्रिकोणञ्चयवमध्यं तथैव च ।
आयतञ्चतुरस्रं वा वृत्तं वा कारयेत्पुरम् ॥१३
अर्द्धचन्द्रं प्रशसन्ति नदीतीरेषु तद्वसन् ।
अन्यत्तत्र न कर्तव्यं प्रयत्नेन विजानता ॥१४

राजा का दुर्ग वप्र और अट्टालक से संयुत तथा परिखा (खाई) से उपेत—शतघ्नी (तोप) यन्त्रों में जो प्रमुख यन्त्र हैं उन सैकड़ों यन्त्रों से समावृत दुर्ग होना चाहिए। वहाँ पर सुमनोहर कपाटों से युक्त गोपुर होवे जिसमें पताकाएँ फहरा रही हों। वह ऐसा होना चाहिए जिसके द्वारा गज पर समारूढ़ होकर राजा पुर में प्रवेश करे ॥ ८।६ ॥ उसमें चार लम्बी चौड़ी वीथियाँ निर्मित की हुई होवे और वहाँ पर एक वीथी

थे अवकाश में परम सुन्दर देव का आलय होना चाहिए। दूसरे कोष्ठ के अवकाश में राजा के रहने का वेश्म गृह निर्मित किया जाना चाहिए। तीसरे कोष्ठ के अवकाश में धर्म का अधिकरण करना चाहिये और चतुर्थ कोष्ठ के अवकाश में गोपुर निर्मित करे। इस प्रकार से उस पुर को चौकोर— आयत और वृत्त बनाना चाहिए। मुक्तिहीन—त्रिकोण—यवमध्य अथवा चौकोर और आयत अर्द्धवृत्त पुर को रचना कराये। नदी के तीर पर निवास करते हुए अर्द्ध चन्द्र की प्रशंसा किया करते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य प्रयत्नपूर्वक विशेष ज्ञाता को नहीं करना चाहिए। ॥८-१४॥

राज्ञः क्रीडागृहं कार्यं दक्षिणे राजवेश्मनः।
तस्यापि दक्षिणे भागे गजस्थानं विधीयते ॥१५
गजानां प्राङ्मुखी शाला कर्तव्या वाप्युदङ्मुखी।
आग्नेये च तथा भागे आयुधागारमिष्यते ॥१६
महानसश्च धर्मज्ञ कर्मशालास्तथापराः।
गृहं पुरोधसः कार्यं वामतो राजवेश्मनः ॥१७
मन्त्रिवेदविदां चैव चिकित्साकर्तुरेव च।
तत्रैव च तथा भागे कोष्ठागारं विधीयते ॥१८
गवां स्थानं तथैवात्र तुरगाणां तथैव च।
उत्तराभिमुखा श्रेणी तुरगाणां विधीयते ॥१९
दक्षिणाभिमुखा वाथ परिशिष्टास्तु गर्हिताः।
तुरगा दीपकाधार्याः प्रदीपैः सार्वरात्रिकैः ॥२०
कुक्कुटान् वानरांश्चैव मर्कटांश्च विशेषतः।
धारयेदश्वशालासु सवत्सां धेनुमेव च ॥२१

राजा के निवास गृह के दक्षिण भाग में राजा का क्रीड़ागृह बनाना चाहिए। उसके भी दक्षिण भाग में हाथी के रहने का स्थान निर्मित कराये ॥१५॥ हस्तियों का मुख पूर्व अथवा उत्तर दिशा की

और करवाना चाहिए। आग्नेय भाग में आयुधों का आगार बनाना अभीष्ट होता है। हे धर्मज्ञ ! महानस (रसोई घर) दूसरी कर्म-शालाएं और पुरोहित का गृह ये सब राजा के वेश्म के वाम भाग में निर्मित करावे। वहीं पर उसी भाग में मन्त्री—वेदवेत्ता और चिकित्सा करने वाले का गृह तथा कोष्ठागार भी निर्मित कराने चाहिये ॥१६। १७ । १८॥ वहीं पर गौओं का स्थान—तुरङ्गों का स्थान करावे। तुरङ्गों की जो श्रेणी है वह उत्तर की ओर मुख वाली होनी चाहिये। अथवा दक्षिणाभिमुख हो। परिशिष्ट सभी गर्हित कही गयी हैं। वे तुरग सम्पूर्ण रात्रि में जलने वाले प्रदीपों के साथ रखने चाहिए। उन अश्वशालाओं में कुक्कुटों—वानरों—मर्कटों और विशेष रूप से वत्स के सहित धेनु को भी रखना चाहिए ॥ १६, २०, २१ ॥

अजाश्च धार्या यत्नेन तुरगाणां हितैषिणा।
गोगजाश्वादिशालासु तत्पुरोषस्य निर्गमः ॥२२
अस्तंगते न कर्तव्यो देवदेवे दिवाकरे।
तत्र तत्र यथास्थानं राजाविज्ञाय सारथीन् ॥२३
दद्यादावसथस्थानं सर्वेषामनुपूर्वशः।
योधानां शिल्पिनाञ्चैव सर्वेषामविशेषतः ॥२४
दद्यादावसथान् दुर्गे कालमन्त्रविदो शुभान्।
गोवैद्यानश्ववैद्यांश्च गजवैद्यांस्तथैव च ॥२५
आहरेत भृशं राजा दुर्गे हि प्रबला रुजः।
कुशीलवानां विप्राणां दुर्गे स्थानं विधीयते ॥२६
न बहूनामतो दुर्गे विना कार्यं तथा भवेत्।
दुर्गे च तत्र कर्तव्या नानाप्रहरणान्विताः ॥२७
सहस्रघातिनो राजस्तैस्तु रक्षा विधीयते।
दुर्गे द्वाराणि गुप्तानि कार्याण्यपि च भूभुजा ॥२८

अश्वों के हित चाहने वाले को यत्नपूर्वक अजाओं को भी वहाँ

सर्वेषां शिल्पिभाण्डानां संचयश्चात्र चेष्यते ।
वादित्राणाञ्च सर्वेषामोषधीनान्तथैव च ॥३४
यवसानां प्रभूतानामिन्धनस्य च सञ्चयः ।
गुडस्य सर्वतैलानां गोरसानान्तथैव च ॥३५

यहाँ पर दुर्ग मे सभी आयुधों का संग्रह रखना परम प्रशस्त होता है। पार्थिव को धनुषो का—दीपणीयो का और तोमरों का सञ्चय रखना आवश्यक है। शरो का—कवचो का—खङ्गों का—लगु—गुड़ान-हुड़ और परिघों का भी संग्रह करे। बहुत तादाद में पाषाणो का—मुद्‌गरों का—त्रिशूलो का—पट्टिशो का और हे पार्थिव कुठारो का भी संग्रह करना चाहिए ॥ २६, ३०, ३१ ॥ नरोत्तम को प्रास—मसूल—शक्ति—परश्वध—चक्र—चर्म के सहित वर्मों का भी वहाँ दुर्ग मे संग्रह होना उचित होता है। कुद्दाल—क्षुर—वेत्र—पेटक—तुष-दात्र और अङ्गारो का भी सञ्चय करे। सभी प्रकार के शिल्पियों के भाण्डो का सञ्चय भी दुर्ग मे अभीष्ट होता है। सब तरह के वादित्र और सभी ओषधियाँ तथा प्रभूत यवस और ईंधन का संचय वहाँ रक्खें। गुड, सभी तरह के तैल और गोरसो का संग्रह दुर्ग मे करना आवश्यक है॥ ३२।३३ ३४।३५ ॥

वसानामथ मज्जानां स्नायूनामस्थिभि: सह ।
गोचर्मपटहानाञ्च यवगोधूमयोरपि ॥३६
तथैवाश्मटानाञ्च यवगोधूमयोरपि ।
रत्नानां सर्ववस्त्राणां लोहानामप्यशेषतः ॥३७
कलायमुद्‌गमाषाणाञ्चणकानान्तिलैः सह ।
तथा च सर्वशस्यानां पांसुगोमययोरपि ॥३८
शणमर्जरसं भूर्जं जतुलाक्षा च टङ्कणम् ।
राजा सचिनुयाद्दुर्गे यच्चान्यदपि किंचन ॥३९
कुम्भाश्चाशीविषैः कार्या व्यालसिंहादयस्तथा ।

मृगाश्च पक्षिणश्चैव रक्ष्यास्ते च परस्परम् ॥४०

स्थानानि च विरुद्धानां सुगुप्तानि पृथक् पृथक्।

उक्तस्थानानि महाभाग ! यत्नेन पृथिवीक्षिता ॥४१

उक्तानि चाप्यनुक्तानि राजद्रव्याण्यशेषतः।

सुगुप्तानि पुरे कुर्याज्जनानां हितकाम्यया ॥४२

राजा का परम कर्त्तव्य है कि वह धना—मज्जा—अस्थियों के साथ स्नायु—गोधम—पटह—सभी प्रकार के धान्य—अम्बर—यव—गोधूम (गेहूँ)—रत्न—सभी वस्त्र—सम्पूर्ण प्रकार के लोह—कलाय—मुद्ग—माष (उड़द)—तिल—चना—सभी तरह के रस—धातु—गोमय—मल-जत्वर—सूत्र-मधु-लाक्षा—टङ्कण (सुहागा) और अन्य भी जो कुछ हों इन सबका संग्रह दुर्ग में राजा को करना ही चाहिए। आशी-विषों के द्वारा दुर्ग्राह्य और बड़े बड़े व्याल—सिंह आदि मृग और पक्षिगण इन सबकी परस्पर में रक्षा करनी चाहिये ॥३६।३७।३८।३९।४०॥ आपस में जो भी जीव विरोध रखने वाले हैं उनका अलग से स्थान निश्चित करावे और अच्छी तरह उन्हें गुप्त रखें। हे महाभाग! राजा को यत्न के साथ यह सभी गुप्त रखना चाहिए। जो यहाँ लिखे गये हैं और जो नहीं भी कहे गये हैं उन सम्पूर्ण राजद्रव्यों को पुर में सुगुप्त जनता के हित की कामना से रखना चाहिए ॥४१।४२॥

जीवकर्षभकाकोल्यामलकी पारुषकः।

शालपर्णी पृश्निपर्णी मुद्गपर्णी तथैव च ॥४३

माषपर्णी च सारिवे द्वे बलात्रयम्।

वीरा श्वसन्ती वृष्या च बृहती कण्टकारिका ॥४४

शृङ्गी शृङ्गाटकी द्रोणी वर्षाभूर्दर्भरेणुका।

मधुपर्णी विदार्यौ द्वे महाक्षीरा महातपा ॥४५

धन्वनः सहदेवाह्वा कटुकैरण्डकं विसः।

पर्णी शताह्वा मृद्वीका फल्गु खर्जूरयष्टिका ॥४६

शुक्रातिशुक्काश्मर्यं छत्रातिच्छत्रवीरणाः ।
इक्षु रिक्षु विकाराश्च फाणिताद्याश्च सत्तम ॥४७
सिंही च सहदेवी च विश्वेदेवाश्वरोधकम् ।
मधुकं पुष्पहंसाख्या शतपुष्पा मधूलिका ॥४८
शतावरीमधूकेच पिप्पलन्तालमेव च ।
आत्मगुप्ता कट्फलाख्यादार्विका राजशीर्षकं ॥४९

एक राजा का परम कर्त्तव्य होता है कि सभी प्रकार की वन-स्पतियों का सञ्चय अपने पुर में न करे। उनमें कुछ नामों का उल्लेख यहाँ पर किया जाता है—जीव कर्षभ—काकोल–आमलकी–आटरूषक—शालपर्णी–पृष्ठ पर्णी–मुद्गपर्णी–माषपर्णी–मदद—सारिवा दोनों प्रकार की–तीनों बलाऐं–बाग–श्वमन्ती–वत्या–बृहती–कण्ट कारिका–शृङ्गी–शृङ्गारकी–द्रोणी—वर्षाभश्चरेणुका–मधुपर्णी–दोनों विदारी—महाक्षीरा–महातपा—धन्वन—सहदेवा नाम धारिणी–कटुक–ऐरण्डक–विष–पर्णी–शतानाम वाली–मृद्वीका–फल्गु–मर्जारयाष्टका–शुक्रातिशुक्र का–अश्मरी—छत्राति छत्रका—वीरणा–इक्षु—इक्षु विकार—फाणिता आदि—सिंह—सहदेवी—विश्वेदेवा—अश्वरोधक—मधुक—पुष्पहंस नाम वाली—शत-पुष्पा—मधूलिका—शतावरी—मधूक—पिप्पल—ताल—आत्म गुप्ता—कट्फला—दार्विका–राजशीर्षकी ॥ ४२–४९ ॥

राजसर्पपधान्याकमृष्यप्रोक्ता तथोत्कटा ।
कालशाक ५द्मबीज गोवल्ली मधुवल्लिका ॥५०
शीतपाकी कुवेराक्षी काकजिह्वोरुपुष्पिका ।
पर्वतपुत्रमो चोमो गुञ्जातकपुनर्नवे ॥५१
कसेरु कारकाश्मीरी वल्या शालूक केसरम् ।
तुषधान्यानि सर्वाणि शमीधान्यानि चैव हि ॥५२
क्षीरं क्षौद्रन्तथा तक्रं तैलं मज्जा वसा घृतम् ।
नीपश्चारिष्टकाश्चाङ्कोलामसामवाणकम् ॥५३

एवमादीनि चान्यानि विज्ञेयो मधुरो गणः ।
राजा संचिनुयात्सर्वं पुरे निरवशेषतः ॥५४
दाडिमाम्रातकौ चैव तिन्तिडीकाम्लवेतसम् ।
भव्यकर्कन्धुलकुचकरमर्दकरूषकम् ॥५५
बीजपूरककण्डूरे मालतीराजबन्धुकम् ।
कोलकद्वयपर्णानि द्वयोराम्लातयोरपि ॥५६

राम तर्पण — धान्याक — पृष्पशेण — अश्वटा — वास शाक — पद्म बीज — गोरन्धी — मधुवल्लिका — शीतपाकी — कुबेराक्षी — शाक बिल्ला- उद पुष्पिका — दर्भ — खजूर — गुञ्जा लक — पुनर्नवा दोनों — कसेरू — वाद कारमीरी — बन्दा — शालूक — केसर — जव गुड़ धान्य — क्षीर — क्षौद्र — तक्र — तैल — वसा — मज्जा — घृत — नील — अरिष्टक — क्षीर पाताल — गोक्षबालक — इस प्रकार के धान्य मधुरगण — इन सभी का पूर्ण रूप से संग्रह राजा को करना आवश्यक है ॥ ५०, ५१, ५२, ५३, ५४ ॥ दाडिम — आम्रातक — तिन्तिडीक — आम्लवेतस — भव्य कर्कन्धु — लकुच-करमर्द — करूषक — बीजपूरक — कण्डूर — मालती — राजबन्धुक — दोनों कोलक पर्ण — दोनों आम्रातक ॥ ५५, ५६ ॥

पारावतं नागरं च प्राचीनामलकमेव च ।
कपित्थामलकं चुक्रफलं दन्तशठस्य च ॥५७
जाम्बवं नवनीतं च सौवीरकतुषोदकम् ।
सुरासवं च मद्यानि मण्डतक्रदधीनि च ॥५८
शुक्तानि चैव सर्वाणि ज्ञेयमम्लगणं द्विज ।
एवमादीनि चान्यानि राजा संचिनुयात्पुरे ॥५९
सैन्धवोद्भिदपाठेयपाक्यसामुद्ररोमकम् ।
कुप्यसौवर्चलबिडं बालकेयं यवाह्वकम् ॥६०
और्वं क्षारं कालभस्म विज्ञेयो लवणो गणः ।
एवमादीनि चान्यानि राजा संचिनुयात्पुरे ॥६१

पिप्पली पिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरम् ।
कुवेरकं मरिचकं शिग्रु भल्लातसर्षपाः ॥६२
कुष्ठाजमोदाकिणिहीहिङ्गुमूलकधान्यकम् ।
कारवीकुञ्चिका याजया सुमुखा कालमालिका ॥६३

पारावत–नागरक–प्राचीनोलक—कपित्थ—आमलक—चुक्रफल–दन्तशठ—जाम्बव—नवनीत—सौवीरक—तुषोदक–सुरा–आसव—मद्य–मण्ड—तक्र—दधि—सब शुक्ल पदार्थ—हे द्विज! और अम्लगण इस प्रकार के सभी पदार्थों का सञ्चय राजा को अपने पुर में करना चाहिए। सैन्धोद्भिद—पाठेय—पाक्य—सामुद्र—रोमक—कुप्य—सौवर्चल–विड़–वालकेय—यवाह्वक—और्व—क्षार—कालभस्म लवण गण- इस भाँति के पदार्थों का पुर में सग्रह राजा को करना आवश्यक है। पिप्पली—पिप्पली मूल—चव्य—चित्रक—नागर–कुवेरक–मरिच–शिग्रु—भल्लातक–सर्षप—कुष्ठ—अजमोद—आकिणि—हिङ्गु—मूलक—धान्यक–कारवी-कुञ्चिका—याजया—सुमुखा—काल मालिका—॥५७-६ ॥

फणिज्जकोथलशुन भूस्तृणां सुरमन्तथा ।
कायस्था च वयस्था च हरिताल मन:शिला ॥६४
अमृता च रुदन्ती च रोहिष कुङ्कुमन्तथा ।
जया एरण्डकाण्डीरं मल्लकीहञ्जिका तथा ॥६५
सर्वपित्तानि मूत्राणि प्रायोहरितकानि च ।
फलानि चैव हि तथा सूक्ष्मैला हिङ्गु पत्रिका ॥६६
एवमादीनि चान्यानि गणः कटुकमानतः ।
राजा सञ्चिनुयाद्दुर्गे प्रयत्नेन नरोत्तम ! ॥६७
मुस्तञ्चन्दनह्रीबेरकृतमालकदारवः ।
शरद्रानलदोशीरनक्तमालकदम्बकम् ॥ ६८
दूर्वा पटोलकटुका रोधत्वक् पत्रकं वचा ।
किरातत्तिक्तभूतुम्बी विषा चातिविषा तथा ॥६९

तालीसपत्रनगरं [illegible] ।
[illegible] तथा चोर [illegible] ॥७०

[illegible], कांच, मधुर, भूतृण, गुग्गल, [illegible], वत्सक, हरि-ताल, मैनसिल, अमृता, [illegible], रोहिष, कुंकुम, जया, ऐरण्ड, काश्मीर, [illegible], हरिद्रा, शमी, शिला, [illegible], [illegible], पद्म, [illegible], [illegible] इस प्रकार [illegible] बहुत [illegible] । हे नृपोत्तम ! राजा को अपने दुर्ग में सबका संग्रह करना चाहिए । [illegible], चन्दन, [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], उशीर, [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] ॥६४-७०॥

[illegible] ।
[illegible] ॥७१
[illegible] ।
[illegible] ॥७२
[illegible] ।
[illegible] ॥७३
[illegible] ।
[illegible] ॥७४
[illegible] ।
[illegible] ॥७५
[illegible] ।
[illegible] ॥७६
[illegible] ।
[illegible] ॥७७

पतङ्गी, परिपेलव, दुस्पर्शा, गुरुणी, रामा, श्यामाक, गन्धनाकुली, रूप-पर्णी, व्याघ्रनख, मञ्जिष्ठा, चतुरंगुला, रम्भा, अकुरास्फोता, ताला स्फोता, हरेणुका, वेतग्र, वेतस, तुम्बी, विषाणी, लोध्रपुष्पिणी, मालती, करकृष्णा, वृश्चिकका, जीविता, पर्णिका, गुडूची, सहस्र, तिक्त संज्ञायाला, इसतरह के सभी पदार्थों का सञ्चय राजा को अपने पुरमें करना चाहिए। अभया, आमलक, विभीतक, प्रियगु, धातकी, पुष्प मोच, अर्जुनासन, अतन्ना स्त्री, तुवरिका स्योना, कट्फल, भूर्जपत्र, शिलापत्र, पाटला पत्र, लोमक, समङ्गा, त्रिवृतामूल कार्पास, गैरिक, अञ्जन ॥ ७१-७७ ॥

विद्रुमं स मधूच्छिष्टकुम्भिकाकुमुदोत्पलम् ।
न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थाकिंशुका. शिंशुपा शमी ॥७८
प्रियालपीलुकासारिशिरीषाः पद्मकस्तथा ।
विल्वोऽग्निमन्थः प्लक्षश्च श्यामाकश्च वको घनम् ॥७९
राजादनं करीरञ्च धान्यकं प्रियकस्तथा ।
कङ्कोलाशोकवदराः कदम्बखदिरद्वयम् ॥८०
एषा पत्राणि साराणिमूलानि कुसुमानिच ।
एवमादीनिचान्या निकषायास्योमतोरसः ॥८१
प्रयत्नेन नृपश्रेष्ठ ! राजा सञ्चिनुयात्पुरे ।
कीटाश्च मारणे याश्या व्यङ्गतायां तथैवच ॥८२
वातधूमाश्च मार्गाणा दूषणानि तथैव च ।
धार्याणि पार्थिवैर्दुर्गे तानि वक्ष्यामि पार्थिव ॥८३
गिपाणा धारण कार्यं प्रयत्नेन महीभुजा ।
विचित्राश्चागदा धार्या विषस्य शमनास्तथा ॥८४

विद्रुम—मधूच्छिष्ट—कुम्भिका—कुमुदोत्पल—न्यग्रोध—उदुम्बर—अश्वत्थ—किंशुक—शिंशुप—शमी—प्रियाल—पीलुक—सारि—शिरीष—पद्मक—विल्व—अग्निमन्थ—प्लक्ष—श्यामाक—वक—घन—राजादन—

करीर-धान्यक-प्रियक-कंकोल—अशोक—वदर-कदम्ब--खदिर—इनके पत्र-सार-मूल और कुसुम इस प्रकार के तथा अन्य आदि कषाय नाम वाला रस माना गया है। हे नृपो मे परमश्रेष्ठ! राजा को चाहिए इन सबका प्रयत्नपूर्वक अपने पुर मे सञ्चय करे। व्यङ्गता मे मारण में योग्य कीट—मार्गों के वातधूम तथा दूषण राजाओ को दुर्ग मे रखने चाहिए हे पार्थिव! उनको मैं बतलाऊँगा। महौषध को प्रयत्न पूर्वक विषो को धारण करना चाहिए। विचित्र अङ्गद तथा विष के शमन करने वाले भी रखने चाहिए ॥७८—८४॥

रक्षोभूतपिशाचघ्ना पापघ्नाः पुष्टिवर्धनाः।
कलाविदश्च पुरुषाः पुरे धार्याः प्रयत्नतः ॥८५
भीतान् प्रमत्तान् कुपितांस्तथैव च विमानितान्।
कुभृत्यान् पापशीलांश्च न राजा वासयेत्पुरे ॥८६
यन्त्रायुधाट्टालचयोपपन्नं समग्रधान्यौषधिसम्प्रयुक्तम्।
वणिग्जनैश्च वृतमावसेत दुर्गं सुगुप्तं नृपतिः सदैव ॥८७

राजा के द्वारा अपने पुर मे राक्षस, भूत और पिशाचो के हनन करने वाले-पापो का विनाश करने वाले—पुष्टि के बढ़ाने वाले कलाओ के वेत्ता पुरुष प्रयत्न पूर्वक रखने चाहिए। ॥८५॥ जो पुरुष भीत—प्रमत्त—कुपित—विमानित—पापशील और कुभृत्यो को अपने पुर में कभी नही बसाना चाहिए ॥८६॥ अनेक आयुध—अट्टालिकाओ के समूह से उपपन्न तथा सम्पूर्ण धान्य एवं औषधियो से संयुत-वणिग्जनो के द्वारा समाकीर्ण और भलीभाँति रक्षित दुर्ग मे ही राजा को सदैव निवास करना चाहिए ॥८७॥

९६—राजधर्म वर्णन (१)

रक्षोघ्नानि विषघ्नानि यानि धार्याणि भूभुजा ।
अगदानि समाचक्ष्व तानि धर्मभृताम्वर ! ॥१
विल्वाटकी यवक्षारं पाटलावाह्लिकोषणाः ।
श्रीपर्णी शल्लकीयुक्तोनिक्वाथः प्रोक्षणपरम् ॥२
सविषं प्रोक्षित तेन सद्यो भवति निर्विषम् ।
यवसन्धवपानीयवस्त्रशय्यासनोदकम् ॥३
कवचाभरणं छत्रं बालव्यजनवेश्मनाम् ।
शेलुः पाटलातिविषा शिग्रुमूर्वा पुनर्नवा ॥४
समङ्गावृषमूलञ्च कपित्थवृषशोणितम् ।
महादन्तशठन्तद्वत् प्रोक्षणं विषनाशनम् ॥५
लाक्षाप्रियंगुमञ्जिष्ठा सममेला हरेणुका
यष्ट्याह्वा मधुरा चैव बभ्रुपित्तेनकल्पिताः ॥६
निखनेद्गोविषाणस्थं सप्तरात्रं महीतले ।
ततः कृत्वा मणिं हेम्ना बद्धं हस्तेन धारयेत् ॥७

महर्षि मनु ने कहा—हे धर्मधारियों में परमश्रेष्ठ ! राक्षसों के हनन करने और विषों का नाश करने वाले भी राजा को धारण करने अर्थात् रखने चाहिए उन अगदों को आप बतलाइये ॥१॥ श्रीमत्स्य भगवान् ने कहा—विल्वाटकी, यवक्षार पाटला, वाह्लिक कोषणा, श्रीपर्णी और शल्लकी इनका क्वाथ सर्वश्रेष्ठ प्रोक्षण होता है । यदि कोई भी विषयुक्त हो तो उससे प्रोक्षित होकर वह तुरन्त ही निर्विष हो जाया करता है । यव, सैन्धव, पानी, वस्त्र, शय्या, आसन, उदक, कवचाभरण, बाल व्यंजन, वेश्म, इनके विष का नाश शेलु, पाटल, अतिविषा, शिग्रु, मूर्वा, पुनर्नवा, समङ्गा, वृषमूल, कपित्थ, वृषशोणित और महादन्तशठ इन सबके उसी भाँति प्रोक्षण करने से हो जाया करता है ॥ २ । ३ । ४

॥ ५ ॥ लाक्षा, प्रियङ्गु, मञ्जिष्ठा, ये सब समान भाग और एला (इला-यची), हरेणुका, यष्टि नामवाली, मधुरा बभ्रु पित्त से कल्कित कर रखे। इसके अनन्तर मणि को हेम से बद्ध करके हाथ में धारण करना चाहिये ॥ ६. ७॥

संसृष्टं मदिरायुक्तेन सद्यो भवति निर्विषम् ।
मनोह्वया शमीपत्रं तुम्बिका श्वेतसर्षपाः ॥८
कपित्थकुष्ठमञ्जिष्ठा पित्तेन श्लक्ष्णपेषिताः ।
शुनो गोः कपिलायाश्च सौम्याक्षिप्तोऽगदः ॥९
विषजित् परमं कार्यं मणिरत्नञ्च पूर्ववत् ।
मूषिका जतुका चापि हस्ते बद्धा विषापहा ॥१०
हरेणुमांसी मञ्जिष्ठा रजनी मधुका मधु ।
अक्षत्वक् सुरसं लाक्षा श्वपित्तं पूर्ववद्भुवि ॥११
वादित्राणि पताकाश्च लिप्तैरेतैः प्रलेपिताः ।
श्रुत्वा दृष्ट्वा समाघ्राय सद्यो भवति निर्विषः ॥१२
त्र्यूषणं पञ्चलवणं मञ्जिष्ठा रजनीद्वयम् ।
सूक्ष्मैला त्रिवृतापत्रं विडङ्गानीन्द्रवारुणी ॥१३
मधुकं वेतसं क्षौद्रं विषाणे च निधापयेत् ।
तस्मादुष्णाम्बुना मात्रं प्रागुक्तां योजयेत्ततः । १४
शुक्लं सर्जरसोपेतसर्षपा एलवालुकं ॥१५
सुवेगा तस्करसुरी कुसुमैरर्जुनस्य तु ।
धूपो वासगृहे हन्ति विषं स्थावरजङ्गमम् ॥१६

इससे संसृष्ट मदिरा तुरन्त ही निर्विष हो जाया करता है। मनोह्वया, शमीपत्र, तुम्बिका, श्वेत सर्षप, कपित्थ, कुष्ठ, मञ्जिष्ठा, पित्त के द्वारा श्लक्ष्ण पेषित किये हुए हे सौम्य! कुत्ता, गौ और कपिला के लिये अगद यह दूसरा अगद होता है ॥ ८। ९॥ पूर्व की भाँति मणिरत्न परम विषजित करना चाहिए। मूषिका और जतुका भी

हाथ में बांधने पर विष के अपहरण करने वाली होती हैं ॥ १० ॥ हरेणु मांसी, मञ्जिष्ठा, रजनी (हल्दी), मधुका, मधु, अक्षत्वक्, सुरस, लाक्षा (लाख)—इनको पूर्व की ही भाँति श्वान को पित्त लेकर पेषण करे करे और इनसे वादित्रों और पताकाओं पर प्रलेप करे तो श्रवण करके—देख करके और सूंघ करके तुरन्त ही विष से रहित हो जाया करता है ॥ ११।१२ ॥ त्र्यूषण—पाँचो लवण—मजीठ—दोनों प्रकार की हल्दी—छोटी इलायची—त्रिवृतपत्र—विडङ्ग—इन्द्र वारुणी—मधुक—वेतस और क्षौद्र—इन सबको विषाण में निधापित करो केवल उष्ण जल से पहिले बताये हुए को योजित करना चाहिए। शुक्लमज्जं रस से युक्त—सर्षप—और एलव लुकों से समन्वित—सुवेगा—तस्कर—सुर तथा अर्जुन वृक्ष के पुष्प इनके द्वारा निर्मित धूप निवास गृह में देवें तो स्थावर और जङ्गम दोनों के विष का हनन हो जाया करता है ॥१३-१६॥

न तत्र कीटा न विषन्ददु॑रा न सरीसृपाः ।
न कृत्या कर्मणाञ्चापि धूपोऽयं यत्र दह्यते ॥१७
कल्पितैश्चन्दनक्षीरपलाशद्रुमवल्कलैः ।
मूर्वैलावालुसरसानाकुलीतण्डलीयकैः ॥१८
क्वाथः सर्वोदकार्येषु काकमाचीयुता हित. ।
रोचनापत्रनेपालीकुङ्कुमैस्तिलकान् वहन् ॥१९
विषैर्न बाध्यते स्याच्च नरनारीनृपप्रियः ।
चूर्णं हरिद्रामञ्जिष्ठाकिणिहीकणनिम्बजैः ॥२०
दिग्ध निर्विषतामेति गात्रं सर्वविषार्दितम् ।
शिरीषस्य फलं पत्रं पुष्पंत्वङ्मूलमेव च ॥२१
गोमूत्रघृष्टो ह्यगदः सर्वकर्मकरः स्मृतः ।
एकवीर ! महौषध्यः शृणु चातः परं नृपः ! ॥२२

जिस स्थान में इस धूप को जलाया जाता है वहाँ पर कोई भी कीट नहीं रहते हैं। न कोई विष का प्रभाव ही रहता है और दद्दु॑र

तथा सरीसृप भी नहीं रहा करते हैं। वहाँ पर कृत्या के भी कर्म्मों की स्थिति नहीं होती है ॥ १७ ॥ चन्दन, क्षीर, पलाश, द्रुम वल्कल, मूर्वा, एला, वालु सरसा, नाकुली और तण्डुलीय इससे कल्पित क्वाथ जो कि काञ्जिकी से युक्त हो तो वह सब उदक कार्यों में हितप्रद होता है। रोचना पत्र, नेपाली और कुंकुम से युक्त तिलों को वहन करने वाला नर-नारी, नृप प्रिय कभी भी विषों से बाधित नहीं हुआ करता है। हरिद्रा, मजीठ, किण ही कण और निम्बज इनसे दिग्ध गात्र जो सब विषों से अर्दित हो शीघ्र ही निर्विषता को प्राप्त हो जाता है। शिरीष वृक्ष के फल पत्र, पुष्प, त्वचा और मूल इन पाँचों अङ्गों को गोमूत्र के साथ पीस डाले तो यह सब काम करने वाला अगद हो जाता है—ऐसा कहा गया है। हे एक वीर! हे नृप! इससे भी परम महौषधियों के विषय में मुझसे आप श्रवण कीजिए ॥१८-२२॥

बन्ध्या कर्कोटकी राजन्! विष्णुक्रान्ता तथोत्कटा।
शतमूली सितानन्दा बला मोचा पटोलिका ॥२३
सोमापिण्डा निशा सव तथा दग्धरुहा च या।
स्थले कमलिनी या च विशाली शङ्खमूलिका ॥२४
चण्डाली हस्तिमगधा गोऽजापर्णी करम्भिका।
रक्ता चैव महारक्ता तथा बर्हिशिखा च या ॥२५
कोशातकी नक्तमाल प्रियालश्च सुलोचनी।
वारुणी वसुगन्धा च तथा वै गन्धनाकुली ॥२६
ईश्वरी शिवगन्धा च श्यामला वंशनालिका।
जातुकारी महाश्वेता श्वेता च मधुयष्टिका ॥२७
वज्रकः पारिभद्रश्च तथा वै सिन्धुवारकाः।
जीवानन्दा वसुच्छिद्रा नतनागरकण्टका ॥२८

हे राजन्! बन्ध्या, कर्कोटकी, विष्णुक्रान्ता, उत्कटा, शतमूली, सितानन्दा, बला, मोचा, पटोलिका, सोमापिण्डा, निशा, दग्धरुहा, स्थल

कमलिनी, विशाली, श्वेत मूलिका, चण्डाली,[1] हस्ति मगधा, गोऽज्ञापर्णी, करम्भिका, रक्ता, महारक्ता, बर्हिशिखा, कोशातकी, नक्तमाल, प्रियाल, सुलोचनी, वारुणी, वसुगन्धा, गन्धनाकुली, ईश्वरी, शिवगन्धा, श्यामला, वंशनालिका, जतुकाली, महाश्वेता, श्वेता, मधुयष्टिका, वज्रक, पारिभद्र, सिन्धुवारक, जीवानन्दा, वसुच्छिद्रा, नत नागर कण्टका ॥ २३, २४, २५ २६, २७, २८ ॥

नालश्च जाली जातीच तथाच वटपत्रिका ।
कार्तस्वरं महानीला कुन्दुरुहं सपादिका ॥२६
मण्डूकपर्णी वाराही द्वे तथा तण्डुलीयके ।
सर्पाक्षी लवली ब्राह्मी विश्वरूपासुखाकरा ॥३०
रुजापहो वृद्धिकरी तथानैव तु शल्यदा ।
पत्रिका रोहिणी नैव रक्तमाला महोषधी ॥३१
तथामलकवन्दाकं श्यामचित्रफला च या ।
काकोली क्षीरकाकोली पीलुपर्णी तथैव च ॥३२
केशिनी वृश्चिकालीच महानागा शतावरी ।
गरुडीच तथा वेगा जले कुमुदिनीतथा ॥३३
स्थले चोत्पलिनी या च महाभूमिलता च या ।
उन्मादिनीसोमराजीसर्वरत्नानिपार्थिव ॥३४
विशेषान्मरकतादीनि कीटपक्षं विशेषतः ।
जीवजाताश्च मणयः सर्वे धार्याः प्रयत्नतः ॥३५

नाल, जाली, जाती, वट पत्रिका, कार्त स्वर, महानीला, कुन्दुरुई, समादिका, मण्डूक पर्णी, वृद्धिकरी, शल्यदा, पत्रिका, रोहिणी, रक्तमाला, महोषधी, आमलक, वन्दाक, श्याम चित्रफला, काकोली, क्षीर काकोली, पीलुपर्णी, केशिनी, वृश्चिकाली, वाराही दोनों—तण्डुलीयक, सर्पाक्षी, लवली, ब्राह्मी, विश्वरूपा, सुखाकरा, रुजापह, महानागा, शतावरी, गरुड़ी, वेगा, जल में कुमुदिनी, स्थल में उत्पलिनी, महाभूमि-

लता, उन्मादिनी, सोमराजी, हे पार्थिव ! समस्त रत्न, विशेष रूप से मर-कत आदि–विशेष रूप से कीटपक्ष, जीवजात और सब मणियाँ यत्नपूर्वक धारण करने चाहिए ॥ २९–३५ ॥

रक्षोघ्नाश्च विषघ्नाश्च कृत्यावेतालनाशनाः ।
विशेषान्नरनागाश्च गोखरोष्ट्रसमुद्भवाः ॥३६
सर्पतित्तिरगोमायुवस्त्र(क)मण्ठकजाश्च ये ।
सिंहव्याघ्रर्क्षमार्जारद्वीपिवानरसंभवाः ॥
कपिञ्जला गजा वाजिमहिषैणभवाश्च ये ॥३७॥
इत्येवमेतैः सकलैरुपेतन्द्रव्यैश्च सर्वैं स्वपुरं सुरक्षितम् ।
राजा वसेत्तत्र गृहं सुशुभ्रं गुणान्वितं लक्षणसम्प्रयुक्तम् ॥३८

राक्षसों के हनन वाले—विष के नाशक, कृत्या और बैताल के नाश करने वाले—विशेष रूप से नर और नाग—गोखर उष्ट्रों समुद्भव वाले—सर्प, तित्तिर, गोमायु, वस्त्र और मण्डकज—सिंह, व्याघ्र, ऋक्ष, मार्जार, द्वीपी और वानरों से समुत्पन्न–कपिञ्जल, गज, वाजि, महिष और एण से प्रसूत इस प्रकार से इन सबसे समुपेत तथा सब द्रव्यों के द्वारा सुरक्षित अपने पुर मे राजा को निवास करना चाहिए जो कि राजा का गृह सुशुभ्र–गुणों से समन्वित और सभी सुन्दर लक्षणों से सम्प्रयुक्त होना चाहिए ॥ ३६, ३७, ३८ ॥

६७–राजधर्म वर्णन (२)

राजरक्षारहस्यानि यानि दुर्गे निधापयेत् ।
कारयेद्वा महीभर्ता ब्रूहि तत्त्वानि तानि च ॥१
शिरीषोदुम्बरशमीबीजपूरं घृतप्लुतम् ।
क्षयुद्योगः कथितो राजन् ! मासार्द्धं तु पुरातनैः ॥२

कशेरुफलमूलानि इक्षमूलं तथा विसम् ।
दूर्वाक्षीरघृतमण्डः सिद्धोऽयं मासिकः परः ॥३
नर शस्त्रहतं प्राप्तो न तस्य मरणं भवेत् ।
कल्मापवेणुना तत्र जनयेत्तु विभावसुम् ॥४
गृहे त्रिरपसव्यन्तु क्रियते यत्र पार्थिव ! ।
नान्योऽग्निर्ज्वलते तत्र नात्र कार्याविचारणा ॥५
कार्पासस्था भुजङ्गस्य तेन निर्मोचनं भवेत् ।
सर्पनिर्वासने धूपः प्रशस्तः सतत गृहे ॥६
सामुद्रसैन्धवयवा विद्युद्दग्धा च मृत्तिका ।
तयानुलिप्तं यद्वेश्म नाग्निना दह्यते नृप ! ॥७

महर्षि मनु ने कहा—मही के भरण करने वाला अपने दुर्ग में जिन राज्य की रक्षा के रहस्यों को निधापित करे अथवा करावे आप कृपा करके उन तत्वों को बतलाइये ॥ १ ॥ श्रीमत्स्य भगवान् ने कहा—हे राजन् ! शिरीष, उदुम्बर, शमी, बीजपूर को घृत से प्लुत करे इसको पुरातन लोगों के द्वारा क्षुद्योग कहा गया है जो मास के अर्द्ध तक होता है ॥ २ ॥ कशेरु के फल और मूल, ईख का मूल, बिस, दूर्वा, क्षीर घृत, से मण्ड सिद्ध होता है जो पर एवं मासिक होता है ॥ ३ ॥ शस्त्र से हृत हुए नर को प्राप्त हो जावे तो उसका मरण नहीं होता है । जहाँ पर कल्माप वेणु से विभावसु का जनन करना चाहिए । हे पार्थिव ! जहाँ पर गृह में तीन बार अपसव्य किया जाता है । वहाँ पर अन्य कोई भी अग्नि नहीं जलती है—इस विषय में कोई विचारण करने की आवश्यकता नहीं है । कार्पास में स्थित हो तो उससे भुजङ्ग का निर्मोचन हो जाता है । यह धूप निरन्तर सर्पों के निर्वासन करने के कर्म्म में परम प्रशस्त होता है ॥ ३, ४, ५, ६ ॥ सामुद्र सैन्धव, यव, विद्युत से दग्ध मृत्तिका, इससे जो गृह अनुलिप्त किया जावे तो हे नृप ! वह वेश्म अग्नि से कभी भी दग्ध नहीं किया जाता है ॥७॥

दिवा च दुर्गे रक्ष्योऽग्निर्वाति वाते विशेषतः ।
विषाच्च रक्ष्यो नृपतिस्तत्र युक्तिं निबोध मे ॥८
क्रीडानिमित्तं नृपतिर्धारयेन्मृगपक्षिणः ।
अन्नं वै प्राक् परीक्षेत वह्नौ चान्यतरेषु च ॥९
वस्त्रं पुष्पमलङ्कारं भोजनाच्छादनं तथा ।
नापरीक्षितपूर्वन्तु स्पृशेदपि महामतिः ॥१०
स्याच्चासौ वक्त्रसन्तप्तः सोद्वेगञ्च निरीक्षते ।
विषदोऽथ विषं दत्तं यच्च तत्र परीक्षते ॥११
स्रस्तोत्तरीयो विमनाः स्तम्भकुड्यादिभिस्तथा ।
प्रच्छादयति चात्मानं लज्जते त्वरते तथा ॥१२
भुवं विलिखति ग्रीवां तथा चालयते नृप ! ।
कण्डूयति च मूर्द्धानं परिलोड्याननं तथा ॥१३
क्रियासु त्वरितो राजन् ! विपरीतास्वपि ध्रुवम् ।
एवमादीनि चिह्नानि विषदस्य परीक्षयेत् ॥१४

दिन के समय मे दुर्ग मे अग्नि की रक्षा करनी चाहिए। विशेष रूप से उस समय मे रक्षा करनी आवश्यक है जब वायु बहन किया करता है। खास तौर से नृपति की सुरक्षा अवश्य ही करनी चाहिए। इसमे जो युक्ति अमल मे लाई जावे उसको भी तुम मुझसे समझ लो। ॥ ८॥ क्रीडा के निमित्त राजा को मृगो और पक्षियो को धारण करना चाहिये। सर्व प्रथम अग्नि मे अन्न की परीक्षा कर लेनी अत्यावश्यक है। अन्य तर पदार्थों मे भी वस्त्र, पुष्प, अलङ्कार, भोजन तथा आच्छादन इन सबका महान् मति वाले राजा को पहिले भली भाँति परीक्षा किये बिना कभी भी स्पर्श नही करना चाहिए ॥ ९, १० ॥ यह वक्त्र सन्तप्त होने और उद्वेग के सहित विपत्तियो को देखता है। वहाँ पर दिये हुये विष की जो परीक्षा करता है अपने उत्तरीय वस्त्र को छोड देने वाला—उदास स्तम्भ कुड्य आदि से अपने आपको ढक लिया करता है अर्थात्

छिपा लिया करता है और उसी प्रकार से लज्जा करता है एवं शीघ्रता किया करता है ॥ ११, १२ ॥ हे नृप ! भूमि पर लिखता है—गरदन को घुमाया करता है—मस्तक को खुजलाता है और अपनी आत्मा का परिलोडन किया करता है तथा हे राजन् ! इन विपरीत क्रियाओं में भी निश्चय ही शीघ्रता वाला होता है। इसी तरह के जो चिह्न होते हैं उन पिपद के लक्षणों की परीक्षा करनी चाहिए॥ १३, १४ ॥

समीपेविक्षिपेद्वह्नौ तदन्नं त्वरयान्वितः।
इन्द्रायुधसवर्णन्तु रूक्षं स्फोटसमन्वितम् ॥१५
एकावर्तन्तु दुर्गन्धि भृशञ्चटचटायते।
तद्धूमसेवनाज्जन्तोः शिरोरोगश्च जायते ॥१६
सविषेऽन्ने विलीयन्ते न च पार्थिव ! मक्षिकाः।
निलीनाश्च विपद्यन्ते संस्पृष्टे सविषे तथा ॥१७
विरज्यति चकोरस्य दृष्टिः पार्थिवसत्तम !।
विकृतिञ्च स्वरो याति कोकिलस्यतथानृप ! ॥१८
गतिस्खलति हंसस्य भृङ्गराजश्च कूजति।
क्रौञ्चो मदमथाभ्येति कृकवाकुर्विरौति च ॥१९
विक्रोशतिशुकोराजन् ! सारिकावमतेततः।
चामीकरोऽन्यतोयातिमृत्युं कारण्डवस्तथा ॥२०
मेहते वानरो राजन् ! ग्लायते जीवजीवकः।
हृष्टरोमा भवेद्बभ्रुः पृषतश्चैव रोदिति ॥२१

समीप में स्थित लोगों का त्वरा से समन्वित होते हुए ही उस अन्न को अग्नि में प्रक्षिप्त कर देना चाहिए। इन्द्रायुध के वर्ण के समान—रूक्ष, स्फोट से संयुत, एकावर्त, दुर्गन्ध से युक्त होकर अत्यन्त चट-चट ध्वनि किया करती है। उसके धूम के सेवन से जन्तु के शिर में वेदना और रोग समुत्पन्न हो जाया करता है ॥ १५, १६ ॥ हे पार्थिव ! विष से युक्त अन्न में मक्षिकाएँ विलीन नहीं हुआ करती हैं तथा सविष अन्न

के संस्पर्श होने पर वे मक्षिकाऐं उसी में विलीन हो जाया करती हैं। ॥ १७ ॥ हे पार्थिव श्रेष्ठ ! चकोर पक्षी की दृष्टि विगत अर्थात् हीनता को प्राप्त हो जाया करती है। हंस की गति जो कि अति प्रशंसनीय होती है स्खलित हो जाया करती है -भृङ्गराज कूजन करता है। क्रौञ्च मद को प्राप्त हो जाता है और कृकवाकु विरुत करने लगता है। हे राजन् ! शुक विक्रोशन करता है--सारिका वमन करती है। चामीकर अन्य ओर जाता है--कारण्डव मृत्यु को प्राप्त होता है--हे राजन् ! वानर मेहन करता है--जीव जीवक ग्लानि करता है--अभ् हृष्ट रोमो वाला होता है और पृअत रुदन करता है ॥ ८--२१ ॥

हृषमायाति च शिखी विषसन्दर्शनान्नृप ! ।
अन्नञ्च सविष राजश्चिरेण च विपद्यते ।।२२
तदा भवति निःश्राव्य पक्वपर्युषितोपमम् ।
व्यापन्नरसगन्धञ्च चन्द्रिकाभिस्तथा युतम् ।।२३
व्यञ्जनानान्तु शुष्कत्व द्रवाणां बुद्बुदोद्भवः ।
ससैन्धवानां द्रव्याणाजायतेफेनमालिता ।।२४
सस्यराजिश्च ताम्रा स्यात् नीला च पयसस्तथा ।
कोकिलाभा च मद्यस्य तोयस्य च नृपोत्तम ! ॥ ५
धान्याम्लस्य तथा कृष्णा कपिला कोद्रवस्य च ।
मधुश्यामा च तक्रस्य नीला पीता तथैव च ।।२६
घृतस्योदकसङ्काशा कपोताभा च सक्तुः ।
हरिता माक्षिकस्यापि तैलस्यच तथारुणा ।।२७
फलानामप्यपक्वानां पाकः क्षिप्रं प्रजायते ।
प्रकोपश्चैव पक्वानां माल्यानां म्लानता तथा ।।२८

हे नृप! विष के सदर्शन से शिखी हर्षको प्राप्त होता है। हे राजन्! विष के सहित अन्न चिरकाल मे विपन्न करता है। उस समय मे निःश्राव्य – व्यापन्न रस और गन्ध से युक्त— चन्द्रिकाओ से समन्वित और

पत्र पर्युषितोपम हो जाता है ॥२२, २३॥ व्यञ्जनों में शुष्कता—द्रव पदार्थों में बुद्बुदों की उत्पत्ति और जो सैन्धव से युक्त पदार्थ हैं उनमे फेन मालिता उत्पन्न हो जाया करती है। जो सस्यो राशि है ताम्र वर्ण वाली और पय को आभा नीली हो जाती है। मद्य एवं तोय की आभा कोकिला के तुल्य हो जाया करती है। हे नृपोत्तम ! धान्याम्ल की कृष्ण और कोद्रव की कपिल—तक्र की मधुश्याम, नील, पीत, हो जाया करती है। घृत की उदक के समान तथा कपोत जैसी आभा हो जाती है। माक्षिक (शहद) की हरी एवं तैल की अरुण आभा होती है। जो फल अपक्व होते हैं उन पर प्रकोप होता है तथा माल्यों की म्लानता हो जाया करती है ॥२४-२८॥

मृदुता कठिनानां स्यात् मृदूनाञ्च विपर्ययः ।
सूक्ष्माणां रूपदलनं तथा चैवातिरञ्जता ॥२६
श्याममण्डलता चैव वस्त्राणां वै तथैव च ।
लोहानाञ्च मणीनाञ्च मलपङ्कोपदिग्धता ॥३०
अनुलेपनगन्धानां माल्यानाञ्च नृपोत्तम ।
विगन्धता च विज्ञेया तथा राजन् ! जलस्य तु ॥३१
दन्तकाष्ठत्वचः श्यामास्तनुसत्वास्तथैव च ।
एवमादीनि चिह्नानि विज्ञेयानि नृपोत्तम ! ॥३२
तस्माद्राजा सदा तिष्ठेत् मणिमन्त्रौषधीगणैः ।
उक्तः संरक्षितो राजा प्रमादपरिवर्जकः ॥३३
प्रजातरोर्मूलमिहावनीशस्तद्रक्षणाद्राष्ट्रमुपैति वृद्धिम् ॥
तस्मात्प्रयत्नेन नृपस्य रक्षा सर्वेण कार्या रविवंशचन्द्र !॥३४

जो कठिन एवं कठोर द्रव्य हैं उनमें कोमलता और जो स्वभाव से ही मृदु पदार्थ हैं उनमे विपर्यय हो जाया करता है। सूक्ष्म पदार्थों के रूप का दलन होता है तथा अतिरञ्जिता आ जाया करती है। वस्त्रों में श्याम मण्डलता होती है। सब प्रकार के लोह और मणियों में मल के

पङ्क की उपदिग्धता हो जाती है। हे नृपोत्तम ! जो अनुलेपन करने के द्रव्य हैं जिनमें सुन्दर गन्ध होती है उनमें और माल्यों में तथा जल में विगन्धता उत्पन्न हो जाया करती है। दन्तकाष्ठ की त्वचा श्याम और तनु सत्व हो जाती है। हे नृपोत्तम ! इस प्रकार से इन चिन्हों को जान लेना चाहिए। इसी कारण से राजा को सर्वदा मणि-मन्त्र और औषधों के गणों से संयुत होकर ही निवास करना चाहिए अथवा स्थित रहना चाहिए इन उक्त पदार्थों से अच्छी तरह से संरक्षित एवं प्रमाद से परिवर्जित राजा को होना चाहिए ॥२६-३३॥ यहाँ पर अवनीश प्रजा के तरु का मूल होता है। उसका संरक्षण रहने से ही राष्ट्र वृद्धि को प्राप्त होता है। हे रविवंश चन्द्र ! इसी कारण से सब प्रकार के प्रयत्न से नृप की रक्षा करनी चाहिए ॥३४॥

६८—राजधर्म वर्णन (३)

राजन् ! पुत्रस्य रक्षा च कर्तव्या पृथिवीक्षिता।
आचार्यश्चात्र कर्तव्यो नित्ययुक्तश्च रक्षिभिः ॥१
धर्मकामार्थशास्त्राणि धनुर्वेदञ्च शिक्षयेत्।
रथे च कुञ्जरे चैनं व्यायामङ्कारयेत्सदा ॥२
शिल्पानि शिक्षयेच्चैनं नाप्तो मिथ्या प्रियं वदेत्।
शरीररक्षाव्याजेन रक्षिणोऽस्य नियोजयेत् ॥३
नचास्य सङ्गो दातव्यः क्रुद्धलुब्धावमानितैः।
तथा च विनयेदेनं यथा च यौवनगोचरे ॥४
इन्द्रियैर्नापकृष्येत सतां मार्गात्सुदुर्गमात्।
गुणाधानमशक्यन्तु यस्य कर्तुं स्वभावयः ॥५
बन्धनं तस्य कर्तव्यं गुप्तदेशे सुखान्वितम्।
अविनीतकुमारं हि कुलमाशु विशीर्यते ॥६

अधिकारेषु सर्वेषु विनीतं विनियोजयेत् ।
आदौ स्वल्पे ततः पश्चात्क्रमेणाथ महत्स्वपि ॥७

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—हे राजन् ! राजा को अपने पुत्र की रक्षा करनी चाहिये और रक्षा करने वालों के सहित नित्य युक्त यहाँ पर आचार्य को नियुक्त करना चाहिए ॥१॥ उस पुत्र को धर्म—काम और अर्थ शास्त्रों को तथा धनुर्वेद की शिक्षा दिलवानी चाहिए। रथ में तथा कुञ्जर में भी दीक्षित करावे और सदा इस अपने पुत्र से व्यायाम करवाना चाहिए ॥२॥ इस पुत्र को अनेक शिल्पों की शिक्षा दिलवावे। ऐसा प्रयत्न करे कि वहां आप्त अर्थात् सत्य वक्ता होवे और कभी उसे मिथ्या बोलने का अवसर ही न होवे। राजा के पुत्र के शरीर की रक्षा के मिष से रक्षियों को नियोजित करना चाहिए ॥३॥ क्रुद्ध—लुब्ध और अपमानित हुए व्यक्तियों के साथ इस पुत्र का सङ्ग कभी भी न होने देवे। जैसे ही यह यौवन में पदार्पण करे इसको विनीत बनाना चाहिए ॥४॥ सज्जनों के सुदुर्गम मार्ग से इन्द्रियों के द्वारा अपकृष्ट नहीं होने देवे। स्वभाव में ही अशक्य गुणों का आधान करना चाहिये। किसी गुप्त देश में सुख से समन्वित उसका बन्धन करना चाहिए। जो राज कुमार अविनीत होता है उसका कुल शीघ्र ही विशीर्ण हुआ करता है। सभी अधिकार के कार्यों में विनीत का नियोजन करना चाहिए। आदि में छोटे पद पर इसके पश्चात् क्रम से बड़े पदों पर भी नियुक्तियाँ करे ॥५, ६, ॥

मृगया पानमक्षांश्च वर्जयेत् पृथिवीपतिः ।
एतान्ये सेवमानास्तु विनष्टाः पृथिवीक्षितः ॥८
बहवो भरतशार्दूल ! तेषां सङ्ख्या न विद्यते ।
दिवा स्वापं क्षितीशस्तु विशेषेणाविवर्जयेत् ॥९
वाक्पारुष्य न कर्तव्य दण्डपारुष्यमेव च ।
परोक्षनिन्दा च तथा वर्जनीया महीक्षिता ॥१०
अर्थस्य दूषणं राजा द्विप्रकारं विवर्जयेत् ।

अर्थानां दूषणञ्चैकं तथार्थेषु च दूषणम् ॥११
प्राकाराणां समुच्छेदो दुर्गादीनामसत्क्रिया ।
अर्थानां दूषणं प्रोक्तं विप्रकीर्णत्वमेव च ॥१२
अदेशकाले यद्दानमपात्रे दानमेव च ।
अर्थेषु दूषणं प्रोक्तमसत्कर्मप्रवर्तनम् ॥१३
कामः क्रोधोमदोमानो लोभो हर्षस्तथैव च ।
एते वर्ज्याः प्रयत्नेन सादरं पृथिवीक्षिता ॥१४

जो पृथिवी का स्वामी हो उसको मृगया (शिकार)—मदिरा पान और अक्षक्रीड़ा (द्यूत) का परिवर्जन कर देना चाहिए। इन का जो सेवन किया करते हैं वे भूपतिगण विनष्ट हो जाया करते है। हे नरशार्दूल ! ऐसे बहुत-से राजा लोग हैं उनकी कोई भी सख्या नही हैं राजा को दिन मे निद्रा लेना विशेष रूप से वर्जित कर देनी चाहिए। राजा का कर्त्तव्य है कि वह कभी भी वाणी की कठोरता न करे तथा दण्ड देने मे भी अत्यन्त कठोर उसे नही होना चाहिए। नृपति को परोक्ष मे किसी की भी निन्दा नही करनी चाहिए। अर्थ के दो प्रकार के दूषण का वर्जन राजा को करना आवश्यक है—एक अर्थों का दूषण तथा अर्थों मे दूषण। प्रकारो का समुच्छेद और दुर्गादि की असत्क्रिया यही अर्थों का दूषण कहा गया है तथा विप्रकीर्णता भी अर्थों का दूषण होता है। अनुचित देश तथा अनुपयुक्त काल मे जो दान दिया जाता है और दान का जो पात्र ही नही है उसको दान देना एवं असत्कर्म मे प्रवर्त्तन करना अर्थो मे दूषण बताया गया है। पृथिवी के स्वामी को प्रयत्न पूर्वक आदर के सहित काम—क्रोध—मद—मान—लोभ और हर्ष इनका वर्जन अवश्य ही कर देना चाहिए ॥८—१४॥

एतेषां विजयं कृत्वा कार्यो भृत्यजयस्ततः ।
कृत्वा भृत्यजयं राजा पौरान् जानपदान् जयेत् ॥१५
कृत्वा च विजयन्तेषां शत्रून् बाह्यास्ततो जयेत् ।

बाह्याश्च विविधा ज्ञेयास्तुल्याभ्यन्तरकृत्रिमाः ॥१६
गुरवस्ते यथापूर्वं तेषु यत्नपरो भवेत् ।
पितृपैतामहं मित्रममित्रञ्च तथा रिपोः ।१७
कृत्रिमञ्च महाभाग ! मित्रं त्रिविधमुच्यते ।
तथापि च गुरुः पूर्वं भवेत्तत्रापि चादृतः ॥१८
स्वाम्यमात्यो जनपदो दुर्गं दण्डस्तथैव च ।
कोशोमित्रञ्चधर्मज्ञ ! सप्ताङ्गं राज्यमुच्यते ॥१९
सप्ताङ्गस्यापि राज्यस्य मूलस्वामी प्रकीर्तितः ।
तन्मूलत्वात्तथाङ्गाना सतुरक्ष्यः ॥२०
षडङ्गरक्षा कर्तव्या तथा तेन प्रयत्नतः ।
अङ्गेभ्यो यस्तथैकस्तु द्रोहमाचरतेऽल्पधीः ॥२१

इन सब पर अपना पूर्ण विजय करके ही राजा को फिर अपने भृत्यों पर भी जय प्राप्त करना चाहिए। जब भृत्यो पर विजय करली जावे तो फिर इसके उपरान्त पौरो एवं जानपदों पर विजय करना आवश्यक होता है ॥१५॥ इन सब पर विजय को स्थापित करके इसके अनन्तर ही राजा को बाहिर रहने वाले शत्रुओं पर जय का लाभ लेना चाहिए। जो बाह्य शत्रु होते हैं वे अनेक प्रकार के हुआ करते हैं। वे तुल्य—आभ्यन्तर और कृत्रिम होते हैं ॥१६। वे यथा पूर्व बहुत बड़े हुआ करते हैं इसलिए उनमें यत्न परायण राजा को होना आवश्यक है। पिता पितामह के समय से चले आने वाला मित्र तथा रिपु का अमित्र (शत्रु हे महाभाग ! कृत्रिम मित्र तीन प्रकार का कहा जाता है। तो भी पूर्व गुरु होता है। उसमें भी आदृत होना चाहिए। हे धर्मज्ञ ! स्वामी—अमात्य—जनपद—दुर्ग—दण्ड—कोश और मित्र इन सात अङ्गों वाला राज्य कहा जाया करता है। यद्यपि राज्य के ये उपर्युक्त सात अङ्ग होते हैं तो भी इन सातों में भी मूल स्वामी ही कीर्तित किया गया है। सभी अङ्गों का इसकी मूल होने से उसकी प्रयत्न पूर्वक रक्षा

करनी चाहिए। अन्य छं अङ्गों की भी उसके द्वारा प्रयत्न के साथ सुरक्षा करनी चाहिए। इन अङ्गों मे जो कोई एक द्रोह किसी भी अङ्ग से करता है वह अल्प बुद्धि वाला ही होता है ॥१७-२१॥

बन्धस्तस्य तु कर्तव्यः शीघ्रमेव महीक्षिता।
न राजा मृदुना भाव्य मृदुर्हि परिभूयते ॥२२
न भाव्य दारुणेनातितीक्ष्णादुद्विजते जनः।
काले मृदुर्यो भवति काले भवति दारुणः ॥२३
राजा लोकद्वयापेक्षी तस्य लोकद्वय भवेत्।
भत्यं. सह महीपाल. परिहासं विवर्जयेत् ॥२४
भृत्याः परिभवन्तीह नृप हर्षवशङ्गतम्।
व्यसनानि च सर्वाणि भूपति. परिवर्जयेत् ॥२५
लोकसग्रहणार्थाय कृतकव्य सनो भवेत्।
शौण्डीरस्य नरेन्द्रस्य नित्यमुद्रिक्तचेतसः ॥२६
जना विरागमायान्ति सदादु सेव्यभावतः।
स्मितपूर्वाभिभाषीस्यात्सर्वस्यैवमहीपतिः ॥२७
वध्येष्वपि महाभाग ! भ्रुकुटि न समाचरेत्।
भाव्यधर्मभृतांश्रेष्ठ ! स्थूललक्ष्येणभूभुजा ॥२८

राजा का कर्तव्य है कि ऐसे द्रोह करने वाले व्यक्ति का बन्ध कर देवे और शीघ्र ही उसको बाँध कर बन्द कर देना चाहिए। राजा को मृदु नहीं होना चाहिए जो राजा मृदु होता है वह परिभूत हो जाया करता है ॥२२॥ राजा को अत्यन्त दारुण भी नहीं होना चाहिए क्योंकि अत्यन्त तीक्ष्ण राजा से प्रजाजन उद्विग्न हो जाया करते हैं। जो राजा उचित समय पर मृदु होता है तथा आवश्यकता के अनुसार उचित अवसर पर दारुण होता है वह दोनों लोकों की अपेक्षा वाला हुआ करता है और उसके दोनों ही लोक सफल हुआ करते हैं। राजा को अपने भृत्यों के साथ कभी भी परिहास नहीं करना चाहिए। जो राजा हर्ष के वशङ्गत हो

जाया करता है उसको भृत्य परिभूत कर दिया करते हैं। राजा को सभी प्रकार के व्यसनों को परिवर्जित कर देना चाहिए। लोक के संग्रहण के लिए यदि कोई व्यसन करने वाला भी होवे तो उसे कृतक व्यसनी ही होना चाहिए। जो नरेन्द्र शौण्डीर होता है उससे नित्य ही उद्विग्न चित्त वाले मनुष्य विराग को प्राप्त हो जाते हैं और उनके हृदय मे सदा दु:सेव्य भावना उत्पन्न हो जाया करती है। महीपति का कर्त्तव्य है कि सभी के साथ मुस्कराते हुए भाषण करने वाला होवे। जो लोग अपराधों के कारण वध के भी योग्य हो हे महाभाग! उन पर भी राजा को अपनी भौंहें तिरछी नही करनी चाहिए। हे धर्मधारियों मे परम श्रेष्ठ! राजा को सर्वदा स्थूल लक्ष्य से युक्त ही होना चाहिए ॥२३-२८॥

स्थूललक्षस्य वशगा सर्वाभवति मेदिनी।
अदीर्घसूत्रश्च भवेत् सर्वकर्मसु पार्थिवः ॥२९
दीर्घसूत्रस्य नृपतेः कर्महानिर्ध्रुवम्भवेत्।
रागे दर्पे च माने च द्रोहे पापे च कर्मणि ॥३०
अप्रिये चैव कर्त्तव्ये दीर्घसूत्रः प्रशस्यते।
राज्ञा सवृतमन्त्रेण सदा भाव्यं नृपोत्तम! ॥३१
तस्यासंवृतमन्त्रस्य राज्ञः सर्वापदो ध्रुवम्।
कृतान्येव तु कार्याणि ज्ञायन्ते यस्यभूपतेः ॥३२
नारब्धानि महाभाग! यस्य स्याद्वसुधावशे।
मन्त्रमूलसदाराज्यंतस्मान्मन्त्रः सुरक्षितः ॥३३
कर्तव्यः पृथिवीपालैर्मन्त्रभेदभयात्सदा।
मन्त्रवित्साधितो मन्त्रः सम्पत्तीनांसुखावहः ॥३४
मन्त्रच्छलेन बहवो विनष्टाः पृथिवीक्षितः।
आकारैरिङ्गितैर्गत्या चेष्टया भाषितेन च ॥३५

जिस नृप का स्थूल लक्ष्य होता है उसकी यह सम्पूर्ण भूमि वश-गामिनी हुआ करती है। पार्थिव को समस्त कर्मों मे दीर्घसूत्री नहीं

रहना चाहिए। जो नृपति दीर्घ सूत्री होता है उसके कर्मों की हानि निश्चित रूप से हो जाया करती है। राग में—दर्प में—मान में—द्रोह में—पाप कर्म में और अप्रिय कर्त्तव्य में दीर्घसूत्र होना प्रशस्त माना गया है। हे नृपोत्तम ! राजा को अपना मन्त्र संवृत रखने वाला सर्वदा होना चाहिए। जो राजा अपने मन्त्र को असंवृत रखता है उसको सभी आपत्तियाँ निश्चित रूप से आ जाया करती है। जिस राजा के कार्य्य किये जाने पर ही लोगों को मालूम हुआ करते है और हे महाभाग ! आरम्भ किये हुए या पूर्व में नहीं ज्ञात होते हैं उस राजा के वश में यह समग्र वसुधा हुआ करती है। राज्य का मूलतत्व मन्त्र ही सदा होता है इसलिए मन्त्र को पूर्ण रूप से सुरक्षित रखना चाहिए। मन्त्र के भेद के होने वाले भय से राजाओं को सदा उसे पूर्ण रक्षित रखना आवश्यक है। मन्त्र के ज्ञाता के द्वारा सुसाधित मन्त्र सभी सम्पत्तियों का और सुख का देने वाला हुआ करता है। मन्त्र के छल से बहुत से राजा लोग विनष्ट हो गये हैं। आकार—इङ्गित—गति—चेष्टा—भाषित—नेत्र तथा मुख की विकृति—इनके द्वारा अन्तगर्त मनका ज्ञान हो जाया करता है और जो नीति शास्त्र में कुशल होते है वे सभी कुछ मन का भाव जान लिया करते हैं और जो ऐसे कुशल हैं उनके वश में यह सम्पूर्ण वसुन्धरा रहा करती है ॥२६–३६॥

नेत्रवक्त्रविकारैश्च गृह्यतेऽन्तर्गतं मनः।
नयस्य कुशलैस्तस्य वशे सर्वा वसुन्धरा ॥३६
भवतीह महीपाले सदा पार्थिवनन्दन ! ।
नैकस्तु मन्त्रयेन्मन्त्रं राजा न बहुभिः सह ॥३७
नारोहेद्विषमां नावमपरीक्षितनाविकाम्।
ये चास्य भूमिजयिनो भवेयुः परिपन्थिनः ॥३८
तानानयेद्वशे सर्वान् सामादिभिरुपक्रमैः।
यथा न स्यात् कृशाभावः प्रजानामनवेक्षया ॥३९

तथा राज्ञा प्रकर्तव्यं स्वराष्ट्रं परिरक्षता ।
मोहाद्राजा स्वराष्ट्रं यः कर्षयत्यनवेक्षया ॥४०
सोऽचिराद् भ्रश्यते राज्याज्जीविताच्च सबान्धवः ।
भृतो वत्सो जातबलः कर्मयोग्यो यथा भवेत् ॥४१
तथा राष्ट्रं महाभाग ! भृतं कर्मसहम्भवेत् ।
यो राष्ट्रमनुगृह्णाति राज्यं स परिरक्षति ॥४२

हे पार्थिव नन्दन ! ऐसे परम-कुशल राजा के वश में यहाँ पर यह पृथ्वी वशीभूत रहा करती है। राजा को कभी एक अकेला ही मन्त्रणा नहीं करनी चाहिए और बहुतों के साथ भी अपने गुप्त मन्त्रों के विषय में मन्त्रणा नहीं करे। राजा को कभी भी विषम नौका पर समारोहण नहीं करना चाहिए जिसके नाविक के विषय में पहिले परीक्षण नहीं कर लिया हो। जो इसकी भूमि पर विजय प्राप्त करने वाले परिपन्थी हों उन सबको साम आदि उपक्रमों के द्वारा अपने वश में ले आना राजा का कर्त्तव्य होना चाहिए। जिससे प्रजाओं के अनवेक्षण से कृशीभाव न होने पावे। अपने राष्ट्र का परिरक्षण करने वाले नृप को उसी भाँति करना चाहिए कि मोह से जो अनवेक्षण करके अपने राष्ट्र का अपनी ओर आकर्षण कर लेवे। जो ऐसा नहीं करता है वह नृप बान्धवों के सहित शीघ्र ही अपने राज्य से और जीवन से भी भ्रष्ट हो जाया करता है। अतएव ऐसा ही होवे जो भृत-वत्स-जातबल और कर्म के योग्य होवे। हे महाभाग ! राष्ट्र को उसी भाँति करे जो भृत और कर्म सह हो जावे। जो राष्ट्र पर अनुग्रह किया करता है वह राज्य का परिरक्षण करता है ॥३७-४२॥

सञ्जातमुपजीवेत्तु विन्दते स महत्फलम् ।
गृह्याद्धिरण्य धान्यञ्च मही राजासु रक्षिताम् ॥४३
महता तु प्रयत्नेन स्वराष्ट्रस्य च रक्षिता ।
नित्यं स्वेभ्यः परेभ्यश्च यथा माता यथा पिता ॥४४

गोपितानि सदा कुर्यात् संयतानीन्द्रियाणि च ।
अजस्रमुपयोक्तव्यं फलन्तेभ्यस्तथैव च ॥४५
सर्वं कर्मेदमायत्त विधाने दैवमानुषे ।
तयोर्दैवमचिन्त्यञ्च पौरुषे विद्यते क्रिया ॥४६
एव मही पालयतोऽस्य भर्तुर्लोकानुरागः परमो भवेत्तु ।
लोकानुरागप्रभवा च लक्ष्मीर्लक्ष्मीवयश्चापि पराचलक्ष्मी॥४७

जो सञ्जात है उसको उपजीवित करे तो महान् फल वह प्राप्त किया करता है। वह राजा हिरण्य—धान्य—और सुरक्षित मही का ग्रहण करता है। बड़े भारी प्रयत्न से अपने राष्ट्र की जो रक्षा करने वाला है वह नित्य ही अपने लोगो से और दूसरो से माता तथा पिता की भाँति ही समादर प्राप्त करता है। राजा का कर्त्तव्य है कि वह सदा इन्द्रियो को सयत एव गोपित करे और निरन्तर उनसे उपयुक्त फल प्राप्त करना चाहिए ॥४३, ४४, ४५। दैवमानुष विधान मे सम्पूर्ण यह कर्म अधीन है उन दोनो मे जो दैवी विधान है वह विशेष चिन्तन के योग्य नही है और पौरुष मे ही क्रिया विद्यमान रहा करती है ॥४६॥ इस प्रकार से इस मही के पालन करने वाले इस नृप का परम लोकानुराग हुआ करता है। जब लोक का अनुराग राज मे होता है तो उसी से समुत्पन्न होने वाली लक्ष्मी हुआ करती है और लक्ष्मीवान् की ही परा-लक्ष्मी होती है ॥४७॥

६६—दैव और पुरुषार्थ में कौन बड़ा है ?

दैवे पुरुषकारे च किं ज्यायस्तद्ब्रवीहि मे !
अत्र मे सशयो देव ! च्छेत्तुमर्हस्यशेषतः ॥१
स्वमेव कर्म दैवाख्य विद्धि देहान्तरार्जितम् ।
तस्मात्पौरुषमेवेह श्रेष्ठमाहुर्मनीषिणः ॥२

प्रतिकूलन्तथा दैवं पौरुषेण विहन्यते ।
मङ्गलाचारयुक्तानां नित्यमुत्थानशालिनाम् ॥३
येषां पूर्वकृतं कर्म सात्विक मनुजोत्तम ! ।
पौरुषेण विना तेषां केषाञ्चिद्दृश्यते फलम् ॥४
कर्मणा प्राप्यते लोके राजसस्य तथा फलम् ।
कृच्छ्रेण कर्मणा विद्धि तामसस्य तथा फलम् ॥५
पौरुषेणाप्यते राजन् ! प्रार्थितव्यं फलं नरैः ।
दैवमेव विजानन्ति नराः पौरुषवर्जिताः ॥६
तस्मात्त्रिकालं संयुक्त दैवन्तु सफलंभवेत् ।
पौरुष दैवसम्पत्त्या काले फलतिपार्थिव ! ॥७

महर्षि मनु ने कहा—हे देव ! दैव और पुरुषकार में कौन बड़ा है ? यह मुझे बतलाइये । इसमें मुझे संशय हो रहा है सो इसका छेदन आप पूर्णतया कर दीजिये ॥ १ ॥ श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—दैव नाम वाला जो कर्म है वह भी अपना ही कर्म्म समझना चाहिये क्योंकि वह वही अपना किया हुआ कर्म है जो दूसरे (प्रथम) देह के द्वारा अर्जित किया गया है। इसीलिये मनीषी लोग इस संसार में पौरुष को ही श्रेष्ठ कहा करते हैं ॥ २ ॥ यदि दैव प्रतिकूल भी होता है तो उसका पौरुष के द्वारा हनन हो जाया करता है । ऐसा देखा जाता है कि जो मङ्गल आचार से युक्त और नित्य ही उत्थानशाली लोग होते हैं वे पौरुष से प्रतिकूल दैव को विनष्ट कर देते हैं ॥ ३ ॥ हे मनुजोत्तम ! जिन पुरुषों का पूर्व जन्मों में किया हुआ सात्विक कर्म होता है ऐसे कुछ पुरुषों का अच्छा फल बिना ही पौरुष के किये देखने में आता है ॥ ४ ॥ लोक में राजस कर्म का फल कर्म के द्वारा ही प्राप्त किया जाता है । तामस कर्म का फल कठिन कर्म्म के द्वारा समझ लो ॥ ५ ॥ हे राजन् ! पौरुष के द्वारा मनुष्यों को प्रार्थित फल की प्राप्ति की जाया करती है । जो मनुष्य पौरुष से वर्जित हुआ करते हैं वे तो केवल एक दैव को ही जाना

करते हैं ॥ ६ ॥ इसलिये त्रिकाल से संयुक्त दैव सफल हुआ करता है। हे पार्थिव! पौरुष जो है वह दैव की सम्पत्ति से समय पर फल दिया करता है ॥ ७ ॥

दैवं पुरुषकारश्च कालश्च पुरुषोत्तम ! ।
त्रयमेतन्मनुष्यस्य पिण्डितंस्यात् फलावहम् ॥८
कृषिवृष्टिसमायोगे दृश्यन्ते फलसिद्धयः ।
तास्तु काले प्रदृश्यन्ते नैवाकाले कथञ्चन ॥९
तस्मात्सदैव कर्तव्य सधर्मं पौरुषं नरैः ।
विपत्तावपि यस्येह परलोके ध्रुवं फलम् ॥१०
नालसा प्राप्नुवन्त्यर्थान् न च दैवपरायणाः ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन आचरेद्धर्ममुत्तमम् ॥११
त्यक्त्वाऽलसान् दैवपरान् मनुष्या-
नुत्थानयुक्तान्पुरुषान् हि लक्ष्मीः ।
अन्विष्य यत्नाद् वृणुयान्नृपेन्द्र !
तस्मात्सदोत्थानवता हि भाव्यम् ॥१२

हे पुरुषोत्तम! दैव-पुरुषकार और काल-ये तीनों का तिगड्डा पिण्डित होकर ही मनुष्य को फल देने वाला हुआ करता ॥ ८ ॥ कृषि और वृष्टि के समान ही योग फल सिद्धियों के दिखलाई दिया करते हैं। वे काल के उपस्थित होने पर ही अच्छी तरह से दिखलाई दिया करते हैं और असमय में किसी भी प्रकार से दिखलाई नहीं देते हैं। इससे मनुष्यों को सर्वत्र धर्म के सहित पौरुष करना ही चाहिये। चाहे विपत्ति भी क्यों न हो पुरुषकार करे क्योंकि जिसका इस लोक में और परलोक में निश्चित फल होता है। जो आलसी नर होते हैं वे और केवल दैव को ही मानने में परायण होते हैं वे लोग अर्थों की प्राप्ति नहीं किया करते हैं। इसलिये सभी प्रकार के प्रयत्नों से उत्तम धर्म का समाचरण करना चाहिए। हे नृपेन्द्र! यह लक्ष्मी अलस-दैव परायण मनुष्यों को त्याग

करके उत्थान से युक्त पुरुषों को ही खोज करके यत्नपूर्वक वरण किया करती है। इसी कारण से मनुष्य को सदा उत्थान वाला ही होना चाहिए ॥ ६-१२ ॥

१००-राजधर्म वर्णन में साम प्रयोग वर्णन

उपायांस्त्वं समाचक्ष्व सामपूर्वान् महाद्युते ।
लक्षणञ्च तथा तेषां प्रयोगञ्च सुरोत्तम ! ॥१
सामभेदस्तथा दानदण्डञ्च मनुजेश्वर ! ।
उपेक्षा च तथा माया इन्द्रजालञ्च पार्थिव ! ॥२
प्रयोगाः कथिताः सप्त तन्मे निगदतः शृणु ।
द्विविधं कथित साम तथ्यञ्चातथ्यमेव च ॥३
तत्राप्यतथ्य साधूनामाक्रोशायैव जायते ।
तत्र साधुः प्रयत्नेन सामसाध्यो नरोत्तम ! ॥४
महाकुलीना ऋजवोधर्मनित्याजितेन्द्रियाः ।
सामसाध्या न चातथ्यन्तैपुसामप्रयोजयेत् ॥५
तथ्यं साम च कर्तव्यं कुलशीलादि वर्णनम् ।
तथा तदुपचाराणां कृतानाञ्चैव वर्णनम् ॥६

महर्षि मनु ने कहा—हे महाद्युत वाले ! हे सुरोत्तम ! अब आप साम पूर्वक जो उपाय हों उनका वर्णन कीजिए। उन उपायों का लक्षण और प्रयोग भी बतलाने की कृपा कीजिये ॥ १ ॥ श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—हे मनुजेश्वर ! हे पार्थिव ! साम, भेद, दान, दण्ड, उपेक्षा, माया और इन्द्रजाल—ये सात प्रयोग कहे गये हैं। मैं अब उनको कहता हूँ सो आप मुझसे उनका श्रवण कर लो। यह साम दो प्रकार का कहा गया है। एक तथ्य साम होता है और दूसरा अतथ्य

साम हुआ करता है ॥ २। ३॥ इन दोनो मे जो अतथ्य साम साधु पुरुषो के आक्रोश के लिये ही हुआ करता है। हे नरोत्तम! उसमे प्रयत्नपूर्वक साधु साम ही साध्य होना चाहिये ॥ ४ ॥ महान कुलीन, सरल, नित्य धर्म करने वाले और जितेन्द्रिय पुरुष साम के द्वारा साध्य हुआ करते हैं। उनमे कभी भी अतथ्य साम का प्रयोग नही करना चाहिये। तथ्य साम का ही प्रयोग करना चाहिये जिसमे कुल और शील आदि का वर्णन होता है तथा किये हुए उसके उपकारो का वर्णन किया जाता है ॥ ५, ६ ॥

अनयैव तथा यक्त्या कृतज्ञाख्यापनं स्वकम् ।
एव साम्ना च कर्तव्या वशगा धर्मतत्पराः ॥७
साम्ना यद्यपि रक्षांसि गृह्णन्तीति परा श्रुतिः ।
तथाप्येतदसाधूना प्रयुक्तं नोपकारकम् ॥८
अतिशङ्कितमित्येव पुरुषं सामवादिनम् ।
असाधवो विजानन्ति तस्मात्तत्तेषु वर्जयेत् ॥६
ये शुद्धवंशाः ऋजवःप्रणीता धर्मेस्थिताः सत्यपराविनीताः ।
ते सामसाध्याः पुरुषाःप्रदिष्टा मानोन्नता ये सततञ्च राजन् ॥१०

इसी युक्ति से अपने कृतज्ञता का ख्यापन इस प्रकार से साम के द्वारा धर्म मे परायण मनुष्य अपने वशवर्त्ती करने चाहिए ॥ ७ ॥ यद्यपि साम के द्वारा राक्षस भी ग्रहण किये जाते हैं—ऐसी पराश्रुति है तो भी असाधु पुरुषो मे प्रयोग किया हुआ यह कभी उपकार करने वाला नही होता है ॥८॥ जो असाधु पुरुष होते हैं वे सामवादी पुरुष को अतिशङ्कित है—ऐसा ही हमेशा जाना करते है। इसीलिए इस साम का प्रयोग उनमे वर्जित ही कर देना चाहिए। जो शुद्ध वंश वाले—सरल सीधे—प्रणीत—धर्म मे स्थित—सत्य परायण और विनीत पुरुष हैं उन्ही पुरुषो को साम के द्वारा साध्य कहा गया है। हे राजन्! जो निरन्तर ही मानोन्नत होते हैं वे ही साम से साध्य हुआ करते हैं ॥ ६, १० ॥

१०१—राजधर्म वर्णन में भेद प्रयोग वर्णन

परस्परन्तु ये दुष्टाः क्रुद्धा भीतावमानिताः ।
तेषां भेदं प्रयुञ्जीत भेदसाध्या हि ते मताः ॥१
ये तु येनैव दोषेण परस्मान्नापि बिभ्यति ।
ते तु तद्दोषपातेन भेदनीया भृशन्ततः ॥२
आत्मीया दर्शयेदाशा परस्माद्दर्शयेद्भयम् ।
एवं हि भेदयेद्भिन्नान् यथावद्वशमानयेत् ॥३
संहितान्न विना भेदं शक्रेणापि सुदुःसहाः ।
भेदमेव प्रशंसन्ति तस्मान्नयविशारदाः ॥४
स्वमुखेनाश्रयेद्भेदम्भेदम्परमुखेन च ।
परीक्ष्य साधु मन्येत भेदं परमुखाच्छ्रुतम् ॥५
सद्यः स्वकार्यमुद्दिश्य कुशलैर्ये हि भेदिताः ।
भेदितास्ते विनिर्दिष्टा नैव राजार्थवादिभिः ॥६
अन्तःकोपो बहिःकोपो यत्र स्यातां महीक्षिताम् ।
अन्तःकोपो महांस्तत्र नाशकः पृथिवीक्षिताम् ॥७

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—जो दुष्ट पुरुष परस्पर मे क्रुद्ध—भीत और अवमानित है। उनका भेद प्रयुक्त करना चाहिये क्योंकि वे लोग भेद के द्वारा ही साध्य होते हैं—ऐसा माना गया है ॥ १ ॥ जो लोग जिस ही दोष मे दूसरे से भी नहीं डरते हैं वे उस दोष के पात से अत्यन्त ही भेदन करने के योग्य होते है ॥ २ ॥ अपनी आशा को दिखलावे और दूसरे से भय का प्रदर्शन करना चाहिए। इसी प्रकार से भिन्नों का भेदन करे और यथावत् उनको अपने वश मे लाना चाहिये ॥ ३ ॥ जो संहित हैं वे बिना भेद के इन्द्र के द्वारा भी सुदुःसह हुआ करते हैं। इसलिये ऐसे अवसर पर नय शास्त्र के पण्डित लोग भेद की ही प्रशंसा किया करते हैं। अपने मुख से भेद का आश्रय करे और पराये मुख से

भेद ग्रहण करे। अतएव भली भाँति भेद की जाँच करके ही पराये मुख से सुने हुए भेद को मानना चाहिए ॥ ४। ५ ॥ तुरन्त ही अपने कार्य का उद्देश्य करके कुशल पुरुषो के द्वारा जो भेदित होते हैं वे ही भेदित विनिर्दिष्ट होते हैं और राजा के द्वारा अर्थवादियो से भेदित नही हुआ करते हैं ॥ ६ ॥ जहाँ पर राजाओ का अन्तःकोप और बहिःकोप हुआ करता है। इनमे जो अन्त कोप होता है वह महान् है और नाश करने वाला होता है जो नृपो का विनाशक है ॥ ७ ॥

साम्ना न कोपोवाह्यस्तु कोपः प्रोक्तो महीभृतः।
महिषीयुवराजभ्या तथासेनापतेर्नृप ॥८
अमात्यमन्त्रिणाञ्चैव राजपुत्रेतथैवच।
अन्त कोपो विनिर्दिष्टो दारुण पृथिवीक्षिताम् ॥९
वाह्यकोपे समुत्पन्न सुमहत्यपि पार्थिवः।
शुद्धान्तस्तु महाभाग! शीघ्रमेव जयी भवेत् ॥१०
अपि शक्रसमो राजा अन्तःकोपेन नश्यति।
सोऽन्तः कोप प्रयत्नेन तस्माद्रक्ष्योमहीभृता ॥११
परत. कोपमुत्पाद्य भेदेन विजिगीषुणा।
ज्ञातीना भेदन कार्यं परेषा विजिगीषुणा ॥१२
रक्ष्यञ्चैव प्रयत्नेन ज्ञातिभेदस्तथात्मनः।
ज्ञातयः परितप्यन्ते सतत परितापिताः। १३
तथापि तेषा कर्तव्य सुगम्भीरेण चेतसा।
ग्रहण दानमानाभ्या भेदस्तेभ्यो भयङ्कर. ॥१४
न ज्ञातिमनुगृह्णन्ति न ज्ञाति वै श्वसन्ति च।
ज्ञातिभिर्भेदनीयास्तु रिपवस्ते न पार्थिव. ॥ १५
भिन्ना हि शक्या रिपव. प्रभूता स्वल्पेन सैन्येन निहन्तमानी।
सुसहताना हि तदस्तु भेद कार्यो रिपूणा नयशास्त्रविद्भि ॥ १६

राजा का कहा हुआ कार जो कोप वाह्य होता है वह साम के

द्वारा नहीं शान्त नहीं होता है। हे नृप! राजाओं का अन्तःकोप महिषी-युवराज-सेनापति-अमात्य-मन्त्री और राजपुत्र का महान् दारुण विनिर्दिष्ट किया गया है ॥८, ९॥ सुमहान् बाह्य कोप के समुत्पन्न होने पर भी हे महाभाग! अन्तः करण मे शुद्ध राजा बहुत ही शीघ्र जयशील हुआ करता है ॥१०॥ भले ही कोई राजा इन्द्र के समान ही क्यों न होवे वह भी अन्तः कोप से विनष्ट हो जाया करता है। इस कारण से राजा के द्वारा प्रयत्न पूर्वक अन्तः कोप की रक्षा करनी चाहिए ॥११॥ विजय प्राप्त करने की इच्छा वाले के द्वारा भेद से दूसरे में कोप का उत्पादन करावे दूसरों के विजिगीषु को ज्ञातियों का भेदन करना चाहिए ॥१२॥ तथा अपना ज्ञाति भेद अत्यधिक प्रयत्न से रक्षित रखना चाहिए। परितापित की हुई ज्ञातियाँ निरन्तर परितप्त हुआ करती हैं ॥१३॥ तो भी सुगम्भीर चित्त के रखने वाले को उनका दान तथा मान से ग्रहण करना चाहिए। उनके साथ भेद करना तो महान् भयङ्कर हुआ करता है ॥१४॥ राजाओं के द्वारा शत्रुगण ज्ञातियों से भेदन करने के योग्य होते हैं अर्थात् शत्रुओं को ज्ञातियों से भेद कर देना चाहिए और ऐसा कर देवे कि वे अपनी ज्ञातियों पर अनुग्रह तथा विश्वास बिल्कुल ही नहीं करें ॥१५॥ भेद के द्वारा भिन्न किये हुए बहुत से शत्रु भी युद्ध में बहुत ही थोड़ी सेना के द्वारा मारे जा सकते हैं नय शास्त्र के ज्ञाताओं को जो सुसंहत हों उनका भेद कर देवे और रिपुओं का भेद अवश्य ही कर देना चाहिए ॥१६॥

१०२—राजधर्म वर्णन में दान प्रयोग वर्णन

सर्वेषामप्युपायानां दानं श्रेष्ठतमं मतम्।
सुदत्तेनेह भवति दानेनाभयलाकजित् ॥१
न सोऽस्ति राजन् ! दानेन वशगो यो न जायते।
दानेन वशगा देवा भवन्तीह सदा नृणाम् ॥२

दानमेवोपजीवन्ति प्रजाः सर्वा नृपोत्तम ! ।
प्रियो हि दानवान् लोके सर्वस्यैवोपजायते ॥३
दानवानचिरेणैव तथा राजा परान् जयेत् ।
दानवानेव शक्नोति संहतान् भेदितुं परान् ॥४
यद्यप्यलुब्धगम्भीराः पुरुषाः सागरोपमाः ।
न गृह्णन्ति तथाप्येते जायन्ते पक्षपातिनः ॥५
अन्यत्रापि कृतं दानं करोत्यन्यान्यथा वशे ।
उपायेभ्यः प्रशंसन्ति दानं श्रेष्ठतमं जनाः ॥६
दानं श्रेष्ठतमं पुंसां दानं श्रेष्ठतमं परम् ।
दानवानेव लोकेषु पुत्रत्वे ध्रियते सदा ॥७
न केवलं दानपरा जयन्ति भूर्लोकमेकं पुरुषप्रवीराः ।
जयन्ति ते राजसुरेन्द्रलोकं सुदुर्जयं यो विबुधाधिवासः ॥८

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—ये जितने भी उपाय बतलाये गये हैं उन सब मे दान का उपाय सबसे परम श्रेष्ठ उपाय माना गया है। यहाँ संसार मे अच्छी तरह से दिए हुए दान से मनुष्य उभय लोकों का विजेता हो जाया करता है ॥१॥ हे राजन् ! इस लोक मे ऐसा कोई भी पुरुष नहीं है जो दान के द्वारा वशवर्ती न हो जावे यह दान तो एक ऐसा उत्तम साधन है कि इस दान से सदा मनुष्यो के वश मे देवगण भी आ जाया करते हैं ॥२॥ हे नृपोत्तम ! सम्पूर्ण प्रजा दान को ही समाश्रित कर के उपजीवित रहा करती हैं। इस लोक मे प्रिय तो सबका ही दानवान् उत्पन्न हुआ करता है ॥३॥ दान देने वाला राजा बहुत ही शीघ्र शत्रुओं को जीत लिया करता है और जो दान वाला होता है वही संहत परों को भेद युक्त कर सकता है ॥४॥ यद्यपि ऐसे भी पुरुष होते है जो अलुब्ध और गम्भीर सागर के समान हैं जो ग्रहण नहीं किया करते हैं तो भी पक्षपाती हो जाते हैं ॥५॥ अन्यत्र भी किया हुआ दान किस तरह से अन्यों को वश मे करा दिया करता है किन्तु मनुष्य उपायों से दिये हुए दान को

परम श्रेष्ठ तप कह कर इसकी प्रशंसा किया करते हैं। यह दान ही पुण्य का परम श्रेष्ठ साधन होता है और दान की परम श्रेष्ठता कही जाती है। जो दानवान् होता है वह ही लोक मे सदा पुत्रत्व मे धारण किया जाता है ॥६, ७॥ जो दान परायण प्रवर पुरुष होते हैं वे केवल एक इस भूलोक को ही नहीं जीतते हैं वे तो सुदुर्जय राज सुरेन्द्रलोक को भी जीत लिया करते हैं जो देवगणों के निवास का स्थल होता है ॥८॥

१०३—राजधर्म वर्णन मे दण्डोपाय वर्णन

न शक्या ये वशे कर्तुमुपायत्रितयेन तु ।
दण्डेन तान् वशीकुर्यात् दण्डो हि वशकृन्नृणाम् ॥१
सम्यक् प्रणयनं तस्य तथा कार्यं महीक्षिता ।
धर्मशास्त्रानुसारेण स सहायेन धीमता ॥२
तस्य सम्यक् प्रणयनं यथाकार्यं महीक्षिता ।
वानप्रस्थांश्च धर्मज्ञान्निर्ममान्निष्परिग्रहान् ॥३
स्वदेशे परदेशे वा धर्मशास्त्रविशारदान् ।
समीक्ष्य प्रणयेद्दण्डं सर्वं दण्डे प्रतिष्ठितम् ॥४
आश्रमी यदि वा वर्णी पूज्यो वाऽथ गुरुर्महान् ।
नादण्ड्यो नाम राज्ञोऽस्ति यः स्वधर्मेण तिष्ठति ॥५
अदण्ड्यान् दण्डयेद्राजा दण्ड्यांश्चैवाप्यदण्डयन् ।
इह राज्यात्परिभ्रष्टो नरकञ्च प्रपद्यते ॥६
तस्माद्राज्ञा विनीतेन धर्मशास्त्रानुसारतः ।
दण्डप्रणयनं कार्यं लोकानुग्रहकाम्यया ॥७

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—जो मनुष्य साम—दाम और भेद—इन तीनों उपायों से भी वश में नहीं किये जा सकते हैं उनको दण्ड से

हो अपने वश मे करना चाहिए क्योंकि यह दण्ड ऐसा साधन है जो मनुष्यो को वश मे कर देने वाला होता है ॥१॥ राजा के द्वारा इस दण्ड का प्रणयन भली भाँति करना चाहिए और धीमान् किसी सहायक के साथ एव धर्म शास्त्र के अनुसार ही दण्ड का प्रयोग करे ॥२॥ राजा के द्वारा उस दण्ड का प्रणयन जिस प्रकार से करना उचित है वह बहुत अच्छा होना चाहिए। वानप्रस्थ—धर्म के ज्ञाता-ममता से रहित-निष्परिग्रह—अपने या पराये देश मे धर्म शास्त्र के महा पण्डितो को भली भाँति दक्षिण करके दण्ड का प्रणयन करना चाहिए क्योंकि इस दण्ड मे सभी कुछ प्रतिष्ठित होता है ॥३॥ किसी आश्रम मे संस्थित हो—वर्णी (ब्रह्मचारी) हो—पूज्य-महान् और गुरु हो तो ऐसा पुरुष राजा के द्वारा दण्ड देने के योग्य नही हुआ करता है क्योंकि वह तो अपने धर्म मे संस्थित रहता है। निष्कर्ष यह है कि जो भी कोई अपने धर्म के मार्ग पर भली भाँति चल रहा है वह कभी भी दण्डनीय नही होता है ॥४॥ जो राजा दण्ड न देने के योग्य पुरुषो को दण्डित करता है और दण्ड देने के योग्य हो उनको दण्ड नहीं देता है वह राजा यहा पर राज्य से परिभ्रष्ट होकर अन्त मे नरक का गामी होता है ॥६॥ इस कारण से विनीत भाव वाले राजा के द्वारा लोको के ऊपर अनुग्रह करने की कामना से धर्म शास्त्र के अनुसार ही दण्ड का प्रणयन करना चाहिए ॥७॥

यत्र श्यामो लोहिताक्षोदण्डश्चरति निर्भयः।
प्रजास्तत्र न मुह्यन्ति नेता चेत्साधुपश्यति ॥८
बालवृद्धातुरयतिद्विजस्त्रीविधवायत.।
मात्स्यन्यायेन भक्षयेरन् यदि दण्ड न पातयेत् ॥६
देवदैत्योरगगणाः सर्वे भूतपतत्रिणः।
उत्क्रामयेयुर्मर्यादा यदि दण्ड न पातयेत् ॥१०
एष ब्रह्माभिशापेषु सर्वप्रहरणेषु च।
सर्वविक्रमकोपेषु व्यवसाये च तिष्ठति ॥११

पूज्यन्ते दण्डिनो देवैर्न पूज्यन्ते त्वदण्डिनः ।
न ब्रह्माणं विधातारं न पूषार्यमणावपि ॥१२
यजन्ते मानवाः केचित् प्रशान्ताः सर्वकर्मसु ।
रुद्रमग्निञ्च शक्रञ्च सूर्याचन्द्रमसौ तथा ॥१३
विष्णुं देवगणांश्चान्यान् दण्डिनः पूजयन्ति च ।
दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वा दण्ड एवाभिरक्षति ॥१४

जहाँ पर श्याम लोहिताक्ष दण्ड निर्भय होकर विचरण किया करता है वहाँ पर प्रजा को कोई भी मोह नहीं होता है यदि नेता अच्छी प्रकार से देखता है ॥८॥ यदि दण्ड का पालन नहीं किया जाता है तो बालक-वृद्ध-आतुर-यति-द्विज-स्त्री विधवा इनको मत्स्य न्याय से ही दुष्ट लोग खा जाया करते हैं । यदि दण्ड का पालन नहीं किया जाता है तो देव, दैत्य, उरग गण, सब भूत और पक्षी मर्यादा का उल्लंघन कर देवें ॥९, १०॥ यह दण्ड अभिचारों में—समस्त प्रहरणों में—सब विक्रम कार्यों में और व्यवसाय में स्थित रहा करता है ॥११॥ दण्डी देवों के द्वारा पूजे जाया करते हैं और जो अदण्डी होते हैं वे नहीं पूजे जाते हैं । विधाता ब्रह्मा और पूषा अर्यमा की भी पूजा नहीं करते हैं । समस्त कर्मों में कुछ प्रशान्त मानव यजन किया करते हैं । रुद्र अग्नि, इन्द्र, सूर्य, चन्द्रमा, विष्णु, देवगण और अन्य दण्डिगण की पूजा करते हैं । दण्ड ही प्रजा का शासन किया करता है और दण्ड ही सब प्रजा का अभिरक्षण किया करता है ॥१२, १३, १४॥

दण्डः सुप्तेषु जागर्ति दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः ।
राजदण्डभयादेव पापाः पापं न कुर्वते ॥१५
यमदण्डभयादेके परस्परभयादपि ।
एवं सांसिद्धिके लोके सर्वं दण्डे प्रतिष्ठितम् ॥१६
अन्धे तमसि मज्जेयुर्यदि दण्डं न पालयेत् ।
यस्माद्दण्डो दमयति अदण्ड्यान्दण्डयत्यपि ॥

दमनाद्दण्डनाच्चैव तस्माद्दण्डं विदुर्बुधा ॥१७॥
दण्डस्य भीतैस्त्रिदशैः समेतैर्भागोधृत. शूलधरस्य यज्ञे ।
दत्त कुमारे ध्वजिनीपतित्वं वर शिशूनाञ्च भयाद्बलस्य ॥१८

सुप्त हुओ मे दण्ड ही जगता है और बुध लोग दण्ड को ही धर्म जानते हैं। राजा के द्वारा प्राप्त होने वाले दण्ड के भय से ही पापी लोग पाप कर्म नही किया करते है ॥१५॥ कुछ लोग यमराज के द्वारा मिलते वाले दण्ड के भय से और पारस्परिक दण्ड के भय से भी पाप कर्म नही करते है। इस प्रकार से इस सांसिद्धिक लोक मे सभी कुछ दण्ड मे ही प्रतिष्ठित है ॥१६॥ यदि दण्ड का पातन नही किया जावे तो सब लोग अधतम मे मज्जन किया करे। क्योकि दण्ड दमन किया करता है और जो अदण्डनीय है उनका भी दमन किया करता है। दमन करने से और दण्डन करने से बुध लोग इसको दण्ड करते है दण्ड से भीतहुए समेत देवो ने यज्ञ मे भगवान् शूलधर का भाग धृत किया था कुमार मे सेनापतित्व का पद दिया था और बल के भय से शिशुओ का वर दिया था ॥१७, १८॥

१०४—राजधर्म वर्णन में देवसाम्यत्व वर्णन

दण्डप्रणयनार्थाय राजा सृष्टः स्वयम्भुवा ।
देवभागानुपादाय सर्वभूतादिगुप्तये ॥१
तेजसा यदमु कश्चिन्नैव शक्नोति वीक्षितुम् ।
ततो भवति लोकेषु राजाभास्करवत्प्रभुः ॥२
यदास्य दर्शने लोक. प्रसादमुपगच्छति ।
नयनानन्दकारित्वात्तदा भवति चन्द्रमाः ॥३
यथा यमः प्रियद्वेष्येप्राप्ते कालेप्रयच्छति ।
तथा राज्ञा नियन्तव्याःप्रजास्तद्धि यमव्रतम् ॥४

वरुणेन यथा पाशैर्बद्धएव प्रदृश्यते ।
तथा पापान्निगृह्णीयाद् व्रतमेतद्धि वारुणम् ॥५
परिपूर्णं यथा चन्द्रं दृष्ट्वा हृष्यति मानवः ।
तथा प्रकृतयो यस्मिन् स चन्द्रप्रतिमो नृपः ॥६
प्रतापयुक्तस्तेजस्वी नित्यस्यात्सर्वकर्मसु ।
दुष्टसामन्तहिंस्रेषु राजाग्नेयव्रतेस्थितः ॥७

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—भगवान् स्वयम्भू ने दण्ड के प्रणयन के ही लिये राजा का सृजन किया था और इस की सृष्टि देवों के भागों को ग्रहण करके समस्त भूतों की रक्षा के लिए की गयी थी ॥१॥ राजा में बहुत तेज होता है और नेत्र कोई भी इसको देख नहीं सकता है। इसके अनन्तर ही लोकों में राजा भगवान् भास्कर के ही समान प्रभु हुआ करता है। जिस समय में इस राजा के दर्शन से लोक प्रसाद की प्राप्ति किया करता है उस समय में यह नयनों को आनन्दकारी होने से चन्द्रमा हो जाता है ॥२, ३॥ जिस प्रकार से यमराज प्रिय या द्वेष्य कोई कैसा भी हो काल आने पर वह यथा दूत भेजकर बुला ही लेता है उसी भाँति राजा को भी प्रजा के साथ करना चाहिए और यमव्रत धारण कर लेवे। वरुण के द्वारा जिस तरह पाशों से बद्ध होकर ही दिखलाई दिया करता है उसी भाँति पापों में निगृहीत करे—यही वारुण व्रत कहलाता है ॥४, ५॥ जिस तरह परिपूर्ण चन्द्रमा का दर्शन प्राप्त करके मानव परम हर्षित हुआ करता है उसी भाँति जिसमें प्रकृतियाँ हैं और वह नृप चन्द्रमा के समान ही होता है। राजा नित्य ही समस्त कर्मों में प्रताप से युक्त अत्यन्त तेजस्वी होता है। दुष्ट सामन्त और हिंसक जीवों में राजा आग्नेय व्रत में स्थित रहा करता है ॥६, ७॥

यथा सर्वाणि भूतानि बिभ्रतः पार्थिव व्रतम् ।
इन्द्रस्यार्कस्य वातस्य यमस्य वरुणस्य च ॥८
चन्द्रस्याग्ने पृथिव्याश्चतेजोव्रत नृपश्चरेत् ।

वार्षिकांश्चतुरो मासान् यथेन्द्रोप्यथवर्षति ॥९
तथाभिवर्षेत्स्वंराज्यकाममिन्द्रव्रतंस्मृतम् ।
अष्टौमासान्यथादित्यस्तोयहरतिरश्मिभिः ॥
तथा हरेत्करं राष्ट्रान्नित्यकर्मव्रतं हि तत् ॥१०
प्रविश्य सर्वभूतानि यथा चरति मारुतः ।
तथा चारैः प्रवेष्टव्यं व्रतमेतद्धि मारुतम् ॥११

जिस तरह से सब भूतों का विशेष भरण करने वाले का पार्थिव व्रत होता है । इन्द्र, सूर्य, वायु, यम, वरुण, चन्द्र अग्नि और पृथिवी का तेजोव्रत नृप को धारण करना चाहिए । वर्षा के चार मासों में जिस तरह से इन्द्र देव वर्षा किया करते हैं उसी भाँति से राजा को अपने राज्य में प्रजा की कामनाओं की पूर्ति वर्षा भली भाँति करनी चाहिए—इसी को इन्द्रव्रत कहा जाता है । जिस तरह से आठ मास तक सूर्य अपनी किरणों के द्वारा जल का हरण किया करता है उसी तरह से राजा राष्ट्र से कर का आहरण करे—यही नित्य कर्मव्रत कहा गया है ॥८, ९, १०॥ मारुत समस्त भूतों में प्रवेश करके जिस तरह से सचरण किया करता है वैसे ही चारों के द्वारा राजा को प्रवेश करना चाहिए यही मारुत व्रत कहा जाता है ॥११॥

१०५—ग्रह यज्ञादि का विधान वर्णन

ग्रहयज्ञः कथं कार्यो लक्षहोमः कथं नृपैः ।
कोटिहोमोऽपिवा देव ! सर्वपापप्रणाशनः ॥१
क्रियते विधिना येन यद्दृष्ट शान्तिचिन्तकैः ।
तत्सर्वं विस्तराद्देव ! कथयस्व जनार्दन ! ॥२
इदानीं कथयिष्यामि प्रसङ्गादेव ते नृप ।

राज्ञा धर्मप्रसक्तेन प्रजानाञ्च हितेप्सुना ॥३
ग्रहयज्ञः सदा कार्यो लक्षहोमसमन्वितः ।
नदीनां सङ्गमे चैव सुराणामग्रतस्तथा ॥४
सुसमे भूमिभागे च दैवज्ञाधिष्ठितो नृपः ।
गुरुणा चैव ऋत्विग्भिः सार्द्धं भूमिं परिक्षयेत् ॥५
खनेत् कुण्डञ्च तत्रैव सुसमं हस्तमात्रकम् ।
द्विगुणं लक्षहोमे तु कोटिहोमे चतुर्गुणम् ॥६
युग्माः ऋत्विजः प्रोक्ता अष्टौ वै वेदपारगाः ।
कन्दमूलफलाहारा दधिक्षीराशिनोऽपि वा ॥७

महर्षिवर मनु ने कहा—हे देव ! नृपों के द्वारा ग्रह यज्ञ और लक्ष होम किस प्रकार से करना चाहिए ? अथवा कोटि होम भी किस तरह से करे जो कि सभी तरह के प्रबल पापों का विनाश करने वाला होता है । ॥१॥ जिस विधि से यह किया जाता है और जो शान्ति चिन्तक लोगों ने देखा है हे जनार्दन देव ! उसका वर्णन आप विस्तार पूर्वक सब कीजिएगा ॥२॥ मत्स्य भगवान् ने कहा—हे नृप ! अब मैं प्रसङ्ग से ही तुमको कहूँगा । प्रजाओं के हित के चाहने वाले और धर्म में प्रसक्त नृप के द्वारा एक लाख होम से सयुत ग्रह यज्ञ सदा ही करना चाहिए । ग्रह यज्ञ नदियों के सङ्गम में तथा देवों के आगे ही करना चाहिए ॥३, ४॥ दैवज्ञों से अधिष्ठित नृप को समतल भूमि के भाग में गुरुदेव और ऋत्विजों के साथ भूमि का परिक्षण करना चाहिए । वहीं पर सुसम और एक हाथ लम्बा चौड़ा कुण्ड को खोदना चाहिए । एक लक्ष के होम करने में यह कुण्ड दुगुना बनावे तथा कोटि होम करना हो तो चौगुना बड़ा बनवाना आवश्यक है ॥५, ६॥ दोनों में वेदों के पारगामी आठ ऋत्विज बताये गये हैं जो कि कन्द-मूल और फलों के आहार करने वाले अथवा दधि तथा क्षीर के अशन करने वाले होने चाहिए ॥७॥

वेद्यां निधापयेच्चैव रत्नानि विविधानि च ।

सिकतापरिवेषाश्च ततोऽग्निञ्च समिन्धयेत् ॥८
गायत्र्या दशसाहस्रं मानस्तोकेन षड्गुणः ।
त्रिंशद्ग्रहादिमन्त्रैश्च चत्वारो विष्णुदैवतैः ॥९
कुष्माण्डजुहुयात्पञ्च कुसुमाद्यैस्तु षोडश ।
होतव्या दशसाहस्रं बादरैर्जातवेदसि ॥१०
श्रियोमन्त्रेण होतव्या सहस्राणि चतुर्दश ।
शेषा पञ्चसहस्रास्तु होतव्यास्त्विन्द्रदैवतैः ॥११
हुत्वा शतसहस्रस्तु पुण्यस्नानं समाचरेत् ।
कुम्भैः षोडशसङ्ख्यैश्च सहिरण्यैः सुमङ्गलैः ॥१२
स्नापयेद्यजमानन्तु ततः शान्तिर्भविष्यति ।
एवं कृते तु यत्किञ्चिद्ग्रहपीडासमुद्भवम् ॥१३
तत्सर्वं नाशतायाति दत्त्वा वै दक्षिणां नृप ! ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन प्रधाना दक्षिणा स्मृता ॥१४

जो वेदी निर्मित कराई जावे उसमें अनेक प्रकार के रत्नों को निधापित करे और उस वेदी का सिकता से परिवेष बनवाना चाहिए। इसके अनन्तर उसमें अग्नि को समिन्धित करे ॥८॥ गायत्री से दश सहस्र आहुतियाँ देवे। मानस्तोक से षड्गुण—ग्रह आदि के मन्त्रों से तीस—जिनके विष्णु देवता हैं उन मन्त्रों से चार—कूष्माण्डों से पाँच—कुसुम आदि से षोडश और बादरों से दश सहस्र अग्नि में हवन करना चाहिए। ॥९, १०॥ श्री के मन्त्र से चौदह सहस्र आहुतियों द्वारा हवन करे। शेष जो पाँच सहस्र आहुतियाँ हैं वे इन्द्र दैवत मन्त्रों से हवन करनी चाहिए। ॥११॥ सौ सहस्र आहुतियों का हवन करके फिर पुण्य स्नान करे जो सुमङ्गल—साहिरण्य सोलह संख्या वाले कुम्भों के द्वारा किया जाना चाहिए ॥१२॥ इस तरह से यजमान का स्नपन करावे। इसके अनन्तर शान्ति होगी। इस तरह से करने पर जो कुछ भी नष्ट ग्रहों की पीड़ा से समुत्पन्न होगा वह सब नाश को प्राप्त हो जाता है। हे नृप ! फिर दक्षिणा

देवे। सब प्रकार के प्रयत्नों से अच्छी दक्षिणा देनी चाहिए क्योंकि यज्ञ में दक्षिणा परम प्रधान कही गयी है ॥१३, १४॥

हस्त्यश्वरथयानानि भूमिवस्त्रयुगानि च ।
अनडुद्गोशतं दद्यादृत्विजां चैव दक्षिणाम् ॥१५
यथा विभवसारन्तु वित्तशाठ्यं न कारयेत् ।
मासे पूर्णे समाप्तस्तु लक्षहोमो नराधिप ॥१६
लक्षहोमस्य राजेन्द्र ! विधानं परिकीर्तितम् ।
इदानीं कोटिहोमस्य शृणु त्वं कथयाम्यहम् ॥१७
गङ्गातटेऽथ यमुनासरस्वत्योर्नरेश्वर ! ।
नर्मदा देविकायास्तु तटे होमो विधीयते ॥१८
तत्रापि ऋत्विजः कार्या रविनन्दन ! षोडश ।
सर्वहोमेतु राजर्षे ! दद्याद्विप्रेऽथ वा धनम् ॥१९
ऋत्विगाचार्यसहितो दीक्षा साम्वत्सरी स्थितः ।
चैत्रे मासे तु सम्प्राप्ते कार्तिके वा विशेषतः ॥२०
प्रारम्भः करणीयो वा वत्सरं वत्सरं नृप ! ।
यजमानः पयोभक्षो फलाशीच तथानघ ! ॥२१

ऋत्विजों को दक्षिणा में हाथी—अश्व, रथ, यान भूमि, वस्त्र, युग, अनड्वान्, सौ गौ आदि समर्पित करे ॥१५॥ जैसा भी अपना वैभव हो उसी के सार के अनुसार ऋत्विजों को दक्षिणा देवे और धन अतुल होते हुए भी दक्षिणा में कृपणता करने का वित्त शाठ्य नहीं करना चाहिए हे नराधिप ! एक मास पूर्ण हो जाने पर यह एक लक्ष आहुतियों का होम समाप्त हो जाया करता है। हे राजेन्द्र ! यह एक लक्ष के होम का पूर्ण विधान कीर्तित कर दिया गया है अब मैं कोटि होम के विधान को कहता हूँ उसका आप श्रवण करिये ॥१५—१७॥ हे नरेश्वर ! गङ्गा के तट पर—यमुना सरस्वती के तीर पर—नर्मदा अथवा देविका नदी के तट पर यह होम करे। हे रविनन्दन! उसमें भी सोलह ऋत्विज नियोजित करने चाहिए। हे

राजर्षे ! सब प्रकार के होम में विप्र को धन देवे । ऋत्विक् और आचार्य के सहित साम्वत्सरी दीक्षा में स्थित होता हुआ चैत्र मास के प्राप्त होने पर या विशेष रूप से कार्तिक मास के आने पर इसका प्रारम्भ करना चाहिए । अथवा वर्ष प्रति वर्ष करे । हे नृप ! हे अनघ ! यजमान को यव का अशन करने वाला तथा फलों का आहार करने वाला होना चाहिए ॥ १८-२१ ॥

यवादिव्रीहयो माषास्तिलाश्च सह सर्षपैः ।
पालाशाः समिधःशस्ता वसोर्धारातथोपरि ॥२२
मासेऽथ प्रथमे दद्यात् ऋत्विग्भ्यः क्षीरभोजनम् ।
द्वितीये कृसरां दद्याद्धर्मकामार्थसाधनीम् ॥२३
तृतीये मासि सयावो देयो वै रविनन्दन ! ।
चतुर्थे मोदका देया विप्राणा प्रीतिमावहन् ॥२४
पञ्चमे दधिभक्तन्तु षष्ठे वै सक्तुभोजनम् ।
पूपाश्च सप्तमे देया ह्यष्टमे घृतपूपकाः ॥२५
षष्ठ्योदनञ्च नवमे दशमे यवपष्टिका ।
एकादशे समापन्तु भोजन रविनन्दन ! ॥२६
द्वादशे त्वथ सम्प्राप्ते मासे रविकुलोद्वहः ।
षड्रसं सह भक्ष्यैश्च भोजन सार्वकामिकम् ॥२७
देया द्विजाना राजेन्द्र ! मासि मासि च दक्षिणाः ।
अहतवासाः सम्वीतो दिनार्द्धे होमयेच्छुचिः ॥२८

यव आदि व्रीहि, माष, तिल और सर्षप, पलाश की समिधाऐं प्रशस्त होती हैं तथा ऊपर में वसोर्धारा हो । प्रथम मास में ऋत्विजों के लिये क्षीर का भोजन देना चाहिए । दूसरे मास में कृशारा देवे जो धर्म-काम और अर्थ को साधन करने वाली होती है ॥ २२ । २३ ॥ तीसरे मास में सयाव देवे । हे रविनन्दन ! चतुर्थ मास में विप्रों की प्रीति का आवहन करते हुए मोदक देना चाहिए । पाँचवें मास में दधि और भात

देवे और छठवें मास मे सत् का भोजन देना चाहिए। सातवें मास में पूपा देनी चाहिए तथा आठवें महीना में घृत पूपक का भोजन देवे। ॥ २४। २५ ॥ नवम मास में पड्योदन देवे और दशम मास में यव पष्टिका का भोजन देना चाहिए। हे रविनन्दन! एकादश मास मे माप के सहित भोजन देवे। हे रवि कुलोद्वह! द्वादश मास के सम्प्राप्त होने पर-षट्रसों के सहित भक्ष्यों से युक्त सर्व काम करने वाला भोजन द्विजों को देना चाहिए। हे राजेन्द्र! मास-मास मे दक्षिणा भी द्विजो को अवश्य ही देनी चाहिए। अहतवासा और सम्वीत होकर परम शुचि होवे और दिनार्द्ध में होम करना चाहिए॥ २६—२८॥

तस्मात् सदोत्थितैर्भाव्यं यजमानैः सह द्विजैः।
इन्द्राद्यादिसुराणाञ्च प्रीणनं सर्वकामिकम् ॥२९
कृत्वा सुराणां राजेन्द्र! पशुघातसमन्वितम्।
सर्वदानानि देवानामग्निष्टोमञ्च कारयेत् ॥३०
एवं कृत्वा विधानेन पूर्णाहुतिः शते शते।
सहस्रे द्विगुणा देया यावच्छतसहस्रकम् ॥३१
पुराडाशस्ततः साध्यो देवतार्थ च ऋत्विजः।
युवतो वसन् मानवैश्च पुन. प्राशार्चनान् द्विजान्। ३२
प्रीणायित्वा सुरान् सर्वान् पितॄनेव ततः क्रमात्।
कृत्वा शास्त्रविधानेन पिण्डानाञ्च समर्पणम् ॥३३
समाप्तेऽस्य होमस्यविप्राणामथ दक्षिणाम्।
समाञ्चैवतुलां कृत्वाबद्ध्वा शिवपद्मयापुनः ॥३४
आत्मानं तोलयेत्तत्र पत्नीञ्चैव द्वितीयकाम्।
सुवर्णेन तथात्मानं रजतेन तथा प्रियाम् ॥३५

इसलिये द्विजों के ही साथ में यजमानों को सदा उठना चाहिए। इन्द्रादि देवों का प्रीणन सब कामनाएे पूर्ण करने वाला होता॥ २९॥ हे राजेन्द्र! इस प्रकार से सुरों का पशुघात से समन्वित प्रीणन का

सम्पादन करके समस्त प्रकार के दान देवे तथा देवों का अग्निष्टोम करावे इस रीति से सब सम्पादन करके एक-एक शत पर पूर्णाहुति करनी चाहिए। जब सहस्र आहुतियाँ हो जावें तो यावच्छत सहस्रक द्विगुणा आहुति देनी चाहिये। इसके अनन्तर देवता के लिये ऋत्विजो के द्वारा पुरोडाश साध्य करे तथा युक्त होता हुआ वास करे। पुनः मानवो के द्वारा द्विजो का अर्चन करना चाहिये ॥ २६, ३०, ३१, ३२ ॥ सब सुरो का प्रीणन (प्रसन्नता) करके पितृगण के लिये क्रम से शास्त्र मे वर्णित विधान के द्वारा पिण्डो का समर्पण करना चाहिये ॥ ३३ ॥ उस होम की समाप्ति होने पर विप्रो को दक्षिणा के देने की व्यवस्था करनी चाहिये। तुला को समान करके दोनो पलडो को भली भाँति बाँध करके उसमे अपने आपको और दूसरी अपनी पत्नी का तोलन करे। सुवर्ण से अपने आपको तोले और चाँदी से अपनी प्रिया का तोलन करे ॥ ३४ । ३५ ॥

तोलयित्वा ददेद्राजा वित्तशाठ्यविवर्जितः।
ददेच्छतसहस्रन्तु रूप्यस्य कनकस्य च ।३६
सर्वस्व वा ददेत्तत्र राजसूयफल लभेत्।
एतत्कृत्वा विधानेन विप्रास्तांश्च विसर्जयेत् ।।३७
प्रीयतां पुण्डरीकाक्षः सर्वयज्ञेश्वरो हरिः।
तस्मिंस्तुष्टे जगत्तुष्टं प्रीणितं भवेत् ।।३८
एवं सर्वोपघाते तु देवमानुषकारिते।
एवं शान्तिस्तवाख्याता या कृत्वा सुकृती भवेत् ।।३६
न शोचेज्जन्ममरणे कृताकृतविचारणे।
सर्वतीर्थेषु यत्स्नान सर्वयज्ञेषु यत्फलम् ।।४०
तत्फल समवाप्नोति कृत्वा यज्ञत्रयं नृप ! ।।४१

राजा को इस भाँति तोलन करके वित्त की शठता का परित्याग करते हुए दान देना चाहिए ॥ ३६ ॥ अथवा अपना सर्वस्व दान कर देवे

तो वहाँ पर राजसूय यज्ञ के पुण्य-फल की प्राप्ति का लाभ करे। इस रीति से विधान के साथ सब कुछ करके फिर उन सब विप्रों को विसर्जित कर देना चाहिए। उस समय में यह प्रार्थना करनी चाहिए—भगवान् समस्त यज्ञों के ईश्वर श्री हरि पुण्डरीकाक्ष प्रसन्न होवें। उन प्रभु के पूर्णतया सन्तुष्ट हो जाने पर यह सम्पूर्ण जगत् तुष्ट हो जाया करता है और उनके प्रीणित होने पर सब प्रीणित हो जाते हैं। इस प्रकार से देवमानुषों के द्वारा कारित सर्वोपस्थान होने पर इस रीति से आपकी शान्ति बताई गई है जिसको करके तुम सुकृति हो जाओगे। जन्म और मरण के विषय में कुछ चिन्ता नहीं करे तथा कृत एवं अकृत के विषय में भी शोच न करे। हे नृप ! समस्त तीर्थों में स्नान करने का जो पुण्य-फल होता है और सब यज्ञों में जो फल होता है वह सम्पूर्ण फल ये तीन यज्ञ करके ही मनुष्य प्राप्त कर लिया करता है ॥ ३७ । ३८ ॥ ३९ । ४० । ४१ ॥

१०६—यात्राकाल विधान वर्णन

इदानीं सर्वधर्मज्ञ ! सर्वशास्त्रविशारद ! ।
यात्राकालविधानमे कथयस्व महीक्षिताम् ॥१
यदा मन्येत नृपतिराक्रन्देन बलीयसा ।
पार्ष्णिग्राहाभिभूतोऽयं तदा यात्रां प्रयोजयेत् ॥२
दुष्टायोधा भृता भृत्याः साम्प्रतञ्चबलमम ।
मूलरक्षासमर्थोस्मि तदायात्रां प्रयोजयेत् ॥३
अशुद्धपार्ष्णिनृपतिर्नतु यात्रां प्रयोजयेत् ।
पार्ष्णिग्राहाधिकं सैन्यंमूले निक्षिप्यचव्रजेत् ॥४
चैत्र्यां वा मार्गशीर्ष्यां वा यात्रा यायान्नराधिपः ।
चैत्र्यां पश्येच्च नंदाघ हन्ति पुष्टञ्च शारदीम् ॥५

एतदेव विपर्यस्तं मार्गशीर्ष्यां नराधिपः ।
शत्रोर्वा व्यसने यायात् कालएव सुदुर्लभः ॥६
दिव्यान्तरिक्षक्षितिजैरुत्पातैः पीडित परम् ।
षडङ्गपीडासन्तप्तं पीड़ितञ्च तथा ग्रहैः ॥७

महर्षि मनु ने कहा—हे सर्व धर्मज्ञ ! आप तो सभी शास्त्रों के महान् मनीषी हैं, इस समय में राजाओं की यात्रा—काल का जो कुछ विधान हो उसे आप कृपा करके मुझे बतलाइये ॥ १ ॥ श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—जिस समय मे नृपति बलीयान् आनन्द से युक्त मान लेवे उस समय मे पार्ष्णिग्राह से अभिभूत इसको तीर्थ यात्रा की प्रयोजना करनी चाहिए । दुष्ट योधा—भृत भृत्य है इस प्रकार से इस समय मे मेरा बल विद्यमान है । मैं इस समय मे मूल रक्षा मे समर्थ हूँ । उसी समय मे यात्रा को प्रयोजित करना चाहिए ॥ २ । ३ ॥ जो नृपति अशुद्ध पार्ष्णि वाला हो उसे यात्रा प्रयोजित नही करनी चाहिए । पार्ष्णिग्राह से अधिक सैन्य को मूल मे निक्षिप्त करके गमन करे ॥ ४ ॥ नराधिप को चैत्री अथवा मार्गशीर्षी पूर्णिमा मे यात्रा के लिये गमन करना चाहिए। चैत्री मे निदाघ के दृश्य को देखे और शारदी पुष्टि का हनन करता है ।५। यह ही मार्गशीर्षी मे विपर्यस्त होता है । नराधिप शत्रु के व्यसन मे गमन करे क्योंकि यह काल ही सुदुर्लभ होता है ॥६॥

ज्वलन्ती च तथैवोल्का दिशं याञ्च प्रपद्यते ।
भूकम्पोल्का दिशयाति याञ्चवेतु प्रसूयते ॥८
निर्घातश्च पतेद्यत्र तां यायाद्वसुधाधिपः ।
स बलव्यसनोपेत तथा दुर्भिक्षपीडितम् ॥९
सम्भूतान्तरकोपञ्च क्षिप्रं प्रायादरिं नृपः ।
यूकामाक्षीकबहुल बहुपङ्कं तथा बिलम् ॥१०
नास्तिकं भिन्नमर्याद तथा मङ्गलवादिनम् ।
अपेतप्रकृतिञ्चैव निःसारञ्च तथा जयेत् ॥११

विद्विष्टनायकं सैन्यं तथा भिन्नं परस्परम् ।
व्यसनाशक्तनृपतिं बलं राजाभियोजयेत् ॥१२
सैनिकानां न शस्त्राणि स्फुरन्त्यङ्गानि यस्य च ।
दुःस्वप्नानि च पश्यन्ति बलं तदभियोजयेत् ॥१३
उत्साहबलसम्पन्नः स्वानुरक्तबलस्तथा ।
तुष्टपुष्टबलो राजा परानभिमुखो व्रजेत् ॥ १४

दिव्यान्तरिक्ष और क्षिति से समुत्पन्न उत्पातों से परम पीड़ित—षड्ग्रह पीड़ा से सन्तप्त तथा ग्रहों से पीड़ित—जलती हुई उल्का जिस दिशा को जाती है—धूमकोल्का जिस दिशा को जाती है और केतु को प्रसून किया करती है। जहाँ पर निर्घात गिरता है उसी दिशा को राजा को गमन करना चाहिये। उस नृप को बल—व्यसन से युक्त—दुर्भिक्ष से पीड़ित और जिसके अन्दर कोप समुत्पन्न हो गया हो ऐसे शत्रु पर शीघ्र ही चढ़ाई नृप को कर देनी चाहिए। जिसमें वृक्ष और यष्टिकाएँ बहुत हों-अधिक पद्मकुन्त-बिना नास्तिक—भिन्न मद का वाला-मङ्गलवादी—कर्पित प्रकृति वाला और निस्सार को जीत लेना चाहिए ॥ ७, ८, ९, १०, ११ ॥ जिस राजा की सेना ऐसी हो कि उसके नायक से विद्वेष हो और जो परस्पर में भिन्न हो—जिस राजा की आसक्ति व्यसनों में हो ऐसे बलहीन नृप के साथ अभियोग करना चाहिए अर्थात् युद्ध करे। जिसके सैनिकों के पास शस्त्र न हों और जिसमें अङ्ग स्फुरित होते हों—जो बुरे स्वप्न देखते हों ऐसों पर बल का अभियोजन करना चाहिए। उत्साह और बल से युक्त—जिसकी सेना पूर्ण अनुराग वाली हो—तुष्ट एवं पुष्ट बल वाला राजा ही अपने शत्रुओं से युद्ध करने को अभिमुख होवे ॥ १२, १३, १४ ॥

शरीरस्फुरणे धन्ये तथा दुःस्वप्ननाशने ।
निमित्ते शकुने धन्ये जाते शत्रुपुरं व्रजेत् ॥१५
ऋक्षेषु षट्सु शुद्धेषु ग्रहेष्वनुगुणेषु च ।

प्रश्नकाले शुभे जाते परान् यायान्नराधिपः ॥१६
एवन्तु दैवसम्पन्नस्तथा पौरुषसयुतः ।
देशकालोपपन्नान्तु यात्रां कुर्यान्नराधिपः ॥१७
स्थले नक्रस्तु नागस्य तस्यापि सजले वशे ।
उलूकस्यनिशि ध्वाङ्क्षः सचतस्यदिवावशे ॥१८
एव देशञ्च कालञ्च ज्ञात्वा यात्रां प्रयोजयेत् ॥१६
पदातिनागबहुला सेना प्रावृषि योजयेत् ।
हेमन्ते शिशिरे चैव रथवाजिसमाकुलाम् ॥
खरोष्ट्रबहुला सेना तथा ग्रीष्मे नराधिपः ॥२०॥
चतुरङ्गबलोपेता वसन्ते वा शरद्यथ ।
सेना पदातिबहुला यस्य स्यात्पृथिवीपतेः ॥२१
अभियोज्यो भवेत्तेन वा शत्रु विषममाश्रितः ।
गम्ये वृक्षावृते देशे स्थित शत्रुस्तथैव च ॥२२

परम धन्य अर्थात् अनुकूल शरीर के स्फुरण होने पर, दुःस्वप्नो के नाश होने पर और अच्छे निमित्त एव शकुनो के होने पर ही राजा को अपने शत्रु के नगर मे प्रवेश करना चाहिए छै नक्षत्रो के शुद्ध होने पर तथा ग्रहो के बिल्कुल अपने अनुकूल हो जाने पर ही जब, प्रश्न काल परम शुभ होवे तभी राजा को शत्रुओ के ऊपर चढाई करनी चाहिए। इस प्रकार से दैव (भाग्य) से सुसम्पन्न होकर पौरुष से भी पूर्ण समन्वित राजा को देश तथा काल से उपपन्न यात्रा करनी चाहिए। स्थल मे नाग और सजल देश में नक्र के वश मे होने पर तथा रात्रि मे उलूक एव दिन मे ध्वाङ्क्ष (कौआ) के वशगत होने पर ही इस प्रकार से देश तथा काल का ज्ञान प्राप्त करके राजा को अपनी यात्रा करनी चाहिए ॥ १५। १६। १७। १८। १६॥ वर्षा ऋतु मे ऐसी सेना को तैयार करे जिसमे पदाति सैनिक अधिक हो। हेमन्त और शिशिर ऋतु मे अधिक रथो एवं अश्वो की समाकुलता होनी चाहिये। नराधिप को ग्रीष्म ऋतु मे खर

और उष्ट्रों की अधिकता वाली सेना सज्जित करनी चाहिए ॥२०॥ वसन्त एवं शरद् ऋतु में चतुरङ्ग बल से समुपेत सेना बनानी चाहिये। जिसमें पदाति-अश्व-रथ और गज सभी समुचित संख्या में स्थित होवे। जिस राजा की सेना अधिक पदाति (पैदल) वाली हो उस विषम का आश्रय लेने वाला शत्रु राजा के द्वारा अभियोजित होना चाहिए। गमन करने के योग्य—वृक्षों से समावृत देश में स्थित शत्रु का अभियोजन करे ॥२१।२२॥

किञ्चित् पङ्के तथा यायाद् बहुनागो नराधिपः।
तथाश्वबहुलो यायाच्छत्रुं समस्थितम् ॥२३
तमाश्रयन्तो बहुलास्तानु राजा प्रपूजयेत्।
खरोष्ट्रबहुलो राजा शत्रुर्बन्धेन संस्थितः ॥२४
बन्धनस्थोऽभियाज्योऽग्निवर्षा नृपभुजा।
हिमपातयुते देशे स्थितं ग्रीष्मेऽभियोजयत् ॥२५
यवसेन्धनसंयुक्तः कालः पार्थिव ! हैमनः।
शारदश्च वसन्तश्च धर्मज्ञ ! कालौ साधारणौ स्मृतौ ॥२६
विज्ञाय राजा हितदेशकालौ दैवं त्रिकालञ्च तथैव बुद्ध्वा।
यायात्परकालविदा मतेन सञ्चिन्त्य सार्द्धं द्विजमन्त्रविद्भिः ॥२७

बहुत अधिक नागों वाले नराधिप को कुछ पङ्क में उसी प्रकार से गमन करना चाहिए जिस तरह से बहुत अश्वों वाला राजा मार्ग में स्थित समान शत्रु का अभियोजन कर लेवे ॥२३॥ उसको जो बहुत से आश्रय ग्रहण करने वाले हों उनका राजा को पूजन करना चाहिए। खरों और उष्ट्रों की बहुलता वाला शत्रु राजा जब बन्ध से संस्थित हो तो उस बन्धन में संस्थित शत्रु को राजा के द्वारा वर्षा ऋतु में अभियोजन करे। हे पार्थिव ! यवस और इन्धन से संयुक्त काल हेमन्त होता है। हे धर्मज्ञ ! शरद् और वसन्त ये दोनों ऋतुऐं साधारण काल कहे गए हैं। राजा का कर्त्तव्य है कि उस हितकर देश और काल को समझ

कर तथा दैव-त्रिकाल को भी जानकर काल के वेत्ता ज्योतिविंदों के मत से पूर्ण रूप से जानकर एवं द्विज और मन्त्र वेत्ताओं के साथ भली भाँति चिन्तन करके ही यात्रा में गमन तथा शत्रु पर अभियोजन करना चाहिए ॥ २४-२७ ॥

१०७-अङ्ग स्फुरण विचार

ब्रूहि मे त्वं निमित्तानि अशुभानि शुभानि च ।
सर्वधर्मभृतां श्रेष्ठ ! त्वंहि सर्वविदुच्यते ॥१
अङ्गदक्षिणभागे तु शस्तं प्रस्फुरणम्भवेत् ।
अप्रशस्तं तथा वामे पृष्ठस्य हृदयस्य च ॥२
अङ्गानां स्पन्दनञ्चैव शुभाशुभविचेष्टितम् ।
तन्मे विस्तरतो ब्रूहि येन स्यात्तद्विधो भुवि ॥३
पृथ्वीलाभो भवेन्मूर्द्धिन ललाटेरविनन्दन ! ।
स्थानं विवृद्धिमायाति भ्रूनसोः प्रियसङ्गमः ॥४
भृत्यलब्धिश्चाक्षिदेशे दृगुपान्ते धनागमः ।
उत्कण्ठोपगमो मध्येदृष्टेराजन् ! विचक्षणैः ॥५
दृग्बन्धने सङ्गरे च जयं शीघ्रमवाप्नुयात् ।
योषिद्भोगोऽपाङ्गदेशे श्रवणान्ते प्रियाश्रुतिः ॥६
नासिकायां प्रीतिसौख्यप्रजाप्तिरधरोष्ठजे ।
कण्ठे तु भोगलाभःस्याद्भोगवृद्धिरथांसयोः ॥७

महर्षि मनु ने कहा—हे समस्त धर्म धारियों में परम श्रेष्ठ देव ! आपको तो सभी कुछ के ज्ञाता कहा जाता है । अतएव अब आप कृपा करके जो निमित्त शुभ हों उन्हें और जो परम अशुभ हों उनको भी बतलाने का श्रम कीजिए ॥१॥ मत्स्य भगवान् ने कहा—मानव के अङ्ग

मे जो दक्षिण भाग है उसमे जो प्रस्फुरण होता है उसे परम प्रशस्त कहा गया है। उसी भाँति से वाम भाग मे पृष्ठ और हृदय का प्रस्फुरण भी शस्त होता है ॥२॥ महर्षि मनु ने कहा—हे भगवन् ! अङ्गों का स्पन्दन और उसके शुभ एवं अशुभ का विवेष्ठित होता है उसको विस्तार पूर्वक मेरे समक्ष मे वर्णित कीजिए जिससे इस भूमण्डल मे उसी प्रकार का मनुष्य हो जावे ॥३॥ श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—हे रविनन्दन ! मूर्धा मे स्पन्दन हो तो पृथ्वी का लाभ होता है—ललाट मे प्रस्फुरण हो तो स्थान की विशेष वृद्धि होती है—भ्रूओं मे हो तो प्रिय का सङ्गम होता है। नेत्र के भाग मे स्पन्दन हो तो भृत्य की प्राप्ति होती है और दृग के उपान्त मे प्रस्फुरण हो तो धन का आगम हुआ करता है। हे राजन् ! विचक्षण पुरुषो ने देखा है कि मध्य भाग मे स्पन्दन हो तो उत्कण्ठा का उपशम हुआ करता है। दृगबन्धन मे और सङ्गर (युद्ध) मे बहुत ही शीघ्र जय का लाभ हुआ करता है। अपाङ्ग देश मे होने से स्त्री का उपभोग होता है और श्रवण के अन्त मे विस्फुरण हो तो प्रिया की श्रुति होती है। नासिका मे स्पन्दन होने से प्रीति होती है और सौख्य होता है अधरोष्ठ में स्पन्दन से प्रजा की प्राप्ति होती है। कण्ठ मे भोग का लाभ और अंस देशो मे स्पन्दन से भोग की वृद्धि हुआ करती है ॥४-७॥

सुहृत्स्नेहश्च बाहुभ्यां हस्ते चैव धनागमः।
पृष्ठे पराजयः सद्यः जयो वक्षःस्थले भवेत् ॥८
कुक्षिभ्यां प्रीतिरुद्दिष्टा स्त्रियाः प्रजननं स्तने।
स्थानभ्रंशो नाभिदेशे अन्त्रे विधनागमः ॥९
जानुसन्धौ परैः सन्धिर्बलवद्भिर्भवेन्नृप !।
देशैकदेशनाशाश्च जङ्घायां रविनन्दन ! ॥१०
उत्तमं स्थानमाप्नोति पद्भ्यां प्रस्फुरणान्नृप !।
सलाभञ्चाध्वगमनं भवेत्पादतले नृप ! ॥११
लाञ्छनं पिटकञ्चैव ज्ञेयं स्फुरणवत्तथा।

विपर्ययेण विहिता सर्वस्त्रीणां फलागमः ॥
दक्षिणेऽपि प्रशस्तेऽङ्गे प्रशस्तं स्याद्विशेषतः ॥१२
अतोऽन्यथा सिद्धिप्रजल्पनात्तु फलस्य शस्तस्य च निन्दितस्य ।
अनिष्टचिह्नोपगमे द्विजानां कार्यं सुवर्णेन तु तर्पणंस्यात् ॥१३

बाहुओ के प्रस्फुरण से सुहृत का स्नेह और हाथ मे होने से धन का समागम हुआ करता है। पृष्ठ मे होने से तुरन्त ही पराजय होती है तथा वक्षः स्थल मे स्पन्दन से जय हुआ करता है। कुक्षियो मे होने से प्रीति उपदिष्ट की गई है और स्तन मे स्पन्दन से स्त्री के प्रजनन हुआ करता है। नाभि देश मे प्रस्फुरण होने से स्थान का भ्रंश हुआ करता हैं तथा अन्त्र मे होने से धन का आगम होता है। जानुओ की सन्धि मे प्रस्फुरण होने से परो से सन्धि होती है जो कि बहुत बलवान् हुआ करते हैं। हे नृप! हे रविनन्दन! दिशा के एक देश मे होने से नाश होता है तथा जङ्घा मे स्पन्दन हो तो उत्तम स्थान का लाभ होता है और पैरो मे होने से लाभ क सहित मार्ग का गमन होता है। हे नृप! पादतल मे होने से लाञ्छन लगता है और स्फुरण की ही भाँति फिर कभी जान लेना चाहिए। यह पुरुष के विषय मे ही कहा गया है स्त्रियो के विषय मे विपर्यय से फलागम हुआ करता है। प्रशस्त अङ्ग दक्षिण मे भी विशेष रूप से प्रशस्त होता है इसलिए अन्यथा सिद्धि के प्रजल्पन से प्रशस्त और निन्दित फलका अनिष्ट चिन्हो के उपगम होने पर द्विजो का सुवर्ण के द्वारा तर्पण करना चाहिए ॥८-१३॥

१०८—स्वप्न दर्शन वर्णन

स्वप्नाख्यान कथ देव ! गमने प्रत्युपस्थिते ।
दृश्यन्तेविविधाकारा कथन्तेषाफलभवेत् ॥१

इदानीं कथयिष्यामि निमित्तं स्वप्नदर्शने ।
नाभिं विनान्यगात्रेषु तृणवृक्षसमुद्भवः ॥२
चूर्णनं मूर्ध्नि कांस्यानां मुण्डनं नग्नता तथा ।
मलिनाम्बरधारित्वमभ्यङ्गः पङ्कदिग्धता ॥३
उच्चात् प्रपतनञ्चैव दोलारोहणमेव च ।
अर्जनं पङ्कलोहानां हयानामपि मारणम् ॥४
रक्तपुष्पद्रुमाणाञ्च मण्डलस्य तथैव च ।
वराहर्क्षखरोष्ट्राणां तथा चारोहणक्रिया ॥५
भक्षणं पक्षिमांसानां तैलस्य कृसरस्य च ।
नर्तनं हसनञ्चैव विवाहो गीतमेव ॥६
तन्त्रीवाद्यविहीनानां वाद्यानामभिवादनम् ।
स्रोतोऽवगाहगमनं स्नानं गोमयवारिणा ॥७

महा महर्षि मनु ने कहा—हे देव ! कहीं पर गमन के उपस्थित होने पर स्वप्न का माहात्म्य किस प्रकार से हुआ करता है ? ये स्वप्न तो अनेक एवं विभिन्न आकार वाले दिखलाई दिया करते हैं फिर उन सबका फल किस प्रकार से हुआ करता है ॥१॥ श्री मत्स्य देव ने कहा—इस समय में मैं स्वप्नों के दर्शन में जो निमित्त होता है उसे ही बतलाता हूँ। केवल एक नाभि को छोड़ कर शरीर के अन्य किसी भी अङ्ग में तृण और वृक्षों की समुत्पत्ति—मस्तक का चूर्ण हो जाना—कांस्यों का मुण्डन तथा नग्नता—मलिन वस्त्रों का धारण करना, अभ्यङ्ग, पङ्क में लिपटना, ऊँचे से पतन होना, दोला पर समारोहण करना, पङ्क लोहों का अर्जन, हयों का मारण, रक्त पुष्प वाले द्रुमों के मण्डल का तथा वराह, रीछ, खर और उष्ट्रों के ऊपर आरोहण करना—पके हुए मांस का भक्षण करना तथा तैल और कृसर का खाना, नाचना, हँसना, विवाह, गीत, तन्त्री के द्वारा बजने वाले बाजों से रहित अन्य बाजों का अभिवादन करना, स्रोत का अवगाहन गमन करना, गोमयवारि से स्नान करना आदि ये सब दुःस्वप्न होते हैं ॥२-७॥

पङ्कोदकेन च तथा महीतोयेन चाप्यथ ।
मातुः प्रवेशो जठरे चितारोहणमेव च ॥८

शक्रध्वजाभिपतनं पतनं शशिसूर्ययोः ।
दिव्यान्तरिक्षभौमानामुत्पातानाञ्च दर्शनम् ॥६
देवद्विजातिभूपालगुरूणां क्रोधएव च ।
आलिङ्गनं कुमारीणां पुरुषाणाञ्च मैथुनम् ॥१०
हानिश्चैव स्वगात्राणां विरेकवमनक्रिया ।
दक्षिणाशाभिगमनं व्याधिनाभिभवस्तथा ॥११
फलापहानिश्च तथा पुष्पहानिस्तथैव च ।
गृहाणाञ्चैव पातश्च गृहसम्मार्जनन्तथा ॥१२
क्रीडा पिशाचक्रव्यादवानरर्क्षनरैरपि ।
परादभिभवश्चैव तस्माच्च व्यसनोद्भवः ॥१३
काषायवस्त्रधारित्वं तद्वत् स्त्रीक्रीडनन्तथा ।
स्नेहपानावगाहौ च रक्तमाल्यानुलेपनम् ॥१४

पङ्क के मिश्रित जल से स्नान, मही तोय से स्नान माता के उदर मे प्रवेश करना, चिता पर समारोहण, शक्र ध्वज का गिरना, चाँद और सूर्य का पतन, दिव्यान्तरिक्ष भौमों का और उत्पातों का दर्शन, देव, द्विजाति, राजा और गुरु का क्रोध, कुमारियों का आलिङ्गन, पुरुष मैथुन, अपने गात्रों की हानि, विरेचन और वमन, दक्षिण दिशा की ओर गमन करना, व्याधि से अभिभव, फल की अप हानि, पुष्प हानि, गृहों का गिरना, गृह का सम्मार्जन, पिशाच, राक्षस, वानर, ऋक्ष और नरों के साथ क्रीड़ा करना, दूसरे से अभिभव और उससे ही व्यसन की उत्पत्ति, गेरुआ वस्त्रों का धारण करना, स्त्री के साथ क्रीड़न, स्नेह पान और अवगाहन तथा रक्त माल्य और अनुलेपन करना ये सब दुःस्वप्न होते है ॥८-१४॥

एवमादीनि चान्यानि दुःस्वप्नानि विनिर्दिशेत् ।
तेषां सङ्कथनं धन्यं भूय प्रस्वापनन्तथा ॥१५
कल्कस्नानन्तिलै होमो ब्राह्मणानाञ्च पूजनम् ।
स्तुतिश्च वासुदेवस्य तथा तस्यैव पूजनम् ॥१६
नागेन्द्रमोक्षश्रवणं ज्ञेयं दुःस्वप्ननाशनम् ।
स्वप्नास्तु प्रथमे यामे सम्वत्सरविपाकिनः ॥१७
षड्भिर्मासै द्वितीये तु त्रिभिर्मासैस्तृतीयके ।
चतुर्थे मासमात्रेण पश्यतो नात्र संशय. ॥१८
अरुणोदयवेलायां दशाहेन फलम्भवेत् ।
एकस्यां यदि वा रात्रौ शुभं वा यदिवाशुभम् ॥१९
पश्चाद्दृष्ट यस्तत्रस्यपाकंविनिर्दिशेत् ।
तस्माच्छोभनकेस्वप्नेश्चात्स्वप्नोनपश्यति ॥२०

इसी प्रकार के तथा ऐसे ही अन्य दु स्वप्न हुआ करते हैं—ऐसा ही विनिर्देश करना चाहिए । ऐसे दुःस्वप्नों का भली भाँति कथन तथा ऐसे स्वप्न देखकर फिर स्वपन करना अच्छा होता है इसका फल फिर बुरा नहीं रहा करता है । कल्क से स्नान, तिलों से होम और ब्राह्मणों का पूजन, भगवान् वासुदेव का स्तवन तथा उनका ही पूजन और गजेन्द्र मोक्ष की कथा का श्रवण करना—इनसे दु स्वप्नों से होने वाले कुफल का नाश हो जाया करता है । स्वप्न यदि प्रथम ही याम होवे तो उसका फल एक वर्ष तक विपाक की दशा में पहुँचता है । दूसरे प्रहर में स्वप्न हो तो उसका फल छैः मास में होता है । तीसरे रात्रि के प्रहर में स्वप्न देखे तो तीन मासों में फल हुआ करता है और चौथे प्रहर में स्वप्न जो दिखाई देता है उसका फल एक मास में हुआ करता है इसमें कुछ भी संशय नहीं है । यदि अरुणोदय के समय में स्वप्न हो तो दस दिन में फल होता है । एक ही रात्रि में शुभ और अशुभ स्वप्न हो तो जो पीछे दिखाई देता है उसी का पाकनिर्दिष्ट करना चाहिए । इसी कारण से यदि कोई अच्छा

स्वप्न हो और पीछे स्वप्न नहीं देखता है तो अच्छा है अतएव अच्छा स्वप्न देखकर फिर सोना ही नहीं चाहिए ॥१५-२०॥

शैलप्रासादनागाश्ववृषभारोहणं हितम् ।
द्रुमाणां श्वेतपुष्पाणां गमने च तथा द्विज ॥२१
द्रुमतृणोद्भवो नाभौ तथैव बहुबाहुता ।
तथैव बहुशीर्षत्वं फलितोद्भव एव च ॥२२
सुशुक्लमाल्यधारित्वं सुशुक्लाम्बर धारिता ।
चन्द्रार्कताराग्रहणं परिमार्जनमेव च ॥२३
शक्रध्वजालिङ्गनञ्च तदुच्छ्रायक्रिया तथा ।
भूम्यम्बुधीनां ग्रसनं शत्रूणाञ्च बधक्रिया ॥२४
जयो विवादे द्यूते च संग्रामे च तथा द्विज ! ।
भक्षणञ्चार्द्रमांसानां मत्स्यानां पायसस्य च ॥२५
दर्शनं रुधिरस्यापि स्नानं वा रुधिरेण च ।
सुरारुधिरमद्यानां पानं क्षीरस्य चाथवा ॥२६
अन्त्रैर्वा वेष्टनं भूमौ निर्मलं गगनं तथा ।
मुखेन दोहनं शस्तं महिषीणां तथा गवाम् ॥२७
सिंहीनां हस्तिनीनाञ्च वडवानां तथैव च ।
प्रसादो देवविप्रेभ्यो गुरुभ्यश्च तथा शुभः ॥२८

अब अच्छे स्वप्नों के विषय में बतलाया जाता है—नागेन्द्र, शैल, अश्व, प्रासाद और वृषभ का समारोहण हितकर हुआ करता है। हे द्विज ! श्वेत पुष्पों वाले द्रुमों का गमन में आरोहण भी शोभन होता है। नाभि में द्रुम और तृणों का उद्भव तथा बहुत सी बाहुओं की उत्पत्ति हो जाना—बहुत सारे मस्तकों का होना और फलितोद्भव, सुन्दर शुक्ल मालाओं का धारण करना शुक्ल वस्त्रों का धारण, चन्द्र, सूर्य और तारा का ग्रहण, परिमार्जन, शक्र की ध्वजा का आलिङ्गन, उसके उच्छ्राय की क्रिया, भूमि तथा अम्बुधियों का ग्रसन, शत्रुओं के बध करने का कर्म,

विवाह, संग्राम और द्यूत में जीत, आर्द्र माँस का भक्षण, मत्स्यों का भक्षण, पायस का खाना, रुधिर का दर्शन, रुधिर में स्नान, सुरा, रुधिर मद्य का पान करना अथवा क्षीर का पान, आँतों के द्वारा वेष्टन जो भूमि में हों, निर्मल गगन, मुख के द्वारा भैंसों तथा गौओं का दोहन प्रशस्त होता है। सिंहनियों का, हथिनियों का और वड़वाओं का भी दोहन प्रशस्त है। देव तथा विप्रों की प्रसन्नता और गुरु वर्ग का प्रसाद भी शुभ होता है। ॥२१-२८॥

अम्भसा त्वभिषेकस्तु गवां शृङ्गाश्रितेन वा।
चन्द्राद् भ्रष्टेन वा राजन्! ज्ञेयो राज्यप्रदो हि सः॥२९
राज्याभिषेकश्च तथाच्छेदनं शिरसस्तथा।
मरणं वह्निदाहश्च वह्निदाहो गृहादिषु॥३०
लब्धिश्च राज्यलिङ्गानां तन्त्रीवाद्याभिवादनम्।
तथोदकानां तरणं तथा विषमलङ्घनम्॥३१
हस्तिनीवडवानाञ्च गवाञ्च प्रसवो गृहे।
आरोहणमथाश्वानां रोदनञ्च तथाशुभम्॥३२
वरस्त्रीणां तथा लाभस्तथालिङ्गनमेव च।
निगडैर्बन्धनं धन्यं तथा विष्ठानुलेपनम्॥३३
जीवतां भूमिपालानां सुहृदामपि दर्शनम्।
दर्शनं देवतानाञ्च विमलानां तथाम्भसाम्॥३४
शुभान्यथैतानि नरस्तु दृष्ट्वा प्राप्नोत्ययत्नाद् ध्रुवमर्थलाभम्।
स्वप्नानि वै धर्मभृतां वरिष्ठ! व्याधेर्विमोक्षञ्च तथाऽऽतुरोऽपि॥३५

जल के द्वारा अभिषेक का होना अथवा गौओं के शृङ्गों के आश्रित जल के द्वारा अभिषिञ्चन होना, हे राजन्! चन्द्र से भ्रष्ट के द्वारा अभिषिञ्चन का होना तो राज्य को प्रदान करने वाला ही जानना चाहिए॥२९॥ राज्याभिषेक का होना, शिर का छेदन हो जाना, मरण, वह्निका दाह, गृह आदि में अग्नि के द्वारा दाह का हो जाना, राज्य के

चिन्हों की प्राप्ति का हो जाना, सन्खो वाले वाद्यों का अभिवादन होना, जलों में तैरना, विषम स्थान का लङ्घन करना, गृह में हथिनी, घड़वा तथा गौओं का प्रसव होना, अश्वों पर समारोहण करना शुभ होना है। अच्छी स्त्रियों का लाभ करना तथा परस्त्रियों का समालिङ्गन करना, निगडों के द्वारा बन्धन का होना, विष्ठा से अनुलेपन होना यह सब धन्य एवं शुभ होना है। जीवित भूमिपालों का तथा सुहृदों का दर्शन प्राप्त करना देव का दर्शन करना, विमल जलों का देखना ये सब परम शुभ स्वप्न हुआ करते हैं। मनुष्य इन ऐसे शुभ स्वप्नों को देख कर बिना ही यत्न के किये धु्रवता से अर्थ का लाभ प्राप्त किया करता है। हे धर्मधारियों में वरिष्ठ! आतुर हो कर भी व्याधियों का विमोक्ष होना शुभ स्वप्न होना है ॥३०–३५॥

१०६–यात्रा के समय मङ्गल-अमङ्गल सूचक शकुन वर्णन

गमनं प्रति राज्ञान्तु संमुखादर्शने च किम् ।
प्रशस्ताश्चैव सम्भाव्य सर्वानिताश्चकीर्तय ॥१
औषधानि त्वयुक्तानिधान्यं कृष्णञ्चयद्भवेत् ।
कार्पासश्चतृणं राजन् ! शुष्कं गोमयमेवच ॥२
इन्धनञ्च तथाङ्गारं गुडं तैलं तथा शुभम् ।
अभ्यक्तं मलिनं मुण्डन्तथानग्नञ्च मानवम् ॥३
मुक्तकेशं रुजार्तञ्च काषायाम्बरधारिणम् ।
उन्मत्तकन्तथा सत्व दीनञ्चाथ नपुंसकम् ॥४
अयः पङ्कन्तथा चर्म केशबन्धनमेव च ।
तथैवाद्धृतसाराणि पिण्याकादीनि यानि च ॥५
चण्डालश्वपचाश्चैव राजबन्धनपालकाः ।

वधकाः पापकर्माणो गर्भिणी स्त्री तथैवच ॥६
तुषभस्मकपालास्थिभिन्नभाण्डानि यानि च ।
रक्तानि चैव भण्डानि मृतंशाङ्गिकमेवच ॥७
एवमादीनि चान्यानि अशस्तान्यभिदर्शने ।
अशस्तो वाद्यशब्दश्च भिन्नभैरवजर्जरं ॥८

महर्षि मनु ने कहा—हे भगवान्! जिस समय में राजा लोग गमन किया करते हैं तो सम्मुख में दर्शन करने में क्या-क्या प्रशस्त हुआ करते हैं, यह बतलाकर इन सम्पूर्ण शकुनों का वर्णन कृपा करके कहिये। ॥१॥ श्री मत्स्य भगवान ने कहा—हे राजन्! अयुक्त औषध, कृष्ण धान्य, कपास, तृण, शुष्क गोमय, ईंधन, अङ्गार, गुड, तैल ये सब शकुन शुभ हुआ करते हैं। अभ्यङ्ग किया हुआ, मलिन, मुण्ड, नग्न मानव, केशों को खुले हुए रखने वाला, रोग से आर्त काषाय वस्त्रों के धारण करने वाला, उन्मत्त सत्व, दीन नपुंसक, लोहापक, चर्म, केशबन्धन, विण्याक आदि सार वस्तुएं बन्धन पालक, वधक, पाप कर्म करने वाले, गर्भिणी स्त्री तुष, भस्म, कपाल, अस्थि, भिन्न भाण्ड, रक्त वर्ण के भाण्ड, मृत, शार्ङ्गिक इस प्रकार से इत्यादि अभिदर्शन में अशस्त होते हैं। वाद्य शब्द और भिन्न भैरव जर्जर शब्द भी अशस्त हुआ करता है ॥२—८॥

पुरतः शब्द एहीति शस्यते न तु पृष्ठतः ।
गच्छेति पश्चात् धर्मज्ञो! पुरस्तात्तुविगर्हितः ॥९
क्व यासि तिष्ठमा गच्छकिन्तेतत्र गतस्य तु ।
अन्ये शब्दाश्च ये निष्ठास्तेविपत्तिकराअपि ॥१०
ध्वजादिषु तथास्थान क्रव्यादाना विगर्हितम् ।
स्खलनं वाहनानाञ्च वस्त्रसङ्गस्तथैवच ॥११
निर्गतस्य तु द्वारादौ शिरसश्चाभिघातिता ।
छत्रध्वजाना वस्त्राणा पतनञ्च तथा शुभम् ॥१२
दृष्टे निमित्ते प्रथममङ्गल्यविनाशनम् ।

केशवं पूजयेद्विद्वान् स्तवेन मधुसूदनम् ॥१३
द्वितीये तु ततोदृष्टे प्रतीपे प्रविशेद्गृहम् ।
अथेष्टानि प्रवक्ष्यामि मङ्गलानि तथाऽनघ ! ॥१४

आगे की ओर से आओ—यह शब्द शस्त होता है पीछे की ओर से प्रशस्त नहीं होता है । हे धर्मज्ञ पीछे की ओर से 'गच्छ अर्थात् जाओ'—यह शब्द शस्त कहा गया है जो कि सामने गर्हित माना गया है । 'कहा जाते हो'–'रुकजाओ'–'वहा पर जाने से तुमको क्या प्रयोजन है'–ये इस तरह के तथा ऐसे ही अन्य शब्द जो होते हैं वे विपत्ति करने वाले भी हुआ करते हैं ॥६, १०॥ क्रव्यादो राक्षसो का ध्वज आदि में स्थान गर्हित हुआ करता है । वाहनो का स्खलन, वस्त्र सङ्ग, द्वार आदि मे निर्गमन करने वाले के शिर का अवघात तथा छत्र, ध्वज और वस्त्रो का पतन भी शुभ होता है । प्रथम मे ही निमित्त के देखने पर अमङ्गल्य का विनाश होता है । विद्वान् पुरुष का कर्त्तव्य है कि भगवान् केशव का पूजन करे और मधुसूदन प्रभु का स्तवन करना चाहिये ॥६–१३॥ हे अनघ ! फिर द्वितीय प्रतीप के देखने पर गृह मे प्रवेश कर लेना चाहिए । इसके पश्चात् इष्ट मङ्गलो के विषय मे मैं वर्णन करूंगा ॥१४॥

श्वेताः सुमनसः श्रेष्ठाः पूर्णकुम्भास्तथैव च ।
जलजाः पक्षिणश्चैवमांसं मत्स्याश्चपार्थिव ! ॥१५
गावस्तुरङ्गमा नागा बद्ध एकःपशुस्त्वजः ।
त्रिदशाः सुहृदो विप्रा ज्वलितश्च हुताशनः ॥१६
गणिका च महाभाग ! दूर्वा चार्द्रञ्च गोमयम् ।
रुक्मरूप्यन्तथा ताम्रं सर्वरत्नानि चाप्यथ ॥१७
औषधानिव धर्मज्ञ ! यवाः सिद्धार्थकास्तथा ।
नृवाह्यमानं यानञ्च भद्रपीठन्तथैव च ॥१८
खड्ग चक्रं पताका च मृदश्चायुधमेव च ।
राजलिङ्गानि सर्वाणि सर्वे रुदितवर्जिताः ॥१९

घृतं दधि पयश्चैव फलानिविविधानि च ।
स्वस्तिकं वर्द्धमानञ्च नन्द्यावर्तं सकौस्तुभम् ॥२०
वादित्राणां सुखः शब्दः गम्भीरः सुमनोहरः ।
गान्धारषड्जऋषभा ये च शस्तास्तथा स्वराः ॥२१

हे पार्थिव ! श्वेत पुष्प परम श्रेष्ठ होते हैं तथा पूर्ण कुम्भ भी परम शुभ हुआ करते हैं । जलज—पक्षीगण—मांस—मत्स्य—गौएं—तुरङ्गम—नाग—बद्ध एक पशु—अज—त्रिदश—सुहृद विप्र—जलती हुई अग्नि—गणिका—ताम्र भोर हे महाभाग ! सब प्रकार के रत्न—हे धर्मज्ञ ! दूर्वा—आर्द्र गोमय—सुवर्ण-रूप्यक-औषध—यव-सिद्धार्थक-मनुष्यों के द्वारा वाह्यमान यान—भद्रपीठ—खड्ग—चक्र—पताका—मृत्तिका—आयुध—सम्पूर्ण—राजा के चिह्न जो रुदित से रहित होवे । घृत—दधि—पय—विविध भांति के फल—स्वस्तिक—वर्द्धमान—नन्द्यावर्त—कौस्तुभ—वादित्रों का सुखकर शब्द जो गम्भीर एवं मनोहर हो—गन्धार, षड्ज—ऋषभ जो कि शस्त्र तथा स्वर हैं ॥ १५, १६, १७ १८, १६, २०, २१ ॥

वायुः सशर्करोरूक्षः सर्वत्र समुपस्थितः ।
प्रतिलोमस्तथा नीचो विज्ञेयोभयकृद्द्विज ! ॥२२
अनुकूलोमृदुः स्निग्धः सुखस्पर्शः सुखावहः ।
रूक्षारूक्षस्वराभद्रा. क्रव्यादा परिगच्छताम् ॥२३
मेघाः शस्ताघना. स्निग्धागजबृंहितसन्निभाः ।
अनुलोमास्तडित्वन्तः शक्रचापन्तथैवच ।२४
अप्रशस्ते तथा ज्ञेये परिवेषप्रवर्षणे ।
अनुलोमा ग्रहा शस्ता वाक्पतिस्तु विशेषतः ॥२५
आस्तिक्य श्रद्दधानत्व तथा पूज्याभिपूजनम् ।
शस्तान्येतानि धर्मज्ञ ! प. च स्यान्मनसः प्रियम् ॥२६
मनसस्तुष्टिरेवात्र परमं जयलक्षणम् ।

एकतः सर्वलिङ्गानि मनसस्तुष्टिरेकतः ॥२७
मनोत्सुकत्वं मनसः प्रहर्षः शुभस्य लाभो विजयप्रवादः ।
मङ्गल्यलब्धिः श्रवणञ्च राजन् ! ज्ञेयानि नित्यं विजयावहानि॥२८

धूलि के सहित रूक्ष वायु जो कि सभी जगह समुपस्थित है। हे द्विज ! जो प्रतिलोम और नीच है वह भय करने वाला ही समझना चाहिए। अनुकूल—कोमल—स्निग्ध—सुख देने वाले स्पर्श से युक्त—सुख का आवाहन करने वाला—रूक्ष—अरूक्ष स्वर—अभद्र—परिगमन करने वालो के क्रव्याद—हाथियो के बृंहित के सदृश घने, स्निग्ध मेघ प्रशस्त होते हैं। अनुलोम विद्युत से छन्न-शक्रचाप तथा परिवेष में प्रवर्षण प्रशस्त जानने चाहिए। जो ग्रह अनुलोम होते हैं वे प्रशस्त हुआ करते हैं और वाक्पति विशेष रूप से प्रशस्त माने गये है। आस्तिकता—श्रद्धानता—पूज्यगण का अभिपूजन—हे धर्मज्ञे ! ये सब प्रशस्त हुआ करते हैं और वह भी परम प्रशस्त माना गया है जो अपने मन के लिये अतिशय प्रिय होता है। यहाँ पर अपने मन की जो तुष्टि हुआ करती है वह ही परम जय का लक्षण हुआ करता है। एक ओर तो ये सभी चिह्न होते हैं और एक ओर अपने मन की तुष्टि हुआ करती है। मन की उत्सुकता अर्थात् उत्साह और मनमे होने वाला प्रहर्ष यह ही शुभ का लाभ और विजय का प्रवाद होता है। मङ्गल्य की लब्धि और उसका श्रवण हे राजन् ! नित्य ही विजय के आवह करने वाले जानने चाहिए। ॥ २२-२८ ॥

११०—वराहवतार के विषय में अर्जुन का प्रश्न

प्रादुर्भावान् पुराणेषु विष्णोरमिततेजसः ।
सता कथयता विप्र वाराह इति नः श्रुतम् ॥१
न जाने तस्यचरितं न विधिं नच विस्तरम् ।

न कर्मगुणसंस्थानं न चाप्यन्तंमनीषिणः ॥२
किमात्मको वराहोऽसौ किं मूर्त्तिः कास्य देवता ।
किं प्रमाणः किं प्रभावः किं वा तेन पुरा कृतम् ॥३
एतन्मे शंस तत्वेन वाराहं श्रुतिविस्तरम् ।
यथार्हञ्च समेतानां द्विजातीनां विशेषतः ॥४
एतत्ते कथयिष्यामि पुराणं ब्रह्मसम्मितम् ।
महावराहचरितं कृष्णस्याद्भुतकर्मणः ॥५
यथा नारायणो राजन् ! वाराहं वपुरास्थितः ।
दंष्ट्रया गां समुद्रस्थामुज्जहारारिमर्दनः ॥६
छन्दोगीभिरुदाराभिः श्रुतिभि समलङ्कृत ।
मनः प्रसन्नता कृत्वा निबोध विजयाधुना ॥७

अर्जुन ने कहा—हे विप्र ! अपरिमित तेज से युक्त भगवान् विष्णु के पुराणो मे प्रादुर्भावो को कहने वाले सत्पुरुषो से हमने एक वाराह का भी प्रादुर्भाव सुना है ॥ १ ॥ उस वाराह का चरित्र मैं नही जानता हूँ और न तो उसकी कोई विधि ही मुझे मालूम है और न कुछ विस्तार का ही ज्ञान है। उनके कर्म और गुणो का संस्थान क्या था—यह भी मैं नही जानता हूँ। उन अत्यन्त मनीषी प्रभु का तो अद्भुत ही कर्म—गुण संस्थान होगा ॥ २ ॥ यह वराह किस स्वरूप वाला प्रादुर्भाव था ? इनकी कैसी मूर्त्ति थी और इनका देवता कौन था ? इनका प्रमाण कितना था और क्या प्रभाव था तथा पहिले उन्होंने क्या किया था ? ॥ ३ ॥ श्रुति विस्तार इस वाराह को आप तात्त्विक रूप से मुझे सब बतलाइये ? विशेष रूप से ये एकत्रित हुए द्विजाति गण है इनके अनुसार जो भी योग्य हो श्रवण कराइये ॥ ४ ॥ श्री शौनक जी ने कहा—अद्भुत कर्म वाले भगवान् श्रीकृष्ण के इस महा वराह चरित्र को जो ब्रह्म सम्मित पुराण है मैं आपको कहूँगा ॥ ५ ॥ हे राजन् ! जिस प्रकार से भगवान् शत्रुओं के मर्दन करने वाले नारायण ने वाराह के वपु मे समास्थित

होकर अपनी दाढ से इस समुद्र मे स्थित भूमि को उठाकर इसका उद्धार किया था ॥ ६ ॥ छन्द, वाणी, उदार श्रुतियों से सम्यक् प्रकार से अलंकृत होकर तथा मन की प्रसन्नता करके अब उस विजय का ज्ञान करलो ॥ ७ ॥

इद पुराणं परमं पुण्य वेदैश्च सम्मितम् ।
नानाश्रुतिसमायुक्तं नास्तिकाय न कीर्त्तयेत् ॥८
पुराण वेदमखिल साङ्ख्यं योगञ्च वेद यः ।
कार्त्स्न्येन विधिना प्रोक्तं सोऽस्यार्थं वदिष्यति ॥९
विश्वेदेवास्तथा साध्या रुद्रादित्यास्तथाश्विनौ ।
प्रजाना पतयश्चैव सप्त चैव महर्षयः ॥१०
मनः सङ्कल्पजाश्चैव पूर्वजा ऋषयस्तथा ।
वसवो मरुतश्चैव गन्धर्वा यक्षराक्षसाः ॥११
दैत्या. पिशाचाः नागाश्च भूतानि विविधानि च ।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया. वैश्याः शूद्रा. म्लेच्छाश्च ये भुवि ॥१२
चतुष्पादानिसर्वाणि तिर्यग्योनिशतानि च ।
जङ्गमानिचसत्त्वानियच्चान्यज्जीवसज्ञितम् ॥१३
पूर्णे युगसहस्रे तु ब्राह्मेऽहनि तथागते ।
निर्वाणे सर्वभूताना सर्वोत्पातसमुद्भवे ॥१४

यह वराह पुराण परम पुण्यमय है और समस्त वेदो के सम्मत है । यह अनेक श्रुतियो से भी समायुक्त है । इसका कीर्त्तन किसी भी नास्तिक के समक्ष मे नही करना चाहिए यह सम्पूर्ण पुराण वेद ही है । जो साङ्ख्य और योग को जानता है वह पूर्ण विधि से कथित इसको सोद्देश्य सम्पादन करने के लिये कहेगा ॥ ८ । ९ ॥ विश्वेदेवा, साध्य, रुद्र, आदित्य, अश्विनीकुमार और प्रजाओ के पतिगण सप्त महर्षि है । पूर्वज जो ऋषिगण थे वे सब मन के सङ्कल्प से ही समुत्पन्न हुए है । वसुगण, मरुद्गण, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, दैत्य, पिशाच, नाग, विविध

भूत, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और जो भूमण्डल में म्लेच्छ हैं—समस्त चतुष्पाद, तिर्यग्योनिगत सैकड़ों जङ्गम सत्व और जो अन्य जीव संज्ञा से युक्त सब एक सहस्र युगों के पूर्ण होने पर ब्रह्माजी के दिन के समागत हो जाने पर सर्वोत्पातों के समुद्भव वाले समस्त भूतों का निर्वाण होगया था ॥ १०–१४ ॥

हिरण्यरेतास्त्रिशिखस्ततो भूत्वा वृषाकपिः ।
शिखाभिर्विधमंल्लोकानशोषयत वह्निना ॥१५
दह्यमानास्ततस्तस्य तेजोराशिभिरुद्गतैः ।
विवर्णवर्णा दग्धाङ्गा हताचिष्मद्भिराननैः ॥१६
साङ्गोपनिषदो वेदा इतिहासपुरोगमाः ।
सर्वविद्याः क्रियाश्चैव सर्वधर्मपरायणाः ॥१७
ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा प्रभवं विश्वतोमुखम् ।
सर्वदेवगणाश्चैव त्रयस्त्रिंशच्च कोटयः ॥१८
तस्मिन्नहनि सम्प्राप्ते तं हंसं महदक्षरम् ।
प्रविशन्ति महात्मानं हरिं नारायणं प्रभुम् ॥१९
तेषां भूयः प्रवृत्तानां निधनात्पुनरुच्यते ।
यथा सूर्यस्य सततमुदयास्तमने इह ॥२०
पूर्णे युगसहस्रान्ते सर्वं निःशेष उच्यते ।
यस्मिन् जीवकृतं सर्वं निःशेषं समवस्थितम् ॥२१

इसके अनन्तर हिरण्य रेता त्रिशिख वृषाकपि होकर शिखाओं से लोकों को विशेष रूप से धमन करते हुए वह्नि के द्वारा सबका शोषण कर दिया था । इसके अनन्तर समुद्गत उसके तेज की राशियों से दह्यमान होते हुए अर्चिष्मान आननों के विवर्ण वर्ण वाले, दग्ध अङ्गों से युक्त होकर हत हो गये थे । साङ्ग वेद तथा उपनिषद्, इतिहासों को आगे करके सम्पूर्ण विद्या-सर्व धर्म परायण क्रियायें और विश्व तो मुख प्रभव ब्रह्माजी को आगे करके तैंतीस करोड़ समस्त देवगण उस दिन के सम्प्राप्त होनेपर महदक्षर, महात्मा, हंस रूप प्रभु नारायण हरि के धाम में प्रवेश करते

हैं । प्रवृत हुए उनके पुनः निधन से उत्पत्ति कही जाती है जिस तरह से यहाँ पर निरन्तर सूर्य का उदय और अस्तमन हुआ करते हैं । एक सहस्र युगों के पूर्ण हो जाने पर सबका निःशेष कहा जाता है जिसमें सब जीव-कृत निःशेष समवस्थित हुआ था ॥१५-२१॥

संहृत्य लोकानखिलान् सदेवासुरमानुषान् ।
कृत्वासुसंस्था भगवानास्तएकजगद्गुरुः ॥२२
स स्रष्टा सर्वभूतानां कल्पान्तेषु पुनः पुनः ।
अव्ययं शाश्वतो देवो यस्यसर्वमिदंजगत् ॥२३
नष्टार्ककिरणो लोके चन्द्रग्रहविवर्जिते ।
त्यक्तधूमाग्निपवने क्षीणयज्ञवषट्क्रिये ॥२४
अपक्षिगण सम्पाते सर्वप्राणहरे पथि ।
अमर्यादाकुले रौद्रे सर्वतस्तमसावृते ॥२५
अदृश्ये सर्वलोकेऽस्मिन्नभावे सर्वकर्मणाम् ।
प्रशान्ते सर्वसम्पाते नष्टे वैरपरिग्रहे ॥२६
गते स्वभावसंस्थाने लोके नारायणात्मके ।
परमेष्ठी हृषीकेशः शयनायोपचक्रमे ॥२७
पीतवासा लोहिताक्षः कृष्णो जीमूतसन्निभः ।
शिखासहस्रविकचजटाभारं समुद्वहन् ॥२८
श्रीवत्सलक्षणधरं रक्तचन्दनभूषितम् ।
वक्षो बिभ्रन्महाबाहुः स विष्णुरिव तोयदः ॥२९

समस्त देव, असुर और मानवों के सहित पूर्ण सम्पूर्ण लोकों का संहार करके जगत् में गुरु एक ही भगवान् असुसंस्था करके स्थित हुआ करते हैं । इस तरह वही कल्पों के अन्त में पुनः पुनः समस्त भूतों का स्रष्टा होते हैं । वह अव्यय-शाश्वत देव हैं जिनका यह सम्पूर्ण जगत् है । सूर्य की किरण जिसमें नष्ट हो गई है और चन्द्र तथा ग्रहों से जो वर्जित है— धूम, अग्नि और पवन ने भी जिसका त्याग कर दिया है तथा अग्नि

रहित और यज्ञ एवं वषट् क्रिया से क्षीण, पक्षिगण के सम्पात से शून्य, समस्त प्राणियों के हरण करने वाले, अमर्यादा से आकुल, रौद्र, सब ओर से अन्धकार से समावृत मार्ग में सब लोकों के दृश्यमान होने पर, सब कर्मों के अभाव में सब सम्पात के प्रशान्त हो जाने पर इस नारायणात्मक लोक में स्वभाव संस्थान के गत होने पर परमेष्ठी हृषीकेश ने अपने शयन करने का उपक्रम किया था। पीत वस्त्रधारी, लोहित नेत्रों वाले, मेघ के सदृश, सहस्रों शिखाओं के विकच जटाओं के भार का समुद्वहन करने वाले श्रीकृष्ण विराजमान थे ॥ २२, २३, २४, २५, २६, २७, २८ ॥ श्रीवत्स के लक्षण को धारण करने वाले और रक्त चन्दन से विभूषित वक्षःस्थल को रखने वाले—महान् बाहुओं से युक्त वह तोयद के समय ही श्री विष्णु भगवान् थे ॥ २९ ॥

पुण्डरीकसहस्रेण स्रग्मयेन शुशुभे शुभा ।
पत्नी चास्य स्वयं लक्ष्मीर्देहमावृत्य तिष्ठति ॥ ३०
ततः स्वपिति शान्तात्मा सर्वलोकशुभावहः ।
किमप्यमितयोगात्मा निद्रायोगमुपागतः ॥ ३१
ततो युगसहस्रे तु पूर्णे स पुरुषोत्तमः ।
स्वयमेव विभुर्भूत्वा बुध्यते विबुधाधिपः ॥ ३२
ततश्चिन्तयते भूयः सृष्टिं लोकस्य लोककृत् ।
नरान् देवगणांश्चैव पारमेष्ठ्येन कर्मणा ॥ ३३
ततः संचिन्तयन् कार्यं देवेषु समितिञ्जयः ।
संभवं सर्वलोकस्य विदधाति सतां गतिः ॥ ३४
कर्ता चैव विकर्ता च संहर्ता च प्रजापतिः ।
नारायणः परं सत्यं नारायणः परं पदम् ॥ ३५

इन विष्णु भगवान् की पत्नी स्वयं साक्षात् लक्ष्मी जो देह को आवृत करके स्थित रहती है एक सहस्र पुण्डरीकों की माला से वह शुभा शोभित हो रही थी ॥ ३० ॥ इसके उपरान्त समस्त लोक में शुभ का

आवहन करने वाले प्रशान्त आत्मा से सम्पन्न शयन किया करते हैं। यह अमित योग के स्वरूपधारी किसी योग निद्रा को प्राप्त हो गये थे ॥२१॥ इसके अनन्तर एक सहस्र युगों के पूर्ण हो जाने पर वह विभु पुरुषोत्तम जो विबुधों के स्वामी हैं स्वयमेव ही प्रबुद्ध हो जाया करते हैं ॥२२॥ इसके पश्चात् लोकों के करने वाले ने फिर लोक की सृष्टि के विषय में चिन्तन किया था। नरगण और देवगणों का पारमेष्ठ्य कर्म द्वारा चिन्तन करते हैं। फिर अमितञ्जय प्रभु देवों के विषय में कार्य्य का चिन्तन करते हुए सत्पुरुषों की गति प्रभु समस्त लोक की उत्पत्ति को किया करते हैं। वह प्रजापति इस जगत के कर्त्ता विकर्त्ता और संहार के कर्त्ता हैं। नारायण परसत्य है—नारायण परम पद है ॥ २३–२५ ॥

नारायणः परो यज्ञो नारायणः परा गतिः।
स स्वयम्भूरिति ज्ञेय स स्रष्टाभुवनाधिपः ॥२६
स सर्वमिति विज्ञेयो ह्येष यज्ञः प्रजापतिः।
यद्वेदितव्यस्त्रिदशैस्तदेष परिकीर्त्यते ॥२७
यस्तु वेद्य भगवतो देवा अपि न तद्विदुः।
प्रजाना पतय सर्वे ऋषयश्च सहामरैः ॥२८
नास्यान्तमधिगच्छन्ति विचिन्वन्त इति श्रुतिः।
यदस्य परम रूप न तत्पश्यन्ति देवताः ॥२९
प्रादुर्भावे तु यद्रूपन्तदर्चन्ति दिवौकस.।
दर्शित यदि तेनव तदवेक्ष्यन्ति देवताः ॥४०
यन्न दर्शितवानेष कस्तदन्वेष्टुमीहते।
ग्राम्याणा सर्वभूतानामग्निमारुतयोर्गति. ॥४१
तेजसस्तपसश्चैव निधानममृतस्य च।
चतुराश्रमधर्मेशश्चातुर्होत्रफलाशनः ॥४२
चतुः सागरपर्यन्तश्चतुर्युगनिवर्तकः।
तदेष संहृत्य जगत्कृत्वा गर्भस्थामात्मनः ॥

सुप्तोत्थाण्डं महायोगी धृतं वर्षसहस्रकम् ॥४३॥
सुरासुरद्विजभुजगाप्सरोगणैर्द्रुमौषधिक्षितिधरयक्षगुह्यकैः ।
प्रजापतिः श्रुतिभिरसङ्कुलं तदा स सर्वसृजज्जगदिदमात्मना प्रभुः ॥

नारायण पर यज्ञ हैं—नारायण परागति है—वह स्वयम्भू—यह जानने के योग्य है—वह भुवन का स्वामी सृजन करने वाले हैं ? वह सब कुछ है—ऐसा ही समझना चाहिए। यही यज्ञ और प्रजापति है। जो देवों के द्वारा जानने के योग्य है और वह ऐसा ही कीर्तित किया जाता है। जो कुछ भी भगवान् का वेद्य (जानने के योग्य) है। उसे देवगण भी नहीं जानते हैं। न प्रजापति जानते हैं और अमरगणों के साथ ऋषि लोग ही जानते हैं ॥ ३६ । ३७ । ३८ ॥ विशेष रूप से खोज करते हुए भी इस प्रभु के अन्त का ज्ञान कोई भी प्राप्त नहीं किया करते हैं—ऐसी श्रुति है। जो इसका पर रूप होता है उसे देवगण भी नहीं देख पाते हैं। जब इनके प्रादुर्भाव का कोई स्वरूप होता है उसी का देवगण समर्चन किया करते हैं। यदि इन्होंने उसे दिखला दिया है तो देवता लोग उसे देख पाते हैं। जो कभी भी इन्होंने नहीं दिखलाया है उसकी खोज करने की कौन इच्छा करता है। अर्थात् इसका अन्वेषण कोई भी नहीं कर पाता है। वह समस्त प्राणियों की गति अग्नि और मारुत की होती है। तेज तप और अमृत का निधान—चारों आश्रमों के धर्म का ईश—चातुर्होत्रिक फलाशन—चार सागरों की सीमा तक रहने वाला—चारों युगों का निवर्तक वह इसका संहार करके फिर अपने गर्भ में स्थित जगत् की रचना करता हुआ महायोगी एक सहस्र वर्ष तक धारण किये अण्ड को छोड़ देता था। सुर—असुर—द्विज—भुजग और अप्सराओं के गणों से युक्त—ओषधि—क्षितिधर—यक्ष और गुह्यकों से समन्वित—श्रुतियों से असङ्कुल इस जगत् को उस समय में वह प्रजापति प्रभु आत्मा से ही सृजन किया करता है ॥ ३९—४४ ॥

१११–वराहवतार चरित्र वर्णन

जगदण्डमिद पूर्वमासीद्दिव्यं हिरण्मयम् ।
प्रजापतेरियं मूर्तिरितीय वैतकी श्रुतिः ॥१
तत्तु वर्षसहस्रान्ते विभेदर्ध्वमुख विभुः ।
लोकसर्जनहेतोस्तु विभेदाधोमुख नृप ! ॥२
भूयोऽष्टधा विभेदाण्ड विष्णर्वै लोकजन्मकृत् ।
चकार जगतश्चात्र विभागसविभागकृत् ॥३
यच्छिद्रमूर्द्ध माकाश विवराकृतिता गतम् ।
विहित विश्वयोगेन यदधस्तद्रसातलम् ॥४
यदण्डमकरोत्पूर्व देवोलोकचिकीर्षया ।
तत्र यत्सलिलस्रसोऽभवत्काञ्चनोगिरिः ॥५
शैलैः सहस्रै महतो मेदिनो विषमाभवत् ।
सैश्च पर्वतजालौघैर्बहुयोजनविस्तृतै ॥६
पीडिता गुरुभिर्देवी व्यथिता मेदिनी तदा ।
महामते भागवरा दिव्य नारायणात्मकम् ॥७

महर्षि शौनक जी ने कहा यह जगत् का अण्ड पहिले परम दिव्य हिरण्य था। यह जगदण्ड साक्षात् प्रजापति की मूर्त्ति ही था—ऐसा श्रुति का वचन कहता है ॥१॥ वह एक सहस्र वर्ष के अन्त मे विभुने ऊर्ध्व मुख को विभेदन किया था। हे नृप ! लोक के सर्जन के हेतु से अधोमुख का भेदन किया था। लोकों के जन्म के करने वाले भगवान् विष्णु ने फिर उस अण्ड को आठ भागो मे भेदन किया था। विभाग के करने वाले प्रभु ने यहाँ पर जगत् का विभाग किया था। ऊर्ध्व आकाश में जो छिद्र था वह विवर की आकृति को प्राप्त हो गया था। विश्व के योग से जो अधोभाग था उसे रसातल किया था। देवने जो पहिले जो अण्ड किया था वह लोक की रचना करने की इच्छा से ही किया था।

यहाँ पर जो सलिल स्कन्न हुआ था वह सुवर्ण गिरि हो गया था। सहस्रों शैलों के होने से यह मही मेदिनी विषम हो गई थी जो कि बहुत से योजनों के विस्तार से युक्त पर्वतों के जालों के ओघों से युक्त थी। उस समय में इन बड़े भारी पर्वतों से यह पीड़ित एवं व्यथित मेदिनी देवी हो गयी थी हे महामते! यह अण्ड परम दिव्य—बहुत अधिक बल वाला नारायण के स्वरूप से सम्पन्न था ॥१-७॥

हिरण्मयं समुत्सृज्य तेजो वै ज्ञानरूपिणम् ।
अशक्ता वै धारयितुमधस्तात्प्राविशत्तदा ॥८
पीड्यमाना भगवतस्तेजसा तस्य सा क्षितिः ।
पृथ्वीं विशन्तीं दृष्ट्वा तु तामधो मधुसूदनः ॥९
उद्धारार्थं मनश्चक्रे तस्या वै हितकाम्यया ॥१०
मत्तेज एषा वसुधा समासाद्य तपस्विनी ।
रसातलं प्रविशति पङ्के गौरिव दुर्बला ॥११
त्रिविक्रमायामितविक्रमाय महावराहाय सुरोत्तमाय ।
श्रीशार्ङ्गचक्रासिगदाधराय नमोऽस्तु ते देववर ! प्रसीद
तव देहाज्जगज्जातं पुष्करद्वीपमुत्थितम् ।
ब्रह्माणमिह लोकानां भूतानां शाश्वतं विदुः ॥१३
तव प्रसादाद्देवोऽयं दिवं भुङ्क्ते पुरन्दरः ।
तव क्रोधाद्धि बलवान् जनार्दन जितो बलिः ॥१४

ज्ञानरूपी हिरण्मय तेज का समुत्सृजन करके उसे धारण करने के लिए अशक्त होकर उस समय में नीचे की ओर प्रवेश कर गया था। उस समय में भगवान् के तेज से वह क्षिति पीड्यमाना हो गई थी। भगवान् मधुसूदन ने अधोभाग में प्रवेश करती हुई उस पृथ्वी को देखा था और फिर उस पृथ्वी के हित की कामना से उसके उद्धार करने के लिये मनमें विचार किया था ॥८, ९, १०॥ श्री भगवान् ने कहा—इस तपस्विनी वसुधा ने मेरे तेज को प्राप्त करके यह दुर्बल गौ पङ्क में जिस तरह

विषण्ण होती है उसी भाँति यह मेदिनी रसातल मे प्रवेश करती है। ।११।
पृथिवी ने कहा—हे देव वर ! त्रिविक्रम से आयामित विक्रम वाले सुरो मे उत्तम—श्री शार्ङ्ग, चक्र, असि और गदा के धारण करने वाले महा-वराह के लिये नमस्कार है। आप प्रसन्न होइये ॥१२॥ आपके ही देह से यह सम्पूर्ण जगत समुत्पन्न हुआ है और पुष्कर द्वीप उत्थित हुआ है। यहा पर ब्रह्मा को लोको के और भूतो का शाश्वत जानना चाहिए। हे देव! यह आपका ही प्रसाद है कि इन्द्र देव दिवलोक का उपभोग किया करते है। आपके ही क्रोध से भगवान् जनार्दन के द्वारा यह महा बलवान् बलि जीतमलिया गया है ॥१३, १४.।

धाता विधाता संहर्ता त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ।
मनु कृतान्तोऽधिपतिज्वलनः पवनोघनः ॥१५
वर्णाश्चाश्रमधर्माश्च सागरास्तरवो जलम् ।
नद्यो धर्मश्च कामश्च यज्ञायज्ञस्य च क्रियाः ॥१६
विद्यावेद्यञ्च सत्वञ्च ह्रो श्रीः कीर्तिधृंति क्षमा ।
पुराण वेदवेदाङ्ग साङ्ख्ययोगो भवाभवौ ॥१७
जङ्गम स्थावरञ्चैव भविष्यञ्च भवञ्च यत् ।
सर्वन्तच्च त्रिलोकेषु प्रभावोपहितन्तव ॥१८
त्रिदशोदारफलदः स्वर्गस्त्रीचारुपल्लवः ।
सर्वलोकमन. कान्तः सर्वसत्वमनोहरः ॥१९
विमानानेकविटपस्तोयदाम्बुमधुस्रवः ।
दिव्यलोकमहास्कन्धमर्त्यलोकप्रशाखवान् ॥२०
सागराकरनिर्यासो रसातलजलाश्रयः ।
नागेन्द्रपादपोपेतो जन्तुपक्षिनिषेवितः ॥२१

हे भगवन् ! आपके अन्दर धाता-विधाता और संहार करने वाला, इन तीनों कर्म्मों के करने की शक्ति विद्यमान है। मनु, अधिपति कृतान्त, अग्नि, पवन, घन, चारो वर्ण, चरो ब्रह्मचर्य्यादि आश्रमो के धर्म्म, सागर,

तरु, जल, नदियाँ, धर्म, काम, यज्ञायज्ञ की क्रियाऐं—विद्या, वेद्य, मन्त्र, ह्री श्री, कीर्ति, धृति, क्षमा, पुराण, वेद, वेदों के समस्त अङ्ग साङ्ख्य, साङ्ख्य, योग, भव, अभव, स्थावर, जङ्गम, भविष्य, भवद्, यह सभी कुछ तीनों लोकों में आपका ही प्रभाव है ॥१५-१८॥ देवों के उदार फल के दाता—स्वर्गीय स्त्रियों के चारु पल्लव—सब लोकों के मन के कान्त—सब सत्त्वों के मनोहर—विमानों के अनेक विटप—मेघों के जल का मधुस्राव—दिव्य लोक के महा स्कन्ध—सत्यलोक के प्रशाखा वाले—सागर के आकार का निर्यास—रसातल के जल का आश्रय—नागेन्द्र पादपों से समुपेत—जन्तु और पक्षिगण से निषेवित आप ही हैं ॥१९-२१॥

शीलाचारार्थगन्धस्त्वं सर्वलोकमयो द्रुमः ।
द्वादशार्कमयद्वीपो रुद्रैकादशपत्तनः ॥२२
वस्वष्टाचलसंयुक्तस्त्रैलोक्याम्भोमहोदधिः
सिद्धसाध्योर्मिकलिलः सुपर्णानिलसेवितः ॥२३
दैत्यलोकमहाग्राहो रक्षोरगझषाकुलः ।
पितामहमहाधैर्यः स्वर्गस्त्रीरत्नभूषितः ॥२४
धीश्रीह्रीकान्तिभिर्नित्यं नदीभिरुपशोभितः ।
कालयोगमहापर्वप्रयागगतिवेगवान् ॥२५
त्वं स्वयोगमहावीर्यो नारायणमहार्णवः ।
कालात्मत्वा प्रसन्नाभिरद्भिर्ह्लादयसे पुनः ॥२६
त्वया सृष्टास्त्वया लोकास्त्वयैव प्रतिसंहृताः ।
विशन्ति योगिनः सर्वे त्वामेव प्रतियोजिताः ॥२७
युगे युगे युगान्ताग्निः कालमेघो युगे युगे ।
महाभारावताराय देव ! त्वं हि युगे युगे ॥२८

आप ही शीलाचार के आर्थगन्ध हैं । सर्व लोक मय आप द्रुम हैं । द्वादश सूर्यों से परिपूर्ण द्वीप, एकादश रुद्रों के पत्तन, अष्ट वसुओं के बल से संयुक्त त्रिभुवनों के जल के महा समुद्र, सिद्ध और साध्यों की ऊर्मियों

से कलिल, सुपर्णानिल से सेवित, दैत्यों के लोको के महान् ग्राह, राक्षस और उरगों के रोष से समाकुल, पितामह के महान् धैर्य, स्वर्ग की स्त्रियों रूपी रत्नों मे भूषित, धी, ह्री, श्री और कान्ति इनसे तथा नित्य ही नदियो से उपशोभित, कालयोग महान् पर्व के प्रयाग की गति और वेग वाले आप अपने योग के महान् वीय तथा नारायण महार्णव हैं। आप काल होकर परम प्रसन्न जलो से पुनः आह्लादित किया करते हैं। आपने ही इन तीनो लोको का सृजन किया है और आपने ही इनका प्रति संहार भी किया है। सब योगीजन प्रतियोजित होकर आप मे ही प्रवेश किया करते हैं। हे देव ! आप ही युग युग मे युगो के अन्त करने वाली अग्नि हैं—युग-युग मे आप ही काल मेघ हैं और इस महाभार के अवतारण करने के लिए आप ही युग-युग मे हुआ करते हैं ॥२५—२८॥

त्वं हि शुक्लः कृतयुगे त्रेतायां चम्पकप्रभः ।
द्वापरे रक्तसङ्काशः कृष्णः कलियुगे भवान् ॥२६
वैवर्ण्यमभिधत्से त्वं प्राप्तेषु युगसन्धिषु ।
वैवर्ण्यं सर्वधर्माणामुत्पादयसि वेदवित् ॥३०
भासि वासिप्रतपसित्वञ्च पासिविचेष्टसे ।
क्रुध्यसिक्षान्तिमायासि त्वं दीपयसिवर्षसि ॥३१
त्वं हास्यसि न निर्यासि निर्वपयसि जाग्रसि ।
निःशेषयसि भूतानि कालो भूत्वा युगक्षये ॥३२
शेषमात्मानमालोक्य विशेषयसि त्वं पुनः ।
युगान्ताग्नावलीढेषु सर्वभूतेषु किञ्चन ॥३३
यातेषु शेषो भवसि तस्माच्छेषोऽसि कीर्तितः ।
च्यवनोत्पत्तियुक्तेषु ब्रह्मेन्द्रवरुणादिषु ॥३४
यस्मान्न च्यवसे स्थानात्तस्मात्सङ्कीर्त्यसेऽच्युतः ।
ब्रह्माणमिन्द्रञ्चयमं रुद्रं वरुणमेव च ॥३५

हे देव ! कृतयुग मे आप ही शुक्ल वर्ण वाले होते हैं-त्रेता मे

सुवर्ण के समान प्रभा वाले भी आप ही हैं। द्वापर में रक्त के सदृश और कलियुग में आप ही कृष्ण होते हैं ॥२८॥ आप जब युगों की सन्धियाँ होती हैं तो उस समय में विवर्णता धारण किया करते हैं। वेदों के वेत्ता आप समस्त धर्मों के वैदर्ध्य को उत्पादन किया करते हैं। आप ही दीप्त होते हैं, निवास करते हैं, प्रताप दिया करते हैं, पालन करते हैं, विशेष चेष्टा किया करते हैं, कोप भी आप ही करते हैं, शान्ति को प्राप्त होते हैं, आप ही दीपित होते हैं और वर्षा किया करते हैं। आप ही स्वयं हास करते हैं, निर्यासित होते हैं, निर्वाध करते हैं, जाग्रत होते हैं, निःशेषित होते हैं *अर्थात् समस्त भूतों को निःशेष किया करते हैं* और युगों के क्षय में आप ही काल का स्वरूप धारण किया करते हैं ॥२९–३२॥ आप ही अपने आपको शेष देखकर फिर उसे विशेषित किया करते हैं जब सब भूतों में युगान्त अवलीढ हो जाते हैं और कुछ भी शेष नहीं रहता है इसी लिए आपको शेष इस नाम से कीर्तित किया गया है। च्यवनोत्पत्ति से युक्त ब्रह्मा इन्द्र वरुण आदि क होने पर क्योंकि स्थान से च्यवन नहीं होता है इसीलिये अच्युत नाम से कीर्तित हुए हैं। ब्रह्मा, इन्द्र, यम, रुद्र और वरुण इनका निग्रह करके हरण करते हैं ॥३३–३५॥

निगृह्य हरसे यस्मात्तस्माद्धरिरिहोच्यसे।
सम्मानयसि भूतानि वपुषा यशसा श्रिया ॥३६
परेण वपुषा देव ! तस्माच्चासि सनातनः।
यस्माद्ब्रह्मादयो देवा मुनयश्चोग्रतेजसः ॥३७
न तेऽन्त त्वधिगच्छन्ति तेनानन्तस्त्वमुच्यसे।
न क्षीयसे न क्षरसे कल्पकोटिशतैरपि ॥३८
तस्मात्त्वमक्षरत्वाच्च विष्णुरित्येव कीर्त्यसे।
विष्टब्ध यत्त्वया सर्वं जगत् स्थावरजङ्गमम् ॥३९
जगद्विष्टम्भनाच्चैव विष्णुरेवेति कीर्त्यसे।
विष्टभ्य तिष्ठसे नित्यं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥४०

यक्षगन्धर्वनगरं सुमहद्भूतपन्नगम् ।
व्याप्तं त्वयैव विशता त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥४१
तस्माद्विष्णुरिति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयम्भुवा ।
नारा इत्युच्यते ह्यापो ऋषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥४२

हे भगवन् ! ब्रह्मादि सबका निग्रह करके आप इनका हरण किया करते हैं इसी कारण से आपको 'हरि'—इस नाम से कहा जाता है। आप समस्त भूतों का वपु से, यश से, श्री से सम्मान किया करते है। हे देव ! आप पर वपु से सम्मान किया करते हैं इसी कारण से सनातन हैं। क्योंकि ब्रह्मादि देवगण और उग्र तेज वाले मुनि वृन्द सब आपके अन्त को प्राप्त नही हुआ करते हैं इसीलिये आप अनन्त इस नाम से कहे जाते हैं और सैकड़ो करोड़ कल्पो मे भी आप न तो क्षरित होते है और न क्षीण ही हुआ करते हैं। इसी अक्षर होने के हेतु से आप अक्षर हैं और विष्णु इसी नाम से कीर्तित किये जाते हैं। आपने इस स्थावर, जङ्गम जगत् सबको विष्टब्ध कर दिया है ॥३६–४०॥ इस सम्पूर्ण जगत् के विष्टम्भन होने से आपका नाम 'विष्णु'—यह कीर्तित किया जाता है क्योंकि इस त्रिलोकी को विष्टब्ध करके जिसमे सभी चर एवं अचर विद्यमान हैं नित्य स्थित रहा करते हैं ॥४०, ४१॥ इसी लिये स्वयं भगवान् स्वयम्भू ने विष्णु यह नाम कहा है। नारा, इससे जल कहे जाया करते हैं जिसको तत्त्व दर्शी ऋषियो ने कहा है। वेही जल पहिले उनके अयन निवास स्थान हुए थे इसीलिए आपका नारायण यह नाम कहा गया है। हे विष्णो ! आप तो युग-युग मे प्रनष्ट अङ्गो को सात्विक रूप से प्राप्त किया करते हैं ॥४२, ४३॥

अयनन्तस्यताः पूर्वन्तेन नारायणः स्मृतः ।
युगे युगेप्रनष्टाङ्गा विष्णो ! विन्दसितत्वतः ॥४३
गोविन्देतिततोनाम्नाप्रोच्यसेभिस्तथा ।
हृषीकाणीन्द्रियाण्याहुस्तत्त्वज्ञानविशारदाः ॥४४

ईशिता च त्वमेतेषां हृषीकेशस्तथोच्यते ।
वसन्ति त्वयि भूतानि ब्रह्मादीनि युगक्षये ॥४५
त्वं वा वससि भूतेषु वासुदेवस्तथोच्यसे ।
सङ्कर्षयसि भूतानि कल्पे कल्पे पुनः पुनः ॥४६
ततः सङ्कर्षणः प्रोक्तस्तत्वज्ञानविशारदैः ।
प्रतिव्यूहेन तिष्ठन्ति सदेवासुरराक्षसा. ॥४७
प्रविद्यु. सर्वधर्माणां प्रद्युम्नस्तेन चोच्यसे ।
निरोद्धा विद्यते यस्मान्न ते भूतेषु कश्चन ॥४८
अनिरुद्धस्ततः प्रोक्तः पूर्वमेव महर्षिभिः ।
यत्त्वया धार्यते विश्व त्वया संह्रियते जगत् ।४६

क्योंकि आप प्रनष्ट अङ्गों का लाभ करते हैं इसी लिये आपको "गोविन्द"—इस नाम से पुकारा जाया करता है और ऋषिगण गोविन्द कहा करते हैं। हृषीक विषयेन्द्रियों को कहा जाता है जिनको कि तत्वज्ञान के विशारद कहते हैं। आप इनके ईशिता हैं इसी कारण से आपको हृषीकेश नाम से कहा जाया करता है। युग के क्षय मे ब्रह्मा आदि समस्त भूत आप ही में निवास किया करते हैं अथवा आप सब भूतो में निवास किया करते हैं इसीलिए आपको वासुदेव कहा जाया करता है। बारम्बार आप कल्प कल्प में भूतो का सकर्षण किया करते हैं अतएव तत्वज्ञान के विशारदो के द्वारा आपको सकर्षण कहा गया है। समस्त देव असुर और राक्षस प्रतिग्रह मे स्थित रहते हैं और सब धर्मों के प्रविद्यु है अतएव आपको प्रद्युम्न. इस शुभ नाम से कहा जाया करता है। आपका भूतों में क्योंकि कोई भी निरोद्धा नहीं है इसीलिए पहिलेही महर्षियो ने आपका नाम अनिरुद्ध कहा गया है। हे भगवन ! आपके द्वारा इस विश्व को धारण किया जाता है और आपके ही द्वारा इस जगत का सहार किया जाता है ॥४४–४६॥

त्वं धारयसि भूतानि भवनं त्वं बिभर्षि च ।

यत्त्वया धार्यते किञ्चित्तेजसाचबलेन च ॥५०
मया हि धार्यते पश्चाद्धाधृत धारये त्वया।
न हि तद्विद्यते भूतं त्वया यन्नात्र धार्यते ॥५१
त्वमेव कुरुषे ! देव ! नारायण युगे युगे।
महाभारावतरणं जगतो हितकाम्यया ॥५२
तवैव तेजसाक्रान्तां रसातलतलङ्गताम्।
त्रायस्व मां सुरश्रेष्ठ ! त्वामेव शरणगताम् ॥५३
दानवैः पीड्यमानाहं राक्षसैश्च दुरात्मभिः।
त्वामेव शरणं नित्यमुपयामि सनातनम् ॥५४
तावन्मेऽस्ति भयं देव ! यावन्न त्वा ककुद्मिनम्।
शरणं यामि मनसा शतशोऽप्युपलक्षये ॥५५
उपमानं न ते शक्ताः कर्त्तुं सेन्द्रा दिवौकसः।
तत्त्वं त्वमेव मद्वेत्सि निरुत्तरमतः परम् ॥५६

हे भगवन् ! आप समस्त भूतो को धारण किया करते हैं और आप भवन का भरण किया करते हैं और आपके द्वारा तेज और बल के द्वारा जो कुछ भी धारण किया जाता है इसके पीछे मेरे द्वारा धारण किया जाता है और जो आपके द्वारा अधृत है उसे मैं धारण करती हूँ। ऐसा कोई भी भूत विद्यमान नहीं है जो आपके द्वारा धारण न किया जाता हो। हे देव ! हे नारायण ! इस जगत् के हित की कामना से युग-युग मे आप ही इस महान् भार का अवतरण किया करते है। हे सुर-श्रेष्ठ ! आपके ही तेज से आक्रान्त, रसातल मे गई हुई और आप की ही शरणागति मे गई हुई मेरा परित्राण कीजिए। मैं दुरात्मा दानवो तथा राक्षसो के द्वारा पीड्यमाना मैं आप ही नित्य एवं सनातन प्रभु की शरण मे जाती हूँ। हे देव ! मुझे तब तक ही भय होता है जब तक ककुद्मी आपकी शरण मे मन से नही जाती हूँ। मैं सैकडो का उपलक्षित करती हूँ किन्तु आपकी समानता इन्द्र आदि देवगण करने म समर्थ नही

होते हैं । इनके तत्त्व को आप ही जानते हैं और इससे पर निरन्तर है ॥५०—५६॥

ततः प्रीतः स भगवान् पृथिव्यै शार्ङ्ग चक्रधृक् ।
काममस्या यथाकाममभिपूरितवान् हरिः ॥५७
अब्रवीच्च महादेवि ! माधवीय स्तवोत्तमम् ।
धारयिष्यति यो मर्त्यो नास्ति तस्य पराभवः ॥५८
लोकान्निष्कल्मषांश्चैव वैष्णवान्प्रतिपत्स्यते ।
एतदाश्चर्यसर्वस्वमाधवीयस्तवोत्तमम् ॥५९
अधीतवेदः पुरुषः मुनिः प्रीतमना भवेत् ॥६०
मा भैर्धरणि ! कल्याणि ! शान्तिं व्रज ममाग्रतः ।
एष त्वामुचितं स्थानं प्रापयामि मनोषितम् ॥६१
ततो महात्मा मनसा दिव्यं रूपमचिन्तयत् ।
किन्नु रूपमहं कृत्वा उद्धरेय धरामिमाम् ॥६२
जलक्रीडारुचिस्तस्माद्वाराहं वपुरास्थितः ।
अदृश्यं सर्वभूतानां वाङ्मयं ब्रह्मसंस्थितम् ॥६३

महर्षि शौनक जी ने कहा—इसके पश्चात् भगवान् शार्ङ्ग और चक्र के धारण करने वाले उस पृथिवी देवी पर परम प्रसन्न हो गये थे और उन हरि भगवान् ने इसकी कामना को यथोचित रूप से पूरित कर दिया था ॥५७॥ और भगवान् ने उससे कहा था—हे महादेवि ! आपके द्वारा कहा गया जो यह माधवीय स्तव है वह परमोत्तम है । जो मनुष्य इस स्तव को धारण करेगा उसका कभी भी पराभव नहीं होता है ॥५८॥ यह आश्चर्यों का सर्वस्व माधवीय उत्तम स्तव है । इसके धारण करने वाला कल्मषों से रहित वैष्णव लोकों को प्राप्त किया करता है । ॥५९॥ वेदों के अध्ययन करने वाला पुरुष प्रीति से युक्त मन वाला मुनि हो जाता है ॥६०॥ फिर भगवान् ने कहा—हे धरणि ! हे कल्याणि ! डरो मत ! मेरे आगे शान्ति को धारण करो । मैं तुमको मनो-

चित समुचित स्थान पर प्राप्त कर देता हूँ ॥६१॥ शौनक जी ने कहा—इस के उपरान्त महान् आत्मा वाले प्रभु ने मन से दिव्य रूप का चिन्तन किया था कि मैं क्या करूं ॥६२॥ जल में क्रीड़ा करने की रुचि थी इसी कारण से वाराह के वपु में समवस्थित हो गये थे। वह स्वरूप समस्त भूतों का अदृश्य एवं वाङ्मय सस्थित ब्रह्म था ॥६३॥

शतयोजनविस्तीर्णमुच्छ्रितं द्विगुणं ततः।
नीलजीमूतसङ्काशं मेघस्तनितनिस्वनम् ॥६४
गिरिसहननं भीमं श्वेततीक्ष्णाग्रदंष्ट्रिणम्।
विद्युदग्निप्रतीकाशमादित्यसमतेजसम् ॥६५
पीनोन्नतकटीदेशं वृषलक्षणपूजितम्।
रूपमास्थाय विपुलं वाराहमजितोहरिः ॥६६
पृथिव्युद्धरणायैव प्रविवेश रसातलम्।
वेदपादो यूपदंष्ट्रः क्रतुदन्तश्चितीमुखः ॥६७
अग्निजिह्वो दर्भलोमा ब्रह्मशीर्षो महातपाः।
अहोरात्रेक्षणधरो वेदाङ्गश्रुतिभूषणः ॥६८
आज्यनासः स्रुवतुण्डःसामघोषस्वनोमहान्।
सत्यधर्ममयः श्रीमान्कर्मविक्रमसत्कृतः ॥६९
प्रायश्चित्तनखोघोरः पशुजानुर्मखाकृतिः।
उद्गाथा होमलिङ्गोऽथ बीजौषधिमहाफलः ॥७०

वह वाराह का स्वरूप सौ योजन के विस्तार युक्त, दुगुना इससे उच्छ्रित, नीलेमेघ के समान तथा मेघों के स्तनित से निस्वन था, गिरि के तुल्य सहनन वाला, भीम, श्वेत एवं तीक्ष्ण आगे की दंष्ट्रा वाला, विद्युत् की अग्नि के तुल्य, सूर्य के सदृश तेज से युक्त, कटि देश में पीनोन्नत एवं वृष लक्षण से पूजित विपुल वराह के रूप में समास्थित श्री अजित हरि हो गये थे ॥६४, ६५, ६६॥ वेदों के चरणों वाले, यूपों के दंष्ट्राओं से समुत, क्रतुओं के दाँतों से समन्वित चितीमुख वाराह प्रभु ने इस पृथिवी

के उद्धार करने के लिये रसातल में प्रवेश किया था ॥ ६७ ॥ अग्नि की जिह्वा वाले—दर्भों के लोमों से संयुत—ब्रह्म के शीर्ष वाले—महान् तप से युक्त—अहोरात्र के नेत्रों को धारण करने वाले—वेदाङ्ग एवं श्रुति के भूषण से भूषित—आज्यकी नासिका वाले—स्रुवा के तुण्ड से युक्त—साम वेद के महान् घोष वाले—सत्य और धर्म से परिपूर्ण—कर्म और विक्रम के सत्कार वाले—श्रीमान्—प्रायश्चित्त के घोर नखों से युक्त—पशुजानु तथा मखकी आकृति वाले—उद्गाथा होम के लिङ्ग से संयुत बीज और औषधि के महान् फल वाले वह वाराह भगवान् थे ॥ ६७ । ६८ । ६९ । ७० ॥

वाय्वन्तरात्मा यज्ञास्थिविकृतिः सोमशोणितः ।
वेदस्कन्धो हविर्गन्धो हव्यकव्यविभागवान् ॥७१
प्राग्वंशकायो द्युतिमान् नानादीक्षाभिरन्वितः ।
दक्षिणाहृदयो योगी महासत्रमयो महान् ॥७२
उपाकर्मोष्ठरुचकः प्रवर्ग्यावर्तभूषणः ।
नानाच्छन्दोगतिपथो गुह्योपनिषदासनः ॥७३
छायापत्नीसहायो वै मणिशृङ्ग इवोच्छ्रितः ।
रसातलतले मग्नां रसातलतलं गताम् ॥७४
प्रभुर्लोकहितार्थाय दंष्ट्राग्रेणोज्जहार ताम् ।
ततः स्वस्थानमानीय वराहः पृथिवीधरः ॥७५
मुमोच पूर्वं मनसा धारितां च वसुन्धराम् ।
ततो जगाम निर्वाणं मेदिनी तस्य धारणात् ॥७६
चकार च नमस्कारं तस्मै देवाय शम्भवे ।
एवं यज्ञवराहेण भूत्वा भूतहितार्थिना ॥७७
उद्धृता पृथिवी देवी सागराम्बुगता पुरा ।
अथोद्धृत्य क्षितिं देवो जगतः स्थापनेच्छया ॥
पृथिव्याप्रविभागाय मनश्चक्रेऽम्बुजेक्षणः ॥७८

रसाङ्गतामवनिमचिन्त्यविक्रमः सुरोत्तमः प्रवरवराहरूप धृक्।
वृषाकपिः प्रसभमथैकदंष्ट्रया समुद्धरद्धरणिमतुल्यपौरुषः ॥७६

वायु के अन्तरात्मा वाले—यज्ञों की अस्थि विकृतियों से संयुत—सोम के शोणित से समन्वित—वेदों के स्कन्ध वाले—हवि की गन्ध से सम्पन्न—हव्य और कव्य के विभाग वाले प्राग्वंश की काया से युत—द्युतिमान्—अनेक दीक्षाओं से समन्वित—दक्षिण हृदय—महासत्रमय—महान् योगी—उपा कर्मोष्ठ रुचक—प्रवर्ग्यावर्त भूषण—नाना छन्दोगति पथ—गुह्योपनिषद सन—उच्छ्रित मणिशृङ्ग की भाँति छाया पत्नी सहाय प्रभु ने रसातल के तल में मग्न और रसातल के तल में गई हुई उस भूमि का लोकों के हित के लिये दंष्ट्रा के अग्रभाग से उद्धार किया था। इसके अनन्तर पृथिवी के धारण करने वाले वराह भगवान् ने उसे अपने स्थान पर लाकर पहिले मन से धारित वसुन्धरा को छोड़ दिया था। फिर यह मेदिनी उसके धारण करने से निर्वाण को प्राप्त हो गई थी। उस पृथ्वी ने उन शम्भु देव के नमस्कार किया था। इस प्रकार से भूतों के हित के चाहने वाले यज्ञ वराह भगवान् ने वराह होकर पहिले सागर के जल में गयी हुई पृथिवी देवी को उद्धृत किया था। इसके अनन्तर देव ने क्षिति को उद्धृत करके इस जगत् की स्थापना करने की इच्छा से अम्बुजेक्षण ने पृथिवी के प्रविभाग करने के लिये मन में विचार किया था। ॥७१।७२।७३।७४।७५।७६।७७।७८॥ अचिन्तनीय विक्रम वाले सुरों में श्रेष्ठ प्रवर वराह के स्वरूप को धारण करते हुए भगवान् ने जो वृषा कपि अतुलित पौरुष से सम्पन्न थे रसातल में गई हुई धरणी को बलपूर्वक एक दाढ़ से समुद्धृत किया था ॥७९॥

११२— क्षीरोद मथन वर्णन (१)

नारायणस्य माहात्म्यं श्रुत्वा सूत ! यथाक्रमम् ।
न तृप्तिर्जायतेऽस्माकमतः पुनरिहोच्यताम् ॥१
कथं देवा गताः पूर्वममरत्वं विचक्षणाः ।
तपसा कर्मणा वापि प्रसादात्कस्य तेजसा ॥२
यत्र नारायणो देवो महादेवश्च शूलधृक् ।
तत्रामरत्वे सर्वेषां सहायौ तत्र तौ स्मृतौ ॥३
पुरा देवासुरे युद्धे हताश्च शतशः सुरैः ।
पुनः सञ्जीविनी विद्यां प्रयोज्य भृगुनन्दनः ॥४
जीवापयति दैत्येन्द्रान् यथा सुप्तोत्थितानिव ।
तस्य तुष्टेन देवेन शङ्करेण महात्मना ॥५
मृतसञ्जीविनी नाम विद्या दत्ता महाप्रभा ।
तां तु माहेश्वरीं विद्यां महेश्वरमुखोद्गताम् ॥६
भार्गवे संस्थितां दृष्ट्वा मुमुहुः सर्वदानवाः ।
ततोऽमरत्वं दैत्यानां कृतं शुक्रेण धीमता ॥७

ऋषिगण ने कहा—हे सूतजी ! भगवान् नारायण के यथाक्रम माहात्म्य का श्रवण करके हमारी तृप्ति नहीं होती है अतएव पुनः आप वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ विचक्षण देव किस प्रकार से पहिले अमरत्व को प्राप्त हुए थे । किसी तप के द्वारा अथवा कर्म से या किसी के प्रसाद से या तेज के द्वारा देवों को अमरता प्राप्त हुई थी ? श्री सूतजी ने कहा— जहाँ पर देव नारायण और शूल को धारण करने वाले महादेव विद्यमान थे वे दोनों उन सबके अमरत्व के प्रतिपादन करने में सहायक कहे गये हैं ॥ २ । ३ ॥ प्राचीन समय में देवासुर युद्ध में सुरों के द्वारा सैकड़ों दैत्येन्द्र निहत कर दिये गये थे फिर भृगुनन्दन ने अपनी सञ्जीवनी विद्या का प्रयोग करके सोकर उठे हुओं की भाँति जीवित कर दिया था ।

महात्मा देव शङ्कर ने परम सन्तुष्ट होकर महान् प्रभाव एवं प्रभा वाली मृत्संजीवनी विद्या उसको प्रदान कर दी थी। महेश्वर के मुख से समुद्गत उस माहेश्वरी विद्या को भार्गव महर्षि में संस्थित देखकर समस्त दानव मोद को प्राप्त होगये थे। इसके अनन्तर धीमान् शुक्र ने दैत्यों का अमरत्व कर दिया था ॥ ४-७॥

या नास्ति सर्वलोकानां देवानां सर्वरक्षसाम् ।
न नागानामृषीणाञ्चनच ब्रह्मेन्द्रविष्णुषु ॥८
तां लब्ध्वा शङ्कराच्छुक्रः परां निर्वृ तिमागतः ।
ततो देवासुरोघोरः समरः सुमहानभूत् ॥९
तत्र देवैर्हतान् दैत्यान् शुक्रोविद्याबलेन च ।
उत्थापयति दैत्येन्द्रान् लीलयैवविचक्षणः ॥१०
एवम्विधेन शक्रस्तु बृहस्पतिरुदारधीः ।
हन्यमानास्ततो देवाः शतशोऽथ सहस्रशः ॥११
विषण्णवदना सर्वे बभूर्विकलेन्द्रियाः ।
ततस्तेषु विषण्णेषु भगवान् कमलोद्भवः ॥
मेरुपृष्ठे सुरेन्द्राणामिदमाह जगत्पतिः । १२॥
देवाः शृणुत मद्वाक्य तत्तथैव विरुध्यताम् ।
क्रियतां दानवैः सार्द्धं सख्यमत्रप्रवर्त्तताम् ॥१३
क्रियतामग्रतोद्योगो मथ्यतां क्षीरवारिधिः ।
सहाय वरुणङ्कृत्वाचक्रपाणिविबोध्यताम् ॥१४

जो विद्या समस्त लोकों के पास नहीं थी तथा देवों और राक्षसों के समीप में जो विद्यमान नहीं थी एवं नाग, ऋषिगण और ब्रह्मा, इन्द्र तथा विष्णु के पास भी नहीं रही उस महान् प्रभाव वाली इस विद्या को भगवान् शङ्कर से प्राप्त करके शुक्राचार्य परम निवृत्ति को प्राप्त हुए थे। इसके पश्चात् सुमहत्वर देवासुर घोर समर हुआ था ॥ ८।९॥ वहाँ पर देवों के द्वारा मरे हुए दैत्यों को शुक्राचार्य ने विद्या के बल के द्वारा

इन दैत्येन्द्रों को लीला ही से विचक्षण ने उठा दिया था। इस प्रकार से इन्द्र और उदार बुद्धि वाले बृहस्पति तथा हव्यभाव सैकड़ों और सहस्रों देवगण सबके सब विषाद युक्त मुखों वाले विकलेन्द्रिय हो गये थे। इसके पश्चात् उनके विषण्ण होने पर भगवान् कमलोद्भव जगत् के स्वामी ने मेरु पर्वत के पृष्ठ भाग पर यह सुरेन्द्रो से कहा था ॥ १०। ११। १२॥ ब्रह्माजी ने कहा—हे देवगणों ! मेरा यह वाक्य सुनो और उसे वैसे ही करो। दानवों के साथ यहाँ पर सख्य भाव कर डालो। अमृत की प्राप्ति का उद्योग करो तथा क्षीर सागर का मन्थन करो। वरुण को सहायक बनाकर भगवान् चक्रपाणि को प्रबुद्ध करना चाहिए॥ १३, १४॥

मन्थानं मन्दरं कृत्वा शेषनेत्रेण वेष्टितम् ।
दानवेन्द्रो बलिस्वामी स्तोककालनिवेश्यताम् ॥१५
प्रार्थ्यतां कूर्मरूपश्च पाताले विष्णुरव्ययः ।
प्रार्थ्यतां मन्दरः शैलः मन्थकार्ये प्रवर्त्यताम् ॥१६
तच्छ्रुत्वा वचनं देवा जग्मुर्दानवमन्दिरम् ।
अलं विरोधेनवयाभृत्यास्तव बले ! ऽधुना ॥१७
क्रियताममृतोद्योगो क्रियतां शेषनेत्रकम् ।
त्वया चोत्पादिते दैत्य ! अमृतेऽमृतमन्थने ॥१८
भविष्यामोऽमराः सर्वे त्वत्प्रसादान्न संशयः ।
एवमुक्तस्तदा देवैः परितुष्टः स दानवः ॥१९
यथा वदत हे देवा ! स्तथा कार्यं मयाऽधुना ।
शक्तोऽहमेक एवात्र मथितुं क्षीरवारिधिम् ॥२०
आहरिष्येऽमृतं दिव्यममृतत्वाय वोऽधुना ।
सुदूरादाश्रयं प्राप्तान् प्रणतानपि वैरिणः ॥२१
यो न पूजयते भक्त्या प्रेत्य चेह विनश्यति ।
पालयिष्यामि वः सर्वानधुनास्नेहमास्थितः ॥२२

मन्दराचल पर्वत को मन्थान बनाकर उसे शेषनाग के नेत्र से

(नेती से) वेष्टित करो। दानवों का इन्द्र स्वामी बलि को थोड़े समय तक निवेशित करो। पाताल मे अविनाशी भगवान् विष्णु जो कूर्म रूप वाले हैं उनको प्रार्थना करो। शैलराज मन्दराचल को भी प्रार्थना करो और फिर मन्थन का कार्य प्रवृत्त कर दो। इस वचन को देवो ने श्रवण किया था और फिर वे सब दानवो के मन्दिर मे गये थे। हे बले ! अब आप विरोध म. करो हम सब आपके भृत्य है। अब तो सब मिलकर अमृत की उपलब्धि का प्रयोग करो और मन्थन कार्य का नेत्र शेषनाग को बना डालो। हे दैत्य ! आपके द्वारा इस अमृत मन्थन मे अमृत के समुत्पादित होने पर सब अमर हो जायेंगे और यह आपके ही प्रसाद से सुसम्पन्न होगा– इसमें तनिक भी संशय नही है। इस तरह से उन देवों के द्वारा कहे जाने वाला वह दानव बहुत परितुष्ट हो गया था। हे देव-गण ! आप लोग जैसा भी कहते हैं हम भी सब वैसा ही मुझे भी इस समय मे करना ही है। यहाँ पर मैं अकेला ही इस क्षीर वारिधि को मन्थन करने मे समर्थ हूं और अब मैं आपको दिव्य अमृत अमृतत्व के लिये लाकर दे दूंगा। सुदूर से आश्रय को प्राप्त होने वाले वैरियो का जो भक्तिभाव मे पूजन नहीं किया करता है वह यहाँ पर मरकर विनष्ट हो जाया करता है। अब मैं स्नेह मे समस्थित होकर आप सब लोगो का पालन करूँगा ॥ १५–२२ ॥

एवमुक्त्वा स दैत्येन्द्रो देवैः सह ययौ तदा ।
मन्दरं प्रार्थयामास सहायत्वे धराधरम् ॥२३
सखा भवत्वमस्माकमधुनाऽमृतमन्थने ।
सुरासुराणां सर्वेषां महत्कार्यमिदं जगत् ॥२४
तथेति मन्दरः प्राह यद्याधारो भवेन्मम ।
यत्र स्थितस्त्वयाऽभ्रमिष्यामि मथिष्येव रुणालयम् ॥२५
कल्प्यतां नेत्रकार्ये यः शक्तः स्याद्वेष्टने मम ।
ततस्तु निर्गतौ देवौ कर्मशेषौ महाबलौ ॥२६

विष्णोर्भागौ चतुर्थांशाद्धरण्या धारणे स्थितौ ।
ऊचतुर्गर्वसंयुक्तं वचनंशेषकच्छपौ ॥२७
त्रैलोक्यधारणेनापि न ग्लानिर्मम जायते ।
किमु मन्दारकात्क्षुद्रात्घुटिकासन्निभादिह ॥२८

उसी समय में वह दैत्यराज इस प्रकार से देवगण के साथ चला गया था। धराधर मन्दर की सहायता करने के लिये प्रार्थना की थी। उसने कहा था—हे पर्वत वर ! इस समय मे आप हमारे इस अमृत के मन्थन में सखा हो जाइये ! इस जगत् में सब सुर और असुरों का यह एक बहुत बडा कार्य्य है। ऐसा ही हो जायगा—यदि मेरा कोई आधार हो जायगा जिस पर स्थित होकर मैं भ्रमण करूँगा और सागर का मन्थन करूँगा ॥ २३, २४, २५ ॥ नेत्र बनने के कार्य म जो भी समर्थ हो और मेरा वेष्टन कर सके उसकी कल्पना करिये। इसके पश्चात् महा बलवान् कूर्म और शेष निर्गत हो गये थे। भगवान् विष्णु के भाग धरणी के चतुर्थ अंश से धारण करने मे स्थित हो गये थे। शेष और कच्छप दोनो गर्व म समन्वित वचन कहने लगे थे। इस त्रिलोकी के धारण करने से भी मुझको कोई ग्लानि नही होती है कि एक घुटिका क सदृश यहाँ पर इस क्षुद्र मन्दर स्थल से क्या ग्लानि अर्थात् थकान हो सकती है ॥ २६–२८ ॥

ब्रह्माण्डवेष्टनेनापि ब्रह्माण्डमथनेन वा ।
न मे ग्लानि र्भवेद्देहे किमु मन्दरवर्तने ॥२९
तत उत्पाट्यतशैलं तत्क्षणात् क्षीरसागरे ।
चिक्षेप लीलया नागः कूर्मश्चाधःस्थितस्तदा ॥३०
निराधारं यदा शैलं नशेकुर्देवदानवाः ।
मन्दरभ्रामणं कर्तुं क्षीरोदमथने तथा ॥३१
नारायणनिवासन्ते जग्मुर्वह्निसमन्विताः ।
यत्रास्ते देवदेवेशः स्वयमेव जनार्दनः ॥३२

तत्रापश्यन्त तन्देव सितपद्मप्रभं शुभम् ।
योगनिद्रासुनिरतं पीतवाससमन्युतम् ॥३३
हारकेयूरनद्धाङ्गम हिपर्यङ्कसंस्थितम् ।
पादपद्मेन पद्मायाः स्पृशन्त नाभिमण्डलम् ॥३४
स्वपक्षव्यजनेनाथ वीज्यमानङ्गरुत्मता ।
स्तूयमान समन्ताच्चसिद्धचारणकिन्नरैः ॥३५

भगवान् शेष ने कहा—इस पूरे ब्रह्माण्ड के वेष्टन से भी तथा पूर्ण ब्रह्माण्ड के मथन से भी मुझे कोई ग्लानि नहीं होती है फिर इस मन्दर के वेष्टन से क्या मुझे हानि हो सकती है ॥ २६ ॥ इसके अनन्तर उसी क्षण में उस मन्दर शैल को उत्पादित करके क्षीर सागर में उस समय में लीला ही से डाल दिया था और कूर्म तथा नाग नीचे स्थित हो गये थे ॥ ३० ॥ जिस समय में देव और दानव क्षीरोद के मन्थन में निराधार शैल को मन्थन करने में समर्थ न होते थे तो वे सब बलि के सहित नारायण प्रभु के निवास स्थल पर गये थे, वहाँ पर देवों के भी देवेश्वर भगवान् जनार्दन स्वयं ही विराजमान थे ॥ ३१, ३२ ॥ वहाँ पर उन सबने श्वेत पद्म के समान प्रभा वाले—योग निद्रा में निरत—पीताम्बरधारी अच्युत देव का दर्शन किया था । वह प्रभु हार और केयूर से नद्ध अङ्ग वाले और शेष के पर्यङ्क पर शयन करने वाले—पद्मा के पाद पद्म से नाभि मण्डल का स्पर्श करते हुए विराजमान थे । गरुड़ उस समय में अपने पक्षों से उनका व्यजन कर रहे थे और सिद्ध-चारण तथा गन्धर्वों के द्वारा स्तवन किये जा रहे थे ॥३३–३५॥

आम्नायैं मूर्त्तिमद्भिश्च स्तूयमान समन्ततः ।
सव्यबाहूपधानं तन्तुष्टुवु देवदानवाः ॥३६
कृताञ्जलिपुटाः सर्वे प्रणताः सर्वतो दिशम् ।
नमो लोकत्रयाध्यक्ष ! तेजसामितभास्कर ! ॥३७
नमो विष्णो ! नमो जिष्णो ! नमस्ते कैटभार्दन ! ।

नमः सर्गक्रियाकर्त्रे जगत्पालयते नमः ॥३८
रुद्ररूपाय शर्वाय नमः संहारकारिणे ।
नमः शूलायुधाधृष्य नमो दानवघातिने ॥३९
नमः क्रमत्रयाक्रान्त त्रैलोक्यायाभवाय च ।
नमः प्रचण्डदैत्येन्द्रकुलकाल महानल ! ॥४०
नमो नाभिहृदोद्भूतपद्मगर्भमहाचल ! ।
पद्मभूत ! महाभूत ! कर्त्रेहर्त्रे जगत्प्रिय ! ॥४१
जनिता सर्वलोकेश ! क्रियाकारणकारिणे ।
अमरारिविनाशाय महासमरशालिने ॥४२

उन नारायण प्रभु के चारों ओर मूर्तिमान् आम्नाय स्थित होकर स्तुति कर रहे थे। सव्यबाहु उपधान वाले उन प्रभु नारायण का समस्त देवों और दानवो ने वहां पर स्तवन किया था ॥३६॥ सभी दिशाओं में वे सब अपनी अञ्जलियाँ बाँधकर तथा प्रणत होते हुए स्थित हो गये थे। देव दानवो ने कहा—हे तीनो लोको के स्वामिन ! आपकी सेवा मे हमारा नमस्कार समर्पित है। आपतो अपने तेज के द्वारा अमित भास्कर के समान हैं हे विष्णो ! हे जिष्णो ! हे कैटभ दैत्य के मर्दन करने वाले ! आपको हम सबका बारम्बार नमस्कार है। समस्त क्रियाओ के करने वाले और इस जगती तल के परिपालन करने वाले आपकी सेवा में हमारा नमस्कार है ॥३७, ३८॥ संहार के करने वाले रुद्र रूप धारी भगवान् शर्व के लिए हमारा नमस्कार है। हे शूल के अपने आयुध से सघर्षण करने के योग्य ! दानवो के घात करने वाले आपको नमस्कार है ॥३९॥ हे क्रम के त्रय से आक्रान्त ! हे प्रचण्ड दैत्येन्द्रों के कुल के लिए काल ! हे महानल ! त्रैलोक्य स्वरूप और अभव आपकी सेवा में बारम्बार प्रणाम समर्पित है। आपतो अपनी नाभि रूपी ह्रद से उत्पन्न पद्म के गर्भ से महान् अचल हैं। हे पद्मभूत ! हे महाभूत ! हे जगत् के परम प्रिय ! सबके कर्त्ता और हर्त्ता आपके लिये नमस्कार है ॥ ४०, ४१ ।

हे सर्व लोकों के ईश ! आप ही सबके जनन करने वाले हैं। देवों के शत्रुओ के विनाश करने वाले और महा समरशाली तथा क्रिया और कारण के करने वाले आपकी सेवा मे हम सबका प्रणाम उपस्थित है ॥ ४२ ॥

लक्ष्मीमुखाब्जमधुप ! नमः कीर्तिनिवासिने ।
अस्माकममरत्वाय ध्रियतां ध्रियतामयम् ॥४३
मन्दरः सर्वशैलानामयुतायुतविस्तृतः ।
अनन्तवलबाहुभ्यामवष्टभ्यैकपाणिना ॥४४
मथ्यतामसृत देव ! स्वधास्वाहार्थकामिनाम् ।
ततः श्रुत्वा स भगवान् स्तोत्रपूर्व्वं वचस्तदा ॥
विहाय योगनिद्रान्तामुवाच मधुसूदनः ॥४५
स्वागत विबुधा ! सर्वे किमागमनकारणम् ।
यस्मात्कार्य्यादिह प्राप्तास्तद् ब्रूत विगतज्वराः ॥४६
नारायणेनैव मुक्ताः प्राचुस्तत्रदिवौकसः ।
अमरत्वाय देवेश ! मथ्यमाने महोदधौ ॥४७
यथाऽमृतत्व देवेश ! तथा नः कुरु माधव ! ।
त्वया विना वयमस्माभि. कैटभार्दन ! ॥४८
प्राप्तु तदमृतं नाथ ! ततोऽग्रे भव नो विभो ! ।
इत्युक्तश्च ततोविष्णुरप्रधृष्योऽरिमर्दनः ॥४९

हे लक्ष्मी के मुख रूपी कमल के रसास्वादन करने वाले मधुप ! कीर्ति निवासी आपके लिये नमस्कार है । हम सब के अमरत्व प्राप्ति के लिये आप इस समस्त शैलो मे अयुतायुत विस्तार वाले मन्दराचल को अनन्त वल सम्पन्न बाहुओ से अवष्टब्ध करके एक हाथ से धारण करने की कृपा कीजिए और इसे धारण कीजिए ॥४३, ४४॥ हे देव ! स्वधा, स्वाहा की कामना करने वालो के अमृत का मन्थन कीजिए । इसके उपरान्त नारायण भगवान् ने स्तवन पूर्वक इस वचन का श्रवण किया था ।

उसी समय में मधु सूदन प्रभु ने उस अपनी परम प्रिय योग निद्रा का त्याग करके उनसे यह वचन बोले थे—श्री भगवान् ने कहा— सब देवगणो ! आपका स्वागत है। हमको आप यह बतलाइये कि यहाँ पर इस समय में आप लोगों के यहाँ आने का क्या कारण है ? जिस कार्य को लेकर इस समय मे आप लोग यहाँ प्राप्त हुए हैं उसको अब मेरे सामने बिल्कुल दुःख रहित होकर बतलाये ॥४५, ४६॥ भगवान् नारायण के द्वारा इस तरह से कहे हुए वहा पर देवगण ने कहा—हे देवेश ! अमरत्व के लिए मध्यमान महोदधि मे जिस प्रकार मे हमारा अमृतत्व सम्पादित हो सके वैसा ही हे माधव ! आप करिए। हे कैटमार्दन ! आपके विना हम लोगों के द्वारा यह नही किया जा सकता है ॥४७, ४८॥ हे नाथ ! उस अमृत को प्राप्त करने के लिए हे विभो ! आप हमारे सबके आगे हो जाइए। इस तरह से कहे गये अरियो के मर्दन करने वाले और अप्रधृष्य विष्णु उनके साथ चल दिये थे ॥४९॥

जगाम देवैः सहितो यत्रासौ मन्दराचलः ।
वेष्टितो भोगिभोगेन धृतश्चामरदानवैः ॥५०
विषभीतास्ततोदेवा यतः पुच्छं ततः स्थिताः ।
मुखतो दैत्यसङ्घास्तु सैंहिकेयपुरः सराः ॥५१
सहस्रवदनं चास्य शिरः सव्येन पाणिना ।
दक्षिणेन बलिर्देह नागस्याकुष्टवांस्तथा ॥५२
दधारामृतमन्थानं मन्दरं चारुकन्दरम् ।
नारायणः स भगवान् भुजयुग्मद्वयेन तु ॥५३
ततो देवासुरैः सर्वं जयशब्दपुरःसरम् ।
दिव्यं वर्षशत साग्र मथितः क्षीरसागरः ॥५४
ततः श्रान्तास्तु ते सर्वे देवादैत्यपुरः सरा ।
श्रान्तेषु तेषु देवेन्द्रो मेघोभूत्वाम्बुशीकरान् ॥५५

ववर्षामृतकल्पांस्तान् ववौ वायुश्च शीतलः ।
भग्नप्रायेषु देवेषु शान्तेषु कमलासनः ॥५६

भगवान् विष्णु उन सब देवों के ही सहित वहां पर चले गये थे जहां पर यह मन्दराचल विद्यमान था। वह मन्दराचल भोगी शेष के भोग के द्वारा वेष्टित था और अमरों तथा दानवों के द्वारा धृत हो रहा था। ॥५०॥ क्योंकि देवगण विष से भयभीत होकर शेष नाग की पूँछ की ओर स्थित हो रहे थे तथा सैंहिकेय जिनके आगे था ऐसे दैत्यों के सङ्घ शेष के मुख की ओर समवस्थित थे। सहस्र मुखों वाला इसके शिर को बलि ने सव्य दक्षिण हाथ से आकर्षित किया था ॥५१, ५२॥ उन भगवान् नारायण ने अपनी दोनों भुजाओं से सुन्दर कन्दराओं वाले मन्दराचल को अमृत का मन्थान धारण किया था ॥५३। इसके अनन्तर समस्त देवों और असुरों ने जय शब्द के उच्चारण पूर्वक दिव्य डेढ़ सौ वर्ष तक उस क्षीर सागर का मन्थन किया था ॥५४॥ इसके पश्चात् वे सब दैत्य पुरस्सर देवगण अत्यन्त श्रान्त हो गये थे। उन सबके थकित होने पर देवेन्द्र ने मेघ होकर उन अमृत के समान जल के सीकरों की वर्षा की थी। तथा शीतल वायु बहने लगा। जब देवगण भग्न प्राय होकर शान्त हो गये थे तो उस समय पर कमलासन प्रभु ने उनको प्रोत्साहन दिया था जिससे मन्थन कार्य बराबर चलता रहे ॥५५, ५६॥

मथ्यतां मथ्यतां सिन्धुरित्युवाच पुनः पुनः ।
अवश्यमुद्योगवतां श्रीरपारा भवेत्सदा ॥५७
ब्रह्मप्रोत्साहिता देवा ममन्थुः पुनरम्बुधिम् ।
भ्राम्यमाणे ततः शैले योजनायुतशेखरे ॥५८
निपेतुर्हस्तियूथानि वराहशरभादय. ।
श्वापदायुतलक्षाणि तथा पुष्पफलाद्रुमाः ॥५९
ततः फलानां वीर्य्येण पुष्पौषधिरसेन च ।
क्षीरसद्घपणाच्चापि दधिरूपमजायत ॥६०

ततस्तु सर्वजीवेषु चूर्णितेषु सहस्रशः
तदम्बुमेदसोत्सर्गाद्वारुणी समपद्यत ॥६१
वारुणीगन्धमाघ्राय मुमुदुर्देवदानवाः ।
तदास्वादेन बलिनो देवदैत्यादयोऽभवन् ॥६२
ततोऽविवेगाज्जगृहु नगेन्द्र सर्वतोऽसुराः ।
मन्थानं मन्थयष्टिस्तु मेरुस्तत्राचलोऽभवत् ॥६३

कमलासन प्रभु ने सिन्धु का मन्थन करो मन्थन करो—यह बार २ कहा था। जो उद्योग में पराण हुआ करते है उनको सदा ही अपार श्री हुआ करती है। इस तरह से ब्रह्माजी के द्वारा प्रोत्साहित हुए देवों ने पुनः अम्बुधि का मन्थन किया था। फिर दश हजार योजन के शेखर वाले शैल के भ्राम्यमाण होने पर हस्तियो के यूथ, वराह, शरभ आदि, सहस्रों एवं लाखों श्वापद, पुष्प तथा फलों वाले वृक्ष, फलो के वीर्य से तथा पुष्पो और ओषधियो क रस स एव क्षीर के सघर्षण से भी वह सागर दधि के रूप वाला हो गया था ॥५७–६०॥ इसके पश्चात् सहस्रों समस्त जीवो के चूर्णित होने पर उस अम्बु मेद के मोत्सर्ग से वारुणी समुत्पन्न हुई थी।६१। उस वारुणी की गन्ध को सूँघ कर सब देव और दानव बहुत ही अधिक प्रसन्न हुए थे उसक आस्वाद से देवगण और दैत्य आदिक सब बली हो गये थे ॥६२॥ इसके उपरान्त असुरो ने सभी ओर वेग के साथ उस नागेन्द्र को ग्रहण किया था और वह मन्थान तथा मन्थयष्टि मेरु वहां पर अचल हो गया था ॥६३॥

अभवच्चाग्रतोविष्णु भुजमन्दरबन्धनः ।
स वासुकिफणाजालनपाशिः कृष्णो व्यराजत ।।६४
यथा नीलोत्पलैर्युक्तो ब्रह्मदण्डोऽतिविस्तरः ।
ध्वनिर्मेघसहस्रस्य जलधेरुत्थितस्तदा ।।६५
भागे द्वितीये मघवानादित्यस्तु ततः परम् ।
ततो रुद्रा महोत्साहा वसवो गुह्यकादयः ॥६६

पुरतो विप्रचित्तिश्च नमुचिर्वृत्रशम्बरौ ।
द्विमूर्द्धा वज्रदंष्ट्रश्च सैंहिकेयो बलिस्तथा ॥६७
एतेचान्ये च बहवो मुखभागमुपस्थिताः ।
ममन्थुरम्बुधिं दृप्ता बलतेजोविभूषिताः ॥६८
बभूवात्र महाघोषो महामेघरवोपमः ।
उदधेर्मथ्यमानस्य मन्दरेण सुरासुरैः ॥६९
तत्र नानाजलचरा विनिर्धूता महाद्रिणा ।
विलयं समुपाजग्मुः शतशोऽथ सहस्रशः ॥७०

आगे की ओर भुजमन्दर बन्धन वाले विष्णु थे और वह वासुकि के फणों में संलग्न हाथ वाले कृष्ण शोभा दे रहे थे ॥६४॥ उस समय में जिस प्रकार से नीलोत्पलों से युक्त अति विस्तार वाला ब्रह्मदण्ड हो। उस समय में सहस्रों मेघों की ध्वनि उस सागर से उठकर सुनाई दे रही थी ॥६५॥ द्वितीय भाग में भगवान् और उसके आगे आदित्य थे। इसके पश्चात् रुद्रगण और महान् उत्साह वाले वसुगण तथा गुह्यक आदि थे। आगे की ओर विप्रचित्ति, नमुचि तथा वृत्र और शम्बर थे द्विमूर्धा, वज्र दंष्ट्र, सैंहिकेय तथा बलि था ॥६६, ६७॥ ये सब तथा अन्य बहुत-से मुख भाग की ओर उपस्थित थे। उन सबने बल एवं तेज से विभूषित होते हुए दृप्त होकर अम्बुधि का मन्थन किया था ॥६८॥ सुरों असुरों के द्वारा मन्दराचल से मथ्यमान सागर का महान् मेघ की ध्वनि के तुल्य महान् घोष हुआ था। उस महाद्रि से वहाँ पर अनेक जलचर विनिर्धूत हो गये थे और सैंकड़ों तथा सहस्रों तो विलय को प्राप्त हो गये थे ॥६९, ७०॥

वारुणानि च भूतानि विविधानि महेश्वरः ।
पातालतलवासानि विलयं समुपानयत् ॥७१
तस्मिंश्च भ्राम्यमाणेऽद्रौ संघृष्टाश्च परस्परम् ।
न्यपतन् पतगोपेताः पर्वताग्रान्महाद्रुमाः ॥७२

तेषां सङ्घर्षणाच्चाग्निरर्चिभिः प्रज्वलन् मुहुः ।
विद्युद्भिरिव नीलाभ्रमावृणोन्मन्दरं गिरिम् ॥७३
ददाह कुञ्जरांश्चैव सिंहांश्चैव विनिःसृतान् ।
विगतासूनि सर्वाणिसत्त्वानिविविधानिच ॥७४
तमग्निममरश्रेष्ठः प्रदहन्तमितस्ततः ।
वारिणा मेघजेनेन्द्रः शमयामास सर्वतः ॥७५
ततो नानारसास्तत्र सुस्रुवुः सागराम्भसि ।
महाद्रुमाणां निर्यासा वहवश्चोपधीरसाः ॥७६
तेपाममृतवीर्य्याणां रसानां पयसैव च ।
अमरत्व सुरा जग्मुः काञ्चनच्छविसन्निभाः ॥७७

महेश्वर भगवान् ने पाताल तल के निवास करने वाले विविध वारुण भूतों को विलय को प्राप्त कर दिया था। उस पर्वत के भ्राम्यमाण होने पर परस्पर में सङ्घर्ष को प्राप्त हुए पर्वत के अग्रभाग से पक्षियों से संयुत महान् द्रुम नीचे गिर गये थे ॥ ७१ । ७२ ॥ उनके संघर्ष होने से अग्नि अर्चियों के द्वारा बारम्बार जलती हुई ने विद्युतों के द्वारा नील अभ्र की भाँति उस मन्दराचल को समावृत कर लिया था। निकले हुए कुञ्जरों को तथा सिंहों को—विगत प्राणों वाले सब अनेक सत्त्वों को दग्ध कर दिया था। अमरों में श्रेष्ठ ने इधर-उधर जलती हुई उस अग्नि को इन्द्रदेव ने सभी ओर मेघ से समुत्पन्न जल के द्वारा शान्त कर दिया था ॥ ७३ । ७४ । ७५ ॥ इसके अनन्तर वहाँ पर सागर के जल में नाना प्रकार के रसों का स्राव होने लगा था। उनमें महान् वृक्षों के निर्यास थे और बहुत-सी ओषधियों के रस थे। उन अमृत वीर्य वाले रसों के पय से ही सुरगण काञ्चन छवि के सदृश होते हुए अमृतत्व को प्राप्त हो गये थे ॥ ७६-७७ ॥

अथ तस्य समुद्रस्य तज्जातमुदकं पयः ।
रसान्तरैर्विमिश्रञ्च ततः क्षीरादभूद्घृतम् ॥७८

ततो ब्रह्माणमासीनं देवा वचनमब्रुवन् ।
श्रान्ताःस्म सुभृशं ब्रह्मन्नोद्भवत्यमृतञ्च ॥७९
ऋते नारायणात्सर्वे दैत्या देवोत्तमास्तथा ।
चिरायितमिदञ्चापि सागरस्य तु मन्थनम् ॥८०
ततो नारायण देव ब्रह्मा वचनमब्रवीत् ।
विधत्स्वैषा बल विष्णो ! भवानेव परायणम् ॥८१
बल ददामि सर्वेषा कर्मैतद्य समास्थिताः ।
क्षुभ्यता क्रमशः सर्वैर्मन्दर परिवर्त्यताम् ॥८२

इसके अनन्तर उस समुद्र का जो जल था वह पय हो गया था और वह रसान्तरो से विमिश्रित हो गया था। इसके पश्चात् क्षीर से वह घृत हो गया था ॥ ७८ ॥ इसके उपरान्त वहाँ पर समासीन ब्रह्माजी से देवगण ने यह वचन कहा था—हे ब्रह्मन् ! हम लोग अत्यधिक श्रान्त हो गये हैं और वह अमृत उत्पन्न नहीं हो रहा है। भगवान् नारायण के बिना समस्त दैत्य और सब देवोत्तम गण ने इस सागर के मन्थन को करते हुए बहुत अधिक समय व्यतीत किया था। इसके पश्चात् ब्रह्माजी ने देव नारायण से यह वचन कहा—हे विष्णो ! आप इनको बल का प्रदान करें। आप ही परायण हैं। भगवान् विष्णु ने कहा—जो इस कर्म के करने मे समास्थित हैं उन सबको मै बल का प्रदान करता हूँ। सबको क्रम से इसमे क्षोभ करना चाहिए और मन्दराचल को घुमाना चाहिए ॥ ७९–८२ ॥

११३–क्षीरोद मथन वर्णन (२)

नारायणवचः श्रुत्वा बलिनस्तेमहोदधिम् ।
तत्पयः सहिताभूत्वा चक्रिरे भृशमाकुलम् ॥१

ततः शतसहस्रांशुसमान इव सागरात् ।
प्रसन्नाभः समुत्पन्नः सोमः शीतांशुरुज्ज्वलः ॥२
श्रीरनन्तरमुत्पन्ना घृतात्पाण्डुरवासिनी ।
सुरादेवीसमुत्पन्ना तुरगः पाण्डुरस्तथा ॥३
कौस्तुभश्च मणिर्दिव्यश्चोत्पन्नोऽमृतसम्भवः ।
मरीचिविकचः श्रीमान् नारायण उरोगतः ॥४
पारिजातश्च विकचकुसुमस्तवकाञ्चितः ।
अनन्तरमपश्यंस्ते धूममम्बरसन्निभम् ॥५
आपूरितदिशाम्भाग दुःसहं सर्वदेहिनाम् ।
तमाघ्राय सुराः सर्वे मूर्च्छितापरिलङ्घिताः ॥६
उपाविशन्नब्धितटे शिरः सगृह्य पाणिना ।
ततः क्रमेण दुर्वारः सोऽनलः प्रत्यदृश्यत ॥७

महर्षि सूतजी ने कहा—भगवान् नारायण के वचन का श्रवण करके वे बलवान् सब सहित होकर उस महोदधि के मथ को अत्यन्त ही अधिक उन्होंने आकुल कर दिया था। इसके पश्चात् उस सागर से एक शत सहस्रांशु के ही समान प्रसन्न आभा वाला उज्वल शीतांशु सोम, समुत्पन्न हुआ था इसके अनन्तर घृत में पाण्डुर वासिनी श्री समुत्पन्न हुई थी फिर सुरा देवी समुत्पन्न हुई तथा पाण्डु तुरङ्ग उत्पन्न हुआ था ॥ १, २ ३ ॥ फिर अमृत से सम्भव होने वाली परम दिव्य कौस्तुभ मणि समुत्पन्न हुई थी जो मरीचियों से विकच एवं श्री सम्पन्न थी और नारायण के उरःस्थल में प्राप्त हो गई थी ॥ ४ ॥ पारिजात की समुत्पत्ति हुई था जो विकसित कुसुमों के स्तवकों से अञ्चित था। इसके अनन्तर उन सबने अम्बर के सदृश धूम को देखा था ॥ ५ ॥ सब दिशाओं व भागों को समापूरित—सब देहधारियों को दुःसह ऐसे उस धूम को समाघ्रान करके सभी सुरगण मूर्च्छित और परिलङ्घित हो गये थे ॥ ६ ॥ सबर सब उस समय में अपने हाथ से शिर पकड़ कर सागर

के तट पर बैठ गये थे और इसके उपरान्त वह अनल अत्यन्त ही क्रम से दुर्वार होकर दिखाई देने लगा था ॥ ७ ॥

ज्वालामालाकुलाकारः समन्ताद्भीषणोऽर्चिषा ।
तेनाग्निनापरिक्षिप्ताः प्रायशस्तु सुरासुराः ॥८
दग्धाश्चाप्यर्द्ध दग्धाश्च बभ्रमुः सकला दिशः ।
प्रधाना देवदैत्याश्च भीपितास्तेन वह्निना ॥९
अनन्तरं समुद्भूतास्तस्मात् डुण्डुभजातयः ।
कृष्णासर्पामहादंष्ट्रारक्ताश्च पवनाशनाः ॥ १०
श्वेतपीतास्तथाचान्ये तथा गोनसजातयः ।
मशकाभ्रमरादंशा मक्षिकाः शलभास्तथा ॥११
कर्णशल्याः कृकलासा अनेकाश्चैव बभ्रमुः ।
प्राणिनो दंष्ट्रिणो रौद्रस्तथा हि विषजातयः ॥१२
शाङ्र्ग हालाहलामुस्तवत्सकं गुरुभस्मगाः ।
नीलपत्रादयश्चान्ये शतशो बहुभेदिनः ॥
येषा गन्धेन दह्यन्ते गिरिशृङ्गाण्यपि द्रुतम् ॥१३

ज्वालाओं की माला से समाकुल आकार वाला और अर्चि से सभी ओर महान् भीषण वाले उस अग्नि से प्रायः सभी सुर और असुर परिक्षिप्त हो गये थे। वे कुछ दग्ध और कुछ आधे दग्ध होकर सभी दिशाओं मे भ्रमण करने लगे थे। प्रधान देव और दैत्य उस वह्नि के द्वारा भीषित हो गये थे। इसके अनन्तर उससे डुण्डुभ जातियाँ समुद्भूत हो गये थे। कृष्ण सर्प—महान् दाढ़ों वाले—रक्त-पवन का अशन करने वाले-श्वेत-पीत तथा अन्य गोनस जाति वाले—मशक-भ्रमरदंश-मक्षिका-शलभ-कर्णशल्य—कृकलास ऐसे अनेक वहाँ पर भ्रमण कर रहे थे और वे ऐसे सभी प्राणी थे जो दाढ़ों से सम्पन्न-रौद्र और विषयुक्त जातियों वाले थे। शार्ङ्ग हालाहल-मुस्त वत्सक-गुरुभस्मग और अन्य नील पत्र आदि सैकड़ों बहुत से भेद से युक्त थे। जिनकी गन्ध ही

ऐसी प्रबल थी कि जिससे गिरियों के शिखर भी बहुत ही शीघ्र दग्ध हो जाते थे ॥ ८-१३ ॥

अनन्तरं नीलरसौघभृङ्गभिन्नाञ्जनाभं विषमं श्वसन्तम् ।
कायेन लोकान्तरपूरकेण केशैश्च वह्निप्रतिमैर्ज्वलद्भिः ॥ १४
सुवर्णमुक्ताफलभूषिताङ्गं किरीटिनं पीतदुकूलजुष्टम् ।
नीलोत्पलाभैः कुसुमैः कृतार्घं गर्जन्तमम्भोधरभीमवेगम् ॥ १५
अद्राक्षुरम्भोनिधिमध्यसंस्थं सविग्रहं देहि भयाश्रयन्तम् ।
विलोक्य तं भीषणमुग्रनेत्रं भूताश्च वित्रेसुरथापि सर्वे ॥ १६
केचिद्विलोक्यैव गता ह्यभाव निःसंज्ञतां चाप्यपरे प्रपन्नाः ।
वेमुर्मुखेभ्योऽपि च फेनमन्ये केचित्त्वगाप्ता विषमामवस्थाम् ॥ १७
श्वासेन तस्य निर्दग्धा ततो विष्णिवन्द्रदानवाः ।
दग्धाङ्गारनिभाजाता ये भूता दिव्यरूपिणः ॥
ततस्तु सम्भ्रमाद्विष्णुस्तमुवाच सुरात्मकम् ॥ १८
को भवानन्तकप्रख्यः किमिच्छसि कुतोऽपि च ।
किं कृत्वा ते प्रियं जायेत देवमाचक्ष्व मेऽखिलम् ॥ १९
तच्च तस्य वचः श्रुत्वा विष्णोः कालाग्निसन्निभः ।
उवाच कालकूटस्तु भिन्न दुन्दुभिनिस्वनः ॥ २०

इसके अनन्तर नील रस के ओघ से भिन्न भृङ्ग एवं अञ्जन की आभा वाले, विषम श्वास लेता हुआ, लोकान्तर पूरक काया से युक्त, जलती हुई अग्नि के तुल्य केशों से संयुत—सुवर्ण और मुक्ता फलों से विभूषित अङ्गों वाला, किरीट धारी, पीतवर्ण के वस्त्र से वेष्टित, नीलोत्पल के समान आभा वाले पुष्पों से कृत अर्घ वाला, अम्भोधर के तुल्य भीम वेग वाला, गर्जन से समन्वित, विग्रहधारी देही जो भय का समाश्रय था समुद्र के मध्य में संस्थित सबने देखा था। ऐसे उस भीषण, उग्र नेत्रों से सम्पन्न को देखकर समस्त भूत विश्वस्त हो गये थे। कुछ तो उसे देखने के साथ ही अभाव को प्राप्त हो गये थे और कुछ दूसरे बेहोशी

को प्राप्त हो गये थे। अन्य लोग अपने मुखों से फेनों का वमन कर रहे थे और कुछ तो विषम दशा को ही प्राप्त हो गये थे। उसके श्वांस से ही बहुत से निर्दग्ध हो गये थे। इसके पश्चात् विष्णु, इन्द्र और दानव सबके सब दग्ध अङ्गार के तुल्य हो गये थे जो भूत परम भव्य दिव्य रूप वाले थे। इसके अनन्तर भगवान् विष्णु सुरात्मक उससे बड़े ही सम्भ्रम से बोले—श्री भगवान् ने कहा—आप एक अन्तक की आख्या वाले कौन हैं? हम सबको आपका परम प्रिय क्या कर्म करना चाहिए। जिससे देव को प्रसन्न करें। यह समस्त मध्य हमको बतलाइये! वह कालाग्नि के सदृश भगवान् विष्णु के इस वचन का श्रवण करके वह कालकूट विष जो मूर्तिमान् था भिन्न दुन्दुभि के समान ध्वनि वाला वह बोला—॥ १४–२० ॥

अहं हि कालकूटाख्यो विषोऽम्बुधिसमुद्भवः।
यदा तीव्रतरामर्षैः परस्परवधैषिभिः ॥ २१
सुरासुरैर्विमथितो दुग्धाम्भोनिधिरद्भुतः।
सम्भूतोऽहं तदा सर्वान् हन्तुं देवान् सदानवान् ॥२२
सर्वानिह हनिष्यामि क्षणमात्रेण देहिनः।
मां मा ग्रसत वै सर्वे यात वा गिरिशान्तिकम् ॥२३
श्रुत्वैतद्वचनं तस्य ततो भीताः सुरासुराः।
ब्रह्मविष्णूपुरस्कृत्य गतास्ते शङ्करान्तिकम् ॥२४
निवेदितास्ततोद्वास्थैस्ते गणेशैः सुरासुराः।
अनुज्ञाताः शिवेनाथविविशुर्गिरिशान्तिकम् ॥२५
मन्दरस्यगुहांहैमीं मुक्तामालाविभूषिताम्।
सुस्वच्छमणिसोपानांवैदूर्यस्तम्भमण्डिताम् ॥२६
तत्र देवासुरं सर्वं जानुभिर्धरणीगतैः।
ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा इदं स्तोत्रमुदाहृतम् ॥२७

कालकूट ने कहा—मैं कालकूट नाम वाला अम्बुधि से समुत्पन्न होने

वाला विष हूं जिस समय में तीव्रतर अमर्ष वाले और परस्पर में वध करने की इच्छा से युक्त सुरों और असुरों के द्वारा यह अद्भुत दुग्धाम्भोधि का विमथन किया गया तो मैं उसी समय में इन समस्त दानवों के सहित देवों का हनन करने के लिए ही समुत्पन्न हुआ हूं। अब मैं क्षणभर में यहां पर सब देह धारियों को मार डालूंगा। सब लोग मुझको ग्रसित मत करो अथवा भगवान् गिरीश के समीप में चले जाओ ॥२१, २२, २३॥ उसके इस वचन को सुनकर सब सुर और असुर भयभीत हो गये थे और उन्होने ब्रह्मा तथा विष्णु को अपना नेता बनाकर वे सब भगवान् शङ्कर के समीप में आकर प्राप्त हुए थे। वहां पर द्वारपर स्थित गणेशों के द्वारा उन सुरासुरों का आगमन निवेदित किया गया था। इस पर शिव के द्वारा वे आज्ञा को प्राप्त करके फिर भगवान् शिव के समीप में पहुँच गये थे। वहां पर मन्दराचल की एक गुहा थी जो सुवर्ण मयी थी और मोतियों की मालाओं से विभूषित थी तथा उसमें अतीव निर्मल मणियों के सोपान बने हुए थे एवं वैदूर्य मणियों के स्तम्भों से वह गुहा मण्डित थी। वहां पर सभी देव और असुर अपने घुटने भूमि पर टेककर बैठ गये थे। उन्होंने अपने आगे ब्रह्माजी को संस्थित करके इस स्तोत्र का कथन करना आरम्भ कर दिया था ॥२४—२७॥

नमस्तुभ्य विरूपाक्ष ! सर्वतोऽनन्तचक्षुषे ।
नमः पिनाकहस्ताय वज्रहस्ताय धन्विने ॥२८
नमस्त्रिशूलहस्ताय दण्डहस्ताय धूर्जटे ।
नमस्त्रैलोक्यनाथाय भूतग्रामशरीरिणे ॥२९
नमः सुरारिहन्त्रे च सोमाग्न्यर्काग्र्यचक्षुषे ।
ब्रह्मणे चैव रुद्राय नमस्ते विष्णुरूपिणे ॥३०
ब्रह्मणे वेदरूपाय नमस्ते देवरूपिणे ।
साङ्ख्ययोगाय भूतानां नमस्ते शम्भवाय ते ॥३१
मन्मथाङ्गविनाशाय नमः कालक्षयङ्कर।

रहसे देवदेवाय नमस्ते च सुरोत्तम ! ॥३२
एकवीराय शर्वाय नम. पिङ्गकपर्दिने ।
उमाभर्त्रे नमस्तुभ्य यज्ञत्रिपुरघातिने ॥३३
शुद्धबोधप्रबुद्धाय मुक्तकैवल्यरूपिणे ।
लोकत्रयविधात्रे च वरुणेन्द्राग्निरूपिणे ॥३४
ऋग्यजुः सामवेदाय पुरुषायेश्वराय च ।
अग्र्यायचैवचोग्राय विप्राय श्रुतिचक्षुषे ॥३५

देवो तथा दानवो ने कहा—हे विरूपाक्ष देव ! सभी ओर से अनन्त चक्षु वाले आपके लिए हमारा सबका नमस्कार है। पिनाक को हाथ रखने वाले—वज्रहस्त और धन्वी आपकी सेवा मे नमस्कार समर्पित है ॥२८॥ त्रिशूल हाथ मे रखने वाले—दण्ड धारी और धूर्जटि आपको प्रणाम है। त्रैलोक्य के नाथ और भूत ग्रामो के शरीर को धारण करने वाले आपकी सेवा मे नमस्कार है ॥२९॥ सुरो के शत्रुओ का हनन करने वाले—सोम, अग्नि, अर्क के उत्तम नेत्रो वाले को प्रणाम है। ब्रह्मा, रुद्र और विष्णु के रूप वाले आपको हमारा नमस्कार है। वेदरूप ब्रह्मा और देव रूपी आपके लिए नमस्कार है। भूतो के साङ्ख्य योग के लिए और शम्भु आपके लिए नमस्कार है। कामदेव के अङ्ग का विनाश करने वाले आपको हमारा प्रणाम है। हे काल के क्षय करने वाले ! हे सुरो मे उत्तम ! देवो के देव ! आपकी सेवा मे नमस्कार है ॥३०, ३१, ३२॥ एक वीर, शर्व और पिङ्ग कपर्दी आपके लिये प्रणाम है। उमा देवी के भर्त्ता और यज्ञ त्रिपुर के घात करने वाले आपके लिए नमस्कार है। ॥३३॥ शुद्ध बोध प्रबोध, मुक्त, कैवल्य रूपी, तीनो लोको के विधाता तथा वरुण, इन्द्र और अग्नि के रूप वाले आपकी सेवा मे नमस्कार है। ॥३४॥ ऋक् यजु, सामवेद पुरुष, ईश्वर, अग्र्य, उग्र, विप्र और श्रुति के चक्षु वाले आपके लिए हम सबका नमस्कार समर्पित है ॥३५॥

रजसेचैवसत्त्वाय नमस्ते स्तिमितात्मने ।

अनित्यनित्यभावाय नमो नित्यचरात्मने ॥३६

व्यक्ताय चैवाव्यक्ताय व्यक्ताव्यक्ताय वै नमः।
भक्तानामार्तिनाशाय प्रियनारायणाय च ॥३७
उमाप्रियाय शर्वाय दन्दिवक्त्राञ्चिताय च।
ऋतुमन्वन्तरकल्पाय पक्षमासदिनात्मने ॥३८
नानारूपाय मुण्डाय वरूथपृथुदण्डिने।
नमः कमलहस्ताय दिग्वासाय शिखण्डिने ॥३९
धन्विने रथिने चैव यतते ब्रह्मचारिणे।
इत्येवमादिचरितः स्तुतं तुभ्यं नमोनमः ॥४०
एवं सुरासुरैः स्थाणुः स्तुतस्तोपमुपागतः।
उवाच वाक्यमीतानांस्मितान्वितशुभाक्षरम् ॥४१

स्तिमित आत्मा वाले—रजगुण और सत्त्व के लिए नमस्कार है। अनित्य नित्यभाव और नित्य चरात्मा के लिये नमस्कार है। व्यक्त, अव्यक्त और व्यक्ताव्यक्त को प्रणाम है। भक्तों की आर्त्ति के नाश करने वाले और नारायण प्रभु के प्रिय, उमा के परम प्रिय, शर्व, नान्दि वक्त्राञ्जित ऋतु मन्वन्तर कल्प, पक्ष मास दिन स्वरूप वाले, नानारूप, मुण्ड, वरूथ पृथु दण्डी, कमल हस्त, दिग्वास, शिखण्डी, धन्वी, रथी, यति, ब्रह्मचारी, इत्येवमादि चरितों से स्तुत आपके लिए बारम्बार नमस्कार है। इस प्रकार से सुर और असुरों के द्वारा स्तुति किये गये भगवान् स्थाणु परम तोष को प्राप्त हुए थे। भीतों के स्मित से समन्वित शुभ अक्षरों वाला वाक्य उन्होंने कहा था—॥३६-४१॥

किमर्थंमगता ब्रूत म्लानमुखाम्बुजाः !।
किं वाऽभीष्टं ददाम्यद्य कामं प्रब्रूत मा चिरम् ॥
इत्युक्तास्ते तु देवेन प्रोचुस्तं ससुरासुराः ॥४२॥
अमृतार्थं महादेव ! मथ्यमानेमहोदधौ।
विषमद्भुतमुद्भूतंलोकसंक्षयकारकम् ॥४३

स उवाचाथसर्वेषां देवानां भयकारकः ।
सर्वान्वा भक्षयिष्यामि अथवा मा पिबस्तथा ॥४४
तमशक्तावयं ग्रस्तु सोऽस्मान् शक्तोग्रलोकदः ।
एषनिश्वासमात्रेण शत धंसमद्युतिः ॥४५
विष्णुः कृष्ण कृतस्तेनयमश्च विषमात्मवान् ।
मूच्छिताः पतिताश्चान्येविप्रणाशङ्कृताः परे ॥४६
अर्थोऽनर्थक्रियायाति दुर्भगाना यथा विभो ! ।
दुर्बलानाञ्च रागलो यथाभवतिचापदि ।४७
विषमेतत्समुद्भूत तस्माद्वामृतकाङ्क्षया ।
अस्माद्भयान्मोचयत्व गतिस्त्वञ्च परायणम् ॥४८
भक्तानुकम्पी भावज्ञो भुवनाधीश्वरो विभुः ।
यज्ञाग्रभुक् सर्वहविः सौम्य. सोमः स्मरान्तकृत् ॥४९

भगवान् श्री शङ्कर ने कहा—त्रास से म्लान मुख कमल वालो ! आप लोग यहाँ किस प्रयोजन के लिए समागत हुए हैं ? आज मैं आपको क्या अभीष्ट प्रदान करूं ? आप स्वेच्छया शीघ्र बतलाइये और इसके बताने में विलम्ब न करिये। इस तरह से जब महादेव के द्वारा उनसे कहा गया था तो वे सब सुर और असुर उनसे कहने लगे थे—॥४२॥ सुर और असुरों ने कहा—हे महादेव ! हम लोग अमृत के लिये इस महोदधि का मन्थन कर रहे थे उस मथ्यमान सागर से अद्भुत और लोकों के संक्षय को करने वाला विष समुत्पन्न हुआ था। यह हम सब देवों को भय करने वाला बोला था कि मैं आप सबको भक्षण कर जाऊँगा अथवा मेरा पान करो ॥४३, ४४॥ उसका ग्रसन करने के लिए हम सब अशक्त हैं प्रत्युत बह स उत्कट वही हमको ग्रसने में समर्थ है। यह केवल विश्वास मात्र से ही ग्रस्त कर सकता है। यह शतपथ की द्युति के समान द्युति वाला है। उसने विष्णु को कृष्ण कर दिया था और आत्मवान् उसने यम को विष कर दिया था। कुछ लोग उसने मूच्छित कर दिये

थे, अन्य गिरा दिये थे तथा दूसरों को प्रनष्ट कर दिया था। हे विभो! जैसे बुरे भाग्यों वालों को हुआ करता है वैसे ही सब अर्थ अनर्थ क्रिया प्राप्त हुआ करते हैं जिस तरह से आपत्ति काल में दुर्जनों का संकल्प हुआ करता है। यह विष उससे समुद्भूत हुआ है शायद यह अमृत की आकाङ्क्षा से ही हुआ है। अब आप इस भय से हमारा मोचन करिये। आप ही हमारी अब गति हैं और आप ही परायण हैं। आप अपने भक्तों पर अनुकम्पा करने वाले, भावों के ज्ञाता, भुवनाधीश्वर, विभु हैं तथा यज्ञों में सबसे आगे भोग करने वाले, सर्व हवि, सोम, सौम्य और आप कामदेव के अन्त कर देने वाले हैं ॥४५-४६॥

त्वमेको नो गतिर्देव गीर्वाणगणशंकृत् ।
रक्षास्मान् भक्तसंकल्पाद्विरूपाक्ष ! विषज्वरान् ॥५०
तच्छ्रुत्वा भगवानाह गणेशाशंकृद्भव ।
भक्षयिष्याम्यहं घोरं कालकूटं महाविषम् ॥५१
तथान्यदपि यत्कृत्यं कृच्छ्रसाध्यं सुरासुराः ! ।
तच्चापि साधयिष्यामि तिष्ठध्वं विगतज्वराः ॥५२
इत्युक्तवाहृष्टरोमाणो बाष्पगद्गदकण्ठिनः ।
आनन्दाश्रुपरीताक्षाः सनाथाइव मेनिरे ॥
सुरा ब्रह्मादयः सर्वे समाश्वस्ता सुमानसाः ॥५३
ततोऽव्रजद् द्रुतगतिना ककुद्मिना हरोऽम्बरे पवनगतिर्जगत्पतिः ।
प्रधावितैरसुरसुरेन्द्रनायकैः स्ववाहनैर्विगृहीतशुभ्रचामरैः ॥
पुरःसरैः स तु शुशुभे शुभाश्रयैः ।
शिवो वशी शिखिकपिशोध्वजूटकः ॥ ५४
आसाद्य दुग्धसिन्धुं तं कालकूटं विषं यतः ।
ततो देवोमहादेवो विलोक्यविषमविषम् ॥५५
छायास्थानकमास्थाय सोऽपिबद्वामपाणिना ।
पीयमानेविषेतस्मिंस्ततोदेवाः महासुराः ॥५६

हे देव ! आप ही एक हमारी गति हैं और देवों के समुदाय के कल्याण करने वाले हैं। हे विरूपाक्ष ! भक्षण करने के संकल्प वाले इस महाविष के डर से हमारी आप रक्षा कीजिए ॥५०॥ यह श्रवण करके भग के नेत्रों के अन्त कर देने वाले भव प्रभु ने कहा—मैं इस घोर महाविष कालकूट का भक्षण कर जाऊँगा। हे सुरासुरो ! इसके अतिरिक्त अन्य भी जो कृच्छ्रसाध्य कृत्य होगा उसको भी साध्य कर दूँगा। आप लोग सब विगत ज्वर होकर स्थित रहिए ॥५१, ५२॥ इतना कह कर यह शान्त हो गये। किन्तु देवगण प्रहृष्ट रोमों वाले, वाष्प से गद्गद् कण्ठों वाले आनन्द के अश्रुओं से परीत नेत्रों वाले सबने अपने आप सनाथ की तरह से मान लिया था। ब्रह्मा आदि समस्त देवगण सुमानस एवं समाश्वस्त हुए थे। इसके उपरान्त मे पवन के समान गति वाले जगत् के स्वामी हर ने आकाश मे द्रुत गति वाले ककुद्मी के द्वारा चले गये थे। ग्रहण किये हैं शुभ्र चामर जिन्होंने ऐसे वाहनों से समन्वित और प्रधावित असुर और सुरेन्द्रनायकों को आगे करके वह शिखी के समान कपिश और ऊर्ध्व जूट वाले वशी भगवान् शिव इन शुभ आश्रमों वालों के सहित परम सुन्दर शोभा को प्राप्त हुए थे ॥५३–५६॥

जगुश्च ननृतुश्चापि सिंहनादांश्च पुष्कलान् ।
चक्रुः शक्रमुखाद्याश्च हिरण्याक्षादयस्तथा ॥५७
स्तुवन्तश्चैव देवेशं प्रसन्नाश्चाभवस्तदा ।
कण्ठदेशे ततः प्राप्ते विषे देवमथाब्रुवन् ॥५८
विरिञ्चिप्रमुखा देवा बलिप्रमुखतोऽसुराः ।
शोभते देव ! कण्ठस्ते गात्रे कुन्दनिभप्रभे ॥५९
भृङ्गमालानिभंकण्ठेऽप्यत्रैवास्तु विषं तव ।
इत्युक्तः शङ्करोदेवस्तथा प्राह पुरान्तकृत् ॥६०
पीते विषे देवगणान् विमुच्य गतो हरो मन्दरशैलमेव ।
तस्मिन् गते देवगणाः पुनस्त ममन्थुरब्धि विविधप्रकारैः ॥६१

उस समय में इन्द्र आदि जिनमें प्रमुख थे ऐसे समस्त देवगण तथा हिरण्याक्ष प्रभृति दानव गण सभी गान करने लगे थे एवं नृत्य कर रहे थे और पुष्कल सिंह के समान नाद करते थे। देवेश्वर का स्तवन करते हुए वे सब उस अवसर पर परम प्रसन्न हो गये थे। जब वह महा कालकूट विष उनके कण्ठ देश में प्राप्त हो गया था तो वे सब इसके अनन्तर देव से कहने लगे थे। ब्रह्मा हैं प्रधान जिनमें ऐसे सब सुरगण और बलि जिनमें प्रमुख थे वे सब असुरगण महादेव जी से बोले—हे देव! कुन्द के पुष्प के तुल्य परम स्वच्छ श्वेत प्रभा वाले आपके गात्र में आपका यह कण्ठ भाग शोभा युक्त हो रहा है। भौंरों की माला के तुल्य यह महाविष आपके इस कण्ठ में ही यहीं पर स्थित रहे। इस तरह से उनके द्वारा कहे हुए देव त्रिपुर के विनाशक शंकर ने उनसे कहा था और विष के पान कर लेने पर भगवान् हर उन देवगणों को छोड़ कर मन्दर शैल के ही समीप में चले गए थे। उनके वहाँ पर पहुँच जाने पर उन देव गणों ने फिर अनेक प्रकारों से उस सागर का मन्थन करना शुरू कर दिया था ॥८७-९१॥

११४—क्षीरोद मथन वर्णन (३)

मथ्यमाने पुनस्तस्मिन् जलधौ समदृश्यत ।
धन्वन्तरि. स भगवान् आयुर्वेदप्रजापतिः ॥१
मदिरा चायताक्षी सा लोकचित्तप्रमाथिनी ।
ततोऽमृतञ्च सुरभि सर्वभूतभयापहा ॥२
जग्राह कमला विष्णु. कौस्तुभञ्च महामणिम् ।
गजेन्द्रञ्चसहस्राक्षो हयरत्नञ्च भास्करः ॥३
धन्वन्तरिञ्च जग्राह लोकारोग्यप्रवर्तकम् ।
छत्रं जग्राह वरुणः कुण्डले च शचीपतिः ॥४

पारिजाततरुं वायुर्जग्राह मुदितस्तथा ।
धन्वन्तरिस्ततोदेवो वपुष्मानुदतिष्ठत ॥५
श्वेतकमण्डलु बिभ्रदमृतं यत्र तिष्ठति ।
एतदत्यद्भुत दृष्ट्वा दानवानां समुत्थितः ॥६
अमृतार्थे महानादो ममेदमिति जल्पताम् ।
ततो नारायणो मायामास्थितो मोहिनी प्रभुः ॥७

महा महर्षि श्री सूतजी ने कहा—पुनः उस जलधि के मथ्यमान होने पर वह भगवान् आयुर्वेद के प्रजापति श्री धन्वन्तरि दिखलाई दिये थे । समस्त लोकों के चित्तों को प्रमथन करने वाली और आयत नेत्रों से समन्वित वह मूर्त्तिमती मदिरा दिखलाई दी थी और इसके अनन्तर अमृत तथा सब लोकों के भय का अपहरण करने वाली सुरभि तथा कमला प्रकट हुई । भगवान् विष्णु ने उस कमला को और कौस्तुभ मणि को ग्रहण कर लिया था । सहस्राक्ष ने गजेन्द्र को और भास्कर देव ने हयरत्न का ग्रहण किया था एवं लोकों के आरोग्य के प्रवर्त्तक भगवान् धन्वन्तरि का भी ग्रहण किया था । छत्र को वरुण ने और शची के स्वामी ने कुण्डलों को ग्रहण किया कर लिया था । पारिजात नाम वाले तरु को वायु देव ने ग्रहण किया था और वह परम मुदित हुए थे । फिर देव वपुष्मान् धन्वन्तरि उत्थित हुए थे । उनके हाथ मे एक श्वेत वर्ण का कमण्डलु था जिसमे अमृत स्थित था । इस परम अद्भुत दृश्य को देखकर दानवों का महान् नाद समुत्थित हो गया था । उस अमृत के लिए यह मेरा है—ऐसा ही सब कह रहे थे । इसके उपरान्त नारायण प्रभु मोहिनी माया मे आस्थित हुए थे ।।१–७।।

स्त्रीरूपमतुलंकृत्वा दानवानभिसंसृतः ।
ततस्तदमृत तस्यै ददुस्ते मूढचेतनाः ॥
स्त्रियै दानवदैतेयाः सर्वे तद्गतमानसाः ॥८
अथास्त्राणि च मुख्यानि महाप्रहरणानि च ।

प्रगृह्याभ्यद्रवन्देवान् सहितादैत्यदानवाः ॥९
ततस्तदमृतं देवो विष्णुरादाय वीर्यवान् ।
जहारदानवेन्द्रेभ्यो नरेण सहितः प्रभुः ॥१०
ततो देवगणाः सर्वे पपुस्तदमृतं तदा ।
विष्णोः सकाशात् संप्राप्य संग्रामे तुमुलेसति ॥११
ततः पिबत्सु तत्काल देवेष्वमृतमीप्सितम् ।
राहुर्विबुधरूपेण दानवोऽप्यपिबत्तदा ॥१२
तस्य कण्ठमनुप्राप्ते दानवस्यामृते तदा ।
आख्यात चन्द्रसूर्याभ्यां सुराणां हितकाम्यया ॥१३
ततो भगवता तस्य शिरश्छिन्नमलंकृतम् ।
चक्रायुधेन चक्रेण पिबतोऽमृतमोजसा ॥१४

श्री नारायण प्रभु ने अनुपम स्त्री का स्वरूप धारण किया था और फिर वे उन दानवों के सम्मुख में समागत हुए थे । इसके अनन्तर उन मूढ़ बुद्धि वाले दानवों ने वह अमृत का कलश उस मोहिनी को समर्पित कर दिया था ॥८॥ दानव और देवगण सभी उस स्त्री में समासक्त मन वाले हो गये थे क्योंकि उस मोहिनी का रूप लावण्य ही अद्भुत आकर्षण करने वाला था । इसके उपरान्त में सब दैत्य और दानव एकत्रित होकर अनेक अस्त्र तथा शस्त्र महान् प्रहरणों को ग्रहण करके सबके सब देवगणों पर आक्रमण कारी हो गये थे । इसके पश्चात् वीर्यवान् भगवान् विष्णु ने उस अमृत को नर के सहित प्रभु ने दानवों से हरण कर लिया था । इसके उपरान्त उसी समय में उन देवगणों ने उस अमृत का पान कर डाला था । उस समय में तुमुल संग्राम उपस्थित हो गया था तो भी देवगण ने विष्णु से उस अमृत को प्राप्त कर लिया था ॥९, १०, ११॥ उस अमृत का देवों के द्वारा पान करने पर जो कि उनका परम अभीष्ट था । उन देवगणों में राहु दैत्य भी देवता का स्वरूप बनाकर बैठ गया था और उस समय में उसने भी उस अमृत को पी लिया था । उस दानव

के कण्ठ देश मे ही वह अमृत प्राप्त हुआ था उसी समय मे चन्द्र सूर्यों ने देवो के हित की कामना से इस तथ्य को बतला दिया था कि यह दानव कपट वेश मे यहा पर अमृत पान कर रहा है। इसके पश्चात् भगवान् ने उसके अलकृत शिर को सुदर्शन चक्र के द्वारा काट डाला था जिस समय मे वह अमृत का पान ओज से कर ही रहा था ॥८–१४॥

तच्छैलशृङ्गप्रतिमं दानवस्य शिरोमहत् ।
चक्रेणोत्कृत्तमपतच्चालयन् वसुधातलम् ॥१५
ततो वैरविनिर्बन्धः कृतो राहुमुखेन वै ।
शाश्वतश्चन्द्रसूर्याभ्यां प्रसह्याद्यापि बाधते ॥१६
विहायभगवांश्चापि स्त्रीरूपमतुलं हरिः ।
नानाप्रहरणैर्भीमैर्दानवान् समकम्पयत् ॥१७
प्रासाः सुविपुलास्तीक्ष्णाः पतन्तश्च सहस्रशः ।
ते सुराश्चक्रनिर्भिन्ना वमन्तोरुधिरं बहु ॥१८
असिशक्तिगदाभिन्ना निपेतुर्धरणीतले ।
भिन्नानिपट्टिशैश्चापि शिरांसि युधि दारुणैः ॥१९
तप्तकाञ्चनमाल्यानि निपेतुरनिशन्तदा ।
रुधिरेणावलिप्ताङ्गा निहताश्च महासुराः ॥२०
अद्रिणामिव कूटानि धातुरक्तानि शेरते ।
ततो हलाहलाशब्दः सम्बभूव समन्ततः ॥२१

उस दानव का वह शैल के शिखर के समान महान् शिर चक्र के द्वारा उत्कृत्त होकर वसुधातल को चालित कर करते हुए गिर गया था। ॥१५॥ इसके पश्चात् राहु के मुख के द्वारा वैरि का विनिर्बन्ध किया गया था और वह चन्द्र एव सूर्य के साथ शाश्वत है जो कि बल पूर्वक आज भी बाधा दिया करता है ॥१६॥ हरि भगवान् ने भी उस मोहिनी स्त्री के अतुल रूप का त्याग करके बडे भयानक अनेक प्रहरणो के द्वारा दानव गणो को कम्पित कर दिया था ॥१७॥ प्रास, सुविपुल, तीक्ष्ण और सहस्रों

भी सन्ध्या में गिर रहे थे। वे असुर गण भगवान् के चक्र के द्वारा निर्भिन्न होकर बहुत से रुधिर का वमन कर रहे थे ॥१८॥ असि, शक्ति और गदा से भिन्न होकर वे धरणी तल में निपतित हो गये थे। युद्ध स्थल में दारुण प्रहरणों के द्वारा भिन्न हुए शिर और पट्टिश भी भूमि पर गिर गये थे ॥१९॥ उस समय में निरन्तर तप्त सुवर्ण की माल्य धरणी तल में गिर गईं थीं। महासुर रुधिर से अवलिप्त अङ्ग वाले निहत हो गये थे जो कि पर्वतों के शिखरों की भाँति धातुओं से रक्त होकर भूमि पर सो रहे थे। इसके पश्चात् सभी ओर से हलहला शब्द सम्भूत हो गया था। ॥ २०, २१ ॥

अन्योऽन्य छिन्दता शस्त्रैरादित्ये लोहितायति।
परिघैश्चायसैः पीतैः निस्त्रिंशैश्च मुष्टिभिः ॥२२
निघ्नतां समरेऽन्योऽन्य शब्दो दिवमिवास्पृशत्।
छिन्धि भिन्धि प्रधावेति पातयेभिसरेति च ॥२३
विश्रूयन्ते महाघोरा शब्दास्तत्र समन्ततः।
एवं सुतुमुले युद्धे वर्तमाने महाभये ॥२४
नरनारायणौ देवौ समाजग्मतुराहवम्।
तत्र दिव्य धनुर्दृष्ट्वा नरस्य भगवानपि ॥
चिन्तयामास वै चक्रं विष्णुर्दानवसूदनम् ॥२५
ततोऽम्बराच्चिन्तितमात्रमागतं महाप्रभं चक्रममित्रनाशनम्।
विभावसोस्तुल्यमकुण्ठमण्डलं सुदर्शनं भीममसह्यमुत्तमम् ॥२६
तदागतं ज्वलितहुताशनप्रभं भयङ्करं करिकरबाहुरच्युतः।
महाप्रभं दनुकुलदारणं तथोज्ज्वलज्ज्वलनसमानविग्रहम् ॥२७
मुमोच वै तपनमुदग्रवेगवान् महाप्रभं रिपुनगरावदारणम्।
सम्वर्तकज्वलनसमानवर्चसं पुनः पुनर्न्यपतत वेगवत्तदा ॥२८

इसके पश्चात् परस्पर में छेदन करने वालों के शस्त्रों से आदित्य के लोहित हो जाने पर आयस परिघों से पीत निस्त्रिंशों से—मुष्टियों से

समर मे अन्योऽन्य का निहनन करने वालों का शब्द दिवलोक को मानो स्पर्श कर रहा था। काटो, भेदन करदो, दौड़ो, गिरादो, छोड़कर धावा कर घेरलो, इत्यादि शब्द जो कि महान् घोर थे वहाँ पर सभी घोर सुनाई दे रहे थे। इस तरह से महान् भय देने वाले तुमुल युद्ध के वर्त्तमान होने पर नर और नारायण दोनो देव उस समर स्थल मे समागत हो गये थे। वहाँ पर भगवान ने भी नर के दिव्य धनुष को देखकर भगवान् विष्णु ने दानव श्रेष्ठो के हनन करने के लिये चक्र का चिन्तन किया था। उसी समय मे जैसे ही चक्र का चिन्तन किया था अम्बर तल से वह सुदर्शन चक्र आ गया था जो महती प्रभा से युक्त और शत्रुओं के आदा करने वाला था। उस चक्र की दीप्ति सूर्य के तुल्य थी—उसका मण्डल कुण्ठा से रहित था—वह सुन्दर दर्शन वला–भीम–असह्य और उत्तम था ॥२२—२६॥ उस समागत हुए, जलती हुई अग्नि के समान प्रभा वाले, भयकर, महा प्रभा से युक्त, दनुकुल के दैत्यो का दारण करने वाले तथा जलती हुई अग्नि के समान विग्रह वाले उस चक्र को करिवं करके सदृश बाहु वाले अच्युत प्रभु ने छोड दिया था। उस समय मे अति प्रवेगवान्, तपन महाप्रभा से युक्त, दानवों के नगरो का अवदारण करने वाला, सम्वर्त्तक (प्रलय कालीन अग्नि) अग्नि के तुल्य वर्चस वाला और वेग युक्त वह चक्र बारम्बार गिरा करता था ॥२७, २८॥

व्यदारयद्दिलितनयान् सहस्रशः करेरित पुरुषवरेण सयुगे ।
दहत् क्वचिज्ज्वलन इवानिलेरित प्रसह्य तानसुरगणान्न्यकृन्तत। २९
प्रवेरित वियति मुहुः क्षितौ तदा पपौ रणे रुधिरमथः पिशाचवत् ।
अथासुरा गिरिभिरदीनमानसा मुहुर्मुहुः सुरगणमर्दयस्तथा ॥३०
महाचला विगलितमेघवर्चसः सहस्रशो गगनमहाप्रपातिनः ।
अथान्तराभरजनना: प्रपेदिरे सपादपा बहुविधमेघरूपिणः ॥३१
महाद्रयः प्रविगलिताग्रमानवः परस्परं द्रुतमभिपत्य भास्वराः ।
ततो मही प्रचलितसाद्रिकानना महीधरा पवनहताः समन्ततः ॥३२

परस्परं भृशमभिगर्जितं मुहू रणाजिरे भृशमथ सम्प्रवर्तते ।
नरस्ततो वरकनकाग्रभूषणं महेषुभिः पवनपथं समावृणोत् ॥३३
विदारयन् गिरिशिखराणि पत्रिभिर्महाभये सुरगणविग्रहे तदा ।
ततो महीं लवणजलञ्च सागरं महासुराः प्रविविशुरर्दिताः सुरैः ॥३४
वियद्गतं ज्वलितहुताशनप्रभं सुदर्शनं परिकुपितं निशाम्य च ।
ततः सुरैर्विजयमवाप्य मन्दरः स्वमेव देशं गमितः सुपूजितः ॥३५
विनादयन् स्वदिशमुपेत्य सर्वशस्ततोगताः सलिलधरा यथा गतम् ।
ततोऽमृतं सुनिहितमेव चक्रिरे सुराः परां मुदमभिगम्य पुष्कलाम् ।
ददुश्च तं निधिममृतस्य रक्षितुं किरीटिने बलिभिरथमारः सह ॥३६

उस समय में पुरुष श्रेष्ठ के हाथों से ईरित उस चक्र ने सहस्रों की संख्या में दिति के पुत्रों को विदीर्ण कर दिया था ॥२९॥ किसी स्थान पर अग्नि की भाँति जो कि वायु से सम्प्रेरित होता है बल पूर्वक उन असुर गणों को दग्ध करता हुआ काट रहा था । आकाश में प्रवेरित, पुनः क्षिति में उस समय में रुधिर मद पिशाच की भाँति रण स्थल में रक्त का वह चक्र पान कर रहा था । असुरगण अदीन मन वाले होकर पर्वतों से पुनः पुनः सुरगणों को अर्दित कर रहे थे ॥३०॥ सहस्रों की संख्या में स्थित महान् अनल विगलित मेघों के वचन वाले गगन में महान् प्रपात करते हुए, पादपों के सहित बहुत प्रकार के मेघों के स्वरूप वाले अन्तरा-भरजनन वाले हो गये थे ॥३१॥ अग्रे के शिखरों के प्रविगलित हो जाने वाले महान् पर्वत परस्पर में शीघ्र ही अभिपतित होकर भास्वर हो रहे थे । इसके अनन्तर मही जिसमें आद्र और कानन चलाय मान हो रहे थे ऐसी हो गई थी और सभी ओर महीधर पतन के द्वारा आहृत हो र थे ॥३२॥ उस रण के आँगन में आपस में अत्यन्त अधिक अभिगर्जित बारम्बार अधिकाधिक रूप से सम्प्रावृत हो रहा था । इसके अनन्तर नर ने श्रेष्ठ कनक के अग्रभूषणों वाले महान् बाणों से उस पवन के मार्ग को समावृत कर दिया था ॥३३॥ उस समय में महान् भयानक उस सुरगणों

के युद्ध मे पत्रियो के द्वारा पर्वतो के शिखरो को विदीर्ण करते हुए सुरों के द्वारा अर्दित हुए महासुर मही—लवण जल वाले सागर मे प्रवेश कर गये थे ॥३४॥ आकाश मे गये हुए जलती हुई अग्नि के समान प्रभा वाले परिकुपित सुदर्शन का श्रवण कराकर सुरगणो के द्वारा विजय प्राप्त करके वह मन्दराचल सुपूजित होता हुआ अपने ही देश को भेज दिया गया था ॥३५॥ अपनी दिशा मे प्राप्त होकर विनाद करता हुआ वह चला गया था। इसके अनन्तर सलिलधर सभी ओर वहा से जैसे समागत हुए थे वैसे ही चले गये थे। इसके उपरान्त सुरो ने अत्यधिक परम आनन्द की प्राप्ति कर उस अमृत को सुनिहित ही कर दिया था फिर बलशाली अमरो के सहित उस अमृत की निधि की रक्षा करने के लिए उस किरीट धारी प्रभु को दे दिया था ॥३६॥

११५—प्रासाद, भवन आदि निर्माण

प्रासादभवनादीना निवेश विस्तराद्वद।
कुर्यात्केन विधानेन कश्च वास्तुरुदाहृतः ॥१
भृगुरत्रिर्वशिष्ठश्च विश्वकर्मा मयस्तथा।
नारदोनग्नजिच्चैव विशालाक्षः पुरन्दरः ॥२
ब्रह्माकुमारो नन्दीश. शौनको गर्ग एव च।
वासुदेवोऽनिरुद्धश्च तथा शुक्रबृहस्पती ॥३
अष्टादशैते विख्याता वास्तुशास्त्रोपदेशकाः।
सङ्क्षेपेणोपदिष्टन्तु मनवे मत्स्यरूपिणा ॥४
तदिदानी प्रवक्ष्यामि वास्तुशास्त्रमनुत्तमम्।
पुरान्धकवधेघोरे घोररूपस्य शूलिनः ॥५
ललाटस्वेदसलिलमपतद् भुवि भीषणम्।

करालवदनं तस्मात् भूतमुद्भूतमुल्वणम् ॥६
ग्रसमानमिवाकाश सप्तद्वीपां वसुन्धराम् ।
ततोऽन्धकानां रुधिरमपिबत्पतितं क्षितौ ॥७

ऋषिगण ने कहा—हे भगवन् ! अब कृपा करके आप प्रासाद—भवन आदि के निवेश को विस्तार पूर्वक बतलाइये । किस विधान से इसे करना चाहिए और कौन सी वस्तु वास्तु, इस नाम से कही जाती है ? ॥१॥ श्री सूतजी ने कहा भृगु, अत्रि, वशिष्ठ, विश्वकर्मा, मय, नारद, नग्नजित, विशालाक्ष, पुरन्दर, ब्रह्मा, कुमार, नन्दीश, शौनक, गर्ग, वासुदेव, अनिरुद्ध, शुक्र, और बृहस्पति ये अठारह वास्तु शास्त्र के उपदेशक विख्यात हुए हैं । मत्स्य के स्वरूप को धारण करने वाले भगवान् ने भी मनु के लिए संक्षेप से इसका उपदेश दिया है ॥२, ३, ४॥ सो अब मैं इस वास्तु के उत्तम शास्त्र का वर्णन करूँगा । प्राचीन समय में घोर रूप वाले भगवान् शूली के घोर अन्धक के वध होने पर शिव के ललाट से भीषण स्वेद का सलिल भूमि पर गिर गया था । उससे कराल वदन वाला एक अत्यन्त उल्वण भूत उद्भूत हुआ था ॥५, ६॥ वह आकाश को ग्रसता हुआ था और सात द्वीपों वाली इस सम्पूर्ण वसुन्धरा को ग्रसित-सा करता हुआ प्रतीत हो रहा था । इस भूमि पर अन्धकों का जो भी जितना रुधिर पतित होता था उसको वह तुरन्त ही पी जाया करता था ॥७॥

तेन तत्समरे सर्वं पतितं यन्महीतले ।
तथापि तृप्तिमगमन्न तद्भूतं यदा तदा ॥८
सदाशिवस्य पुरतस्तेपश्चक्र सुदारुणम् ।
क्षुधाविष्टन्तु तद्भूतमाहर्तुं जगतीत्रयम् ॥९
ततः कालेन सन्तुष्टो भैरवस्तस्य चाहवे ।
वरं वृणीष्व भद्रन्ते ! यदभीष्टन्तवानघ ! ॥१०
तमुवाच ततो भूतं त्रैलोक्यग्रसनक्षमम् ।

भवामि देवदेवेश तथेत्युक्तञ्च शूलिना ॥११
ततस्तत्त्रिदिवं सर्वं भूमण्डलमशेषतः।
स्वदेहेनान्तरिक्षञ्च रुन्धानं प्रपतद्भुवि ॥१२
भीतभीतैस्ततोदेवै र्ब्रह्मणा चाथ शूलिना।
दानवासुररक्षोभिष्टब्ध समन्ततः ॥१३
येन यत्रैवचाक्रान्त स तत्रैवावसत्पुनः।
निवासात्सर्वदेवानां वास्तुरित्यभिधीयते ॥१४

उसने उस युद्ध मे महीतल पर जो भी जितना रुधिर पतित हुआ था उसने उस सबका पान कर लिया था। तो भी वह भूत जब तक तृप्ति को प्राप्त नही हुआ था। वह भगवान् सदाशिव के आगे बडा ही दारुण तप किया करता था और क्षुधा से आविष्ट वह भूत इस जगती त्रय का आहरण करने को समुद्यत हो रहा था। कुछ समय मे उसकी उस महा दारुण तपस्या से उस युद्ध मे भैरव उससे अत्यन्त सन्तुष्ट हो गये थे। भैरव ने उससे कहा—हे अनघ ! तुमको जो भी अभीष्ट हो वह वर मुझ से माँग लो तेरा कल्याण हो। इसके अनन्तर उस भूत ने भैरव से कहा—हे देव देवेश ! मैं इस त्रैलोक्य के ग्रसन करने की सामर्थ्य वाला हो जाऊँ। इस पर शूली ने 'ऐसा ही होगा'—यह कह दिया था ॥८–११॥ इसके उपरान्त वह सम्पूर्ण त्रिदिव समग्र भूमण्डल और अपने देह से रुन्धान अन्तरिक्ष भूमि पर गिर पडा था ॥१२॥ इसके पश्चात् डरे-डराये हुए देवो–ब्रह्मा–शूली और दानव, असुर तथा राक्षसो के द्वारा सभी ओर अवष्टब्ध हो गया ॥१३॥ जिसके द्वारा जहा पर ही आक्रमण किया गया था वह फिर वही पर निवास करने लगा था। समस्त देवो के निवास से "वास्तु"—इस नाम से कहा जाता है ॥१४॥

अवष्टब्धाश्च तेनापि विज्ञप्ताः सर्वदेवताः।
प्रसीदध्व सुराः सर्वे युष्माभिर्निश्चलीकृतः ॥१५
स्थास्यामि किमाकारो ह्यवष्टब्धो ह्यधोमुख ।

ततो ब्रह्मादिभिः प्रोक्तं वास्तुमध्ये तु यो बलिः ॥१६
आहारो वैश्वदेवान्ते नूनमस्मिन्भविष्यति ।
वास्तुपूजामकुर्वाणस्तवाहारो भविष्यति ॥१७
अज्ञानात् कृतो यज्ञस्तवाहारो भविष्यति ।
यज्ञोत्सवादौ च बलिस्तवाहारोभविष्यति ॥१८
एव मुक्तस्ततोहृष्टः सवास्तुरभवत्तदा ।
वास्तुयज्ञः स्मृतस्तस्मात्ततः प्रभृतिशान्तये ॥१९

उसके द्वारा अवष्टब्ध सब देवगण विज्ञप्त हो गये थे कि हे समस्त सुरगणो ! आप प्रसन्न हो जाइये आपने मुझे निश्चयीभूत बना दिया है । अब मैं नीचे की ओर मुख वाला अवष्टब्ध हुआ किस आकार वाला होकर स्थित रहूँगा ? इसका उत्तर ब्रह्मादि सबने यही दिया था कि वास्तु के मध्य में जो बलि है इसमें निश्चय ही वैश्व देवान्त में आहार हो जायगा ॥१५, १६ १७॥ जो यज्ञ अज्ञान से किया गया है वह भी तेरा आहार होगा। यज्ञोत्सव आदि में जो बलि है वह तेरा आहार होगा । इस प्रकार से कहे जाने पर वह परम प्रसन्न होकर उस समय में वास्तु हो गया था । इसी कारण से तभी से लेकर शान्ति के लिए वास्तु यज्ञ यह कहा गया है ॥१८, १९॥

११६—गृह निर्माण काल वर्णन

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि गृहकालविनिर्णयम् ।
यथा काल शुभं ज्ञात्वा सदा भवनमारभेत् ॥१
चैत्रेव्याधिमवाप्नोति यो गृहं कारयेन्नरः ।
वैशाखे धेनुरत्नानि ज्येष्ठेमृत्यु तथैव च ॥२
आषाढे भृत्यरत्नानि पशुवर्गमवाप्नुयात् ।

श्रावणे भृत्यलाभन्तु हानिं भाद्रपदे तथा ॥३
पत्नीनाशोऽश्विने विन्द्यात्कार्तिके धनधान्यकम् ।
मार्गशीर्षे तथा भक्तं पौषे तस्करतो भयम् ॥४
लाभञ्च बहुशो विन्द्यात् अग्निं माघे विनिर्दिशेत् ।
फाल्गुने काञ्चनं पुत्रानिति कालबलं स्मृतम् ॥५
अश्विनीरोहिणीमूलं उत्तरात्रयमैन्दवम् ।
स्वातीहस्तोऽनुराधा च गृहारम्भे प्रशस्यते ॥६
आदित्यभौमवर्ज्यास्तु सर्ववाराः शुभावहाः ।
वर्ज्यंव्याघातशूलेचव्यतीपातातिगण्डयोः ॥७

श्री सूतजी ने कहा—इसके अनन्तर गृहकाल का विशेष निर्णय मैं बतलाता हूँ। जिस प्रकार से शुभ काल को जानकर सदा भवन के निर्माण का आरम्भ करना चाहिए ॥ १ ॥ जो मनुष्य चैत्र मास में गृह का निर्माण कराता है तो व्याधि की प्राप्ति किया करता है। वैशाख मास में धेनु और रत्नों का लाभ होता है तथा ज्येष्ठ मास में गृह के निर्माण का कार्य आरम्भ कराने से मृत्यु हो जाया करती है। आषाढ़ मास में भृत्य और रत्न तथा पशु वर्ग का लाभ होता है। श्रावण मास में भृत्यों का लाभ होता है तथा भाद्रपद मास में गृह निर्माण कराने से हानि हुआ करती है। आश्विन मास में पत्नी का विनाश जानना चाहिए। कार्तिक के महीने में गृह के निर्माण कराने से धन-धान्य का लाभ होता है। मार्गशीर्ष में भक्त का लाभ तथा पौष में तस्करों से भय उत्पन्न होता है एवं बहुत सा लाभ भी होता है। माघ में अग्नि का भय होता है। फाल्गुन मास में काञ्चन और पुत्रों की प्राप्ति होती है यह काल का बल बता दिया गया है ॥ ३, ४, ५ ॥ अब नक्षत्रों के विषय में विचार प्रकट किया जाता है—अश्विनी, रोहिणी, मूल, तीनों उत्तरा, ऐन्दव, स्वाती, हस्त, अनुराधा ये नक्षत्र गृह निर्माण के कार्य्य में परम प्रशस्त माने गये हैं। आदित्य, भौम इन दो वारों को वर्जित करके गृह निर्माण

में अन्य सभी वार शुभावह हुआ करते हैं। व्याघात, शूल, व्यतीपात, अतिगण्ड ये वर्जित करने के योग्य होते हैं॥ ६, ७॥

विष्कम्भगण्डपरिघवज्रयोगेषु कारयेत्।
श्वेते मैत्रेऽथ माहेन्द्रे गान्धर्वाभिजिति रौहिणे॥८
तथा वैराजसावित्रे मुहूर्ते गृहमारभेत्।
चन्द्रादित्यबलं लब्ध्वा शुभलग्नं निरीक्षयेत्॥६
स्तम्भोच्छ्रायादिकर्त्तव्यमन्यत्तु परिवर्जयेत्।
प्रासादेष्वेवमेवं स्यात् कूपवापीषु चैव हि॥१०
पूर्वं भूमिं परीक्षेत पश्चाद्वास्तु प्रकल्पयेत्।
श्वेतारक्ता तथापीता कृष्णाचैवानुपूर्वशः॥११
विप्रादेः शस्यते भूमिरतः कार्य्यं परीक्षणम्।
विप्राणां मधुरास्वादा कटुका क्षत्रियस्य तु॥१२
तिक्ताकषाया च तथा वैश्यशूद्रेषु शस्यते।
अरत्निमात्रे वै गर्ते स्वनुलिप्ते च सर्वतः॥१३
घृतमामशरावस्थं कृत्वावर्तिचतुष्टयम्।
ज्वालयेद्भूपरीक्षार्थं तत्पूर्णं सर्वदिङ्मुखम्॥१४

विष्कम्भ, गण्ड, परिघ और वज्र ये योग श्रेष्ठ होते हैं—इनमें गृह का निर्माण कराना चाहिये। श्वेत, मैत्र, माहेन्द्र, गान्धर्व, अभिजित, रौहिण, वैराज, सावित्र—इन मुहूर्तों में गृह के निर्माण का आरम्भ कराना चाहिए। चन्द्र और सूर्य के बल को प्राप्त कर शुभ लग्न को भी देख लेना चाहिए। अन्य स्तम्भोच्छ्राय आदि कर्त्तव्य को परिवर्जित कर देना चाहिए। जो प्रासादों का निर्माण कराया जावे उनमें इसी प्रकार का विचार करना नितान्त आवश्यक है तथा कूआ और बावड़ी आदि के विषय में भी यही विचार करे। सबसे पहिले भूमि की परीक्षा करनी चाहिए इसके पश्चात् वस्तु की प्रकल्पना करे। कृष्णा, रक्ता, श्वेता तथा पीता अर्थात् सफेद, लाल, पीला और काला इनकी आनुपूर्वी

कल्पना करे। विप्रो आदि की भूमि प्रशस्त कही जाती है। अतएव परीक्षण करना ही चाहिए। विप्रो का मधुर आस्वाद–क्षत्रिय का कटु का और वैश्य तथा शूद्रो मे तिक्त एवं कषाय आस्वाद प्रशस्त होता है। एक अरत्नि मात्र गर्त में जो कि सभी ओर से भली भाँति लिप्त कर दिया गया हो, उसमे एक कच्चे सकोरा मे घृत भर कर चार बत्तियाँ उसमें डाले और उनको जलाकर उस पूर्ण दीपक को सभी दिशाओ की ओर मुख करके भूमि की परीक्षा के लिये रखना चाहिए ॥ ८, ९, १०, ११, १२, १३, १४ ॥

दीप्तो पूर्वादिगृह्णीयाद्वर्णानामनुपूर्वशः।
वास्तुः सामूहिकोनाम दीप्यते सर्वतस्तुपः ॥१५
शुभद. सर्ववर्णाना प्रासादेषु गृहेषु च।
अरत्निमात्रमधागर्तं परीक्ष्य खातपूरणे ॥१६
अधिके श्रियमाप्नोति न्यूनेहानि समे समम्।
फालकृष्टेऽथवादेशे सर्वबीजानि वापयेत् ॥१७
त्रिपञ्चसप्तरात्रे च यत्रारोहन्ति तान्यपि।
ज्येष्ठोत्तमा कनिष्ठाभूर्वर्जनीयतरा सदा ॥१८
पञ्चगव्यौषधिजल. परीक्षित्वा च सेचयेत्।
एकाशीति पद कृत्वा रेखाभिः कनकेन च ॥१९
पश्चात्पिष्टेनचालिप्य सूत्रेणालोड्य सर्वतः।
दशपूर्वायतालेखा दशचैवोत्तरायताः॥२०
सर्ववास्तुविभागेषु विज्ञेया नवका नव।
एकाशीति पद कृत्वा वास्तुवित्सर्ववास्तुषु ॥२१

उसकी दीप्ति मे पूर्वादि को आनुपूर्वश: वर्णो का ग्रहण करना चाहिए वास्तु—यह सामूहिक नाम है जो सभी ओर दीप्त होता है ॥ १५ ॥ यह प्रासादो मे और गृहो मे सब वर्णों का शुभ देने वाला होता है। अरत्नि मात्र खातपूरण नीचे के गर्त मे परीक्षण करने के योग्य है ॥१६॥ अधिक

होने पर श्री की प्राप्ति करता है और न्यून होने पर हानि करता है तथा सम होने पर सम ही फल देता है। हल की फाल के द्वारा जुते हुए अथवा देश में सब बीजों का वपन कराना चाहिए। तीन-पाँच और सात रात्रि में वे बीज जहाँ पर अंकुरित होते हैं वह भूमि ज्येष्ठ—उत्तम और कनिष्ठ होती है तथा सदा वर्णनीयतरा हुआ करती है ॥ १७। १८ ॥ पञ्चगव्य और औषधि के जलों के द्वारा परीक्षा करके सेवन करे। इक्यासी रेखाओं से और कनक से पद करके फिर पिष्ट के द्वारा अनुलेपन करे और सब ओर सूत्र से आलोडन करे। दश तो पूर्व की ओर आयत लम्बा हो और दश ही उत्तरायन होवें। सब वास्तु विभागों में नवकानय जाननी चाहिए वास्तु के वेत्ता पुरुष को सब वास्तुओं में इक्यासी पद करना आवश्यक है ॥ १९, २०, २१ ॥

पदस्थान् पूजयेद्देवा स्त्रिशत्पञ्चदशैव तु।
द्वात्रिंशद्बाह्यतः पूज्याः पूज्यास्चान्तस्त्रयोदश: ।२२
नामतस्तान् प्रवक्ष्यामि स्थानानि च निबोधत।
ईशानकोणादिषु तान् पूजसेद्धविषा नरः ॥२३
शिखीचैवाथपर्जन्यो जयन्तः कुलिशायुधः।
सूर्यसत्यो भृशश्चैव आकाशो वायुरेव च ॥२४
पूषा च वितथश्चैव गृहक्षतयमावुभौ।
गन्धर्वो भृङ्गराजश्च मृग. पितृगणस्तथा ॥२५
दौवारिकोऽथ सुग्रीवः पुष्पदन्तो जलाधिपः।
असुरः शोषपापौ चरोगोहिमुं ख्यएवच ॥२६
भल्लाटः सोमसर्पौ च अदितिश्च दितिस्तथा।
बहिर्द्वात्रिंशदेते तु तदन्तस्तु ततः शृणु ॥२७
ईशानादिचतुष्कोणसंस्थितान् पूजयेद्बुधः।
आपश्चैवाथसावित्रो जयोरुद्रस्तथैवच ॥२८

पदों में स्थित देवों का अभ्यर्चन करें जो तीस और पन्चदश

होवें। बत्तीस बाह्य भाग में पूजने चाहिए और अन्दर में तेरह की पूजा करनी चाहिए ॥ २२ ॥ अब हम नामों का उल्लेख करके उनको बतलायेंगे उनके स्थानों को जानलो। उस मनुष्य को चाहिए कि ईशान आदि चारों कोणों में संस्थितों का पूजन करे और उस हवि के द्वारा ही करना चाहिए ॥ २३ ॥ शिखी—पर्जन्य—जयन्त—कुलिशायुध—सूर्य—सत्य—भृश—आकाश—वायु—पूषा—वितथ—गृहक्षत—यम—गन्धर्व—भृङ्गराज—मृग—पितृगण—दौवारिक—सुग्रीव—पुष्पदन्त—जलाधिप—असुर—शोष—पाप—रोग—अदि—मुख्य—भल्लाट—सोम—सर्प—अदिति—दिति—बाहिर ये बत्तीस होते हैं। उसके अन्त में जो होते हैं उनका श्रवण करो। ईशान आदि चतुष्कोणों में संस्थितों का बुध पुरुष को पूजन करना चाहिए। आप—सावित्र—जय—रुद्र ॥ २३, २४, २५, २६, २७, २८ ॥

मध्ये नवपदे ब्रह्मा यस्याष्टौ च समीपगान्।
साध्यानेकान्तरान्विद्यात्पूर्वाद्यान्नामतः शृणुः ॥२९
अर्यमा सविता चैव विवस्वान्विबुधाधिपः।
मित्रोऽथ राजयक्ष्मा च तथा पृथ्वीधरः स्मृतः ॥३०
अष्टमश्चापवत्सस्तु परितो ब्रह्मणः स्मृतः।
आपश्चैवापवत्सश्च पर्जन्योऽग्निर्दितिस्तथा ॥३१
पदिकानान्तु वर्गोऽयमेव कोणेष्वशेषतः।
तन्मध्ये तु बहिर्विंशा द्विपदास्ते तु सर्वशः ॥३२
अर्यमा च विवस्वांश्च मित्रः पृथ्वीधरस्तथा।
ब्रह्मणः परितो दिक्षु त्रिपदास्ते तु सर्वशः ॥३३
वंशानिदानीं वक्ष्यामि ऋजूनपि पृथक् पृथक्।
वायुं यावत्तथा रोगात् पितृभ्यः शिखिनं पुनः ॥३४
मुख्याद्भृशं तथा शोषाद्वितथं यावदेव तु।
सुग्रीवाददितिं यावन् मृगात्पर्जन्यमेव च ॥३५

मध्य नवपद में ब्रह्मा और उसके आठ समीप मे गमन करने वाले—एक के अन्तर से युक्त मात्रों को जान लो अब पूर्वादों के नामो का श्रवण करो ॥ २६ ॥ अर्यमा—सविता—विवस्वान्—वसुधाधिप—मित्र—राजयक्ष्मा—पृथ्वीधर—आठवां आपवत्स—परित ब्रह्मगु—आप—अपवत्स—पर्जन्य—अभिदिति—इस प्रकार से यह पदिकों का यह वर्ग है इसी तरह से कोणों मे पूर्ण रूप से हैं। उसके मध्य मे सब ओर से बाहिर बीस द्विपद हैं ॥ ३०, ३१, ३२ ॥ अर्यमा—विवस्वान्—मित्र—पृथ्वीधर—दिशाओं में वे सब ओर ब्रह्मा के दोनों ओर त्रिपद हैं ॥ ३३ ॥ अब मैं सन्धों को भी पृथक २ बतलाऊँगा। तथा रोग से जहाँ तक वायु को फिर वितथ से शिखि को बतलाता हूँ ॥ ३४ ॥ मुख्य से भल्ल तथा सोम से विरथ पर्यन्त—सुग्रीव से जहाँ तक अदिति है और मृग से पर्जन्य पर्यन्त है ॥ ३५ ॥

एतेवंशाः समाख्याताः क्वचिच्च जयमेव तु ।
एतेषां यस्तु सम्पात पद मध्य समं तथा ॥३६
मर्मचैतत्समाख्यातं त्रिशूलं कोणगञ्च यत् ।
स्तम्भ न्यासेषुवर्ज्यानितुलाविधिषुसर्वदा ॥३७
कीलोच्छिष्टोपघातादि वर्जयेद् यत्नतो जनः ।
सर्वत्र वास्तुनिर्दिष्टो पितृवैश्वानरायन ॥३८
मूर्द्धन्यग्नि समादिष्टो मुखेचापः समाश्रितः ।
पृथ्वीधरोऽर्यमाचोवस्तनयोस्तावधिष्ठितौ ॥३९
वक्षस्थले चापवत्सः पूजनीयः सदा बुधैः ।
नेत्रयोर्दितिपर्जन्यौ श्रोत्रेऽदितिजयन्तकौ ॥४०
सर्पेन्द्रावंससंस्थौ तु पूजनीयौ प्रयत्नतः ।
सूर्यसोमादयस्तद्वद् बाह्वोः पञ्च च पञ्च च ॥४१
रुद्रश्च राजयक्ष्मा च वामहस्ते समास्थितौ ।
सावित्रः सविता तद्वद्धस्त दक्षिणमाश्रितौ ॥४२

ये दश समाख्यात किये गये हैं और यही पर तो जय ही है। इनका जो सम्पात है मध्य पद तथा सम है। यह मर्म कह दिया गया है जो त्रिशूल कोण गत है। सब ओर न्यासो मे स्तम्भ है और तुला विधियो मे वर्ज्य हैं। मनुष्य को कीलोच्छिष्ट उपघात आदि को यत्न से वर्जित कर देना चाहिए। सब जगह पर वास्तु का पितृवैश्वानरायत निर्दिष्ट है। मूर्द्धा मे अग्नि का निर्देश किया गया है—मुख में आप समाश्रित है। पृथ्वीधर और अर्यमा ये दोनो स्तनो में अधिष्ठित हैं। वक्ष स्थल मे आपवत्स का बुध पुरुषो को सदा पूजन करना चाहिए। नेत्रो मे दिति और पर्जन्य, श्रोत्र मे अदिति जयन्तक, दो सर्पेन्द्र अंस मे संस्थित प्रयत्न पूर्वक पूजन करने के योग्य होते हैं। उसी तरह से बाहुओ मे पाँच-पाँच सूय सोमादिक पूजनीय हैं। रुद्र और राजयक्ष्मा वामहस्त मे दोनो समास्थित हैं। इसी प्रकार से सावित्र-सविता दक्षिण हाथ मे आस्थित हैं ॥ ३६–४२ ॥

विवस्वानथ मित्रश्च जठरे संव्यवस्थितौ।
पूषा च पापयक्ष्मा च हस्तयोर्मणिबन्धने ॥४३
तथैवासुरशोषौ च वामपार्श्वं समाश्रितौ।
पार्श्वे तु दक्षिणे तद्वत् वितथः सगृहक्षतः ॥४४
ऊर्वोर्यमाम्बुपौ ज्ञेयौ जान्वोर्गन्धर्वपुष्पकौ।
जङ्घयो भृंगसुग्रीवौस्फिक्स्थौ दौवारिको मृगः ॥४५
जयशक्रौ तथा मेढ्रे पादयोः पितरस्तथा।
मध्ये नव पदे ब्रह्मा हृदये स तु पूज्यते ॥४६
चतुः षष्टि पदो वास्तुः प्रासादे ब्रह्मणास्मृतः।
ब्रह्मा चतुष्पदस्तत्र कोणेष्वर्धपदास्तथा ॥४७
वहिः कोणेषु वास्तौ तु सार्धाश्चोभयसंस्थिताः।
विंशति द्विपदाश्चैव चतुः षष्टि पदे स्मृताः ॥४८
गृहारम्भेषु कण्डूतिः स्वाम्यङ्गे यत्र जायते।

शल्य स्वपनयेत्तत्र प्रासादे भवने तथा ॥४९
सशल्य भपद यस्मादशल्यं शुभदायकम् ।
हीनाधिकां गतावास्तोसर्वथातु विवर्जयेत् ॥५०
नगरग्रामदेशेषु सर्वत्रैव विवर्जयेत् ।
चतुः शाल त्रिशालञ्च द्विशाल चैकशालकम् ॥
नामतस्तान् प्रवक्ष्यामि स्वरूपेण द्विजोत्तमा. ॥५१॥

इसके अनन्तर विवस्वान् और मित्र उदर मे भली भाँति व्यवस्थित है। पूषा और पाप यक्ष्मा हाथो के मणिबन्धन मे है। उसी प्रकार से असुर और शोष वाम पार्श्व मे समाश्रित है। दक्षिण पार्श्व मे उसी भाँति वितथ और सगृहत है। दोनो ऊरुओ मे यम और अम्बुप जान लेने के योग्य है। दोनो जानुओ मे गन्धर्व और पुष्पक है। दोनो जङ्घाओ मे भृग और सुग्रीव समवस्थित है और स्फिक भागो म दौवारिक और मृग स्थित होत है ॥ ४३, ४४, ४५ ॥ जय और शक्र मेढ्र मे सस्थित है और दोनो पादो मे पितर समवस्थित रहा करते है। मध्य नव पद मे ब्रह्मा है और वह हृदय म पूजित होते है। ब्रह्माजी के द्वारा यह वास्तु चौंसठ पद वाला कहा गया है। वहाँ पर ब्रह्मा चतुष्पद है तथा कोणो मे अर्ध पद है। बाहिर कोणो मे वास्तु मे साथ उभय सस्थित होते है। बीस द्विपद है और चौंसठ पद मे बताये गये है ॥ ४६, ४७, ४८ ॥ गृहो के आरम्भ कालो म स्वामी क अङ्गो मे जहाँ पर कण्डूति होती ह वहीं पर प्रासाद तथा भवन म शल्य का ०पनयन करना चाहिए। शल्य के सहित भयप्रद हुआ करता है और अशल्य शुभदायक होता है। हीनाधिक को गत वास्तु को सर्वथा विवर्जित कर देना चाहिए। इसी प्रकार से नगर और ग्राम देश म भी विशेष रूप मे वर्जित कर देवे। चतुःशाल–त्रिशाल–द्विशाल और एक शाल है द्विजोत्तमो ! नाम निर्देशपूर्वक उनका बतलायेंगे और स्वरूप के द्वारा भी कहेंगे ॥ ४९-५१ ॥

११७--भवन निर्माण वर्णन

चतुः शालं प्रवक्ष्यामि स्वरूपन्नामतस्तथा ।
चतुः शालञ्चतुर्द्वारैरलिन्दैः सर्वतोमुखम् ॥१
नाम्ना तत् सर्वतोभद्र शुभ देवनृपालये ।
पश्चिमद्वारहीनञ्च नन्द्यावर्तः प्रचक्षते ॥२
दक्षिणद्वारहीनन्तु वर्द्धमानमुपाहृतम् ।
पूर्वद्वारविहीन तत्स्वस्तिक नाम विश्रुतम् ॥३
रुचकन्नोत्तरद्वारविहीन तत्प्रचक्षते ।
सौम्यशालाविहीन यत्त्रिशाल धान्यकञ्च तत् ॥४
क्षेमवृद्धिकरं नृणा बहुपुत्रफलप्रदम् ।
शालया पूर्वया हीनं सुक्षेत्रमिति विश्रुतम् ॥५
धन्य यशस्यमायुष्य शोकमोह विनाशम् ।
शालया याम्ययाहीनयद्विशालतुशालया ॥६
कुलक्षयकरन्नृणा सर्वव्याधिविनाशनम् ।
हीन पश्चिमया यत्तु पक्षघ्न नाम तत्पुनः ॥७

महामहर्षि श्री सूतजी ने कहा--अब मैं चतुःशाला का नाम और स्वरूप से वर्णन करता हूँ। चतुशाला चार द्वारों और सर्वतोमुख अलिन्दो से युक्त हुआ करता है ॥१॥ देव और नृप के आलय में वह नाम से सर्वतोभद्र परम शुभ होता है। पश्चिम द्वार से हीन नन्द्यावर्त कहा जाता है ॥२॥ जो दक्षिण द्वार से हीन होता है वह वर्द्धमान उपाहृत होता है। पूर्व द्वार से रहित वह स्वस्तिक इस नाम से प्रसिद्ध है ॥३॥ उत्तर द्वार से जो विहीन होता है वह रुचक नाम वाला होता है। जो सौम्यशाला से रहित होता है वह त्रिशाल और धान्यक होता है ॥४॥ यह मनुष्यों को बहुत से पुत्रों की प्राप्ति के फल को प्रदान करने वाला तथा क्षेम और वृद्धि के करने वाला होता है। पूर्व शाला से हीन

'सुक्षेत्र' इस नाम से विश्रुत होता है ॥५॥ यह परम धन्य, आयुष्य (आयु की वृद्धि करने वाला)—शोक और मोह का विनाश करने वाला होता है। याम्य (दक्षिण) शाला से हीन और शाला से विशाल होता है वह मनुष्यों के कुल का क्षय करने वाला और समस्त प्रकार की व्याधियों का नाश करने वाला हुआ करता है। जो पश्चिम दिशा में होने वाले द्वार से रहित होता है उसका नाम "पक्षघ्न"—हुआ करता है ॥६, ७॥

मित्र बन्धून् सुतान् हन्त तथा सर्वभयापहम् ।
याम्यापराभ्यां शालाभ्यां धनधान्यफलप्रदम् ॥८
क्षेमवृद्धिकरं नृणां तथापुत्र फलप्रदम् ।
यम सूर्यञ्च विज्ञेयं पश्चिमोत्तरशालिकम् ॥९
राजाग्निभयदं नृणां कुलक्षयकरं च यत् ।
उदक्पूर्वे तु शाले द्वे दण्डाख्ये यत्र तद्भवेत् ॥१०
अकालमृत्युभयदं परचक्रभयावहम् ।
धनाख्य पूर्वयाम्याभ्यां शालाभ्यां यद्द्विशालकम् ॥११
तच्छस्त्रभयदं नृणां पराभवभयावहम् ।
चुल्लीपूर्वापराभ्यां तु सा भवेन्मृत्युसूचनी ॥१२
वैधव्यदायकं स्त्रीणामनेकभयकारकम् ।
कार्यमुत्तरयाम्याभ्यां शालाभ्यां भयदं नृणाम् ॥१३
सिद्धार्थवज्ज्याणि विशालानि सदा बुधैः ।
अथात सम्प्रवक्ष्यामि भवनपृथिवीपतेः ॥१४

याम्या पर शालाओं से मित्र-बन्धु-और सुतों की प्राप्ति होती है तथा सर्वप्रकार के भयों का अपहरण एवं धन और धान्य के फल का प्रदान करने वाला पक्षघ्न हुआ करता है। पश्चिमोत्तर शालिक मनुष्यों के क्षेम एवं वृद्धि का करने वाला है और पुत्र की प्राप्ति का फल प्रदान करने वाला है। इसका नाम यम सूर्य जानना चाहिए ॥८, ९॥ उत्तर और पूर्व

की शालाऐं जहा पर होती हैं उनका नाम दण्ड होता है। यह मनुष्यो को राजा, अग्नि, और मृत्यु का भय देने वाली हैं तथा कुल का क्षय करने वाली हैं ॥१०॥ पूर्व और याम्य शालाओ से जो विशालक होता है उस का नाम धन है। यह अकाल मृत्यु और भय का प्रदान करने वाला तथा परचक्र के भय देने वाला होता है। पराओ से जो चूल्ली पूर्वा शाला होती है वह मृत्यु की सूचना देने वाली हुआ करती है ॥११, १२॥ स्त्रियो को वैधव्य के देने वाला—अनेक भयो का करने वाला होता है। उत्तर और याम्य की शाला से मनुष्यो को भय दान होता है। अतएव बुध पुरुषो को सदा सिद्धार्थ वज्र वर्ज्य विशाल ही करनी चाहिए। इसके अनन्तर अब मैं पृथिवी पति के भवन का वर्णन करूँगा ॥१३, १४॥

पञ्चप्रकार तत्प्रोक्तमुत्तमादि विभेदतः।
अष्टोत्तरहस्तशत विस्तरश्चोत्तमोमतः ॥१५
चतुर्ष्वन्येषु विस्तारो हीयतेत्वाष्टभिः करैः।
चतुर्थांशाधिक दैर्घ्यं पञ्चस्वपि निगद्यते ॥१६
युवराजस्य वक्ष्यामि तथाभवनपञ्चकम्।
षड्भि षड्भिस्तथाशीतिर्हीयतेतत्रविस्तरात् ॥१७
त्र्यशेन चाधिकदैर्घ्यं पञ्चस्वपि निगद्यते।
सेनापतेः प्रवक्ष्यामि तथा भवनपञ्चकम् ॥१८
चतु षष्टिस्तुविस्तारात्षड्भिः षड्भिस्तुहीयते।
पञ्चस्वेतेषुदैर्घ्यञ्चषड्भागेनाधिकभवेत् ॥१९
मन्त्रिणामथ वक्ष्यामि तथा भवनपञ्चकम्।
चतुश्चतुर्भिर्हीनास्यात् करषष्टिः प्रविस्तरे ॥२०
अष्टांशेनाधिक दैर्घ्य पञ्चस्वपि निगद्यते।
सामन्तामात्यलोकाना वक्ष्ये भवनपञ्चकम् ॥ १

यह नृप का भवन उत्तम आदि भेदो से पांच प्रकार का बताया गया है। जो एक सौ आठ हाथ के विस्तार वाला होता है वह ही उत्तम

माना गया है ॥१५॥ अन्य जो चार प्रकार के भवन कहे गये हैं उनमें जो विस्तार होता है वह आठ हाथों का कम ही हुआ करता है। इन पाँचों में लम्बाई से चतुर्थांश से अधिक दीर्घता बताई गयी है। अब मैं युवराज के पाँच प्रकार के भवनों के विषय में कहता हूँ वहाँ पर अस्सी के विस्तार से छै-छै हाथ कम होता जाया करता है। इन पाँचों में भी तीन अंश से अधिक दीर्घता कही जाती है। अब सेनापति के पाँच प्रकार के भवनों के विषय में वर्णन किया जाता है ॥१६, १७, १८॥ ये भवन चौसठ के विस्तार से छै-छै हाथ प्रत्येक में कम होता जाया करता है। इन पाँचों में चौड़ाई षड्भाग से अधिक ही हुआ करती है ॥१९॥ अब राजा के मन्त्रियों के भी भवन पाँच प्रकार के ही हुआ करते हैं उनका वर्णन किया जाता है। इनका विस्तार साठ हाथ का होता है और ये भी क्रम से चार-चार हाथ कम होते हैं ॥२०॥ इन पाँचों में भी आठ अंश से अधिक दीर्घता हुआ करती है। अब इसके उपरान्त राजा के सामन्त—आमात्य और लोगों के भी पाँच प्रकार के भवनों का वर्णन यहाँ पर किया जाता है ॥२१॥

चत्वारिंशत्तथाष्टौ च चतुर्भिर्हीयते क्रमात् ।
चतुर्थांशाधिकं दैर्घ्यं पञ्चस्वतेषु शस्यते ॥२२
शिल्पिनां कञ्चुकीनाञ्च वेश्यानां गृहपञ्चकम् ।
अष्टाविंशत् कराणान्तु विहीनं विस्तरे क्रमात् ॥२३
द्विगुणं दैर्घ्यमेवोक्तं मध्यमस्वेवमेव तत् ।
दूताकर्मान्तिकादीनां वक्ष्ये भवनपञ्चकम् ॥२४
चतुर्थांशाधिकं दैर्घ्यं विस्तारो द्वादशैव तु ।
अर्धाधिकं हानिः स्याद्विस्तारात्पञ्चशः क्रमात् ॥२५
दैवज्ञगुरुवैद्यानां सभास्तारपुरोधसाम् ।
तेषामपि प्रवक्ष्यामि तथा भवनपञ्चकम् ॥२६
चत्वारिंशतविस्तारा चतुर्भिर्हीयते क्रमात् ।

पञ्चस्वेतेषु दैर्घ्यञ्च षड्भागे नाधिकम्भवेत् ॥२७
चतुर्वर्णस्य वक्ष्यामि सामान्यं गृहपञ्चकम् ।
द्वात्रिंशतिकराणान्तु चतुर्भिर्हीयते क्रमात् ॥२८

ये भवन चालीस और आठ अड़तालीस हाथ के विस्तार वाले हुआ करते हैं और क्रम से चार-चार हाथ न्यून हो जाया करते हैं। इनमे भी चौथाई अंश से अधिक दीर्घता (चौड़ाई) इन पाँचो मे प्रशस्त हुआ करती है ॥२२॥ नृप के गृह पर जो शिल्पी-कञ्चुकी और वेश्याएँ होते हैं उनके भी भवन पाँच तरह के उत्तम आदि भेदो वाले हुआ करते हैं। अट्ठाईस हाथ के विस्तार वाले होते हैं और क्रम से प्रत्येक मे हीनता भी होती चली जाया करती है ॥२३॥ दुगुनी दीर्घता भी बताई गयी है। इसी प्रकार से मध्यमो भी होती है। अब दूतीकर्म करने वाले और अन्तिकादि के पाँचो भवनो को बतलाते हैं। चतुर्थांश से अधिक दीर्घता होती है और विस्तार बारह का हुआ करता है। आधे-आधे हाथ की न्यूनता विस्तार से क्रम से पाँचो म हो जाती है ॥२४, २५॥ राजा के यहा रहने वाले दैवज्ञ (ज्योतिषी)—गुरु, वैद्य, सभास्तार, पुरोहित, इनके भी पाँच-पाँच प्रकार के उत्तमादि भेद से भवन हुआ करते हैं। इनको बतलाते हैं—चालीस हाथ के विस्तार से युक्त ये होते हैं और चार-चार हाथ क्रम से हीन होते हैं। इन पाँचो मे दीर्घता षड्भाग से अधिक हुआ करती है। अब ब्राह्मणादि चार वर्णो के सामान्य पाँचो गृहो के विषय मे कहते है। ये बत्तीस हाथ के विस्तार से संयुत हुआ करते है और क्रम से चार-चार की हीनता हुआ करती है ॥२६, २७, २८॥

आषोडशादिति परं नूतनं तेवसायिनाम् ।
दशांशेनाष्टभागेन त्रिभागेनाथ पादिकम् ॥२९
अधिकं दैर्घ्यमित्याहु ब्राह्मणादेः प्रशस्यते ।
सेनापतेर्नृपस्यापि गृहयोरन्तरेण तु ॥३०
नृपवासगृहं कार्यं भाण्डागारं तथैव च ।

सेनापतेर्गृहस्यापि चातुर्वर्ण्यस्य चान्तरे ॥
वासाय च गृहं कार्यं राजपूज्येषु सर्वदा ॥३१॥

अन्तरप्रभवानाञ्च स्व पितु गृहमिष्यते ।
तथा हस्तशतादर्द्धं गदित वनवासिनाम् ॥३२
सेनापतेर्नृपस्यापि सप्तत्यासहितेऽन्विते ।
चतुर्दश हृतेव्यासे शालान्यासः प्रकीर्तित ॥३३

पञ्चत्रिंशान्विते तस्मिन्नलिन्दः समुदाहृतः ।
तथा षट्त्रिंशद्धस्ता तु समाङ्गुलसमन्विता ॥३४
विप्रस्य महतीशाला न दैर्घ्यं परतोभवेत् ।
दशाङ्गुलाधिका तद्वन् क्षत्रियस्य न विद्यते ॥३५

षोडश से लेकर इति पर निश्चय ही अन्तेव क्षत्रियों का भवन होता है। दशांश से—अष्ट भाग से और त्रिभाग से पादिक होता है। ब्राह्मणादि की दीर्घता अधिक प्रशस्त होती है—ऐसा कहते हैं। सेनापति और नृप के भी गृहों में अन्तर होता है ॥२९, ३०॥ नृप के निवास का गृह तथा भाण्डागार दोनों का निर्माण कराना चाहिए। सेनापति का गृह और चारों वर्णों वालों का गृह अन्तर में ही होना आवश्यक है। निवास के सर्वदा राज पूज्यों में गृह करना चाहिए ॥३१॥ जिनका अन्तर में प्रभव हो उनको अपने पिता का ही गृह अभीष्ट होना चाहिए। वनवासियों का गृह सौ हाथ का आधा भाग कहा गया है ॥३२॥ सेनापति का भी जो कि राजा का होता है, सप्तति (सत्तर) के सहित एवं अन्वित तथा चतुर्दश व्यास के हस्त होने पर शाला का कीर्तिन किया गया है। उसके पञ्च त्रिंशान्वित होने पर यह अलिन्द कहा गया है। तथा छत्तीस हाथ वाली और साठ अंगुलों से समन्वित विप्र की महती शाला होती है पर में उससे दीर्घता नहीं होनी चाहिए। इसी भाँति दश अंगुल से अधिक क्षत्रिय की नहीं होती है ॥३३, ३४, ३५॥

पञ्चत्रिंशत्करावैश्ये अङ्गुलानि त्रयोदश ।
तावत्करैव शूद्रस्य युतापञ्च दशाङ्गुलैः ॥३६
शालायास्तु त्रिभागेन यस्याग्रे वीथिका भवेत् ।
सोष्णीषंनाम तद्वास्तु पश्चाच्छ्रेयोच्छ्रयं भवेत् ॥३७
पार्श्वयोर्वीथिका यत्र सावष्टम्भन्तदुच्यते ।
समन्ताद्वीथिकायत्र सुस्थितं तदिहोच्यते ॥३८
शुभदसर्वमेतत्स्या च्चातुर्वर्ण्ये चतुर्विधम् ।
विस्तरात् षोड़शो भागस्तथाहस्तचतुष्टयम् ॥३९
प्रथमोभूमिकोच्छ्राय उपरिष्टात्प्रहीतते ।
द्वादशांशेनसर्वासु भूमिकासु तथोच्छ्रयः ॥४०
पक्वेष्टकाभवेद्भित्तिः षोडशांशेन विस्तरात् ।
दारवैरपिकल्पास्यात्तथा मृन्मयभित्तिका ॥४१
गर्भमानेन मानन्तु सर्ववास्तुषु शस्यते ।
गृहव्यासस्य पञ्चाशदष्टादशभिरङ्गुलैः ॥४२
सथूलो द्वारविष्कम्भो द्विगुणश्चोच्छ्रयाभवेत् ।
द्वारशाखा सुबाहुल्यमुच्छ्राय करसम्मितैः ॥४३
अङ्गुलं सर्ववास्तूना पृथुत्वं शस्यतेबुधैः ।
उदुम्बरोत्तमाङ्गञ्च तदर्धाध प्रविस्तरात् ॥४४

वैश्य की शाला पच्चीस कर विस्तृत तथा त्रयोदश अंगुल होनी चाहिए। उतने ही हाथों के विस्तार से युक्त पन्द्रह-अंगुल सहित शूद्र की शाला होनी चाहिए ॥३६॥ शाला के त्रिभाग में जिसके आगे एक वीथिका का होना आवश्यक है। जिसका पीछा उच्छ्राय वाला हो वह श्रेय और सोष्णीष नाम वाला वास्तु होता है। जिसके पार्श्वों में वीथिका हो उसका नाम सावष्टम्भ कहा जाता है। जिसके सब ओर वीथिका हो उसका नाम यहाँ पर स्थित कहा जाया करता है। चातुर्वर्ण्यों में यह चारों प्रकार का सब शुभ देने वाला होता है। विस्तार से यदि षोडश भाग

होता है तथा चार हाथ हुआ करता है ॥३७, ३८, ३९॥ प्रथम भूमिकोच्छ्राय ऊपर से हीन होता है। द्वादश अंश से सब भूमिकाओं में इसी प्रकार का उच्छ्राय होता है ॥४०॥ षोडश अंश से विस्तार युक्त पकी हुई ईंटों की भित्ति होनी चाहिए। दारव अर्थात् काष्ठों में भी निर्मित होवे या मृण्मय भित्ति होवे ॥४१॥ गर्भमान में मान सब वास्तुओं में प्रशस्त होता है। इस गृह मान पचास और अष्टादश अंगुलों में मनुज द्वार विष्कम्भ होता है और द्विगुण उच्छ्राय होता है। द्वारशाखा सुबाहुल्य चार सम्मित में उच्छ्राय होता है। सब वास्तुओं का अंगुलों से पृथकत्व बुधों के द्वारा प्रशस्त माना जाता है। उदुम्बरोत्सेध और मान उसके अर्ध का अर्ध विस्तार में होता है ॥४२—४८॥

११८—स्तम्भमान निर्णय वर्णन

अथात सम्प्रवक्ष्यामि स्तम्भमान विनिर्णयम्।
कृत्वा स्वभुवनोच्छ्राय सदा सप्तगुणं बुधैः ॥१
अशीत्यंश पृथुत्व स्यादग्रेणाविगुणं सह।
रुचकश्चतुरः स्यात् अष्टास्रो वज्र उच्यते ॥२
द्विवज्रः षोडशास्रस्तु द्वात्रिंशास्रः प्रलीनकः।
मध्यप्रदेशे यस्तम्भो वृत्तोवृत्त इति स्मृतः ॥३
एते पञ्च महास्तम्भाः प्रशस्ताः सर्ववास्तुषु।
पद्मवल्लीलताकुम्भपत्रदर्पणरूपिताः ॥४
स्तम्भस्य नवमांशेन पद्मकुम्भान्तराणि तु।
स्तम्भतुल्या तुला प्रोक्ता हीना चोपतुला ततः ॥५
त्रिभागेनेह सर्वत्र चतुर्भागेन वा पुनः।
हीनं हीनं चतुर्थांशात् तथा सर्वासु भूमिषु ॥६

वासगेहानि सर्वेषां प्रवेशो दक्षिणेन तु ।
द्वाराणि तु प्रवक्ष्यामि प्रशस्तानीह यानि तु ।।७

महा महर्षि श्री सूतजी ने कहा—इसके अनन्तर अब मैं स्तम्भों के मान का विशेष निर्णय किया जाता है। अपने भुवन का उच्छ्राय करके सुधों के द्वारा सद सप्त गुण होना चाहिए ।।१।। अस्सी अश स्तम्भ का पृथुत्व होना चाहिए। अग्रभाग से अवगुणो के साथ चार वाला रुचक होता है। आठ अशो वाला वज्र-इस नाम से कहा जाया करता है। षोडश अस्र वाला द्विवज्र और बत्तीस से संयुत प्रलीनक कहा जाता है मध्य भाग मे जो स्तम्भ हुआ करता है उसको वृत्तोवृत्त इस नाम से पुकारा जाया करता है ।।२, ३।। इस तरह से रुचक—वज्र—द्विवज्र—प्रलीनक और वृत्तोवृत्त ये पाँच महान् स्तम्भ सर्व वास्तुओं मे परम प्रशस्त कहे जाते है। पद्मवत् लीलता कुम्भ पत्र दर्पण से रुपित हुआ करते हैं। ।।४।। स्तम्भ का नवम अश जो हा उसी से पद्म कुम्भ के अन्तर होते हैं। स्तम्भ के तुल्य ही तुला कही गयी है और जो हीन होती है वह उपतुला होती है ।।५।। यहाँ पर सभी जगह त्रिभाग से अथवा चतुर्भाग से उसी भाँति सर्व भूमियो मे चतुर्थ अश से हीन-हीन होती है। सबके निवास करने योग्य गेहो मे दक्षिण भाग से प्रवेश करने मे जो द्वार हुआ करतेहै जो कि परम प्रशस्त होते हैं उन्ही के विषय मे अब मैं वर्णन करता हूँ ।।६, ७।।

पूर्वेणेन्द्र जयन्तञ्चद्वार सर्वत्रशास्यते ।
याम्यञ्च वितथञ्चैव दक्षिणेन विदुर्बुधाः ।।८
पश्चिमे पुष्पदन्त च वारुणञ्च प्रशस्यते ।
उत्तरेण तु भल्लाट सौम्य तु शुभदम्भवेत् ।।६
तथावास्तुषु सर्वत्र वेध द्वारस्य वर्जयेत् ।
द्वारे तु रथ्ययाविद्धे भवेत् सर्वकुलक्षयः ।। ०
तरुणाद्वेषबाहुल्य शोकः पङ्केन जायते ।

अपस्मारो भवेन्नूनं कूपवेधेन सर्वदा ॥११
व्ययाप्रस्रवणेन स्यात्कीलेनाग्नि भयं भवेत् ।
विनाशो देवताविद्धे स्तम्भेन स्त्रीकृत भवेत् ॥१२
गृहभर्तु विनाशः स्यात् गृहेण च गृहे कृते ।
अमेध्यावस्करैर्विद्धे गृहिणी बन्धकी भवेत् ॥१३
तथा शस्त्रमय विन्द्यादन्त्यजस्य गृहेण तु ।
उच्छ्राया द्विगुणा भूमि त्यक्त्वा वेधो न जायते ॥१४

पूर्व दिशा मे होने वाले इन्द्र और जयन्त द्वार सर्वत्र बहुत ही प्रशस्त होते है । बुध लोग जो दक्षिण भाग मे द्वार होता है उसे याम्य और वितथ कहा करते है ॥८॥ पश्चिम दिशा मे होने वाले द्वार को पुष्प दन्त और वारुण कहा जाता है जो कि प्रशस्त होता है । उत्तर मे होने वाला द्वार भल्लाट और सौम्य कहलाता है यह भी शुभ के प्रदान करने वाला होता है ॥९॥ उसी प्रकार से सभी जगह पर द्वार का वेध वर्जित होना चाहिए । रथ्या मे जो विद्ध द्वार होता है उसमे तो सम्पूर्ण कुल का क्षय हो जाया करता है अर्थात् ऐसा द्वार तो कभी भी कराना ही नही चाहिए ॥१०॥ तरुण से वेध का बाहुल्य होता है और पङ्क से शोक हुआ करता है । सर्वदा कूप वेध मे निश्चय रूप से अपस्मार हुआ करता है । ॥११॥ प्रस्रवण से व्यथा होती है और कील से अग्नि का भय हुआ करता है । देवता के विद्ध द्वार मे विनाश होता है । स्तम्भ के द्वारा स्त्रीकृत होता है ॥१२॥ गृह के द्वारा गृह के करने पर गृह का जो भर्त्ता होता है उस गृह के स्वामी का विनाश हो जाया करता करता है । अमेध्य (अपवित्र) अवस्करो के द्वारा विद्ध द्वार के होने पर गृहिणी बन्धकी हो जाया करती है । किसी अन्त्यज के गृह के द्वारा वेध होने पर शस्त्रमय जानना चाहिए या प्राप्त करे । उच्छ्राय से द्विगुणित भूमि का त्याग करके वेध नहीं हुआ करता है ॥१३, १४॥

स्वयमुद्घाटिते द्वारे उन्मादो गृहवासिनाम् ।

स्वयंवापिहितेविद्यात् कुलनाशंविचक्षणः ॥१५
मानाधिके राजभयं न्यूने तस्करतो भवेत् ।
द्वारोपरि च यद्द्वारं तदन्तकमुखं स्मृतम् ॥१६
अध्वनो मध्यदेशे तु अधिको यस्य विस्तरः ।
वज्रन्तु सङ्कटं मध्ये सद्योभर्तृविनाशनम् ॥१७
तथान्यपीडितं द्वारं बहुदोषकरं भवेत् ।
मूलद्वारात्तथान्यत्तु नाधिकं शोभनं भवेत् ॥१८
कुम्भश्रीपर्णिवल्लीभिर्मूलद्वारन्तु शोभयेत् ।
पूजयेच्चापि तन्नित्यं बलिनाचाक्षतोदकैः ॥१९
भवनस्य वटः पूर्वे दिग्भागे सर्वकामिकः ।
उदुम्बरस्तथा याम्ये वारुण्यां पिप्पलः शुभः ॥२०

स्वयं द्वार के उत्पादित होने पर जो गृह में निवास करने वाले होते हैं उनको उन्माद हो आया करता है । अथवा स्वयं ही पिहित करने पर विचक्षण पुरुष को अपने कुल का नाश समझ लेना चाहिए ॥१५॥ यदि द्वार जो भी उसका मान स्वीकृत किया गया है उससे अधिक हो तो राज से होने वाला भय होता है और यदि अभीप्सित मान से न्यून हो तो तस्करों से भय रहा करता है । द्वार के ऊपर जो द्वार होता है उसको अन्तक मुख नाम वाला कहा गया है ॥१६॥ मध्य देश में जिसका अधिक विस्तार हो वह अध्वन कहलाता है । मध्य में सङ्कट वज्र होता है और वह तुरन्त ही स्वामी का विनाश करने वाला हुआ करता है । तथा अन्य से पीडित द्वार बहुत-से दोषों के करने वाला होता है । जो मूल द्वार होता है उससे अन्य द्वार अधिक शोभन नहीं हुआ करता ॥१७, १८॥ कुम्भ, श्रीपर्णि और वल्लियों के द्वारा मूल-द्वार को शोभित करना चाहिए । उस द्वार की नित्य ही पूजा करे तथा अक्षतोदक से अर्चन एवं बलिदान करना चाहिए । भवन के पूर्व दिशा के भाग में सब कामनाओं के पूर्ण करने वाले वट वृक्ष का समारोपण करना चाहिए—दक्षिण दिशा

के भाग में उदुम्बर (गूलर) का वृक्ष और वारुणी दिशा में परम शुभ पीपल का वृक्ष समारोपित करना चाहिए ।।१९, २०।।

प्लक्षश्चोत्तरतोधन्यो विपरीतास्त्वसिद्धये ।
कण्टकीक्षीरवृक्षश्च आसन्नः सफलो द्रुमः ।।२१
भार्याहानौ प्रजाहानौ भवेतां क्रमशस्तदा ।
न छिन्द्यात् यदि तानन्यानन्तरे स्थापयेच्छुभान् ।।२२
पुन्नागाशोकवकुलशमीतिलकचम्पकान् ।
दाड़िमीपिप्पलीद्राक्षा तथा कुसुममण्डपान् ।।२३
जम्बीरपूगपनसद्रमकेतकीभिर्जातीसरोजशतपत्रिकमल्लिकाभिः ।
यन्नालिकेरकदलीदलपाटलाभिर्युक्तं तदत्र भवनं श्रियमातनोति ।।२४

भवन के उत्तर दिग्भाग में प्लक्ष (पाखर) के वृक्ष का समारोपण करे। इस तरह से गृह को इन चारों दिशाओं में उपर्युक्त चार प्रकार के वृक्षों का समारोपण सिद्धि दायक हुआ करता है। इनके विपरीत आरोपण से असिद्धि होती है। कांटेदार क्षीर देने वाला वृक्ष और आसन सफल द्रुम होता है। उस समय में क्रम से भार्या की हानि और प्रजा की हानि हुआ करती है। यदि उनको दूसरों के अन्तर में शुभ वृक्षों को स्थापित करे तो फिर इनका छेदन कभी भी नहीं करना चाहिए।।२१, २२।। पुन्नाग–अशोक–वकुल–शमी–तिलक–चम्पक–दाड़िम–पिप्पली–द्राक्षा–कुसुम मण्डप–जम्बीर–पूग–पनसद्रुम–केतकी–जाती–सरोज–शत पत्रक–मल्लिका–नालिकेर–कदली दल–पाटल इन समस्त वृक्षों के समारोहण से समन्वित होता है वह श्री का विस्तार किया करता ।।२३, २४।।

११६–भवन निर्माण वर्णन

उदगादिप्लव वास्तु समानशिखरंतथा ।
परीक्ष्य पूर्ववत्कुर्य्यात्स्तम्भोच्छ्रायंविचक्षणः ।।१
न देवधूर्त सचिवचत्वराणां समन्ततः ।
कारयेद्भवनं प्राज्ञो दुःखशोकभयं ततः ।।२
तस्य प्रदेशाश्चत्वारस्तथोत्सर्गोऽग्रतः शुभः ।
पृष्ठतः पृष्ठभागस्तु सव्यावर्तः प्रशस्यते ।।३
अपसव्यो विनाशाय दक्षिणे शीर्षकस्तथा ।
सर्वकामफलोनॄणां सम्पूर्णो नाम वामतः ।।४
एवं प्रदेशमालोक्य यत्नेन गृहमारभेत् ।
अथ सांवत्सरेप्रोक्ते मुहूर्ते शुभलक्षणे ।।५
रत्नोपरि शिला कृत्वा सर्वबीजसमन्विताम् ।
चतुर्भिर्ब्राह्मणैः स्तम्भं कारयित्वा सुपूजितम् ।।६
शुक्लाम्बरधरः शिल्पिसहितो वेदपारगः ।
स्नापितं विन्यसेत्तद्वत्सर्वौषधिसमन्वितम् ।।७
नानाक्षतसमोपेतं वस्त्रालङ्कारसंयुतम् ।
ब्रह्मघोषेण वाद्येन गीतमङ्गलनिःस्वनैः ।।८

महर्षिवर श्री सूतजी ने कहा—विचक्षण पुरुष को चाहिए कि उदगादि प्लव तथा समान शिखर वाले वास्तु की परीक्षा करके पूर्व की भाँति स्तम्भों की ऊँचाई करनी चाहिए ।। १ ।। प्राज्ञ पुरुष का कर्त्तव्य है कि अपने भवन के चारों ओर देव—धूर्त—सचिव और चत्वरों का भवन नहीं बनवाना चाहिए क्योंकि इससे फिर दुःख और शोक तथा भय होता है ।। २ ।। उसके चार प्रदेश होते हैं तथा आगे की ओर उत्सर्ग परम शुभ हुआ करता है । पीछे की ओर उसका पृष्ठ भाग सव्यावर्त्त प्रशस्त होता है ।।३।। जो अपसव्य होता है वह विनाश के लिये ही हुआ

करता है। दक्षिण में शीर्षक मनुष्यों के सब कामनाओं के फल वाला हुआ करता है और वाम भाग में सम्पूर्ण होता है। इस प्रकार प्रदेश का समालोकन करके ही यत्नपूर्वक गृह के निर्माण का आरम्भ करना चाहिए और वह भी सांवत्सर प्रोक्त किसी शुभ लक्षणों वाले मुहूर्त में करे ॥४।५॥ समस्त बीजों से संयुत शिला को रत्नों के ऊपर करके चार ब्राह्मणों के द्वारा भलीभाँति अर्चित स्तम्भ का निर्माण करावे ॥६॥ वेदों के पारगामी विद्वान् ब्राह्मणों के द्वारा शिल्पियों के सहित शुक्ल अम्बरों के धारी को स्नापित करके विन्यस्त करना चाहिए। उसी के समान सर्वोषधियों से समन्वित—नाना अक्षतों से समुपेत—वस्त्र एवं आभूषणों से युक्त करके ही विन्यास करना चाहिए। ब्रह्मघोष (वेदध्वनि) वाद्य और गीत एवं माङ्गलिक ध्वनियों के द्वारा विन्यस्त करे। ॥७, ८॥

पायसं भोजयेद्विप्रान् होमन्तु मधुसर्पिषा।
वास्तोष्पतेप्रतिजानीहि मन्त्रेणानेन सर्वदा ॥९
सूत्रपाते तथा कार्य्यमेवं स्तम्भोदये पुनः।
द्वारवंशो-छ्रये तद्वत्प्रवेशसमये तथा ॥१०
वास्तूपशमने तद्वद्वास्तुयज्ञस्तु पञ्चधा।
ईशाने सूत्रपातः स्यादाग्नेयेस्तम्भरोपणम् ॥११
प्रदक्षिणञ्च कुर्वीत वास्तोः पदविलेखनम्।
तर्जनी मध्यमा चैव तथाङ्गुष्ठस्तु दक्षिणे ॥१२
प्रवालरत्नकनकफलं पिष्ट्वा कृतोदकम्।
सर्ववास्तुविभागेषु शस्तं पदविलेखने ॥१३
न भस्माङ्गारकाष्ठेन नखशस्त्रेण चर्मभिः।
न शृङ्गास्थिकपालैश्च क्वचिद्वास्तु विलेखयेत् ॥१४

फिर विप्रों को पायस का भोजन करावे और मधु और घृत के द्वारा होम करे। सर्वदा वास्तोष्पति से इस मन्त्र के द्वारा प्रतिज्ञा करे।

उस प्रकार से सूत्रपात मे करे और पुनः स्तम्भोदय के समय मे भी करना चाहिए। द्वार वश के उच्छ्रय मे तथा उसी भाँति से प्रवेश के समय मे करना चाहिये। उसी तरह से वास्तु के उपशमन के अवसर पर उसी तरह से वास्तु यज्ञ पाँच प्रकार का होता है। ईशान में सूत्रपात होता है—आग्नेय मे स्तम्भ का रोपण होता है और वास्तु के पदविलेखन का प्रदक्षिण करना चाहिए। तर्जनी, मध्यमा तथा दक्षिण मे अंगुष्ठ रक्खे। प्रवाल, रत्न, कनक फल (धतूरे का फल) को जल के साथ पीस कर सम्पूर्ण वास्तु के विभागो मे पदविलेखन करे। पद विलेखन करने मे यह परम प्रशस्त कहा गया है। वास्तु का विलेखन कही पर भी भस्म-अङ्गार और काष्ठ से भी नही करे तथा सींग, अस्थि और कपालो के द्वारा भी पद विलेखन नही करे ॥६—१४॥

एभिर्विलिखितं कुर्याद्दुःखशोकभयादिकम् ।
यदा गृहप्रवेशः स्याच्छिल्पी तत्रापि लक्षयेत् ॥१५
स्तम्भसूत्रादिकं तद्वच्छुभाशुभफलप्रदम् ।
आदित्याभिमुखं रौति शकुनिः पुरुषं यदि ॥१६
तुल्यकालं स्पृशेदङ्गं गृहभर्तुर्यदात्मनः ।
वास्त्वङ्गे तद्विजानीयान्नशल्यं भयप्रदम् ॥१७
अङ्गनानन्तरं यत्र हस्त्यश्वश्वापदं भवेत् ।
तदङ्गसम्भवं विन्द्यात्तत्र शल्यं विचक्षणः ॥१८
प्रसार्यमाणे सूत्रे तु श्वागोमायुर्विलङ्घते ।
तत्र शल्यं विजानीयात् खरशब्देऽति भैरवे ॥१९
यदीशाने तु दिग्भागे मधुरं रौति वायसः ।
धनं तत्र विजानीयाद्भागे वास्वाम्यधिष्ठिते ॥२०
सूत्रच्छेभवेन्मृत्युर्व्याधिः कीले त्वधोमुखे ।
अङ्गारेषुतथोन्मादं कपालेषु च सम्भ्रमम् ॥२१

यदि उपर्युक्त साधनों में से किसी भी एक के द्वारा पदविलेखन किया जाता है तो इसका परिणाम बुरा हुआ करता है। और दुःख—शोक और भय आदि हुआ करते हैं। जिस समय में गृह प्रवेश होवे वहाँ पर भी शिल्पी को लक्षित करना चाहिये ॥ १५ ॥ स्तम्भ कुम्भादिक भी इसी भाँति शुभ और अशुभ फल के प्रदान करने वाले होते हैं। यदि शकुनि सूर्य्य के सम्मुख पुरुष के प्रति ध्वनि करता है और तुल्यकाल ही में गृह के स्वामी के अङ्ग का स्पर्श करता है और अपने अङ्ग को छूता है तो उसको भय प्रदान करने वाला नरशल्य जान लेना चाहिए ॥ १६, १७ ॥ अङ्कन के अनन्तर जिसमें हस्ती—अश्व और श्वापद होवे तो उसको वहाँ पर विचक्षण पुरुष अङ्ग में होने वाला शल्य समझ लेवे ॥ १८ ॥ सूत्र के फैलाये जाने पर वह श्वान और शृगाल के द्वारा विलङ्घित हो जावे तो उसको भी शल्य ही जान लेना चाहिए तथा भैरव में खर शब्द हो उसको भी शल्य समझ लेवे ॥ १९ ॥ जो ईशान कोण के दिग्भाग में वायस (कौआ) मधुर ध्वनि करता हो तो वहाँ पर उस भाग में धन का होना समझ लेना चाहिए अथवा स्वामी के द्वारा अधिष्ठित भाग में धन जानना ॥ २० ॥ सूत्र का जो कि प्रसारित किया गया है किसी भी तरह से छेदन हो जावे तो मृत्यु जान लेवे तथा कील के नीचे की ओर मुख वाली हो जाने पर व्याधि होने का ज्ञान कर लेवे। अङ्गारों के होने पर उन्माद और कपालों के हो जाने पर सम्भ्रम होना समझ लेना चाहिए ॥ २१ ॥

कम्बुशल्येषु जानीयात् पौंश्चल्यं स्त्रीषु वास्तुवित्।
गृहभर्तुर्गृहस्यापि विनाशः शिल्पसम्भ्रमे ॥ २२
स्तम्भे स्कन्धच्युते कुम्भे शिरोरोगं विनिर्दिशेत्।
कुम्भापहारे सर्वस्य कुलस्यापि क्षयो भवेत् ॥ २३
मृत्युः स्थानच्युते कुम्भे भग्ने बन्धं विदुर्बुधाः।
करसंख्याविनाशे तु नाशं गृहपतेर्विदुः ॥ २४

विजौषधिविहीनेतुभूतेभ्योभयमादिशेत् ।
ततः प्रदक्षिणेनान्यान्न्यकेत्स्तम्भान्विचक्षण: ॥२५
यस्माद्भयकरं नृणां योजिताह्यप्रदक्षिणम् ।
रक्षाकुर्वीत यत्नेन स्तम्भोपद्रवनाशिनीम् ॥२६
तथा फलवती शाखां स्तम्भोपरि निवेशयेत् ।
प्रागुदक्प्रवण कुर्य्याद्दिङ्मूढन्तु न कारयेत् ॥२७
स्तम्भं वा भवनंवापिद्वार वासगृह तथा ।
दिङ्मूढे कुलनाश स्यान्नच संवर्द्धयेद् गृहम् ॥२८

कम्बुशल्यो मे वास्तु के वेत्ता को स्त्रियो के विषय मे पौंश्चल्य का ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिये । शिल्पी के सम्भ्रम हो जाने पर गृह के स्वामी का और गृह का भी विनाश हो जाता है । स्तम्भ मे कुम्भ के स्कन्ध से च्युत हो जाने पर शिरोरोग का होना जान लेवे । कुम्भ का यदि अपहरण ही हो जावे तो समझ लेना चाहिए कि सम्पूर्ण ही कुल का क्षय हो जावेगा ॥ २२, २३ ॥ कुम्भ के निर्दिष्ट स्थान से च्युत हो जाने पर मृत्यु की सूचना होती है—ऐसा जान लेवे । यदि कुम्भ का भग हो जावे तो बुध लोग उसको बन्धन का सूचक बतलाया करते है । करो की सख्या के विनाश हो जाने पर गृहपति का नाश कहा करते हैं । बीजो और औषधियो के विहीन होने पर भूतो से भय प्राप्त होने की सूचना हुआ करता है । इसीलिये विचक्षण पुरुष का कर्त्तव्य है कि उससे प्रदक्षिण मे अन्य स्तम्भो का न्यास करे । जिससे मनुष्यो को भय करने वाला कुछ हो उसे अप्रदक्षिण मे योजित करे और स्तम्भो को होने वाले जो उपद्रव होवे उनके विनाश करने वाली की प्रबल प्रयत्नो के साथ रक्षा करनी चाहिए ॥ २४, २५, २६ ॥ उसी प्रकार से फलो से युक्त एक शाखा को स्तम्भ के ऊपर निवेशित कर देना चाहिए । उसे पूर्व और उत्तर की ओर मुख वाली ही विनिवेशित करनी चाहिए तथा दिक् सम्मूढ उसे नहीं कराना चाहिए ॥ २७ । स्तम्भ हो या भवन हो तथा

द्वार हो अथवा निवास करने का गृह हो इसमें दिङ्मूढ़ता कभी भूल कर भी नहीं करे क्योंकि दिङ्मूढ़ होने पर कुल का नाश ही हो जाया करता है और गृह को फिर वह कभी भी संवर्द्धित नहीं किया करता है ॥२८॥

यदि संवर्द्धयेद्गेहं सर्वदिक्षु विवर्द्धयेत् ।
पूर्वेण वर्द्धितं वास्तु कुर्याद्वैराणि सर्वदा ॥२९
दक्षिणे वर्द्धितं वास्तु मृत्यवे स्यान्न संशयः ।
पश्चाद्विवृद्धं यद्वास्तु तदर्थक्षयकारकं ॥ ३०
वर्द्धापितं तथा सौम्ये बहुसन्तापकारकम् ।
आग्नेये यत्र वृद्धिः स्यात् तदग्निभयदं भवेत् ॥३१
वर्द्धितं राक्षसेकोणे शिशुक्षयकरं भवेत् ।
वर्द्धवापि तन्तु वायव्ये वातव्याधिप्रकोपकृत् ॥३२
ईशान्या अन्नहानिः स्यात् वास्तौसंवर्द्धितेसदा ।
ईशानेदेवतागारं तथा शान्तिगृहंभवेत् ॥३३
महानसन्तथाग्नेये तत्पार्श्वेचोत्तरेजलम् ।
गृहस्योपस्करं सर्वं नैऋत्येस्थापयेद्बुधः ॥३४
बधस्थानं बहिः कुर्यात् स्नानमण्डपमेव च ।
धनधान्यञ्च वायव्ये कर्मशालान्ततो बहिः ॥
एवं वास्तु विशेषः स्यात् गृहभर्तुः शुभावहः ॥३५

यदि गृह को संवर्द्धित करे तो सभी दिशाओं में उसे विवर्द्धित करना चाहिए। पूर्व दिशा में यदि वास्तु वर्द्धित होवे तो सर्वदा वैरों को किया करता है ॥ २९ ॥ दक्षिण दिशा में वास्तु का वर्द्धन होवे तो वह निस्सन्देह मृत्यु के ही लिये हुआ करता है। पीछे अर्थात् पश्चिम की ओर वास्तु विवर्द्धित होवे तो वह अर्थ का क्षय करने वाला होता है। सौम्य दिशा में वर्द्धित वास्तु बहुत अधिक सन्ताप का कारक हुआ करता है। जहाँ पर आग्नेय कोण में इसकी वृद्धि होती है तो वह अग्नि से

होने वाले भय को प्रदान करने वाला हुआ करता है। राक्षस कोण में वर्द्धित वास्तु शिशुओं के क्षय का करने वाला हुआ करता है। वायव्य कोण की दिशा में वस्तु को बद्ध करके भी वातजन्य व्याधि के प्रकोप को करने वाला हुआ करता है। ईशान दिशा में अन्न की हानि सदा होती है जब कि उस ओर वास्तु सवंद्धित होता है। ईशान में देवता का आगार तथा शान्ति गृह होना चाहिये ॥ ३०, ३१, ३२, ३३ ॥ आग्नेय कोण में महानस (रसोई घर) और उसके पार्श्व में उत्तर दिशा में जल के रहने का स्थान और बुध पुरुष को नैऋत्य कोण में गृह के सभी उपस्कर स्थापित करने चाहिए अर्थात् भण्डार गृह बनाना चाहिए। बाहिरी भाग में बध का स्थान बनाना चाहिए तथा स्नान मण्डप भी बाहिर ही बनाना चाहिये। वायव्य कोण में धन-धान्य का स्थान बनावे और इससे आगे बाहिर कर्मशाला का निर्माण कराना उचित है। इस प्रकार से विशेष रूप वाला वास्तु गृह के स्वामी के लिए परम शुभ के प्रदान करने वाला हुआ करता है ॥ ३४, ३५ ॥

१२०—दार्वाहरण वर्णन

अथातः संप्रवक्ष्यामि दार्वाहरणमुत्तमम् ।
धनिष्ठापञ्चके मुक्त्वा विष्ट्यादिकमतः परम् ॥१
तत सांवत्सरादिष्टे दिने यायाद्वन बुधः ।
प्रथम वलिपूजाञ्च कुर्याद्वृक्षस्य सर्वदा ॥२
पूर्वोत्तरेण पतितं गृहदारु प्रशस्यते ।
अन्यथा न शुभ विन्द्यात् याम्योपरि निपातनम् ॥३
क्षीरवृक्षोद्भव दारु न गृहे विनिवेशयेत् ।
खगाधिवास विहगैर्नानानागैरपीडितम् ।४

गजावरुग्णञ्च तथा विद्युन्निर्घातपीडितम् ।
अर्द्धं शुष्कं तथा दारुभग्नशुष्कं तथैव च ॥५
चैत्यदेवालयोत्पन्नं नदीसङ्गमजन्तथा ।
श्मशानकूपनिलयं तडागादिसमुद्भवम् ॥६
वर्जयेत्सर्वथा दारु यदीच्छेद्विपुलां श्रियम् ।
तथा कण्टकिनो वृक्षान् नीपनिम्बविभीतकान् ॥७
श्लेष्मातकानाम्रतरून् वर्जयेद् गृहकर्मणि ।
आसनाशोकमधुकसर्जशालाः शुभावहाः ॥८
चन्दनं पनसं धन्यं सुरदारुहरिद्रवः ।
द्वाभ्यामेकेन वा कुर्यात् त्रिभिर्वा भवनं शुभम् ॥९

महा महर्षि श्री सूतजी ने कहा—इसके अनन्तर उत्तम दार्वाहरण के विषय में कहता हूँ। धनिष्ठादि पाँच नक्षत्रों को छोड़कर और इसके आगे त्रिदेवादि (मघा) को त्याग करके शुभ मुहूर्त को मान्य-तारा में इष्ट दिन में वन में गमन करना चाहिए। सबसे प्रथम वृक्ष की बलि पूजा करनी चाहिए ॥१ पूर्वा पूर्वोत्तर दिशा में पतित वृक्ष का दारु (काष्ठ) प्रशस्त होता है। अन्यथा याम्य दिशा में ऊपर गिरा हुआ शुभ का लाभ नहीं दिया करता है। और वृक्ष से समुत्पन्न होने वाला काष्ठ कभी भी गृह में विनिवेशित न करावे। पक्षियों के द्वारा अधिवास किया हुआ—अग्नि और अनल से पीड़ित—गज से अवरुग्ण—विद्युत् के निर्घात से पीड़ित—अर्द्ध शुष्क—दारु के भग्न होने से शुष्क—चैत्य और देवालय में समुत्पन्न—नदियों के सङ्गम से उत्पन्न होने वाला—श्मशान और कूप के निलय वाला—तडाग आदि में समुत्पन्न होने वाला ऐसे काष्ठ का सर्वथा वर्जित कर देना चाहिए। यदि विपुल श्री के प्राप्त करने की इच्छा हृदय में होवे। कांटे वाले वृक्षों को—नीप, निम्ब, विभीतकों का श्लेष्मातकों को, आम्र तरुओं को गृह के निर्माण के कर्म में वर्जित करना चाहिए। आसन-अशोक-मधुक और सर्जशाल ये सब शुभावह होते हैं। चन्दन-

पनम परम धन्य है। सुरदारु और हरिद्व इन दोनो मे से एक के द्वारा अथवा तीनो के द्वारा शुभ भवन का निर्माण करना चाहिए। ॥ ३-६ ॥

बहुभिः कारित यस्मादनेकभयदं भवेत्।
एकैव शिशपा धन्या श्रीपर्णी तिन्दुकीतथा ॥१०
एता नान्यसमायुक्ताः कदाचिच्छुभकारकाः।
स्यन्दनः पनसस्तद्वत्सरलार्जुनपद्मकाः ॥११
एते नान्यसमायुक्ता वास्तुकार्यफलप्रदाः।
तरुच्छेदे महापीतेगोधा विन्द्याद्विचक्षणः ॥१२
माञ्जिष्ठवर्णे भेक स्यान्नीले सर्पादि निर्दिशेत्।
अरुणे सरठ विद्यान्मुक्ताभे शुकमादिशेत् ॥१३
कपिले मूषकान्विद्यात् खड्गाभे जलमादिशेत्।
एवविध सगर्भन्तु वर्जयेद्वास्तु कर्मणि ॥१४

क्योंकि बहुतो के द्वारा जो कराया जाता है वह अनेक भयो के प्रदान करने वाला होता है। एक ही शिशपा का वृक्ष परम धन्य होता है और श्रीपर्णी तथा तिन्दुकी भी उसी प्रकार से परम धन्य हैं। ये अन्य से समायुक्त न होकर किसी समय मे शुभ कारक होते हैं। उसी तरह मे स्यन्दन—पनस—सरल—अर्जुन और पद्मक भी हैं। ये अन्य से समायुक्त न होते हुए वास्तु कार्य के फल के प्रदान करने वाले हैं। विचक्षण पुरुष महापीत तरु के छेदन होने पर गोधा की प्राप्ति करे। मञ्जिष्ठा के वर्ण मे भेक होवे तथा नील मे सर्पादि का विनिर्देश करना चाहिए। अरुण वर्ण मे सरठ को जानना चाहिए। मुक्ता की आभा वाले मे शुक का समादेश करे ॥१०-१३॥ कपिल वर्ण मे मूषको को जानना चाहिए। खड्ग की आभा वाले मे जल का समादेश करे। इस प्रकार के सगर्भ को वास्तु कर्म मे वर्जित कर देना चाहिए ॥१४॥

पूर्वच्छिन्नं तु गृह्णीयान्निमित्तशकुनैः शुभैः ।
व्यासेन गुणिते दैर्घ्यं अष्टाभिर्विहृते तथा ॥१५
यच्छेषमायतं विद्यादष्टभेदं वदामि वः ।
ध्वजो धूम्रश्च सिंहश्च वृषभः खर एव च ॥१६
हस्ती ध्वांक्षश्च पूर्वाद्याः करशेषाभवन्त्यमी ।
ध्वजः सर्वमुखो धन्यः प्रत्यग्द्वारो विशेषतः ॥१७
उदङ्मुखो भवेत्सिंहः प्राङ्मुखो वृषभो भवेत् ।
दक्षिणाभिमुखो हस्ती सप्तभिः समुदाहृतः ॥१८
एकेन ध्वज उद्दिष्टस्त्रिभिः सिंहः प्रकीर्तितः ।
पञ्चभिर्वृषभः प्रोक्तो विकोणस्थान्विवर्जयेत् ॥१९
तमेवाष्टगुणं कृत्वा करराशिं विचक्षणः ।
नवभिर्विहृते भागे ऋक्षं विद्याद्विचक्षणः ॥२०

शुभ निमित्त शकुनों के द्वारा पूर्व छिन्न का ग्रहण करना चाहिए। व्यास के द्वारा गुणित होने पर आठों से विहृत होने पर दीर्घता होती है। उसमें जो शेष है—वह आयत जानना चाहिए। मैं आपको आठ भेद बतलाता हूँ—ध्वज, धूम्र, सिंह, वृषभ, खर, हस्ती और ध्वांक्ष ये पूर्वादि कर शेष होते हैं। ध्वज सर्वमुख धन्य होता है और विशेष रूप से प्रत्यग् द्वार होता है ॥१५, १६, १७॥ उत्तर की ओर मुख वाला सिंह होता है और पूर्व की ओर मुख से युक्त वृषभ होता है। दक्षिण दिशा का अभिमुख होने वाला हस्ती है तथा इसी प्रकार से यह सात प्रकार वाला समुदाहृत किया गया है ॥१८॥ एक के द्वारा ध्वज कहा गया है—तीन के द्वारा सिंह कीर्तित किया गया है—पाँचों से वृषभ उक्त हुआ है। जो विकोण में स्थित होते हैं वे सब वर्जित माने गये हैं अतः इनको निषिद्ध मानना चाहिए। विचक्षण पुरुष को चाहिए उसी कर राशि को अष्टगुणा करे अर्थात् आठ से गुणा करके नौ से भाग समाहृत करे और उसी ऋक्ष (नक्षत्र) को जान लेना चाहिए ॥१९, २०॥

अष्टभिर्भाजितेऋक्षेयः शेषः सव्ययो मतः ।
व्यायाधिकं न कुर्वीत यतोदोषकरम्भवेत् ॥
आयाधिके भवेच्छान्तिरित्याह भगवान् हरिः ॥२१
कृत्वाग्रतो द्विजवरानथ पूर्णकुम्भं,
दध्यक्षताम्रदलपुष्पफलोपशोभम् ।
कृत्वा हिरण्यवसनानि तदा द्विजेभ्यो,
मङ्गल्यशान्तिनिलयाय गृहंविशेत्तु ॥२२
गृह्योक्तहोमविधिना बलिकर्म कुर्यात्-
प्रासादवास्तुशमने च विधिर्यउक्तः ।
सन्तर्पयेद्द्विजवरानथ भक्ष्यभोज्यैः,
शुक्लाम्बरः स्वभवनं प्रविशेत्सधूपम् ॥२३

आठ से भाजित करने पर जो नक्षत्र शेष होता है वह समग्र माना गया है। व्यय से अधिक नहीं करना चाहिए क्योंकि वह दोषकर होता है। भगवान् श्री हरि ने यही कहा है कि आयाधिक मे शान्ति होती है ॥२१॥ इस के अनन्तर द्विज श्रेष्ठों को आगे करके दधि, अक्षत, आम्रदल, पुष्प, फल इनसे उपशोभित पूर्ण कुम्भ को करके द्विज गणों के लिए उस समय में सुवर्ण तथा वस्त्रादि देकर मङ्गल्य शान्ति निलय के लिये गृह में प्रवेश करना चाहिए। फिर गृह्य मे वर्णित होम की विधि के साथ बलि कर्म करना चाहिए। यही प्रासाद के वास्तु का शमन करने मे विधान बतलाया गया है। इसके उपरान्त भक्ष्य भोज्यों के द्वारा श्रेष्ठ द्विज गणों को सन्तृप्त करना चाहिए और स्वयं शुक्ल वस्त्रों को धारण करने वाला धूप के दान के सहित अपने भवन मे प्रवेश करे ॥२२, २३॥

१२१—प्रतिमा निर्माण वर्णन

क्रियायोगः कथं सिद्ध्येद् गृहस्थादिषु सर्वदा ।
ज्ञानयोगसहस्राद्धि कर्मयोगो विशिष्यते ॥१
[illegible] ।
[illegible]
प्रतिष्ठायां सुराणां तु देवानामनुकीर्तनम् ।
देवयज्ञोत्सवश्चापि बन्धनाद्येन मुच्यते ॥३
विष्णोस्तावत्प्रवक्ष्यामि यादृग्रूपं प्रशस्यते ।
शङ्खचक्रधरं शान्तं पद्महस्तं गदाधरम् ॥४
छत्राकारं शिरस्तस्य कम्बुग्रीवं शुभेक्षणम् ।
तुङ्गनासं शुक्तिकर्णं प्रशान्तोरुभुजक्रमम् ॥५
क्वचिदष्टभुजं विद्याच्चतुर्भुजमथापरम् ।
द्विभुजश्चापि कर्तव्यो भवनेषु पुरोधसा ॥६
देवस्याष्टभुजस्यास्य यथास्थानं निबोधत ।
खड्गो गदा शरः पद्मं देयं दक्षिणतो हरेः ॥७

ऋषि वृन्द ने कहा—गृहस्थ आदि में क्रिया का योग किस प्रकार से सर्वदा सिद्ध होता है यह कृपया बतलाइये क्योंकि सहस्रों ज्ञान योग से कर्म योग विशिष्ट हुआ करता है ॥१॥ महा महर्षि श्री सूतजी ने कहा—मैं अब उस क्रिया योग को बतलाता हूँ जिसमें देवगण के अर्चना का अनुकीर्तन किया जाता है क्योंकि इससे अन्य लोकों में भुक्ति और मुक्ति का प्रदान करने वाला कोई भी नहीं होता है ॥२॥ सुरगणों की प्रतिष्ठायें देवताओं के अभ्यर्चन का अनुकीर्तन और देवयज्ञों का उत्सव भी होता है। जो ऐसे नहीं करते हैं वे बन्धन से मुक्त नहीं होते हैं। भगवान् विष्णु के विषय में मैं वर्णन करता हूँ जैसा कि उनका रूप प्रशस्त कहा जाया करता है। शंख-चक्र और गदा के धारण करने वाला—परम प्रशान्त

हाथ में पद्म तथा गदा को धारण किए हुए—उनका शिर छत्र के आकार से संयुत है—काम्बु के समान ग्रीवा वाला—शुभ नेत्रों से युक्त—तुङ्ग (ऊँची) नासिका से सम्पन्न—शुक्ति के तुल्य कानों वाला—परम प्रशान्त ऊरुयुग और भुजाओं के क्रम से समन्वित—कहीं पर आठ भुजाओं से युक्त और दूसरा चार भुजाओं से युक्त एवं दो भुजाओं से भी सम्पन्न उनका स्वरूप होता है। भवनों में पुरोहित के द्वारा ऐसा ही उपर्युक्त स्वरूप से समन्वित उनका स्वरूप करना चाहिए। आठ भुजाधारी इस देव को यथा स्थान समझ लेना चाहिए। खड्ग—गदा—शर—दिव्य पद्म—ये सब आयुध भगवान् विष्णु के दक्षिण भाग में होने चाहिए ॥ ३—७ ॥

धनुश्च खेटकञ्चैव शङ्खचक्रे च वामतः।
चतुर्भुजस्य वक्ष्यामि यथैवायुधसंस्थितिः ॥८
दक्षिणेन गदापद्मं वासुदेवस्य कारयेत्।
वामतः शङ्खचक्रे च कर्तव्ये भूतिमिच्छता ॥९
कृष्णावतारे तु गदा वामहस्ते प्रशस्यते।
यथेच्छया शङ्खचक्रं चोपरिष्टात् प्रकल्पयेत् ॥१०
अधस्तात् पृथिवी तस्य कर्तव्या पादमध्यतः।
दक्षिणे प्रणतं तद्वद् गरुत्मन्तं निवेशयेत् ॥११
वामतस्तु भवेल्लक्ष्मीः पद्महस्ता शुभानना।
गरुत्मानग्रतो वापि संस्थाप्यो भूतिमिच्छता ॥१२
श्रीश्च पुष्टिश्च कर्तव्ये पार्श्वयोः पद्मसंयुते।
तोरणञ्चोपरिष्टात्तु विद्याधरसमन्वितम् ॥१३
देवदुन्दुभिसंयुक्तं गन्धर्वमिथुनान्वितम्।
पत्रवल्लीसमोपेतं सिंहव्याघ्रसमन्वितम् ॥१४

धनुष—खेटक—शंख—चक्र ये चार आयुध उनके वाम भाग में रहने चाहिए। यह आठ भुजाओं के आयुधों के धारण करने का क्रम होता है।

अब चतुर्भुज भगवान विष्णु के आयुधों को धारण करने के क्रम एवं संस्थिति का वर्णन किया जाता है। भगवान् वासुदेव के दक्षिण भाग में गदा और पद्म इन दो आयुधों को धारण कराना चाहिए। वाम भाग में जो भुक्ति के प्राप्त करने की इच्छा रखता है उस भक्त को चाहिए कि वाम भाग में शंख और चक्र इन दो आयुधों को धारण कराना चाहिए। भगवान् के कृष्णावतार में गदा बांये हाथ में ही प्रशस्त मानी गयी है। अपनी इच्छा के अनुसार ही ऊपर के शंख तथा चक्र इन दो आयुधों की कल्पना करनी चाहिए। उनके नीचे की ओर पाद के मध्य भाग में पृथिवी की कल्पना करनी चाहिए और दक्षिण भाग में उसी प्रकार से प्रणति करते हुए गरुड़ का निवेश करना चाहिए ॥८–१२॥ भगवान् के वाम भाग में पद्म हाथों में धारण करने वाली तथा परम शुभ मुख वाली लक्ष्मी देवी विराजमान होनी चाहिए। विभूति की इच्छा रखने वाले पुरुष को चाहिए कि भगवान् के आगे गरुड़ की भी सम्स्थापना करनी चाहिए। दोनों पार्श्व भागों में पद्मों से संयुत श्री और पुष्टि इन दोनों की सम्स्थापना करें। विद्याधर से संयुत ऊपर के भाग में तोरण बनावे ॥१२ ॥१३॥ देवों की दुन्दुभि ना वा वाद्य से युक्त गन्धर्वों के जोड़े से समन्वित—रमवल्ली समोपेत—सिंह और व्याघ्र से युक्त भगवान् की स्थापना वहाँ पर करनी चाहिए ॥१४॥

तथा कल्पलतोपेत स्तुवद्भिरमरेश्वरैः।
एवंविधो भवेद्विष्णो स्त्रिभागेनास्य पीठिका ॥१५
नवतालप्रमाणास्तु देवदानवकिन्नराः।
अतः परं प्रवक्ष्यामि मानोन्मान विशेषतः ॥१६
जालान्तरप्रविष्टानां भानूनां यद्रजः स्फुटम्।
त्रसरेणुः स विज्ञेयो वालाग्रन्तैरथाष्टभिः ॥१७
तदष्टकेन लिक्षा तु यूकालिक्षाष्टकैर्मता।
यवो यूकाष्टकं तद्वदष्टभिस्तैस्तदङ्गुलम् ॥१८

स्वकीयांगुलिमानेन मुखं स्याद्द्वादशांगुलम् ।
मुखमानेन कर्तव्या सर्वावयवकल्पना ॥१९
सौवर्णीराजतीवापि ताम्री रत्नमयी तथा ।
शैलीदारुमयीचापि लोहसघमयी तथा ॥२०
रीतिकाधातुयुक्तावा ताम्रकांस्यमयी तथा ।
शुभदारुमयीवापि देवतार्चा प्रशस्यते ॥२१

कल्पलता से संयुत तथा देवगणो के द्वारा स्तुति किये जाने वाले भगवान् विष्णु को स्थापित करे। इन विष्णु की तीन भाग से यहाँ पर पीठिका होनी चाहिए ॥१५॥ यह पीठिका जो है इसके समीप मे नवताल प्रमाण वाले देव गन्धर्व और किन्नर स्थापित करे। अब इसके आगे विशेष रूप से मानोन्मान के विषय मे वर्णन करता हूँ ॥१६॥ जाल के अन्तर में प्रविष्ट भानु की किरणो के द्वारा जो स्फुट रूप मे रज के कण दिखलाई दिया करते हैं उनको त्रस रेणु जानना चाहिए। वे बाल के अग्र भाग के समान होते हैं। उन आठो की एक लिक्षा होती है। आठ लिक्षाओं को एक यूका मानी गयी है। आठ यूकाओं का एक यव होता है और आठ यवो का एक अंगुल हुआ करता है ॥१७, १८॥ अपने अंगुल के मान से द्वादश अंगुलो का मुख होता है। इस मुख के मान के द्वारा ही समस्त अवयवो की कल्पना करनी चाहिए ॥१९॥ भगवान् की प्रतिमाएँ सुवर्ण से—रजत (चाँदी) से निर्मित होती हैं तथा ताम्र, और रत्नो के द्वारा निर्मित की हुई हुआ करती हैं। शैली अर्थात् पाषाण से—दारुमयी अर्थात् विशुद्ध काष्ठ से भी निर्माण की हुई प्रतिमाएँ होती हैं और लोह सघ से पूर्ण होती हैं। रीति का अथवा धातु से युक्त—ताम्र और कांस्य के मिश्रण से निर्मित या शुभ काष्ठ के निग्रह वाली देवता की प्रतिमा की अर्चा प्रशस्त होती है ॥२०, २१॥

अंगुष्ठपर्वादारभ्य वितस्तियावदेव तु ।
गृहेषु प्रतिमा कार्या नाधिका शस्यते बुधैः ॥२२

आषोडशा तु प्रासादे कर्तव्या नाधिका ततः ।
मध्योत्तमकनिष्ठा तु कार्या वित्तानुसारतः ॥ २
द्वारोच्छ्रायस्य यन्मानमष्टधा तत्तु कारयेत् ।
भागमेकं ततस्त्यक्त्वा परिशिष्टन्तु यद्भवेत् ॥२४
भागद्वयेन प्रतिमा त्रिभागीकृत्य तत्पुनः ।
पीठिका भागतः कार्या नातिनीचा न चोच्छ्रिता ॥२५
प्रतिमामुखमानेन नवभागान् प्रकल्पयेत् ।
चतुरङ्गुला भवेद्ग्रीवा भागेन हृदयं पुनः ॥२६
नाभिस्तस्मादधः कार्या भागेनैकेन शोभना ।
निम्नत्वे विस्तरत्वे च अंगुलं परिकीर्तितम् ॥२७
नाभेरधस्तथा मेढ्रं भागेनैकेन कल्पयेत् ।
द्विभागेनायतावूरू जानुनी चतुरंगुले ॥२८

अपने अँगूठे के पर्व से आरम्भ करके एक वितस्ति (बित्ता या बीलस्त) पर्यन्त लम्बी और बड़ी देव प्रतिमा निर्मित करानी चाहिए। कुछ पुरुषों के द्वारा इस प्रमाण से अधिक बड़ी प्रतिमा का प्रमाण नहीं बतलाया गया है ॥२२॥ जो प्रासाद हो उसमें षोडश से अधिक बड़ी प्रतिमा कभी नहीं करानी चाहिए। अपने वित्त के अनुसार उत्तम-मध्यम और कनिष्ठ प्रतिमा का निर्माण कराना आवश्यक है ॥२३॥ द्वार के उच्छ्राय का जो मान है उसको आठ भाग करे। उनमें से एक भाग का त्याग करके जो परिशिष्ट होवे ॥२४॥ उनमें से दो भागों के प्रमाण से प्रतिमा की रचना करानी चाहिए। फिर उसके तीन भाग करके भाग से पीठिका की रचना करे। वह पीठिका न तो अत्यन्त नीची होनी चाहिए और न अधिक उच्छ्रित ही होनी चाहिए ॥२५॥ प्रतिमा के मुख मान से नौ भागों की प्रकल्पना करनी चाहिए। चार अंगुल वाली ग्रीवा होवे और फिर भाग के द्वारा हृदय की रचना होनी चाहिए ॥२६॥ उसके अर्थात् वक्षःस्थल के नीचे एक भाग से परम शोभन नाभि का निर्माण

करावे। उस नाभि की भिन्नता और विस्तार मे अगुल ही कीर्त्तित किया गया है। नाभि के नीचे एक भाग मे मेढ़ की रचना की कल्पना करे और दो भागो के द्वारा आयत अरुओ एव चार अगुल के प्रमाण वाले जानुओ की रचना करानी चाहिए।। ७, २८।।

जङ्घेद्विभागेविख्यातेपादौ च चतुरंगुलौ।
चतुर्दशागुलस्तद्वन्मौलिरस्य प्रकीर्तित:।। ६
ऊर्द्ध्वमानमिदप्रोक्त पृथुत्वञ्चनिबोधत।
सर्वावयवमानेषु विस्तार शृणुत द्विजा:।।३०
चतुरगुलललाट स्यादूर्द्ध्व नासा तथैव च।
द्वय गुलन्तु हनुर्ज्ञेयमोष्ठ. स्वागुलसम्मित·।।३१
अष्टागुले ललाटे च तावन्मात्रो भ्रुवौ मते।
अर्द्धागुलाभ्रुवोर्लेखा मध्ये धनुरिवानता।।३२
उन्नताग्रा भवेत्पार्श्वे श्लक्ष्णा तीक्ष्णा प्रशस्यते।
अक्षिणा द्वयगुला यामे तदर्धं चैव विस्तरे।।३३
उन्नतोदरमध्ये तु रक्तान्ते शुभलक्षणे।
तारकार्धविभागेन दृष्टि: स्यात्पञ्चभागिका।।३४
द्व्यगुलन्तु भ्रुवोमध्ये नासामूलमथागुलम्।
नासाग्रविस्तर तद्वत् पुटद्वयमथानतम्।।३५

दो भागो वाले जघन विख्यात हैं और दोनो पाद चार अगुल के मान वाले होने चाहिए। उसी भाँति चौदह अगुल का उस प्रतिमा का मौलि कीर्त्तित किया गया है। यह इसका ऊर्ध्व मान बताया गया है अब उसके पृथुत्व को भी समझ लेना चाहिए। हे द्विजगण ! समस्त अवयवो के मानो मे जो भी विस्तार होता है उसका भी श्रवण कर लो।।२६।। ।।३०।। चार अगुल का ललाट होता है उसी भाँति से ऊर्ध्व भाग मे नासिका हुआ करती है। दो अगुल का हनु (ठोडी) जानना चाहिए और ओष्ठ अपने अगुल के सम्मित होते हैं ? आठ अगुल के ललाट मे उतनी

माथा वाली ही भौंहें मानी गयी हैं। भ्रुओं के लेखा आधे अंगुल की होती है जो भ्रूओं के मध्य में धनुष की भाँति आनत हुआ करती है। पार्श्व भाग में वह उन्नत अग्र भाग वाली होती है तथा श्लक्ष्णा और तीक्ष्ण प्रशस्त कही जाया करती है। दो अंगुल की याम वाली दो अक्षियाँ होनी चाहिए और विस्तार में इससे आधी होवें ॥३१, ३२, ३३॥ उन्नत उदर के मध्य भाग वाली और अन्त में रक्त वर्ण से युक्त आँखें शुभ लक्षण से सम्पन्न हुआ करती हैं। तारक के अर्थ विभाग में दृष्टि पाँच भाग वाली होती है ॥३०॥ भौंहों के मध्य में दो अंगुल के प्रमाण वाला नासिका का मूल होता है और एक अंगुल नासिका के अग्रभाग का विस्तार हुआ करता है। इसी भाँति से आनत नासिका के दो पुट हुआ करते हैं ॥ ३५ ॥

नासापुटविलतद्वदर्धांगुलमुदाहृतम् ।
कपोले द्व्यंगुले तद्वत् कर्णमूलाद्विनिर्गते ॥३६
हन्वग्रमंगुलं तद्वद्विस्तारो द्व्यंगुलो भवेत् ।
अर्द्धांगुलाभ्रुवोराजी प्रणालसदृशी समा ॥३७
अर्द्धांगुलसमस्तद्वदुत्तरोष्ठस्तु विस्तरे ।
निष्पावसदृशस्तद्वन्नासापुटदलं भवेत् ॥३८
सृक्किणी ज्योतिस्तुल्ये तु कर्णमूलात् षडंगुले ।
कर्णौ तु भ्रूसमौ ज्ञेयौ ऊर्ध्वन्तु चतुरंगुलौ ॥३९
द्व्यंगुलौ कर्णपाश्वौ तु मात्रामेकान्तु विस्तृतौ ।
कर्णयोरुपरिष्टाच्च मस्तकं द्वादशांगुलम् ॥ ४०
ललाटात्पृष्ठतोऽर्द्धेन प्रोक्तमष्टादशांगुलम् ।
षट्त्रिंशदङ्गुलश्चास्य परिणाहः शिरोगतः ॥४१
सकेशनिचयो यस्य द्विचत्वारिंशदंगुलः ।
केशान्ताद्धनुका तद्वदंगुलानि तु षोडश ॥४२

नासिका के पुट का बिल उसी भाँति से आधे अंगुल का कहा गया है। दो अंगुल के प्रमाण सेयुक्त दोनो कपोल होने चाहिए जो कर्ण-मूल से विनिर्गत हुआ करते हैं ॥३६॥ दनु के अग्रभाग का विस्तार दो अंगुल और वह एक अंगुल होता है। भ्रूओं की राजी आधी अंगुल वाली होती है जो प्रणाल के सदृश एवं सम हुआ करती है ॥ ३७ ॥ विस्तार मे उसी की भाँति उत्तरोष्ठ अर्द्ध अंगुल के समान होना चाहिए। उसी तरह से निष्पाव के समान नासापुटों का दल होता है ॥३८॥ कर्णों के मूल से छै अंगुल परिमाण वाली ज्योति के तुल्य सृविकणी होनी चाहिए। और दोनो कान भ्रूओं के समान जानने चाहिए जो ऊर्ध्व भाग मे चार अंगुल प्रमाण वाले हों ॥३९॥ कर्णों के पार्श्व भाग दोनो दो अंगुल के होने चाहिए और एक मात्रा विस्तृत होवे। दोनो कानों के ऊपर मस्तक बारह अंगुल का होना चाहिए। ललाट से पृष्ठ भाग मे इसके आधे भाग से युक्त कहा गया है जो अठारह अंगुल होना चाहिए। इसके शिर मे होने वाला परिणाह छत्तीस अंगुल का होता है। जिसके केशों के निचय के साथ परिमाण बयालीस अंगुल का होता है। केशान्त उसी भाँति दनु का सोलह अंगुल की होती है ॥४०-४ ॥

ग्रीवा मध्यपरीणाहश्चतुर्विंशतिकांगुलः।
अष्टांगुला भवेद् ग्रीवा पृथुत्वेन प्रशस्यते ॥४३
स्तनग्रीवान्तरं प्रोक्तमेकतालं स्वयम्भुवा।
स्तनयोरन्तरं तद्वद् द्वादशांगुलमिष्यते ॥४४
स्तनयोर्मण्डलतःद्वद्व्यङ्गुलं परिकीर्तितम्।
चूचुकौ मण्डलस्यान्तर्यवमात्रावुभौस्मृतौ ॥४५
द्वितालञ्चापि विस्ताराद्वक्षान्यलमुदाहृतम्।
कक्षे षडंगुलेप्रोक्ते बाहुमूलस्तनान्तरे ॥४६
चतुर्दशांगुलौपादावङ्गुष्ठौ तु त्रियंगुलौ।
पञ्चांगुलपरीणाहमङ्गुष्ठाग्रं तथोन्नतम् ॥४७

अंगुष्ठकसमा तद्वदायामा स्यात्प्रदेशिनी ।
तस्याः षोड़शभागेन हीयते मध्यमांगुली ॥४८
अनामिकाष्टभागेन कनिष्ठा चापि हीयते ।
पर्वत्रयेणचांगुल्यागुल्फौ द्व्यंगलकौ मतौ ॥४६

ग्रीवा के मध्य का परीणाह चौबीस अंगुल का होना चाहिए। आठ अंगुल की ग्रीवा जो होनी है पृथुत्व में प्रशस्त मानी गयी है ॥४३॥ स्वयम्भू ने स्तनों और ग्रीवा का अन्तर एक ताल कहा है। दोनों स्तनों का अन्तर उसी भाँति से बारह अंगुल का होना चाहिए जो कि अभीष्ट है ॥४४॥ स्तनों का मण्डल भी उसी प्रकार से दो अंगुल का परिकीर्तित किया गया है। स्तनों के चुचुक (घुण्डी) उस मण्डल के अन्दर दोनों यव मात्र होनी चाहिए—ऐसा कहा गया है ॥४५॥ विस्तार से वक्ष, स्थल भी द्विताल बताया गया है। बाहुओं के मूल में स्तनों के बीच में दोनों कक्षों का परिमाण छै अंगुल का कहा गया है ॥४६॥ चौदह अंगुल के दोनों पैर और तीन अंगुल के परिमाण से युक्त दोनों अंगुष्ठ होते हैं। पाँच अंगुल के परीणाह से युक्त एवं उन्नत अंगुष्ठ का अग्र भाग होता है। अंगुष्ठ के ही समान उसी के समान आयाम वाली प्रदेशिनी होती है। उसके सोहलवें भाग से मध्यांगलि हीन होती है ॥४७, ४८॥ अनामिका आठ भाग से और कनिष्ठा भी हीन हुआ करती है। तीन पर्व से अंगुलियाँ और दोनों गुल्फ दो अंगुल के माने गये हैं ॥ ४६ ॥

पार्ष्णिर्द्व्यंगुलमाम्नातु कलयान्च प्रकीर्तित. ।
द्विपर्वांगुष्ठकः प्रोक्त परीणाहश्च द्व्यंगुल. ॥५०
प्रदेशिनी परीणाहस्त्र्यंगुल. समुदाहृतः ।
कन्यसा चाष्टभागेन हीयते क्रमशोऽङ्गुलाः ॥५१
यवेनोच्छ्रयः कार्यो. ह्यंगुष्ठस्य विशेषतः ।
तदर्धेन तु शेषाणामगुलानान्तथो [illegible] ॥५२
जङ्घाग्रे परिणाहस्तु [illegible]

जङ्घामध्ये परीणाहस्तथैवाष्टादशांगुलः ॥५३
जानुमध्ये परीणाह एकविंशतिरंगुलः ।
जानूच्छ्रयोऽङ्गुलप्रोक्तो मण्डलन्तु त्रिरंगुलम् ॥५४
ऊरुमध्ये परीणाहो ह्यष्टाविंशतिकांगुलः ।
एकत्रिंशोपरिष्टाच्च वृषणौ तु त्रिरंगुलौ ॥५५
द्व्यंगुश्च तथामेढ्ं परीणाहः षडंगुलम् ।
मणिबन्धादधोविद्यात् केशरेखास्तथैव ॥५६

पार्ष्णि दो अंगुल परिमाण वाला कला से उच्च कीर्त्तित किया गया है। अंगुष्ठ दो पर्वों वाला कहा गया है और परीणाह भी दो अंगुल वाला होता है। प्रदेशिका का परीणाह तीन अंगुल वाला कहा गया है। हे द्विजगण ! कन्यसा आठ भाग से क्रम से हीन होती है। एक अंगुल का उच्छ्रय अंगुष्ठ का विशेष रूप से करना चाहिए। उसके आधे भाग से शेष अंगुलियों का उसी भाँति उच्छ्रय होना चाहिए ॥५०, ५१, ५२॥ जङ्घाओं के अग्र भाग में चौदह अंगुलों का परीणाह होता है। जाँघों के मध्य में परीणाह उसी भाँति अठारह अंगुल का होता है ॥५३॥ जानुओं के मध्य में जो परीणाह है वह इक्कीस अंगुल के परिमाण वाला है। जानुओं का उच्छ्रय एक अंगुल कहा गया है और मण्डल तीन अंगुल का होता है ॥५४॥ ऊरुओं के मध्य में अट्ठाईस अंगुल के परिमाण से युक्त परीणाह होता है। और ऊपर इकत्तीस अंगुल का होता है। दोनों वृषण तीन अंगुल वाले हैं। दो अंगुल का मेढ़ है तथा इसका परीणाह छै अंगुल का होता है। उसी भाँति से मणिबन्ध से नीचे केश रेखाएँ जाननी चाहिए ॥५५ ५६॥

मणिकोशपरीणाहश्चतुरंगुल इष्यते ।
विस्तरेण भवेत्तद्वत्कटिरष्टादशांगुला । ५७
द्वाविंशति तथा स्त्रीणां स्तनौ च द्वादशांगुलौ ।
नाभिमध्यं परीणाहो द्विचत्वारिंशदंगुलः ॥५८

पुरुषे पञ्चपञ्चाशत् कट्याञ्चैव तु वेष्टनम् ।
कक्षयोरुपरिष्टात्तु स्कन्धौप्रोक्तौ षडङ्गुलौ ॥५९
अष्टांगुलान्तु विस्तारे ग्रीवाञ्चैव विनिर्दिशेत् ।
परीणाहे तथा ग्रीवां कला द्वादश निर्दिशेत् ॥ ६०
आयामो भुजयोस्तद्वत् द्विचत्वारिंशदंगुलः ।
कार्यन्तु बाहुशिखर प्रमाणेषोडशांगुलम् ॥६१
ऊर्ध्वं यद्बाहुपर्यन्त विन्द्यादष्टांगुल शतम् ।
तथैकांगुलहीनन्तु द्वितीय पर्व उच्यते ॥६२
बाहुमध्ये परीणाहो भवेदष्टादशांगुल. ।
षोडशोक्तः प्रबाहुस्तु षट्कोप्रकरोमतः ॥६३

मणि कोश का परीणाह चार अंगुल का अभीष्ट होता है। उसी भांति विस्तार से कटि अठारह अंगुल की होनी चाहिए ॥५७॥ स्त्रियों की कटि बाईस अंगुल की होती है और दोनों स्तन बारह अंगुल के होते हैं। नाभि के मध्य का परीणाह बयालीस अंगुल वाला अभीष्ट होता है। ॥५८॥ पुरुष में पचपन और कटि में वेष्टन तथा दोनों कक्षों के ऊपर छै अंगुल के स्कन्ध बताये गये हैं। विस्तार में ग्रीवा को आठ अंगुल की विनिर्दिष्ट करनी चाहिए और परीणाह में ग्रीवा को बारह कला निर्दिष्ट करना चाहिए ॥५९, ६०॥ दोनों भुजाओं का आयाम उसी भांति से बयालीस अंगुल का होता है। बाहुशिखर को प्रमाण में सोलह अंगुल का करना चाहिए ॥६१॥ ऊर्ध्व भाग में बाहुपर्यन्त एक सौ आठ अंगुल का लाभ करना चाहिए। उसी प्रकार से एक अंगुल हीन दूसरा पर्व कहा जाता है। बाहुओं के मध्य में अठारह अंगुल का परीणाह होना चाहिए। प्रबाहु षोड़श कहा गया है और ऊपर कर षट्कला वाला माना गया है ॥६२, ६३॥

सप्तांगुल करतल पञ्चमध्यांगुलीमता ।
अनामिका मध्यमायाः समभागेन हीयते ॥६४

तस्यास्तु पञ्चभागेन कनिष्ठा परिहीयते ।
मध्यमायास्तु हीना यँ पञ्चभागेन तर्जनी ॥६५
अगुष्ठस्तर्जनीमूलादधः प्रोक्तस्तु तत्समः ।
अगुष्टपरिणाहस्तु विज्ञेयश्चतुरगुलः ॥६६
शेषाणामगुलीनान्तु भागो भागेन हीयते ।
मध्यमामध्यभागन्तु अंगुलद्वयमायतम् ॥६७
यवो यवेन सर्वासान्तस्यास्तस्या. प्रहीयते ।
अंगुष्ठपर्वमध्यन्तु तर्जन्या सदृश भवेत् ॥६८
यवद्वयाधिक तद्वदग्रपर्व उदाहृतम् ।
पर्वार्द्धे तु नखान्विद्यादंगुलीषु समन्ततः ॥६९
स्निग्ध श्लक्ष्ण प्रकुर्वीत ईषद्रक्त तथाग्रतः ।
निम्नपृष्ठ भवेन्मध्ये पार्श्वतः कलयोच्छ्रितम् ॥७०

सात अंगुल का करतल होता है और पांच मध्यांगुली मानी गयी है। अनामिका, मध्यमा अंगुलि से सात भाग से हीन हुआ करती है ॥ ६४ ॥ उसके पांच भाग से हीन कनिष्ठा कही जाया करती है। मध्यमा से हीन तर्जनी पांच भाग से हुआ करती है। तर्जनी के मूल से नीचे उसी के समान अंगुष्ठ कहा गया है। इस अंगुष्ठ का परीणाह तो चार अंगुल का जानना चाहिए ॥ ६५ । ६६ ॥ शेष अंगुलियों का भाग से हीन होना है। मध्यमा के मध्य भाग दो अंगुल आयत वाला होता है ॥६७॥ सबका यव यव से उस-उसका प्रहीयित हुआ करता है। अंगुष्ठ के पर्व का मध्य तर्जनी के ही सदृश हुआ करता है। उसी भाँति अग्रपर्व दो यव से अधिक उदाहृत किया गया है। अंगुलियों को सभी ओर पूर्वार्द्ध मे नखों को जानना चाहिए ॥६८, ६९॥ अग्रभाग मे थोड़ा रक्त-स्निग्ध और श्लक्ष्ण करना चाहिए। मध्य मे निम्न पृष्ठ और पार्श्व मे कला से उच्छ्रित होना चाहिए ॥७०॥

तत्रैव केशवल्लीयं स्कन्धोपरि दशाङ्गुला ।
स्त्रियः कार्यास्तु तन्वङ्ग्यः स्तनोरुजघनाधिकाः ॥७१
चतुर्दशांगुलायाममुदरं नाम निर्दिशेत् ।
नानाभरणसम्पन्नाः किञ्चित्श्लक्ष्णभुजास्ततः ॥७२
किञ्चिद्दीर्घं भवेद्वक्त्रमलकावलिकत्तमा ।
नासाग्रीवा ललाटञ्च सार्द्धमात्रं त्रिरंगुलम् ॥७३
अध्यर्द्धांगुलविस्तारः शस्यतेऽधरपल्लवः ।
अधिकंनेत्रयुग्मन्तु चतुर्भागेन निर्दिशेत् ।७४
ग्रीवावलिश्च कर्तव्या किञ्चिदर्धांगुलोच्छ्रया ।
एवं नारीषु सर्वासु देवानां प्रतिमासु च ॥
तव चान्यमिदं प्रोक्तं लक्षणं पापनाशनम् ॥७५

यही पर केशो की वल्ली स्कन्धो के ऊपर दश अगुल परिमाण वाली होनी चाहिए। स्त्रियो का विग्रह तनु अर्थात् कृश अङ्गो वाला करना चाहिये। इनके तो केवल स्तन ऊरु और जङ्घाएं ही अधिक परिपुष्ट होने चाहिए ॥७१॥ चौदह अंगुल के आयाम वाला उदर निर्दिष्ट करना चाहिये। नाना आभरणो म सम्पन्न और कुछ श्लक्ष्ण भुजाओं से युक्त स्त्रियो विग्रह होना चाहिए। कुछ दीर्घ वक्त्र होवे और उस पर उत्तम अलको की अवली होनी चाहिये। नासा—ग्रीवा और ललाट साढे तीन अगुल का होवे। अधर पल्लव स्त्रियो का अध्यर्द्धाङ्गुल विस्तार से समन्वित प्रशस्त हुआ करता है। अधिक दोनो नेत्रो का युग्म चतुर्भाग से विनिर्दिष्ट करना चाहिए। अर्द्धांगुल उच्छ्रय वाली ग्रीवा की अवली करनी चाहिए। इसी प्रकार से समस्त नारियो मे और देवो की सब प्रतिमाओं मे रचना करानी चाहिए। आपको यह अन्य पाप लक्षण बतला दिया है। यह पापो का नाश करने वाला है ॥७१-७५॥

१२२—देवाकार प्रमाण वर्णन (१)

अतः परं प्रवक्ष्यामि देवाकारान् विशेषतः।
दशतालः स्मृतो रामो बलिर्वैरोचनिस्तथा ॥१
वराहो नारसिंहश्च सप्ततालस्तु वामनः।
मत्स्यकूर्मौ च निर्दिष्टौ यथाशोभं स्वयम्भुवा ॥२
अतः परं प्रवक्ष्यामि रुद्राद्याकारमुत्तमम्।
स पीनोरुभुजस्कन्धस्तप्तकाञ्चनसप्रभः ॥३
शुक्लोऽकरश्मिसंघातश्चन्द्राङ्कितजटो विभुः।
जटामुकुटधारी च द्व्यष्टवर्षाकृतिश्च सः ॥४
बाहुवारणहस्ताभो वृत्तजङ्घोरुमण्डलः।
ऊर्ध्वकेशश्च कर्तव्यो दीर्घायतविलोचनः ॥५
व्याघ्रचर्मपरीधानः कटिसूत्रत्रयान्वितः।
हारकेयूरसम्पन्नो भुजङ्गाभरणस्तथा ॥६
बाहवश्चापि कर्तव्या नानाभरणभूषिताः।
पीनोरुगण्डफलकः कुण्डलाभ्यामलंकृतः ॥७

महामहर्षि वर श्री सूतजी ने कहा—इससे आगे मैं विशेष रूप से देवों के आकार का वर्णन करूँगा। राम दशताल तथा बलि और वैरोचनि कहा गया है ॥ १ ॥ वाराह और नरसिंह और वामन सप्त ताल बताये गये हैं। स्वयम्भू ने मत्स्य और कूर्म इन दोनों को शोभा के अनुसार ही निर्दिष्ट किया है। इससे आगे रुद्रादि के उत्तम आकार को मैं बतलाऊँगा। यह पीन ऊरु एवं भुजाओं वाले हैं तथा उनका स्कन्ध भी पीन है एवं तपाये हुए सुवर्ण के तुल्य प्रभा से वह सुसम्पन्न है ॥ २, ३ ॥ शुक्ल वर्ण वाले—अर्क (सूर्य) रश्मियों का संघात—चन्द्र से अंकित जटा वाला—विभु—जटा एवं मुकुट के धारण करने वाले और सोलह वर्ष की अवस्था से युक्त पुरुष की आकृति के समान आकृति वाले हैं हाथी की सूँड की आभा वाली बाहुओं वाले—वृत्त जङ्घा

एवं ऊरुओं के मण्डल से युक्त—ऊर्ध्व भाग की ओर केशों वाले तथा दीर्घ एवं आयत नेत्रों वाला स्वरूप करना चाहिए। व्याघ्र के चर्म से परीधान करने वाले—कटि में तीन सूत्रों से संयुत हार, केयूर और अन्य सुन्दर आभरणों से सम्पन्न—सर्पों के आभूषणों से शोभित करे। और ऐसे बहुत—से अनेक आभरणों से विभूषित विरचित करे। पीन ऊरु गण्ड फलक वाला तथा कुण्डलों से समलंकृत बनावे ॥ ४–७ ॥

आजानुलम्बबाहुश्च सौम्यमूर्ति सुशोभनः।
खेटकं वामहस्ते तु शङ्खञ्चैव तु दक्षिणे ॥८
शक्तिं दण्डं त्रिशूलञ्च दक्षिणेषु निवेशयेत्।
कपालं वामपार्श्वे तु नागं खट्वाङ्गमेव च ॥९
एकश्च वरदो हस्तस्तथाक्षवलयोऽपरः।
वैशाखस्थानकं कृत्वा नृत्या भिनयसंस्थितः ॥१०
नृत्यन्दशभुजः कार्यो गजचर्मधरस्तथा।
तथा त्रिपुरदाहे च बाहवः षोडशैव तु ॥११
शङ्खं चक्रं गदाशार्ङ्गं घण्टातत्राधिकाभवेत्।
तथाधनुः पिनाकञ्च शरो विष्णुमयस्तथा ॥१२
चतुर्भुजोऽष्टबाहुर्वा ज्ञानयोगेश्वरो मतः।
तीक्ष्णनासाग्रदशनः करालवदनो महान् ॥१३
भैरवः शस्यते लोके प्रत्यायतनसंस्थितः।
न मूलायतने कार्यो भैरवस्तु भयङ्कर ॥१४

जानु पर्यन्त लम्बी बाहुओं से युत—सौम्य मूर्ति सुन्दर शोभा से संयुत-वाम हस्त में खेटक धारण करने वाले तथा दाहिने हाथ में शंख को धारण किये हुए एवं दक्षिणों में शक्ति—दण्ड और त्रिशूल को निवेशित करना चाहिए। एक हाथ तो वर प्रदान करने वाली मुद्रा में होना चाहिए और दूसरा अक्षों के वलय वाला होवे। वैशाख स्थानक करके नृत्यों के अभिनय करने से संस्थित होना चाहिए। नृत्य करते हुए दश भुजाओं वाला एवं गज के चर्म का धारी रुद्रदेव का स्वरूप निर्मित

करे तथा त्रिपुरासुर के दाह करने मे सोलहों बाहुऍं व्यस्त हो। वहाँ पर शख—चक्र—गदा—शार्ङ्ग हो और अधि का घण्टा होना चाहिये। तथा पिनाक धनु और विष्णुमय शर होना चाहिए। चतुर्भुज अथवा आठ बाहुओ वाला ज्ञान योग के ईश्वर को माना गया है। तीक्ष्ण नासा तथा अग्र दशन वाले—कराल बदन से युक्त—महान् और प्रत्यायतन में मे सस्थित भैरव लोक मे परम प्रशस्त कहे गये है। मूलायतन मे भैरव भगवान् कभी भी भयङ्कर नही निर्मित करना चाहिये ॥ ८-१४ ॥

नारसिंह वराहोवा तथान्योऽपि भयङ्करा:।
नाधिकाङ्गा न हीनाङ्गा कर्तव्या देवता: क्वचित् ॥१५
स्वामिन घातयेन्न्यूना करालवदना तथा।
अधिका शिल्पिन हन्यात् कृशा चैवार्थनाशिनी ॥१६
कृशोदरी तु दुर्भिक्ष निर्मासाधननाशिनी।
वक्रनासा तु दु खाय सङ्क्षिप्ताङ्गी भयङ्करी ॥ ७
चिपिटा दु.खशोकाय अनेत्रा नेत्रनाशिनी।
दु खदा हीनवक्त्रा तु पाणिपादकृशा तथा ॥१८
हीनाङ्गा हीनजङ्घा च भ्रमोन्मादकरी नृणाम्।
शुष्कवक्त्रा तु राजान कटिहीना च या भवेत् ॥१९
पाणिपादविहीनो योजायते मारकोमहान्।
जङ्घाजानुविहीना च शत्रुकल्याणकारिणी ॥२०
पुत्रमित्रविनाशाय हीनवक्षस्थला तु या।
सम्पूर्णावयवा या तु आयुलक्ष्मीप्रदा सदा ॥२१

नारसिंह अथवा वराह तथा अन्य भी भयङ्कर होते हैं किन्तु कभी भी और कही पर भी देवो की प्रतिमाओ को अधिक अङ्गो वाली नही बनानी चाहिये ॥ १५ ॥ जो कोई देवमूर्ति न्यून अङ्गो वाली होती है अथवा कराल मुख स युक्त होती है वह स्वामी का घात किया करती है। जो अधिक अङ्गो वाली अथवा कृश होती है वह उसके निर्माण

करने वाले शिल्पकार का हनन किया करती है और सर्व का विनाश करने वाली होती है ॥ १५, १६ ॥ जो कोई देवता की प्रतिमा कृश उदर से युक्त निर्मित कराई जावे तो वह दुर्भिक्ष करने वाली हुआ करती है तथा मास से हीन यदि देव प्रतिमा को निर्मित कराई जावे तो उसका यह बुरा फल होता है कि वह धन का विनाश किया करती है। वक्र नासिका वाली देव प्रतिमा दुःख के ही लिए हुआ करती है। जिस प्रतिमा के अङ्ग संक्षिप्त हों तो वह भय करने वाली हुआ करती है। जो मूर्ति चिपिटा होती है वह दुःख और शोक के लिये ही हुआ करती है। जिसके नेत्र नहीं होते हैं अर्थात् नेत्रों की रचना न की गई हो वह देव प्रतिमा नेत्रों के विनाश करने वाली हुआ करती है। हीन मुख वाली प्रतिमा की रचना का यह दुष्परिणाम होता है कि वह सर्वदा दुःख प्रदान किया करती है तथा हाथ और चरणों से कृश प्रतिमा हो—हीनाङ्गा—हीनजंघा हो वह मनुष्यों को भ्रम एवं उन्माद करने वाली हुआ करती है। शुष्क मुख वाली और कटि में हीना जो होती है वह राजा को किया करती है। पाणि और पाद में जो विहीन होकर समुत्पन्न होता है वह महान् मारक हुआ करता है। जो जंघा और जानु में विहीन होती है तो वह शत्रु के कल्याण करने वाली होती है। जो हीन वक्षःस्थल वाली होती है वह पुत्र और मित्र के विनाश के लिये हुआ करती है। जो सम्पूर्ण अवयवों से युक्त होती है वह सदा आयु और लक्ष्मी के प्रदान करने वाली होती है ॥१७–२१॥

एवं लक्षणमासाद्य कर्त्तव्यः परमेश्वरः ।
स्तूयमानः सुरैः सर्वैः समन्ताद्दर्शयेद्ध्रुवम् ॥२२
शक्रेण नन्दिना चैव महाकालेन शङ्करम् ।
प्रणता लोकपालास्ते पार्श्वे तु गणनायकाः ॥२३
नृत्यद्भृङ्गिरिटिश्चैव भूतवेतालसंवृताः ।
सर्वेहृष्टास्तु कर्तव्याः स्तुवन्तः परमेश्वरम् ॥२४

गन्धर्वविद्याधरकिन्नराणामथाप्सरो गुह्यकनायकानाम् ।
गणैरनेकैः शतशो महेन्द्रैर्मुनिप्रवीरैरपि नम्यमानम् ॥ २५
धृताक्षसूत्रैः शतशः प्रवालपुष्पोपहारप्रचयन्ददद्भिः ।
संस्तूयमान भगवन्तमीड्य नेत्रत्रयेणामरमर्त्यपूज्यम् ॥२६

इस प्रकार से लक्षणों की प्राप्ति करके परमेश्वर की प्रतिमा की रचना करानी चाहिये। भगवान भव को इस प्रकार से दर्शित कराना चाहिए कि वह सब ओर से समस्त सुरगणों के द्वारा स्तूयमान हो रहे हैं ॥२२॥ इन्द्र के द्वारा—नन्दी और महाकाल के द्वारा शङ्कर की स्तुति की जा रही हो। भगवान् के पार्श्व में सब गण नायक और लोकपाल प्रणत हो रहे हों। भगवान् की प्रतिमा को इस प्रकार सन्निर्मित कराना चाहिए कि उनके समक्ष में भृङ्गी और रिटि नृत्य कर रहे हों तथा भूतों और वेतालों से संवृत हों। सब परम प्रसन्न होते हुए परमेश्वर की स्तुति करने वाले हों। गन्धर्व—विद्याधर—किन्नर—अप्सरायें—गुह्यक—नायक इनके अनेक सैकड़ों गणों के द्वारा—महेन्द्रों के द्वारा—और मुनि प्रवरों के द्वारा नम्यमान होवे। सैकड़ों अक्ष सूत्रों के धारण करने वाले प्रवाल—पुष्पों के उपहार के प्रचयों के समर्पित करने वालों के द्वारा स्तूयमान—तीन नेत्रों से युक्त देवगण और मनुष्यों के परम पूज्य—ईड्य भगवान् की प्रतिमा का निर्माण कराना चाहिए। ॥२२-२६॥



१२३—देवाकार प्रमाण वर्णन (२)

अधुना सम्प्रवक्ष्यामि अर्धनारीश्वरं परम् ।
अर्धेन देवदेवस्य नारीरूप सुशोभनम् ॥१
ईशार्धे तु जटाभागो बालेन्दुकलयायुतः ।

उमार्धे चापि दातव्यौ सीमन्ततिलकावुभौ ॥२
वासुकिर्दक्षिणे कर्णे वामे कुण्डलमादिशेत् ।
बालिका चोपरिष्टात्तु कपालं दक्षिणेकरे ॥
त्रिशूलं चापि कर्त्तव्यं देवदेवस्य शूलिनः ॥३
वामतो दर्पणं दद्यादुत्पलन्तु विशेषतः ॥४
वामबाहुश्च कर्त्तव्यः केयूरवलयान्वितः ।
उपवीतञ्च कर्त्तव्यं मणिमुक्तामयन्तथा ॥५
स्तनभारं तथार्धे तु वामेपीनं प्रकल्पयेत् ।
परार्ध्यमुज्ज्वलङ्कुर्य्याच्छ्रोण्यर्धे तु तथैव च ॥६
लिङ्गार्धमूर्ध्वगं कुर्य्यात् व्यालाजिनकृताम्बरम् ।
वामेलम्बपरीधानं कटिसूत्रत्रयान्वितम् ॥७

महामहर्षि प्रवर श्रीसूत जी ने कहा—अब परम अर्ध नारीश्वर भगवान् के विषय मे कहते हैं। देवो के देव के अर्ध भाग से सुशोभन नारी का रूप है ॥ १ ॥ ईश के अर्ध भाग मे जटा का भाग है और बाल-चन्द्र की कला से युक्त है तथा उमादेवी का जो अर्ध भाग है उसमे सीमन्त और तिलक ये दोनो देने के योग्य हैं। भगवान् शिव के दक्षिण कर्ण मे वासुकि सर्प शोभित हो रहे हैं और वाम कर्ण मे कुण्डल धारण किया हुआ है। ऊपर मे बालिका है दक्षिण कर मे कपाल धारण किये हुए हैं। देवो के देव भगवान् शूली के कर मे त्रिशूल धारण कराना चाहिये। वाम भाग मे दर्पण और विशेष रूप से उत्पल धारण करावे। ॥ १, २, ३, ४ ॥ वामबाहु को केयूर और वलय से समन्वित करे। तथा मणि मुक्ताओ से परिपूर्ण उपवीत भी धारण कराना चाहिए ॥ ५ ॥ वाम अर्ध भाग में पीन स्तन का भार प्रकल्पित करे तथा श्रोण्यर्ध मे उसी भाँति उज्ज्वल परार्ध्य भी करना चाहिए। व्याल और अजिन मे अम्बर करके ऊर्ध्व लिङ्गार्ध करे तथा वाम भाग मे कटि सूत्र त्रय से समन्वित लम्बे परीधान को धारण कराना चाहिए ॥२—७॥

नानारत्नसमोपेतं दक्षिणेभुजगान्वितम् ।
देवस्य दक्षिणं पादपद्मोपरिसुसंस्थितम् ॥८
कञ्चिदर्धो तथा वामं भूषितं नूपुरेण तु ।
रत्नैर्विभूषितान् कुर्यादंगुलीष्वंगुलीयकान् ॥९
सालक्तकं तथापादं पार्वत्या दर्शयेत्सदा ।
अर्धनारीश्वरस्येदं रूपमस्मिन्नुदाहृतम् ॥१०
उमामहेश्वरस्यापि लक्षणं शृणुतद्विजाः ।
संस्थानन्तु तयोर्वक्ष्ये लीलाललितविभ्रमम् ॥११
चतुर्भुजं द्विबाहुं वा जटाभारेन्दुभूषणम् ।
लोचनत्रयसंयुक्तमुमैकस्कन्धपाणिनम् ॥१२
दक्षिणेनोत्पलं शूलं वामेकुचभरेकरम् ।
द्वीपिचर्मपरीधानं नानारत्नोपशोभितम् ॥१३
सुप्रतिष्ठं सुवेषञ्च तथार्धेन्दुकृताननम् ।
वामे तु संस्थिता देवी तस्योरौ बाहुगूहिता ॥१४

दक्षिण भाग में अनेक प्रकार के रत्नों से समुपेत एवं भुजगों से युत शोभा को सम्पादित करे और देवों के देव का दक्षिण चरण पद्म के ऊपर संस्थित करे ॥ ८ ॥ अर्ध भाग में वाम को अर्थात् बाँये चरण को नूपुर से समलङ्कृत करे रत्नों से विभूषित अंगुलीयकों को अंगुलियों धारण कराना चाहिए ॥ ९ ॥ सदा पार्वती देवी उस पाद को लक्तक के सहित दर्शित कराना चाहिए। जिसमें अर्ध नारीश्वर प्रभु का यह रूप उदाहृत किया गया होवे ॥ १० ॥ हे द्विजगण ! अब आप उमा महेश्वर प्रभु का भी स्वरूप एवं लक्षण का श्रवण कीजिए। उनके लीला से ललित विभ्रम वाले संस्थान को मैं सम्यक प्रकार से वर्णित करूँगा। चार भुजाओं से संयुत अथवा दो बाहु वाले रूप से समन्वित हो—जटा-जूट के भार और चन्द्रमा के भूषण के सहित—तीन लोचन वाले तथा उमा के कन्धे पर एक हाथ रखते भगवान् शिव का यह रूप है जो एक

ही में उमा महेश्वर दोनों का होता है ।। ११, १२ ।। दक्षिण कर से उत्पल को ग्रहण करने वाले तथा शूल को लिये हुए और वाम कर से स्तन के भार को सम्हाले हुए—द्वीपी के चर्म का परीधान धारण करने वाले एवं अनेक रत्नों से समुप शोभित—सुन्दर प्रतिष्ठा से युत—सुन्दर वेष वाले तथा अर्ध चन्द्र से मुकुट को करने वाले रूप से युक्त भगवान् शिव का स्वरूप है। उनके ऊरु पर वाम भाग में बाहुओं से गूहित उमादेवी विराजमान हैं ।।१३, १४।।

शिरोभूषणसंयुक्तैरलकैर्ललिताननना ।
सबालिका कर्णवती ललाटतिलकोज्वला ।।१५
मणिकुण्डलसंयुक्ता कर्णिकाभरणा क्वचित् ।
हारकेयूरबहुला हरवक्त्रावलोकिनी ।।१६
वामांसन्देवदेवस्य स्पृशन्ती लीलया ततः ।
दक्षिणन्तु बहिः कृत्वा बाहुं दक्षिणतस्तथा । १७
स्कन्धे वा दक्षिणे कुक्षौ स्पृशन्त्यङ्गुलजैः क्वचित् ।
वामे तु दर्पणं दद्यादुत्पलं वा सुशोभनम् ।।१८
कटिसूत्रत्रयञ्चैव नितम्बे स्यात्प्रलम्बकम् ।
जया च विजया चैव कार्तिकेयविनायकौ ।।१९
पार्श्वयोर्दर्शयेत्तत्र तोरणे गणगुह्यकान् ।
माला विद्याधरास्तद्वद्वीणावानप्सरोगणः । २०
एतद्रूपमुमेशस्य कर्तव्यं भूतिमिच्छता ।
शिवनारायणं वक्ष्ये सर्वपापप्रणाशनम् ।।२१

वह देवी शिरोभूषणों से समन्वित अलकों के द्वारा अत्यन्त ललित आनन वाली है। बालिका (बाली) के सहित कानों से शोभित—ललाट पर तिलक धारण करने से परमोज्वल—मणियों से जटित कुण्डलों वाली—किसी समय में कर्णिका के आभरण से भूषित—हार तथा केयूरों के धारण करने से बहुल—भगवान् हर के मुख का अवलोकन करने वाली—

लीला से देवों के भी देव भगवान् शिव के वाम अंश का स्पर्श करने वाली—दक्षिण बाहु को बाहिर करके दक्षिण की ओर से दक्षिण कुक्षि में अंगुलियों से स्कन्ध का स्पर्श करती हुई श्री उमादेवी विराजमान हैं। इनके वाम हस्त में दर्पण समर्पित करना चाहिए अथवा परम शोभा से सुसम्पन्न उत्पल देना चाहिए ॥ १५ १६, १७, १८ ॥ उन देवी के नितम्ब भाग में कटि का सूत्र त्रय होना चाहिए तथा अलम्बक का होना भी अत्यावश्यक है। जया और विजया तथा स्वामी कार्त्तिकेय और विघ्न विनाशक विनायक ये सब उन महादेवी के दोनों पार्श्व भागों में वहीं पर तोरण में गणों और गुह्यकों को दिखलावें—इसी प्रकार से माला—विद्याधरों को तथा अप्सराओं के समुदाय को दिखलाने प्रदर्शित करने चाहिये ॥ १९, २० ॥ जो मनुष्य वैभव की इच्छा रखने वाला है उसको चाहिए कि इस तरह का उपरिवर्णित महेश्वर भगवान् का स्वरूप बनावे। अब मैं इस प्रकार से शिव नारायण के मिश्रित स्वरूप का वर्णन करूँगा जो समस्त प्रकार के महापापों का विनाश करने वाला है ॥ २१ ॥

वामार्धं माधवं विद्याद् दक्षिणे शूलपाणिनम् ।
बाहुद्वयञ्च कृष्णस्य मणिकेयूरभूषितम् ॥२२
शङ्खचक्रधरं शान्तमारक्तांगुलिविभ्रमम् ।
चक्रस्थाने गदां वापि पाणौ दद्याद्गदाभृतः ॥२३
शङ्खञ्चैवेतरे दद्यात् कट्यर्धं भूषणोज्वलम् ।
पीतवस्त्रपरीधानं चरणं मणिभूषणम् ॥२४
दक्षिणार्धं जटाभारमर्धेन्दुकृतभूषणम् ।
भुजङ्गहारवलयं वरदं दक्षिणं करम् ॥२५
द्वितीयञ्चापि कुर्वीत त्रिशूलवरधारिणम् ।
व्यालोपवीतसंयुक्तं कट्यर्धं कृत्तिवाससम् ॥२६
मणिरत्नैश्च संयुक्तं पादं नागविभूषितम् ।

शिवनारायणस्यैव कल्पयेद्रूपमुत्तमम् ॥२७
महावराह वक्ष्यामि पद्महस्तं गदाधरम् ।
तीक्ष्णदंष्ट्राग्रघोणास्यं मेदिनीवामकूर्परम् ॥२८

श्री शिवनारायणात्मक स्वरूप में वाम भाग मे भगवान् माधव को जानना चाहिए और दक्षिण भाग में शूल हाथ में धारण करने वाले शिव का स्वरूप समझ लेवे। भगवान् श्रीकृष्ण के दोनो बाहुओं को मणियो जटित केयूरो से समलंकृत करे ॥२४॥ भगवान् माधव का स्वरूप शंख और चक्र को धारण करने वाला हो—परम शान्त—आरक्त अंगुलों के विभ्रम से संयुत हो—अथवा भगवान् गदाधर के कर में चक्र के स्थान में गदा को ही धारण करा देवे। दूसरे कर में शंख को धारण कराना चाहिए। भगवान् के कटि का अर्ध भाग भूषण से समुज्ज्वल बनावे। पीतवर्ण वाले वस्त्र का उनका परीधान करावे और मणियों से जटित भूषण से युक्त चरण प्रदर्शित करे। इस तरह से वाम भाग में रमा के ईश्वर भगवान् का स्वरूप प्रदर्शित कराना चाहिये। अब दक्षिण अर्ध भाग में भगवान् शिव के स्वरूप का प्रदर्शन होना चाहिये। वह शिव का स्वरूप जटाओं के भार से युक्त है और अर्ध चन्द्र के द्वारा भूषण किये हुए है—भुजङ्गों के हार एवं वलय वाला है और जिस शिव स्वरूप का दक्षिण कर वर के प्रदान करने वाला है। दूसरे स्वरूप को भी करना चाहिये जो त्रिशूल वर का धारण करने वाला—व्यालों के उपवीत से समन्वित है तथा कटि का अर्धभाग कृत्ति (गज चर्म) के वस्त्र से समावृत है। मणि रत्नों के द्वारा पाद संयुक्त है तथा नागों से विभूषित है। इस प्रकार से शिव और नारायण के मिश्रित उत्तम स्वरूप की कल्पना करनी चाहिए। अब मैं महा वराह के स्वरूप का वर्णन करूँगा। महा वराह का स्वरूप पद्म हाथ में धारण करने वाला है—गदा के धारण करने वाला—तीक्ष्ण दंष्ट्रा से युक्त अग्र घोणा (नासिका) और आस्य (मुख) वाला है जिसके वाम कूर्पर पर मेदिनी है ॥२३-२८॥

दंष्ट्राग्रेणोद्धृतां दान्तां धरणीमुत्पलान्विताम् ।
विस्मयोत्फुल्लवदनामुपरिष्टात्प्रकल्पयेत् ॥२६
दक्षिणं कटिसंस्थन्तु करं तस्याः प्रकल्पयेत् ।
कूर्मोपरि तथा पादमेकं नागेन्द्रमूर्द्धनि ॥३०
संस्तूयमानं लोकेशैः समन्तात्परिकल्पयेत् ।
नारसिंहन्तु कर्त्तव्यं भुजाष्टकसमन्वितम् ॥३१
रौद्रं सिंहासनं तद्वत् विदारितमुखेक्षणम् ।
स्तब्धपीनसटाकर्णं दारयन्तन्दितेः सुतम् ॥३२
विनिर्गतान्त्रजालञ्च दानवं परिकल्पयेत् ।
वमन्तं रुधिरं घोरं भ्रुकुटीवदनेक्षणम् ॥३३
युद्ध्यमानश्च कर्त्तव्यः क्वचित्करणबन्धनैः ।
परिश्रान्तेन दैत्येन तर्ज्यमानो मुहुर्मुहुः ॥३४
दैत्यं प्रदर्शयेत्तत्र खड्गखेटकधारिणम् ।
स्तूयमानं तथा विष्णुं दर्शयेदमराधिपैः ॥३५

उस महा वराह के स्वरूप में धरणी की कल्पना भी करनी चाहिये जो दाढ के अग्रभाग से उद्धृत हो—उत्पलों से समन्वित हो—विस्मय से उत्फुल्ल वदन वाली हो ऐसी धरणी की ऊपर के भाग में रचना करावे उस महा वराह की प्रतिमा का दक्षिण कर कटि पर स्थित हो—ऐसी कल्पना करे। उस महा वराह का एक चरण कूर्म के ऊपर और एक पाद नागेन्द्र के मस्तक पर स्थित होने की कल्पना करनी चाहिए ॥३०॥ सब ओर से लोकपालों के द्वारा संस्तूयमान होने वाले स्वरूप को परिकल्पित करे। नरसिंह भगवान् के शरीर को आठ भुजाओं से समन्वित कल्पित करना चाहिये ॥३१॥ उनका महान् रौद्र स्वरूप वाला सिंहासन होता है और उसी तरह से विदारित मुख एवं नेत्र होते हैं। स्तब्ध पुष्ट सटाओं से युक्त कर्णों वाला वह स्वरूप होता है जो दिति के पुत्र हिरण्यकशिपु के हृदय को विदीर्ण करता हुआ विद्यमान है

॥३२॥ उस दानव के आँतों का जाल विदीर्ण करने से बाहिर निकला हुआ हो ऐसा ही स्वरूप परिकल्पित करना चाहिए जो कि अत्यधिक घोर रुधिर का वमन कर रहा हो जो भृकुटि-मुख और नेत्रों से वह रुधिर निकालने वाला हो ॥३३॥ कहीं किसी स्थल पर ऐसा भी स्वरूप कल्पित किया जा सकता है जो करण बन्धनों के द्वारा युद्ध करता हुआ हो और दैत्य परिश्रान्त होकर बारम्बार तर्जन किया जाने वाला हो। युद्ध करने की अवस्था में दैत्य को खड्ग और खेटक का धारण करने वाला प्रदर्शित करना चाहिए। उस समय में यह भी प्रदर्शित करे कि अमराधिप गणों के द्वारा विष्णु स्तवन किए जा रहे हों ॥३४, ३५॥

तथा त्रिविक्रमं वक्ष्ये ब्रह्माण्डक्रमणोल्बणम् ।
पादपार्श्वे तथा बाहुमुपरिष्टात्प्रकल्पयेत् ॥३६
अधस्ताद्वामनं तद्वत्कल्पयेत्सकमण्डलुम् ।
दक्षिणे छत्रिका दद्यान्मुखं दीनं प्रकल्पयेत् ॥३७
भृङ्गारधारिणं तद्वद्बलिं तस्य च पार्श्वतः ।
बन्धनञ्चास्य कुर्वन्तं गरुडन्तस्य दर्शयेत् ॥३८
मत्स्यरूपं तथा मात्स्यं कूर्मं कूर्माकृतिं न्यसेत् ।
एवं रूपस्तु भगवान् कार्यो नारायणो हरिः ॥३९
ब्रह्मा कमण्डलुधरः कर्तव्यः स चतुर्मुखः ।
हंसारूढः क्वचित्कार्यः क्वचिच्च कमलासनः ॥४०
वर्णतः पद्मगर्भाभश्चतुर्बाहुः शुभेक्षणः ।
कमण्डलुं वामकरे स्रुवं हस्ते तु दक्षिणे ॥४१
वामेदण्डधरं तद्वत् स्रुवञ्चापि प्रदर्शयेत् ।
मुनिभिर्देवगन्धर्वैः स्तूयमानं समन्ततः ॥४२

अब भगवान् त्रिविक्रम के विषय में वर्णन किया जाता है जो इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के क्रमण करने में अत्यन्त ही उल्वण थे। पाद के पार्श्व में तथा ऊपर बाहु की कल्पना करनी चाहिए। नीचे की ओर उसी भाँति

वामन देव की कमण्डलु के सहित वर्त्तमान होने की कल्पना करनी चाहिए। उन वामन देव प्रभु के दाहिने हाथ में एक छोटा सा छत्र देवे और उनका मुख दीनता से परिव्याप्त ही कल्पित करे। उनके पार्श्व भाग में भृङ्गार के धारण करने वाले राजा बलि को प्रदर्शित करना चाहिए। वामन देव को इस दैत्यों के राजा बलि का बन्धन करते हुए ही दर्शित करना चाहिए तथा उनके समीप में ही गरुड को भी दिखलावे ॥३६, ३७, ३८॥ वहीं पर मत्स्य रूपी मात्स्य एवं कूर्म की आकृति से युक्त कूर्म का भी न्यास करना चाहिए। इस प्रकार के स्वरूप से सुसम्पन्न भगवान् नारायण हरि का स्वरूप वहाँ पर करना आवश्यक है ॥३९॥ चारों मुखों से युक्त कमण्डलु के धारण करने वाले ब्रह्मा जी को वहाँ पर दिखलाना चाहिये। किसी स्थल पर उन ब्रह्मा को हंस पर समारूढ और कहीं पर कमल के आसन पर विराजमान दिखलावे ॥४०॥ ब्रह्मा का वर्ण कमल की आभा के सदृश—चार भुजाओं से युक्त—शुभ नयनों वाला—बाँये हाथ में कमण्डलु लिये हुए तथा दाहिने हाथ में स्रुव धारण करने वाला दिखलाना चाहिये ॥४१॥ उसी भाँति वाम हस्त में दण्ड को धारण करने वाला और स्रुव का धारी प्रदर्शित करे। सभी ओर मुनिगण—देवगण और गन्धर्वों के द्वारा स्तूयमान होने वाला श्री वामन देव को दिखलाना चाहिये ॥४२॥

कुर्वाणमिव लोकास्त्रीन् शुक्लाम्बरधरं विभुम् ।
मृगचर्मधरञ्चापि दिव्ययज्ञोपवीतिनम् ॥४३
आज्यस्थालीं न्यसेत्पार्श्वे वेदाश्च चतुरः पुनः ।
वामपार्श्वेऽस्य सावित्री दक्षिणे च सरस्वतीम् ॥४४
अग्रे च ऋषयस्तद्वत्कार्याः पैतामहे पदे ।
कार्तिकेयं प्रवक्ष्यामि तरुणादित्यसप्रभम् ॥४५
कमलोदरवर्णाभं कुमारं सुकुमारकम् ।
दण्डकैश्चीरकैर्युक्तं मयूरवरवाहनम् ॥४६

स्थापयेतखेटनगरेभुजान्द्वादश कारयेत् ।
चतुर्भुजः खर्वटे स्याद्वनेग्रामे द्विबाहुकः ॥४७
शक्तिः पाशस्तथा खड्गः शूलं तथैवच ।
वरदश्चैकहस्तः स्यादथचाभयदो भवेत् ॥४८
एतेदक्षिणतोज्ञेयाः केयूरकटकोज्वलाः ।
धनुः पताकामुष्टिश्च तर्जनी तु प्रसारिता ॥४९

श्री वामन देव का स्वरूप वहां पर ऐसा प्रदर्शित करे मानो वे तीनों लोको की रचना कर रहे हों। शुक्ल वर्ण वाले वस्त्रों के धारी-विभु-मृग के चर्म के धारण करने वाले—दिव्य यज्ञोपवीत से सम्पन्न वामन देव के स्वरूप को दिखाना आवश्यक है। उनके समीप में आज्य की स्थाली रक्खे और चारो वेदों को भी स्थापित करे। इनके वाम पार्श्व में सावित्री देवी और दक्षिण पार्श्व में सरस्वती देवी की उपस्थिति दिखानी चाहिए ॥४३ ४४॥ आगे की ओर उन पितामह के पद में उसी तरह से ऋषिगण की रचना करनी चाहिये "अब हम स्वामि कार्तिकेय के तरुण आदित्य के समान प्रभा वाले स्वरूप का वर्णन करते हैं ॥४५॥ कार्तिकेय प्रभु का वर्ण कमल के उदर की प्रभा के तुल्य है। और वह कुमार अत्यन्त ही सुकुमार हैं कुमार का स्वरूप दण्डक एवं चीरकों से समायुक्त है एवं श्रेष्ठ मयूर के वाहन वाला है ॥४६॥ अपने अभीप्सित नगर में उनकी स्थापना करे तथा द्वादश भुजाओं की कल्पना करे। खर्वट में चार भुजाओं वाला स्वरूप—वन तथा ग्राम में दो बाहुओं वाला स्वरूप—प्रदर्शित करना चाहिये। शक्ति-पाश-खड्ग-शर-शूल-ये आयुध हाथों में धारण करने वाला स्वरूप हो और एक हाथ वरदान देने वाला एवं एक हाथ अभय के देने वाला होना चाहिये। ये सब दक्षिण भाग में जानने चाहिये—केयूर, कटकोज्ज्वल, धनुष, पताका, मुष्टि तथा तर्जनी प्रसारित होनी चाहिये ॥४७-४९॥

खेटकं ताम्रचूडञ्च वामहस्तेतु शस्यते ।

द्विभुजस्य करे शक्तिर्वामे स्यात् कुक्कुटोपरि ॥५०
चतुर्भुजे शक्तिपाशौ वामतो दक्षिणे त्वसिः।
वरदोभयदोवापि दक्षिणः स्यात्तुरीयकः ॥५१
विनायकं प्रवक्ष्यामि गजवक्त्रं त्रिलोचनम्।
लम्बोदर शूर्पकर्णं व्यालयज्ञोपवीतिनम् ॥५२
ध्वस्तकर्णं बृहत्तुण्डमेकदंष्ट्रं पृथूदरम्।
स्वदन्त दक्षिणकरे उत्पलञ्चापरे तथा ॥५३
मोदक परशुञ्चैव वामतः परिकल्पयेत्।
बृहत्वात् क्षिप्तवदन पीनस्कन्धाङ्घ्रिपाणिकम् ॥५४
युक्तन्तु ऋद्धिबुद्धिभ्यामधस्तान्मूषकान्वितम्।
कात्यायन्या प्रवक्ष्यामि रूपं दशभुजं तथा ॥५५
त्रयाणामपि देवानामनुकारानुकारिणीम्।
जटाजूटसमायुक्तामर्द्धेन्दुकृतलक्षणाम् ॥५६

घेटक-ताम्रचूड ये दोनो वाम हस्त मे प्रशस्त होते हैं। जो दो भुजाओ वाले स्वरूप के वाम हस्त मे कुक्कुट के ऊपर मे शक्ति धारण करावे। चतुर्भुज स्वरूप मे वाम भाग मे शक्ति और पाश तथा दक्षिण हाथ मे असि धारण करावे वर देने वाला और अभय का दान करने वाला भी दक्षिण हाथ ही तुरीयक (चतुर्थ) होना चाहिये ॥५०, ५१॥ अब श्री विनायक के स्वरूप का वर्णन मैं करता हू जिनका गज के समान मुख है और तीन लोचन है। भगवान् विनायक लम्बे उदर वाले-शूर्प के सदृश कर्णों से युक्त और व्यालो के यज्ञोपवीत को धारण करने वाले हैं, ध्वस्त कर्णों वाले—बृहत् तुण्ड से युक्त-एक दांत से संयुत-पृथु (विशाल) उदर वाले है। यह अपने दाहिने हाथ मे आस्वाद लेने वाले और दूसरे हाथ मे उत्पल रखने वाले हैं ॥५२, ५३॥ मोदक और परशु का ग्रहण करना वाम हस्त मे कल्पित करना चाहिये बृहत् होने के कारण से क्षिप्त वदन वाले और पीन (परिपुष्ट) स्कन्ध-चरण और पाणि (हाथ) वाले

हैं तथा ऋद्धि और बुद्धि दोनों से युक्त है। इनके नीचे मूषक वाहन के रूप में स्थित है अतः उससे समन्वित है। इसके उपरान्त मैं भगवती कात्यायनी देवी के विषय में वर्णन करता हूं—इनका स्वरूप दो भुजाओं वाला है ॥५०, ५१॥ यह देवी तीनों बड़े देवों के अनुकार का अनुकरण करने वाली है। इनकी भी आकृति जटा जूटों से समायुक्त है तथा अर्ध-चन्द्र के द्वारा किये हुए लक्षण से युक्त है ॥५६॥

लोचनत्रयसम्पन्ना पद्मेन्दुसदृशाननाम् ।
अतसीपुष्पसङ्काशां सुप्रतिष्ठां सुलोचनाम् ॥५७
नवयौवनसम्पन्नां सर्वाभरणभूषिताम् ।
सुचारुदशनां तद्वत्पीनोन्नतपयोधराम् ॥५८
त्रिभङ्गस्थानसंस्थाना महिषासुरमर्दिनीम् ।
त्रिशूलं दक्षिणे दद्यात् खड्गं चक्रं तथैव च ॥५९
तीक्ष्णं बाणं तथा शक्तिं वामतोऽपि निबोधत ।
खेटकं पूर्णचापञ्च पाशमङ्कुशमेव च ॥६०
घण्टां वा परशुञ्चापि वामतः सन्निवेशयेत् ।
अधस्तान्महिषन्तद्वद्विशिरस्कं प्रदर्शयेत् ॥६१
शिरच्छेदोद्भवं तद्वद्दानवं खड्गपाणिनम् ।
रक्तरक्तीकृताङ्गं च रक्तविस्फारितेक्षणम् ॥६२
वेष्टितं नागपाशेन भ्रुकुटीभीषणाननम् ।
वमद्रुधिरवक्त्रञ्च देव्याः सिंहं प्रदर्शयेत् ।६३

कात्यायनी देवी तीनों लोचनों से सुसम्पन्न—पद्म तथा चन्द्रमा के समान मुख वाली—अतसी के पुष्प के तुल्य स्वरूप से युक्त—सुन्दर प्रतिष्ठा से समन्वित एवं रुचिर लोचनों वाली हैं। नूतन यौवन से युक्त—सम्पूर्ण आभरणों से विभूषित—सुन्दर दाँतों वाली और उसी तरह पीन एवं उन्नत पयोधरों से युक्त है ॥५७, ५८॥ तीन भङ्गों से युक्त स्थानों के संस्थान वाली और महिषासुर के मर्दन करने वाली है। इनके दक्षिण

कर मे त्रिशूल धारण करावे और खड्ग एवं चक्र भी देवे। तीक्ष्ण बाण तथा शक्ति को वाम कर मे धारण कराना चाहिए। इनके अतिरिक्त वाम भाग मे खेटक-पूर्णचाप-पाश-अंकुश-घण्ट-परशु ये भी सब निवेशित करने चाहिए। इन देवी के चरणो के नीचे के भाग मे दो शिरो वाले महिषासुर को भी प्रदर्शित करे॥५९, ६०, ६१॥ शिर के छेदन होने से समुत्पन्न रक्त से रक्तीकृत अङ्गो वाला—रक्त से विस्फारित नेत्रो से संयुत—खड्ग हाथ मे धारण किये हुये उस दानव का स्वरूप दिखाना चाहिये॥६२॥ नाग पाश से वेष्टित—भृकुटी से संयुत भीषण आनन वाला—बहते हुए रुधिर से युक्त मुख वाला देवी का वाहन सिंह भी देवी की प्रतिमा के साथ ही समीप मे प्रदर्शित करना आवश्यक है॥६३॥

देव्यास्तु दक्षिणं पादं समं सिंहोपरि स्थितम्।
किञ्चिदूर्ध्वं तथा वाममङ्गुष्ठं महिषोपरि॥६४
स्तूयमानञ्च तद्रूपममरैः सन्निवेशयेत्।
इदानीं सुरराजस्य रूपं वक्ष्ये विशेषतः॥६५
सहस्रनयनं देवं मत्तवारणसंस्थितम्।
पृथूरुवक्षोवदनं सिंहस्कन्धं महाभुजम्॥६६
किरीटकुण्डलधरं पीवरोरुभुजेक्षणम्।
वज्रोत्पलधरं तद्वन्नानाभरणभूषितम्॥६७
पूजितं देवगन्धर्वैरप्सरोगणसेवितम्।
छत्रचामरधारिण्यः श्रियः पार्श्वे प्रदर्शयेत्॥६८
सिंहासनगतञ्चापि गन्धर्वगणसंयुतम्।
इन्द्राणीं वामतश्चास्य कुर्यादुत्पलधारिणीम्॥६९

देवी का दक्षिण पाद सिंह के ऊपर स्थित होता है उससे कुछ ऊपर वाम पाद का अंगुष्ठ महिषासुर के ऊपर समवस्थित होना चाहिए॥६४॥ ऐसा देवी का स्वरूप अमर गणों के द्वारा संस्तूयमान होता हुआ

सन्निवेशित करना चाहिये। अब इसके उपरान्त में सुरराज महेन्द्र देव के स्वरूप का वर्णन करता हूँ—इन्द्रदेव का स्वरूप सहस्र नयनों वाला है तथा मत्त गजेन्द्र पर समारूढ़-पृथु (विशाल) ऊरु, भुज और वक्षस्थल से समन्वित है। सिंह के समान स्कन्धों वाला—महान् भुजाओं से युक्त, किरीट एवं कुण्डलों के धारण करने वाला-पीवर ऊरु, भुजा एवं ईक्षणों वाला है। वज्र एवं उत्पल का धारी तथा उसी भाँति अनेक प्रकार के आभरणों से विभूषित—देवों और गन्धर्वों से पूजित—अप्सरा गणों के द्वारा सेवित इन्द्र का स्वरूप कराकर उनके पार्श्व में छत्र एवं चमरों के धारण करने वाली स्त्रियों को प्रदर्शित करना चाहिए ॥६४-६८॥ इन्द्र देव को सिंहासन पर संस्थित—गन्धर्व गण के द्वारा सेवित निवेशित करे और इनके वाम भाग में उत्पलों के धारण करने वाली इन्द्राणी को कल्पित करना चाहिए ॥७०॥

१२४—नानादेव प्रतिमा प्रमाण वर्णन

प्रभाकरस्य प्रतिमामिदानीं शृणुत द्विजाः !।
रथस्थं कारयेद्देवं पद्महस्तं सुलोचनम् ॥१
सप्ताश्वञ्चैकचक्रञ्च रथं तस्य प्रकल्पयेत्।
मुकुटेन विचित्रेण पद्मगर्भसमप्रभम् ॥२
नानाभरणभूषाभ्यां भुजाभ्यां धृतपुष्करम्।
स्कन्धस्थे पुष्करे ते तु लीलयैव धृते सदा ॥३
चोलकच्छन्नवपुषं क्वचिच्चित्रेषु दर्शयेत्।
वस्त्रयुग्मसमोपेतं चरणौ तेजसावृतौ ॥४
प्रतिहारौ च कर्तव्यौ पार्श्वयोर्दण्डिपिङ्गलौ।
कर्तव्यौ खड्गहस्तौ तौ पार्श्वयोः पुरुषावुभौ ॥५
लेखनीकृतहस्तञ्च पार्श्वे धातारमव्ययम्।

नानादेवगणैर्युक्तमेव कुर्याद्दिवाकरम् ॥६
अरुणः सारथिश्चास्य पद्मिनीपत्रसन्निभः ।
अश्वौ सुवलयग्रीवावन्तस्थौतस्य पार्श्वयोः ॥७

महर्षि प्रवर सूतजी ने कहा—हे द्विजगणो ! अब आप लोग प्रभाकर की प्रतिमा के स्वरूपादि के विषय का श्रवण करिए । सूर्यदेव को रथ में विराजमान—पद्म हाथ में धारण किये हुए एवं सुन्दर लोचनों वाला प्रदर्शित करना चाहिए ।१। सूर्य का रथ सात अश्वों से समन्वित एवं एक चक्र वाला परिकल्पित करे । शिखर एक विचित्र मुकुट से समन्वित और पद्म के मध्य भाग के समान प्रभा वाला करे ॥२॥ अनेक आभरण और भूषणों से युक्त भुजाओं के द्वारा पुष्करों को धारण करने वाले और सदा लीला से ही स्कन्धों पर पुष्करों को धारण किये हुए इन्द्र देव का स्वरूप है । कहीं पर चित्रों में चोलक से संवृत इन्द्र का स्वरूप दर्शित करना चाहिए । दोनों चरण तेज से समावृत होवें और दोनों पार्श्व-भागों में दण्डी और पिङ्गल ये दोनों प्रतिहारी करने चाहिए । ये दोनों पुरुष हाथों में खड्गधारी नियोजित करने चाहिए । पार्श्व में ही हाथ में लेखनी धारण करने वाले अव्यय धाता को दर्शित करावे । इस प्रकार से नाना प्रकार के देवगणों से युक्त भगवान् सवन भास्कर को प्रदर्शित करना चाहिये ॥ ३, ४, ५, ६ ॥ इस दिवाकर सारथि अरुण है जो पद्मिनी पत्र के सदृश है । इसके पार्श्वों में सुवलय ग्रीवा वाले अन्तस्थ दो अश्व होने चाहिये ॥७॥

भुजङ्गरज्जुभिर्बद्धाः सप्ताश्वा रश्मिसंयुताः ।
पद्मस्थं वाहनस्थं वा पद्महस्तं प्रकल्पयेत् ॥८
वह्नेस्तु लक्षणं वक्ष्ये सर्वकामफलप्रदम् ।
दीप्तं सुवर्णवपुषमर्धचन्द्रासने स्थितम् ॥९
बालार्कसदृशं तस्य वदनं चापि दर्शयेत् ।
यज्ञोपवीतिनं देवं लम्बकूर्चधरं तथा ॥१०

कमण्डलुं वामकरे दक्षिणे त्वक्षसूत्रकम् ।
ज्वालावितानसंयुक्तमजवाहनमुज्ज्वलम् ॥११
कुण्डस्थं वापि कुर्वीत मूर्ध्नि सप्तशिखान्वितम् ।
अथ यमं प्रवक्ष्यामि दण्डपाशधरं विभुम् ॥१२
महामहिषमारूढं कृष्णाञ्जनचयोपमम् ।
सिंहासनगतञ्चापि दीप्ताग्निसमलोचनम् ॥१३
महिषश्चित्रगुप्तश्च करालाः किङ्करास्तथा ।
समन्ताद्दर्शयेत्तस्य सौम्यासौम्यान्सुरासुरान् ॥१४

रश्मियों से (लगामों से) संयुत सात उनके अश्व हैं जो कि भुजङ्गों की रज्जुओं से बद्ध हैं। अरुण देव का पद्म पर स्थित—वाहन के ऊपर समारूढ़ और पद्म हाथ में ग्रहण करने वाले परिकल्पित करना चाहिए ॥ ८ ॥ अब वह्निदेव के स्वरूप का वर्णन करूँगा जो सम्पूर्ण कामनाओं के फल को प्रदान करने वाले हैं। इनका स्वरूप परम दीप्ति से युक्त—सुवर्ण के तुल्य वपु वाला अर्ध चन्द्र के आसन पर समवस्थित है ॥ ९ ॥ बाल सूर्य के सदृश इनका मुख प्रदर्शित करे। इन देव को यज्ञोपवीत धारी तथा लम्बी दाढ़ी से संयुत दिखलाना चाहिए ॥ १० ॥ इसके वाम कर में कमण्डलु—दक्षिण हस्त में अक्षसूत्र—ज्वालाओं के वितान से संयुत और उज्ज्वल एवं अज के वाहन वाला कल्पित करना चाहिए ॥ ११ ॥ मस्तक पर सात शिखाओं से युक्त इस अग्निदेव को कुण्ड में समवस्थित करे। इसके अनन्तर दण्ड और पाश के धारण करने वाले विभु यमदेव के स्वरूप का वर्णन करूँगा ॥ १२ ॥ महान् विशाल महिष के ऊपर समारूढ़—कृष्ण अञ्जन के समुदाय के समान वाले वर्ण वाला—सिंहासन पर स्थित—दीप्त अग्नि के तुल्य लोचनों वाला यमराज का स्वरूप है ऐसा ही दर्शित करना चाहिये। महिष और चित्रगुप्त ये इस देव के परम कराल किङ्कर हैं जिनको कि इसके चारों ओर दिखावे।

और अन्य सौम्य स्वरूप वाले असुरों को यमराज के सब ओर दिखलाना चाहिए ॥१३॥१४॥

राक्षसेन्द्रं तथा वक्ष्ये लोकपालञ्च नैर्ऋतम् ।
नरारूढं महामायं रक्षोभिर्बहुभिर्वृतम् ॥१५
खड्गहस्तं महानीलं कज्जलाचलसन्निभम् ।
नरयुक्तविमानस्थं पीताभरणभूषितम् ॥१६
वरुणञ्च प्रवक्ष्यामि पाशहस्तं महाबलम् ।
शङ्खस्फटिकवर्णाभं सितहाराम्बरावृतम् ॥१७
झषासनगतं शान्तं किरीटाङ्गदधारिणम् ।
वायुरूपं प्रवक्ष्यामि धूम्रन्तु मृगवाहनम् ॥१८
चित्राम्बरधरं शान्तं युवानं कुञ्चितभ्रुवम् ।
मृगाधिरूढं वरदं पताकाध्वजसंयुतम् ॥१९
कुबेरञ्च प्रवक्ष्यामि कुण्डलाभ्यामलङ्कृतम् ।
महोदरं महाकायं निध्यष्टकसमन्वितम् ॥२०
गुह्यकैर्बहुभिर्युक्तं धनव्यग्रकरैस्तथा ।
हारकेयूररचितं सिताम्बरधरं सदा ॥२१
गदाधरञ्च कर्त्तव्यं वरदं मुकुटान्वितम् ।
नरयुक्तविमानस्थमेवं रूपेण कारयेत् ॥२२

अब उसी तरह से राक्षसों के स्वामी और लोकपाल नैऋत के विषय में वर्णन करूँगा । यह नर पर समारूढ़—महती माया से समन्वित बहुत से राक्षसों से संवृत—अत्यन्त नील वर्ण वाले—हाथ में खड्ग को धारण किये हुए—काजल के पर्वत के समान स्थित—नर से युक्त विमान में स्थित हैं तथा पीत वर्ण के आभरणों से समन्वित इनका स्वरूप होता है ॥१५॥१६॥ अब वरुण देव के स्वरूप का वर्णन किया जाता है—यह हाथ में पाश को धारण करने वाले—महान् बलवान्—शङ्ख और स्फटिक मणि के वर्ण के तुल्य वर्ण वाले श्वेत हार एवं वस्त्रों से समावृत—झष

(मत्स्य) के आसन पर स्थित—परम शान्त और किरीट तथा अङ्गदों के धारण करने वाले हैं। अब वायुदेव के स्वरूप का वर्णन किया जाता है—वायु का वर्ण धूम्र होता है तथा मृग के वाहन पर विराजमान रहा करते हैं। इनका स्वरूप विचित्र वस्त्रों के धारण करने वाला—परम शान्त—युवावस्था में कुटिल भ्रूओं वाला—मृग पर समधिरूढ़—वरदान प्रदान करने वाला—पताका तथा ध्वजा से युक्त होता है—ऐसा ही इनका स्वरूप प्रदर्शित करना चाहिए इसके अनन्तर कुबेर के स्वरूप का वर्णन करता हूँ—वह कुण्डलों से अलंकृत होते हैं—इनका स्वरूप महान् उदर वाला—महान् काया वाला—आठ निधियों से समन्वित—बहुत—से गुह्यकों से युक्त जो कि धन के व्यय करने वाले हैं—गदा के धारण करने वाला—वर देने वाला—मुकुट से संयुत और नरों से युक्त विमान में समवस्थित होता है। इस रीति से कुबेर के स्वरूप को प्रदर्शित करना चाहिये ॥१७–२०॥

तथैवेश प्रवक्ष्यामि धवलं धवलेक्षणम्।
त्रिशूलपाणिं देवं त्र्यक्षं वृषगतं प्रभुम्॥२३
मातृणां लक्षणं वक्ष्ये यथावदनुपूर्वशः।
ब्रह्माणी ब्रह्मसदृशी चतुर्वक्त्रा चतुर्भुजा॥२४
हंसाधिरूढा कर्तव्या साक्षसूत्रकमण्डलुः।
महेश्वरस्य रूपेण तथा माहेश्वरी मता॥२५
जटा मुकुटसंयुक्ता वृषस्था चन्द्रशेखरा।
कपालशूलखट्वाङ्गवरदाढ्या चतुर्भुजा॥२६
कुमाररूपा कौमारी मयूरवरवाहना।
रक्तवस्त्रधरा तद्वच्छूलशक्तिधरा मता॥२७
हारकेयूरसम्पन्ना कृकवाकुधरा तथा।
वैष्णवी विष्णुसदृशी गरुडे समुपस्थिता॥२८
चतुर्बाहुश्च वरदा शङ्खचक्रगदाधरा।

सिंहासनगता वापि बालकेन समन्विता ।।२९
वाराहीञ्च प्रवक्ष्यामि महिषोपरि संस्थिताम् ।
वराहसदृशी देवी शिरश्चामरधारिणी ।।३०

इसी प्रकार से भगवान् ईश के स्वरूप का मैं अब वर्णन करता हूँ—शिव का स्वरूप एकदम धवल होता है तथा इनके नेत्र भी धवल हुआ करते हैं। शिव के हाथ में त्रिशूल होता है—तीन नेत्रों से युक्त—वृषवाहन पर स्थित—ऐसे यह प्रभुदेव होते हैं—ऐसा ही इनका स्वरूप दर्शित करावे। अब इसके अनन्तर मातृगण के स्वरूप का वर्णन किया जाता है और इनके स्वरूप को यथा रीति से आनुपूर्वी बतलाया जाता है—यह ब्रह्माणी—ब्रह्मा के सदृश—चार मुखों वाली—चार भुजाओं से युक्त हंस पर समधिरूढ़—अक्षसूत्र एवं कमण्डलु से युक्त ही इनका स्वरूप बतलाना चाहिए। भगवान् महेश्वर के रूप के साथ उसी भाँति माहेश्वरी को भी माना गया है। वह भी जटा और मुकुट से संयुत—वृष पर विराजमान—मस्तक पर चन्द्र को धारण करने वाली—चारों भुजाओं में क्रमशः कपाल—शूल—खट्वाङ्ग और वरदान रहा करते हैं—ऐसी ही चार भुजाओं वाली हैं ।। २३, २४, २५, २६ ।। मयूर के श्रेष्ठ वाहन कौमारी कुमार के स्वरूप से समन्वित है—रक्त वस्त्रों को धारण करती हुई शूल और शक्ति को धारण करने वाली इसको माना गया है ।।२७।। हार तथा केयूरों के धारण करती हुई कृकवाकु धारिणी है—सिंहासन पर स्थित रहती हुई बालक से समन्वित है। चार बाहुओं वाली—वरदान प्रदान करती हुई शङ्ख, चक्र और गदाधारिणी है। महिष पर समारूढ़—वराह के सदृश यह देवी शिखाग्र तक मस्तक पर चामरों को धारण करती है ।। २८–३० ।।

गदाचक्रधरा तद्वद्दानवेन्द्रविनाशिनी ।
इन्द्राणीमिन्द्रसदृशीं वज्रशूलगदाधराम् ।।३१
गजासनगता देवी लोचनैर्बहुभिर्वृताम् ।
तप्तकाञ्चनवर्णाभां दिव्याभरणभूषिताम् ।।३२

तीक्ष्णखड्गधरां तद्वद् वक्ष्ये योगेश्वरीमिमाम् ।
दीर्घजिह्वामूर्ध्वकेशीमस्थिखण्डैश्च मण्डिताम् ॥३३

दंष्ट्राकरालवदना कुर्याच्चैव कृशोदरीम् ।
कपालमालिनीं देवी मुण्डमालाविभूषिताम् । ३४

कपालं वामहस्ते तु मांसशोणितपूरितम् ।
मस्तिष्काक्तञ्च बिभ्राणा शक्तिका दक्षिणे करे ॥३५

गृध्रस्था वायसस्था वा निर्मांसा विनतोदरी ।
करालवदना तद्वत्कर्तव्या च त्रिलोचना ॥३६

अब महिष के ऊपर विराजमाना वराह के ही तुल्य स्वरूप वाली वाराही गदा और चक्र के धारण करने वाली है और दानवेन्द्रों को उसी तरह से विनाश करती है। इन्द्र के सदृश वज्र शूल और गदा को धारण करने वाली इन्द्री है ॥ ३२ ॥ शव के आसन पर स्थित—बहुत से लोचनों से युक्त यह देवी होती है—तप्त सुवर्ण के समान वर्ण की आभा से युक्त - दिव्य आभरणों से समन्वित एवं विभूषित - तीक्ष्ण खड्ग को धारण करने वाली अब इस योगेश्वरी का मैं वर्णन करूँगा। यह योगेश्वरी देवी लम्बी जिह्वा वाली—ऊर्ध्व की ओर जाने वाले केशों से संयुत और अस्थि खण्डों से मण्डित है ॥ ३३ ॥ दंष्ट्राओं के द्वारा कराल वदन वाली इस कृश उदर से समन्वित देवी को दर्शित करनी चाहिए। कपाल मालिनी देवी मुण्डों की मालाओं से शोभित है। यह मांस और शोणित से परिपूर्ण कपाल को अपने बाँयें हाथ में ग्रहण किया करती है तथा वह मस्तिष्क से अक्त होता है एवं दक्षिण कर में शक्ति का धारण करने वाली है। गृध्र पर स्थित—वायस पर संस्थित—बिना मांस वाली—विशेष रूप से नत उदर में युक्त—कराल मुख वाली और इसी भाँति इसका स्वरूप को तीन लोचनों वाला करना चाहिए ॥ ३४ । ३५ । ३६ ॥

चामुण्डा बद्धघण्टा वा द्वीपिचर्मधरा शुभा ।
दिग्वासाः कालिका तद्वद्रासभस्था कपालिनी ॥३७
सुरक्तपुष्पाभरणा वर्धनी ध्वजसंयुता ।
विनायकञ्च कुर्वीत मातृणामन्तिके सदा ॥३८
वीरेश्वरश्च भगवान् वृषारूढो जटाधरः ।
वीणाहस्तस्त्रिशूली च मातृणामग्रतो भवेत् ॥३९
श्रिय देवी प्रवक्ष्यामि नवे वयसि संस्थिताम् ।
सुयौवना पीतगण्डा रक्तोष्ठी कुञ्चितभ्रुवम् ॥४०
पीनोन्नतस्तनतटा मणिकुण्डलधारिणीम् ।
सुमण्डलं मुखं तस्याः शिरः सीमन्तभूषणम् ॥४१
पद्मस्वस्तिकशङ्खैर्वा भूषिता कुण्डलालकैः ।
कञ्चुकाबद्धगात्रौ च हारभूषौ पयोधरौ ॥४२

चामुण्डा—बद्धघण्टा—द्वीपि (गज के) चर्म को धारण करने वाली अर्थात् नग्न—कालिका—रासभ गधा पर संस्थित—कपालों के धारण करने वाली—सुन्दर रक्त वर्ण वाले पुष्पों के आभरणों से समलङ्कृत—वर्धनी—और ध्वज से संयुत कपाल मालिनी आदि का स्वरूप होता है। मातृ गणों के समीप में सदा भगवान् विनायक को अवश्य ही समवस्थित करना चाहिए। और वीरेश्वर भगवान्—वृष पर समारूढ—जटा जूट के धारण करने वाले—हाथ में वीणा रखने वाले—त्रिशूल धारी उन मातृगणों के आगे विराजमान होने चाहिए ॥३७, ३८, ३९॥ अब हम श्री देवी के स्वरूप के विषय में वर्णन करेंगे जो कि नूतन वय में संस्थित है—सुन्दर यौवन से सम्पन्न—पीनगण्डों वाली—रक्त ओष्ठों से संयुत—कुञ्चित भौंहों वाली—पीन एवं उन्नत स्तनतट से युक्त—मणि जटित कुण्डलों के धारण करने वाली है। उन श्री देवी का मुख सुन्दर मण्डल वाला है तथा शिर सीमन्त भूषण युक्त है ॥४०, ४१॥ पद्म, स्वस्तिक, शंखों के द्वारा अथवा कुण्डल और अलकों के द्वारा भूषित है। कञ्चुकी

से आबद्ध गांठो वाले—हार की भूषा से भूषित श्री देवी के दोनो पयोधर हैं ॥५२॥

नागहस्तोपमौ बाहू केयूरकटकोज्ज्वलौ ।
पद्मं हस्ते प्रदातव्यं श्रीफलं दक्षिणे भुजे ॥५३
मेखलाभरणां तद्वत्तप्तकाञ्चनसप्रभाम् ।
नानाभरणसम्पन्नां शोभनाम्बरधारिणीम् ॥५४
पार्श्वतस्तथा स्त्रियः कार्याश्चामरव्यग्रपाणयः ।
पद्मासनोपविष्टा तु पद्मसिंहासनस्थिता ॥५५
करिभ्यां स्नाप्यमानासौ भृङ्गाराभ्यामनेकशः ।
प्रक्षालयन्तौ करिणौ भृङ्गाभ्यां तथापरौ ॥५६
स्तूयमाना च लोकेशैस्तथा गन्धर्वगुह्यकैः ।
तथैव यक्षिणी कार्या सिद्धासुरनिषेविता ॥५७
पार्श्वयोः कलशौ तस्यास्तोरणे देवदानवाः ।
नागाद्यैव तु कर्तव्याः खड्गखेटकधारिणः ॥५८
अधस्तात्प्रकृतिस्तेषां नाभेरूर्ध्वं तु पौरुषी ।
फणाश्च मूर्ध्नि कर्तव्या द्विजिह्वा बहवः समाः ॥५९

नाग (गज) के हस्त (सूंड) के सदृश दोनों बाहुएँ हैं जो केयूर और कटक आभूषणों से समुज्ज्वल हैं। इनके हाथ में पद्म अर्पित करे तथा दक्षिण कर में श्री फल देना चाहिए तप्त काञ्चन की प्रभा वाली मेखला के आभरण से युक्त—अनेक भूषणों से संयुत—परम शोभन अम्बरों के धारण करने वाली भगवती श्री देवी का स्वरूप होना चाहिए। उनके पार्श्व भाग में चामरों से युक्त हाथों वाली स्त्रियों का नियोजन आवश्यक है। वह देवी पद्म के आसन पर उपविष्ट होवें तथा पद्मों के द्वारा निर्मित सिंहासन पर समवस्थित हैं। वह देवी करियों के द्वारा स्नाप्यमान होती है। अनेक बार भृङ्गारों के द्वारा क्षालन करते हुए दोनों करी हैं तथा दूसरे भृङ्गारों से क्षालन करने वाले हैं। लोकपालों के द्वारा

एवं गन्धर्व और गुह्यकों के द्वारा वह देवी स्तूयमान होती हुई प्रदर्शित करे। इसी भाँति से सिद्धों और असुरों के द्वारा निषेवित यक्षिणी को भी दिखलाना उचित होता है। उसके दोनों पार्श्व भागों में दो कलश संस्थापित होने चाहिए तथा तोरण में देव और दानवों को स्थित करे। खड्ग और खेटक के धारण करने वाले नागों की भी स्थिति करनी चाहिए। उनके नीचे के भाग में प्रकृति होवे तथा नाभि के ऊर्ध्व भाग में पौरुषी होनी चाहिए मूर्द्धा में फणा दर्शित करे और सम द्विजिह्व (सर्प प्रदर्शित करने चाहिये ॥४२-४६॥

पिशाचा राक्षसाश्चैव भूतवेतालजातयः।
निर्मांसाश्चैव ते सर्वे रौद्रा विकृतरूपिणः ॥५०
क्षेत्रपालश्च कर्तव्यो जटिलो विकृताननः।
दिग्वासा जटिलश्चद्व छगगोमायुनिषेवितः ॥५१
कपालं वामहस्ते तु शिरः केशो समावृतम्।
दक्षिणे शक्तिका दद्यादसुरक्षयकारिणाम् ॥५२
अथातः सम्प्रवक्ष्यामि द्विगज वसुमायुधम्।
पार्श्वे चाश्वमुखं तस्य मकरध्वजमद्भुतम् ॥५३
दक्षिणे पुष्पबाणञ्च वामे पुष्पमयं धनुः।
प्रीतिः स्याद्दक्षिणे तस्य भोजनापस्करान्विता ॥५४
रतिश्च वामपार्श्वे तु शयनं मारसान्वितम्।
पटश्च पटहश्चैव खरः कामातुरस्तथा ॥५५
पार्श्वतो जलराशी च वनं नन्दनमेव च।
सुशोभनश्च कर्तव्यो भगवान् कुसुमायुधः ॥
सस्थानमोपद्धनश्च स्याद्विस्मासिमतवक्रकम् ॥५६॥
एतदुद्देशतः प्रोक्तं प्रतिमालक्षणं मया।
विस्तरेण न शक्नोति बृहस्पतिरपि द्विजाः ॥५७

पिशाच-राक्षस-भूत-वेताल जाति वाले—ये सब निर्मांस, रौद्र और विकृत रूप वाले होने चाहिये। जटाधारी तथा विकृत आनन वाला क्षेत्रपाल भी यहाँ पर स्थापित करके दर्शित करे जो दिशाओं के वसन वाला (नग्न) जटिल कुत्तों और गोमायु (गीदड़) आदि से ऐसा निर्देशित हो कि उसके साथ कुत्ता रहे हों। उसके वाम हस्त में कपाल हो तथा उस का शिर केशों से समावृत होवे। दाहिने हाथ में असुरों के क्षय के करने वाली शक्तिका को देवे—ऐसा ही उसका स्वरूप दिखलावे। इसके अनन्तर अब दो भुजाओं वाले कुसुमायुध कामदेव को दर्शित किया जाता है। उसके पार्श्व में मकरध्वज में संयुत श्वेत मुख को संस्थित करना चाहिए ॥५०-५३॥ उसके दाहिने हाथ में पुष्पों का बाण और वाम हस्त पुष्पमय धनुष होना चाहिये। उसके दक्षिण हस्त में भोजन के उपस्करों से समन्वित प्रीति होना चाहिये। वाम पार्श्व में रति और सार संस्थित शयन-पट-पटह-छत्र जो काम से आतुर हो दिखाना चाहिये। उसके पार्श्व में जल की वापी और नन्दन वन दिखावे। इस प्रकार से भगवान् कुसुमायुध को सुन्दर शोभा से समन्वित प्रदर्शित करना चाहिये। कुसुमायुध के सम्मान में ईषद् वक्त्र होना चाहिये और वह स्मित से युक्त मुख कारक करे। यह मैंने उद्देश से कुसुमायुध आदि समस्त देवों की प्रतिमाओं का लक्षण बतला दिया है। इन प्रतिमाओं का विस्तार पूर्वक वर्णन करने की सामर्थ्य तो हे द्विजगण! देवों के आचार्य बृहस्पति में भी नहीं है ॥५४-६७॥

१०५—पीठिका लक्षण वर्णन

पीठिकालक्षणं वक्ष्ये यथावदनुपूर्वशः ।
पीठोच्छ्रायं यथावच्च भागान् षोडश कारयेत् ॥१
भूमावेकः प्रविष्टः स्याच्चतुर्भिर्जगती मता ।

वृत्तोभागस्तथैकः स्याद्वृत्तः पटलभागतः ॥२
भागैस्त्रिभिस्तथा कण्ठः कण्ठपट्टस्त्रिभागतः ।
भागाभ्यामूर्ध्वपट्टश्च शेषभागेन पट्टिका ॥३
प्रविष्ट भागमेकैक जगतीयावदेवतु ।
निर्गमस्तु पुनस्तस्य यावद्वै शेषपट्टिका ॥४
वारिनिर्गमनार्थन्तु तत्रकार्यः प्रणालकः ।
पीठिकानान्तुसर्वासामेतत्सामान्यलक्षणम् ॥५
विशेषान् देवताभेदान् शृणुध्वं द्विजसत्तमाः ! ।
स्थण्डिला वापी वापी वा यक्षी वेदी च मण्डला ॥६
पूर्णचन्द्रा च वज्रा च पद्मावार्धशशिस्तथा ।
त्रिकोणादशमीतासांसंस्थानं वो निबोधत ॥७

महर्षि प्रवर श्री सूत जी ने कहा—अब मैं यथावत् आनुपूर्वी से पीठिका का लक्षण बतलाऊँगा । पीठिका की यथावत् ऊँचाई और इसके सोलह भागों को कराना चाहिए ॥१॥ उनमें एक भाग भूमि में प्रविष्ट होवे और चार भागों के द्वारा यह जगतीतल माना गया है तथा एक भाग वृत्त होना चाहिए और वृत्त पटल से समागत होवे ॥२॥ तीन भागों के द्वारा कण्ठ—तीन भाग से कण्ठ पट्ट—दो भागों से ऊर्ध्व पट्ट और शेष भाग से पट्टिका करे ॥३॥ जितनी भी जगती है उनमें एक-एक भाग प्रविष्ट है । फिर उसका जितना निर्गम है वह शेष पट्टिका है ॥४॥ जल के निर्गमन के लिये वहाँ पर प्रणालक करना आवश्यक है । समस्त पीठिकाओं का यह सामान्य लक्षण है ॥५॥ हे द्विजश्रेष्ठगण ! अब विशेष देवताओं के भेदों का श्रवण करलो । स्थण्डिला—वापी—यक्षी—वेदी—मण्डल—पूर्ण चन्द्रा—वज्रा—पद्मा—अर्ध शशि—त्रिकोणा—दशमी है । अब उनका संस्थान भी समझ लेना चाहिए ॥६, ७॥

स्थण्डिला चतुरस्रातु वर्जिता मेखलादिभिः ।
वापीद्विमेखला ज्ञेया यक्षीचैव त्रिमेखला ॥८

चतुरस्रायता वेदी न तां लिङ्गेषु योजयेत् ।
मण्डलावर्तुलायाम् मेखलाभिर्मणप्रिया ॥६
रक्ता द्विमेखलामध्ये पूर्णचन्द्रा तु सा भवेत् ।
मेखलात्रयसंयुक्ता षडस्राविष्टिका भवेत् ॥१०
षोडशास्रा भवेत्पद्मा किञ्चिद्ध्रस्वा तु मूलत ।
तथैव धनुषाकारा सार्द्धचन्द्रा प्रशस्यते ॥११
त्रिशूलसदृशीतद्वत् त्रिकोणाह्य् दर्ध्वतोमता ।
प्रागुदक्प्रवणा तद्वत्प्रशस्तालक्षणान्विता ॥१२
परिवेषत्रिभागेन निगम तत्र कारयेत् ।
विस्तारं तत्प्रमाणञ्च मूलचाग्रे तताद्ग्वतः ॥१३
जलम ग च कर्तव्यस्त्रिभागेन सुशोभनः ।
लिङ्गस्यार्द्ध त्रिभागेन स्थौल्येन समन्विता ॥१४
मेखला तात्तिभागेन खातञ्चैव प्रमाणत ।
अथवा पादहीनन्तु शोभनं कारयेत्सदा ॥१५

स्थण्डिला चौकोर होती है और वह मेखला आदि से रहित ही हुआ करती है। वापी की दो मेखलाएं होती हैं तथा यक्षी की तीन मेखलाएं बनाई गयी हैं। वेदी चतुरस्रायत होती है और लिङ्गों में योजित नहीं करनी चाहिये। मण्डला जो होती है वह वर्तुला होती है मेखलाओं से मणप्रिया है ॥८, ६॥ जो दो मेखलाओं के मध्य में रक्ता है वह ही पूर्ण चन्द्रा होती है तीन मेखलाओं से संयुक्त छः कोणों वाली वज्रिका होती है। षोडश अस्रों वाली पद्मा कही जाती है। जो मूल से कुछ ह्रस्व होती है तथा धनुष के आकार वाली होती है वह सार्द्ध चन्द्रा प्रशस्त कही जाती है। इसी तरह से त्रिशूल के सदृश त्रिकोणा ऊर्ध्व भाग से मानी गयी है। इसी भांति से प्राक् और उदक् की ओर जो प्रवणा होती है वह लक्षणों से अन्वित प्रशस्त कही जाती है। वहां पर परिवेष निर्गम तीन भागों से कराना चाहिए। विस्तार और उसका

प्रमाण मूल में—अग्रभाग में और ऊर्ध्व में होना है ॥१०—१३॥ जल का मार्ग तीन भाग से परम शोभन करना चाहिए। लिङ्ग के अर्ध विभाग से रचना से समधिष्ठित उसके तीन भाग से और उसकी खुदाई के प्रमाण से अथवा सदा एक पाद से तीन शोभा से युक्त मेखला करानी चाहिए। ॥१४, १५॥

उत्तरस्थ प्रणालञ्च प्रमाणादधिकारयेत्।
स्थण्डिलायामथारोग्य धन धान्यञ्च पुष्कलम् ॥१६
गोप्रदा च भवेद्यक्षी वेदी सम्पत्प्रदा भवेत्।
मण्डलाया भवेत्कीर्तिर्वरदा पूर्णचन्द्रिका ॥१७
आयुः प्रदा भवेद्वज्रा पद्मा सौभाग्यदा भवेत्।
पुत्रप्रदार्धचन्द्रा स्यात् त्रिकोणशत्रुनाशिनी ॥१८
देवस्य यजनार्थन्तु पीठिका दश कीर्तिताः।
शैलि शैलमयीं दद्यात् पार्थिवे पार्थिवी तथा ॥१९
दारुजे दारुजा कुर्यात् मिश्रे मिश्रा तथैव च।
नान्ययोनिस्तत्र तस्या सदा शुभफलेप्सुभिः ॥२०
अर्च्चायामाममन्दैर्घ्यं लिङ्गायाममसमन्तथा।
यस्य देवस्य या पत्नी तां पीठे परिकल्पयेत् ॥
एतत्सर्वं समाख्यातं समासात्पीठलक्षणम् ॥२१

उत्तर की ओर स्थित प्रणाल प्रमाण से अधिक कराना आवश्यक होना चाहिए। स्थण्डिला में आरोग्य धन तथा धान्य पुष्कल होता है ॥१६॥ यक्षी गौओं के प्रदान कराने वाली हुआ करती है और वेदी सम्पत्ति के देने वाली होती है। मण्डला में कीर्ति का विस्तार होता है तथा पूर्ण चन्द्रिका वरदान का प्रदान कराने वाली हुआ करती है ॥१७॥ वज्रा नाम वाली का फल आयु की वृद्धि होना है और पद्मा परम सौभाग्य के प्रदान करने वाली हुआ करती है। जो अर्ध चन्द्रा है वह पुत्र देने वाली हुआ करती है और त्रिकोण से शत्रुओं का पूर्ण रूप से विनाश करना

होता है ॥१८॥ इस प्रकार से देवों के यजन करने के लिए पीठिका दस तरह की कीर्तित की गयी है। शैल मे शैलमयी ही पीठिका देनी चाहिये और पार्थिव मे पार्थिवी देवे। जो दारु (काष्ठ) से जात हो वहाँ पर दारुजा करे तथा मिश्रित होवे तो पीठिका भी मिश्रा ही करनी चाहिये। जो शुभ फल की इच्छा रखने वाले पुरुष हैं उनको चाहिये कि पीठिका अन्य योनि की कभी भी न करें और जैसी होवे वैसी ही सदा पीठिका की रचना करावें ॥१६॥ अर्चा में आसम दैर्ध्य तथा लिङ्ग मे असम करे। जिस देव की जो पत्नी होवे उसको पीठ पर परिकल्पित करना ही चाहिए। यह सब संक्षेप से हमने पीठका लक्षण बतला दिया है ॥ २० ॥

१२६—लिङ्ग लक्षण वर्णन

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि लिङ्गलक्षणमुत्तमम् ।
सुस्निग्धञ्च सुवर्णञ्च लिङ्गं कुर्याद्विचक्षणः ॥१
प्रासादस्य प्रमाणेन लिङ्गमानं विधीयते ।
लिङ्गमानेन वा विद्यात् प्रासाद शुभलक्षणम् ॥२
चतुरस्रे समे गर्भे ब्रह्मसूत्रं निपातयेत् ।
वामेन ब्रह्मसूत्रस्य अर्च्चा वा लिङ्गमेव च ॥३
प्रागुत्तरेण लीनन्तु दक्षिणा परयाश्रितम् ।
पुरस्यापरदिग्भागे पूर्वद्वारं प्रकल्पयेत् ॥४
पूर्वेणचापरं द्वारं माहेन्द्रं दक्षिणोत्तरम् ।
द्वारं विभज्य पूर्वन्तु एकविंशतिभागिकम् ॥५
तदा मध्यगतञ्ज्ञात्वा ब्रह्मसूत्रं प्रकल्पयेत् ।
तस्यार्द्धन्तु त्रिधाकृत्वा भागञ्चोत्तरतस्त्यजेत् ॥६
एवं दक्षिणतस्त्यक्त्वा ब्रह्मस्थानं प्रकल्पयेत् ।
भागार्द्धेन तु यल्लिङ्गं कार्यन्तदिह शस्यते ।७

महर्षि प्रवर सूतजी ने कहा—अब इसके अनन्तर मैं लिङ्ग का उत्तम लक्षण बतलाता हूँ। विचक्षण पुरुष को सुस्निग्ध और सुवर्ण लिङ्ग करना चाहिए॥१॥ प्रासाद के प्रमाण से ही लिङ्ग के मान का विधान किया जाता है अथवा लिङ्ग के मान से ही प्रासाद शुभ लक्षण से युक्त माना जाया करता है॥२॥ चतुरस्र (चौकोर) समगर्त्त में ब्रह्मसूत्र का निपात करना चाहिए। ब्रह्मसूत्र के वाम भाग से अर्चा अथवा लिङ्ग होता है॥३॥ पूर्व और उत्तर में तीन दक्षिण पश्चिम पुर के अपर दिग्भाग में पूर्व द्वार को परिकल्पित करना चाहिये॥४॥ पूर्व से अपर द्वार माहेन्द्र दक्षिणोत्तर द्वार का विभाजन करके पूर्व को एक विंशति भाजित करे। फिर मध्यगत का ज्ञान प्राप्त करके ब्रह्म सूत्र को प्रकल्पित करना चाहिए। भाग के अर्ध से जो लिङ्ग हो वह ही यहाँ पर करना चाहिए और यही प्रशस्त कहा जाता है॥५, ६, ७॥

पञ्च भागविभक्त वा त्रिभागे ज्येष्ठमुच्यते।
भाजिते नवधागर्भे मध्यम पाञ्चभागिकम्॥८
एकस्मिन्नेव नवधा गर्भे लिङ्गानि कारयेत्।
समसूत्रं विभज्याथ नवधा गर्भभाजितम्॥९
ज्येष्ठमद्र्धकनीयोऽर्शितयामध्यममध्यमम्।
एवगर्भः समाख्यातस्त्रिभिर्भागैर्विभाजयेत्॥१०
ज्येष्ठन्तु त्रिविधा ज्ञेय मध्यमन्त्रिविधन्तथा।
कन्यस त्रिविध तद्वत् लिङ्गभेदा नवैव तु॥११
नाभ्यर्धमष्टभागेन विभज्याथ समं बुधैः।
भागत्रयं परित्यज्य विष्कम्भाच्चतुरस्रकम्॥१२
अष्टास्रं मध्यम ज्ञेय भाग लिङ्गस्य वै ध्रुवम्।
विकोर्णं चेत्ततो गृह्य कोणाभ्यां लाञ्छयेद् बुधः॥१३
अष्टास्रं कारयेत्तद्वद्द्वर्भमध्येवमेव तु।
षोडशास्रीकृत पश्चाद्वर्तुल कारयेत्ततः॥१४

पाँच भाग में विभक्त में अथवा त्रिभाग मे ज्येष्ठ कहा जाता है। गर्भ मे नौ प्रकार से भाजित करने पर पाञ्च भागिक माध्यम होता है। एक ही में नौ प्रकार से गर्भ मे लिङ्गो को कराना चाहिये। सम सूत्र का विभाजन करके इसके अनन्तर नौ प्रकार से गर्भ भाजित करे ॥८, ९॥ अर्ध ज्येष्ठ-अर्धकनीय तथा मध्यम होता है। इस प्रकार से गर्भ का समाख्यान किया गया है। तीन भागो मे विभाजन करना चाहिए। लिङ्ग के भेद नौ हुआ करते हैं—तीन प्रकार का ज्येष्ठ जानना चाहिये इसी तरह से मध्यम भी तीन प्रकार का है और तद्वत् कन्यस तीन तरह का होता है। लिङ्ग के नौ प्रकार के भेद हुआ करते हैं ॥१०, ११॥ नाभि के अर्ध भाग को अष्ट भाग से विभाजित करके इसके अनन्तर बुध पुरुषो को चाहिए कि सम तीन भागो का परित्याग कर देवे। यह चतुरस्रक विष्कम्भ होता है। आठ अस्र वाला मध्यम जानना चाहिये जो कि लिङ्ग का निश्चित भाग होता है। यदि विकीर्ण हो तो उससे ग्रहण करके बुध पुरुष को कोणो से लाञ्छित करना चाहिए ॥१२, १३॥ अष्टास्र करना चाहिये। उसी भाँति सर्व को भी कराके। पीछे षोडशा स्रीकृत को वर्तुल कराना चाहिये। १४।

आयाम. तस्य देवस्य नाभ्या वै कुण्डलीकृतम्।
माहेश्वर त्रिभागन्तु ऊर्ध्ववृत्त त्ववस्थितम् ॥१५
अधस्ताद्ब्रह्मभागस्तु चतुरस्रोविधीयते।
अष्टास्रोवैष्णवोभागो मध्यस्तस्यउदाहृत. ॥१६
एव प्रमाणसयुक्त लिङ्गवृद्धिप्रदम्भवेत्।
तथान्यदपि वक्ष्यामि गर्भमान प्रमाणत: ॥१७
गर्भमानप्रमाणेन यल्लिङ्गमुचित भवेत्।
तदुर्ध्वाद्विभज्याथ विष्कम्भन्तु प्रकल्पयेत् ॥१८
देवतायतने सूत्र भागत्रयविकल्पितम्।
अधस्ताच्चतुरस्रन्तु अष्टास्र मध्यभागत: ॥१९

पूज्यभागस्ततोऽर्द्धन्तु नाभिभागस्तथोच्यते ।
आयामे यद्भवेत्सूत्रं नाहस्य चतुरस्रके ॥२०
चतुरस्रार्द्धं परित्यज्य अष्टास्रस्यतु यद्भवेत ।
तस्याप्यर्द्धंपरित्यज्य ततोवृत्तन्तु कारयेत् ॥२१

उस देव के आयाम नाभि मे कुण्डली कृत है । माहेश्वर तीन भाग ऊर्द्ध्वृत्त अवस्थित है ॥ १५ ॥ नीचे की ओर ब्रह्मभाग चतुरस्र (चौकोर) विहित किया जाता है । अष्टास्र वैष्णव भाग उदाहृत कर दिया गया है । इस प्रकार से प्रमाण से संयुत लिङ्ग वृद्धि का प्रदान करने वाला होता है । उसी तरह से और भी गर्भमान प्रमाण से बतलाऊँगा ॥ १६ ॥ १७ ॥ गर्भमान के प्रमाण से जो लिङ्ग उचित होवे उसको चार भागो मे विभक्त करके विष्कम्भ को प्रकल्पित करे ॥१८ ॥ देवता के आयतन मे सूत्र को तीन भागो मे विशेष रूप से कल्पित करे । नीचे की ओर चतुरस्र-मध्यभाग मे अष्टास्र इससे आधा पूज्य भाग है तथा वह नाभिभाग कहा जाया करता है । आयाम मे नाह के चतुरस्रक मे आयाम मे जो सूत्र होता है उस चतुरस्रार्ध का परित्याग कर देवे और जो अष्टास्र होता है उसके भी अर्धभाग का परित्याग करके इसके पश्चात् फिर वृत्त को कराना चाहिये ॥१९॥२०॥२१॥

शिरः प्रदक्षिण तस्य सच्छिद्र मूलतोन्यसेत् ।
ज्येष्ठपूज्य भवेल्लिङ्गमधस्ताद्विपुलञ्च यत् ॥२२
शिरसा च सदानिम्नमनोज्ञ लक्षणान्वितम् ।
सौम्यन्तु दृश्यते लिङ्गन्तद्वैवृद्धिप्रद भवेत ॥२३
अथ मूले च मध्ये तु प्रमाणेसयत. समम् ।
एवम्विधन्तु यल्लिङ्गं भवेत्त्सावकामिकम् ॥२४
अन्यथा यद्भवेल्लिङ्ग तदमत्सप्रचक्षते ।
एवरत्नमयकुर्यात् स्फाटिक पार्थिव तथा ॥२५
शुभ दारुमयञ्चापि यद्वा मनसि रोचते ॥२६

उसका संक्षिप्त प्रदक्षिण शिर मूलसे व्यास करना चाहिए। जो नीचे की ओर विपुल है वह ज्येष्ठ पूजक लिङ्ग होना चाहिये ॥२४॥ सदा शिर से निम्न एवं मनोज्ञ लक्षणान्वित होता है। जो सौम्य लिङ्ग दिखलाई देता है वह निश्चित रूप से वृद्धि के प्रदान करने वाला होता है। इसके अनन्तर मूल में-मध्य में और प्रमाण में सभी ओर से सम है। इस प्रकार का लिङ्ग है वह सर्वकारिक होता है अर्थात् सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला होता है। इसके विपरीत अन्य प्रकार का जो लिंग होता है वह असत् ही कहा जाता है। इस रीति से इसको रत्नों से परिपूर्ण—स्फटिक मणि के द्वारा रचित तथा पार्थिव करना चाहिये अथवा मन को रुचिकर हो तो दारुमय भी परम शुभ होता है। ॥२३—२६॥

१२७—देव प्रतिष्ठा विधि वर्णन (१)

देवतानामथैतासां प्रतिष्ठाविधिमुत्तमम् ।
वद सूत ! यथान्याय सर्वेषामप्यशेषतः ॥१
अथातः संप्रवक्ष्यामि प्रतिष्ठाविधिमुत्तमम् ।
कुण्डमण्डपवेदीनां प्रमाणञ्च यथाक्रमम् ॥२
चैत्रे वा फाल्गुने वापि ज्येष्ठे वा माधवे तथा ।
माघेवासर्वदेवानांप्रतिष्ठाशुभदाभवेत् ॥३
प्राप्यपक्ष शुभशुक्लमतीते दक्षिणायने ।
पञ्चमी च द्वितीया च तृतीया सप्तमी तथा ॥४
दशमी पौर्णमासी च तथा श्रेष्ठा त्रयोदशी ।
आसु प्रतिष्ठा विधिवत् कृत्वा बहुफला लभेत् ॥५
आषाढे द्वे तथा मूलमुत्तराद्वयमेव च ।
ज्येष्ठाश्रवणरोहिण्यः पूर्वाभाद्रपदा तथा ॥६

हस्ताश्विनीरेवती च पुष्योमृगशिरस्तथा ।
अनुराधा तथा स्वाती प्रतिष्ठादिषु शस्यते ॥७

ऋषिगण ने कहा--हे श्री सूतजी ! अब इस सबके कथन के अनन्तर आप जो भी उचित हो पूर्ण रूप से इन समस्त देवों की प्रतिष्ठा की विधि का वर्णन करिये ।। १ ।। श्री सूतजी ने कहा—इसके अनन्तर उत्तम प्रतिष्ठा की विधि के विषय में मैं वर्णन करता हूँ और कुण्ड—मण्डप तथा वेदियों का भी यथा क्रम प्रमाण बतलाऊँगा ॥ २ ॥ चैत्र में, फाल्गुन में, ज्येष्ठ में अथवा माघव में या माघ मास में सब देवों की प्रतिष्ठा शुभ देने वाली होती है ॥ ३ ॥ दक्षिणायन के समाप्त होने पर परम शुभ शुक्लपक्ष को प्राप्त करके पञ्चमी, द्वितीया, तृतीय, सप्तमी, दशमी, पौर्णमासी और त्रयोदशी ये तिथियाँ परम श्रेष्ठ होती हैं । इन तिथियों में विधिपूर्वक प्रतिष्ठा करने पर वह बहुत अधिक फल का लाभ किया करता है । अब नक्षत्रों के विषय में बतलाया जाता है --दोनों आषाढ़ा-मूल, दोनों उत्तरा, ज्येष्ठा, श्रवण, रोहिणी, पूर्व भाद्रपदा, हस्त, अश्विनी, रेवती, पुष्य, मृगशिरा, अनुराधा, स्वाती ये नक्षत्र प्रतिष्ठा आदि कार्यों में प्रशस्त माने जाया करते हैं ॥४—७॥

बुधोबृहस्पतिः शुक्रस्त्रयाऽप्येते शुभग्रहाः ।
एभिर्निरीक्षितं लग्नं नक्षत्रञ्च प्रशस्यते ॥८
ग्रहताराबलं लब्ध्वा ग्रहपूजां विधाय च ।
निमित्तं शकुनं लब्ध्वा वर्जयित्वाद्भुतादिकम् ॥९
शुभयोगे शुभस्थाने क्रूरग्रह विवर्जिते ।
लग्नेऋक्षेप्रकुर्वीत प्रतिष्ठादिकमुत्तमम् ॥१०
अयने विषुवे तद्वत् षडशीतिमुखे तथा ।
एतेषु स्थापनंकार्यं विधिदृष्टेन कर्मणा ॥११
प्राजापत्ये तु शयनं श्वेते तूत्थापनं तथा ।
मुहूर्तेस्थापनंकुर्यात् पुनर्ब्राह्मे विचक्षणः ॥१२

प्रासादस्योत्तरेवापि पूर्वेवा मण्डपो भवेत् ।
हस्तान् षोडशकुर्वीतदशद्वादश वा पुनः ॥१३
मध्येवेदिकयायुक्तः परिक्षिप्तः समन्ततः ।
पञ्चसप्तापि चतुरः करान् कुर्वीतवेदिकाम् ॥१४

बुध, बृहस्पति और शुक्र ये तीनों ग्रह परम शुभ होते हैं। इन ग्रहों के द्वारा देखी गई लग्न और नक्षत्र प्रशस्त कहे जाया करते हैं ॥८॥ ग्रह और ताराओं का बल प्राप्त करके तथा ग्रहों की पूजा करके एवं निमित्त और शकुन पाकर तथा अद्भुत आदि को वर्जित करके शुभ योग में—शुभ स्थान में क्रूर ग्रहों से विवर्जित लग्न में तथा नक्षत्र में प्रतिष्ठा आदि उत्तम कर्म को करना चाहिए ॥ ९, १० ॥ विषुव अयन में उसी भांति यदनीति सुख से विधि के द्वारा इष्ट कर्म से इनमें ही स्थापना करनी चाहिए ॥ ११ ॥ प्रजापत्य में शयन तथा श्वेत में उत्थापन विचक्षण पुरुष को पुनर्ब्राह्म मुहूर्त में स्थापन करना चाहिए ॥ १२ ॥ प्रासाद के उत्तर भाग में अथवा पूर्व भाग में मण्डप होना चाहिए। वह भी दश हाथ या द्वादश हाथ अथवा सोलह हाथ का विस्तृत बनाना चाहिए ॥ १३ ॥ मध्य में वेदी से युक्त तथा चारों ओर से परिक्षिप्त होना चाहिये। वेदी भी पाँच सात और चार हाथ विस्तार वाली निर्मित कराये ॥ १४ ॥

चतुर्भिस्तोरणैर्युक्तो मण्डपः स्याच्चतुर्मुखः ।
प्लक्षद्वारंभवेत्पूर्वं याम्येचोदुम्बरं भवेत् ॥१५
पश्चादश्वत्थघटितं नैयग्रोधं तथोत्तरे ।
भूमौ हस्तप्रविष्टानि चतुर्हस्तानिचोच्छ्रये ॥१६
सूपलिप्तं तथा श्लक्ष्णं भूतलं स्यात् सुशोभनम् ।
वस्त्रैर्नानाविधैस्तद्वत् पुष्पपल्लवशोभितम् ॥१७
कृत्वैवं मण्डपं पूर्वं चतुर्द्वारेषु विन्यसेत् ।
अव्रणान् कलशानष्टौ ज्वलत्काञ्चनगर्भितान् ॥१८

चूतपल्लवसंच्छन्नान् सितवस्त्रयुगान्वितान् ।
सर्वौषधिफलोपेतांश्चन्दनोदकपूरितान् ॥१६
एवं निवेश्य तद्गर्भे गन्धधूपार्चनादिभिः ।
ध्वजादिरोहणं कार्यं मण्डपस्य समन्ततः ॥२०
ध्वजाश्च लोकपालानां सर्वदिक्षु निवेशयेत् ।
पताकाजलदाकारान्मध्येस्यान्मण्डपस्य तु ॥२१

मण्डप चार मुखों वाला चार तोरणों से युक्त होना चाहिये। पूर्व द्वार में प्लक्ष (पाकर) वृक्ष वाला होना चाहिए। दक्षिण द्वार में उदुम्बर का वृक्ष होना चाहिए। पश्चिम दिशा में जो द्वार हो वह अश्वत्थ (पीपल) से युक्त एवं घटित होना चाहिए तथा उत्तर दिशा में न्यग्रोध (वट) का वृक्ष होना चाहिए भूमि में एक हाथ प्रविष्ट और ऊँचाई में चार हाथ होना आवश्यक है। भूमि का भाग अच्छी तरह से उपलिप्त-स्वच्छ एवं शोभन होना आवश्यक है। नाना प्रकार के वस्त्रों के द्वारा भूषित-पुष्प और पल्लवों से शोभित पहिले मण्डप की रचना कराकर फिर इस प्रकार से चारों द्वारों में विन्यास करना चाहिए अर्थात् व्रण से रहित-ज्वलत्काञ्चन अर्थात् देदीप्यमान सुवर्ण जिनके मध्य में प्रक्षिप्त किया गया हो ऐसे आठ कलशों का प्रत्येक द्वार पर दो-दो विन्यस्त करे ॥ १२, १६, १७, १८ ॥ आम के पल्लवों से सच्छन्न-श्वेत दो वस्त्रों से समन्वित—सर्वौषधि एवं फलों से उपेत—चन्दन के जल से पूरित आठ कलशों को वहाँ पर निवेशित करके उनके मध्य में गन्ध—धूप और अर्चन आदि से संपूत करके मण्डप के चारों ओर ध्वजा आदि से उसे सुशोभित करना चाहिए ॥ १६, २० ॥ समस्त दिशाओं में लोकपालों की ध्वजाओं को निवेशित करना चाहिए। मण्डप के मध्य भाग में जलद के आकार वाली पताकाएँ होनी चाहिए ॥२१॥

गन्धधूपादिकंकुर्यात् स्वैस्वैर्मन्त्रैरनुक्रमात् ।
बलिञ्चलोकपालेभ्यः स्वमन्त्रेण निवेदयेत् ॥२२

ऊर्द्ध्वन्तु ब्रह्मणे देवं त्वधस्ताच्छेषवासुकेः ।
संहितायान्तु ये मन्त्रा तद्दैवत्याः श्रुतौ स्मृताः ॥२३
तैः पूजा लोकपालानां कर्त्तव्या च समन्ततः ।
त्रिरात्रमेकरात्रं वा पञ्चरात्रमथापि वा ॥२४
अथवा सप्तरात्रन्तु कार्यं स्यादधिवासनम् ।
एवं सतोरणंकृत्वा अधिवासनमुत्तमम् ॥२५
तस्याप्युत्तरतः कुर्यात् स्नानमण्डपमुत्तमम् ।
तदर्धेन त्रिभागेन चतुर्भागेन वा पुनः ॥२६
आनीय लिङ्गमर्च्चां वा शिल्पिनः पूजयेद्बुधः ।
वस्त्राभरणरत्नैश्च येऽपि तत्परिचारकाः ॥२७
क्षमध्वमितितान् ब्रूयाद्यजमानाऽप्यतः परम् ।
देवं प्रस्तरणेकृत्वा नेत्रज्योतिः प्रकल्पयेत् ॥२८

श्रुतियों में अपने २ मन्त्रों के द्वारा गन्ध—धूप आदि सब करना चाहिये । अपने मन्त्रों से लोकपालों के लिये बलि निवेदित करे ॥ २२ ॥ ऊपर की ओर ब्रह्माजी को बलि समर्पित करे और नीचे को ओर शेष तथा वासुकि को बलि देनी चाहिए । जो मन्त्र संहिता में हैं वह वेदवती की श्रुति में कहे गये हैं ॥ २३ ॥ उनसे ही सभी ओर लोकपालों की पूजा करनी चाहिए । तीन रात्रि तक—एक रात्रि पञ्च रात्रि अथवा सप्त रात्रि पर्यन्त अधिवासन करना चाहिए । इस प्रकार से सतोरण उत्तम अधिवासन करके उसके भी उत्तर में उत्तम स्नान मण्डप की रचना करनी चाहिए । उसके अर्धभाग से—तीन भाग में अथवा चार भाग में लिङ्ग को लाकर अथवा अर्चा को लाकर बुध पुरुष को शिल्पी की पूजा करनी चाहिए । जो भी उनके परिचारक हों उनकी भी वस्त्र—आभरण और रत्नों से पूजा करे । उसके आगे देव के समक्ष में यजमान को 'क्षमा कीजिए'—ऐसा बोलना चाहिये और फिर देव को प्रस्तरण पर करके नेत्रों की ज्योति की परिकल्पना करे ॥२४—२८॥

अक्ष्णोरुद्धरणं वक्ष्ये लिङ्गस्यापि समासतः।
सर्वतस्तु बलिं दद्यात्सिद्धार्थघृतपायसैः ॥२९
शुक्लपुष्पैरलङ्कृत्य घृतगुग्गुलधूपितम्।
विप्राणाञ्चार्चनं कुर्याद्दद्याच्छक्त्या च दक्षिणाम् ॥३०
गां महीं कनकञ्चैव स्थापकाय निवेदयेत्।
लक्षणं कारयेद्भक्त्या मन्त्रेणानेन च द्विजः ॥३१
ॐ नमो भगवते तुभ्यं शिवाय परमात्मने।
हिरण्यरेतसे विष्णो विश्वरूपाय ते नमः ॥३२
मन्त्रोऽयं सर्वदेवानां नेत्रज्योतिष्यपि स्मृतः।
एवमामन्त्र्य देवेशं काञ्चनेन विलेखयेत् ॥३३
मङ्गल्यानि च वाद्यानि ब्रह्मघोषं सगीतकम्।
वृद्ध्यर्थं कारयेद् विद्वान् अमङ्गल्यविनाशनम् ॥३४
लक्षणोद्धरणं वक्ष्ये लिङ्गस्य सुसमाहितः।
त्रिधा विभज्य पूजायां लक्षणं स्याद् विभाजकम् ॥ ३५

अब मैं नेत्रों का और संक्षेप से लिंग का भी उद्धरण बतलाऊँगा। सभी ओर सिद्धार्थघृत और पायसों से बलि होनी चाहिए। शुक्ल वर्ण वाले पुष्पों से अलंकृत करके घृत और गूगल से धूपित करना चाहिये। फिर वहाँ पर जो भी विप्रगण हों उनका भी अभ्यर्चन करे तथा शक्ति के अनुसार दक्षिणा देनी चाहिये ॥ २९ ॥ ३० ॥ जो स्थापक हो उसको गौ—भूमि और सुवर्ण को निवेदित करे। द्विज को चाहिये कि भक्ति की भावना से निम्न मन्त्र के द्वारा लक्षण कराना चाहिये। "ओनमः" इत्यादि मन्त्र है जिस का अर्थ है परमात्मा हिरण्यरेता हे विष्णो! आपके लिये नमस्कार है भगवान् शिव आपके लिये नमस्कार है। यह मन्त्र समस्त देवों की नेत्र ज्योति में भी कहा गया है। इस प्रकार से देव को आमन्त्रित करके काञ्चन से विलेखन करना चाहिये। ॥३१॥३२॥३३॥ विद्वान पुरुष का कर्तव्य है कि अमङ्गल का विनाश

करने वाले मङ्गल वाद्य—गीतों के सहित ब्रह्म घोष वृद्धि के लिये कराने चाहिये ॥ ४॥ अब मैं सुसमाहित होकर लिङ्ग के लक्षण का उद्धरण कहूँगा पृथ्वी में तीन प्रकार से विभाग करके लक्षण विभाजक होता है ॥३५॥

लेखात्रयन्तु कर्त्तव्यं यवाष्टान्तरसंयुतम् ।
न स्थूलं न कृशं तद्वत् वक्रं छेदवर्जितम् ॥३६
निम्नं यवप्रमाणेन ज्येष्ठलिङ्गस्य कारयेत् ।
सूक्ष्मास्ततस्तु कर्त्तव्या यथामध्यमकेष्यमेत् ॥३७
अष्टभक्तं ततः कृत्वा त्यक्त्वा भागत्रयं बुधः ।
लम्बयेत्सप्तरेखास्तु पार्श्वयोरुभयोः समाः ॥३८
तावत् प्रलम्बयेद्विद्वान् यावद्भागचतुष्टयम् ।
भ्राम्यते पञ्चभागोर्ध्वं कारयेत्सङ्गमन्ततः ॥३९
रेखयोः सङ्गमे तद्वत् पृष्ठे भागद्वयं भवेत् ।
एवमेतत्समाख्यातं समासाल्लक्षणं मया ॥४०

अष्टयवों के अन्तर से संयुत तीन लेखायें करना चाहिए। न तो अति स्थूल हों और न अत्यन्त कृश ही हों और उसी भाँति वक्र छेद वर्जित नहीं होना चाहिये ॥ ३६ ॥ ज्येष्ठ लिङ्ग का यव के प्रमाण से निम्न कराना चाहिये। इसके उपरान्त सूक्ष्म करने चाहिये और यथा मध्यमक में न्यास करे। बुध पुरुष को चाहिये फिर अष्ट भक्त करके भाग त्रय को त्याग देवे और दोनों पार्श्वों में सप्तसप्त रेखाओं को लम्बमान करे। विद्वान को तब तक प्रलम्बित करना चाहिये जब तक चार भाग होवें। पाँच भाग ऊपर की ओर भ्रामित किये जाते हैं और अन्ततः सङ्ग कराना चाहिये दोनों रेखाओं के सङ्गम में उसी तरह से पृष्ठ में दो भाग होने चाहिये। इस प्रकार से मैंने संक्षेप से लक्षण को बतला दिया है ॥३७—४०॥

१२८—देवप्रतिष्ठा विधि वर्णन (२)

अतः पर प्रवक्ष्यामि मूर्तिपानान्तु लक्षणम् ।
स्थापकस्य समासेन लक्षण शृणुत द्विजाः ! ॥१
सर्वावयवसम्पूर्णो वेदमन्त्रविशारदः ।
पुराणवेत्ता तत्त्वज्ञा दम्भलोभविवर्जितः ॥२
कृष्णसारमये देशे उत्पन्नश्च शुभाकृतिः ।
शौचाचारपरो नित्यं पाषण्डकुलनिस्पृहः ॥३
समः शत्रौ च मित्रे च ब्रह्मोपेन्द्रहरप्रियः ।
ऊहापोहार्थतत्त्वज्ञो वास्तुशास्त्रस्य पारग. ॥४
आचार्य्यस्तु भवेन्नित्य सर्वदोषविवर्जितः ।
मूर्तिपास्तु द्विजाश्चैव कुलीनाऋजवस्तथा ॥५
द्वात्रिंशत् षोडशाथापि अष्टौ वा श्रुतिपारगाः ।
ज्येष्ठमध्यकनिष्ठेषु मूर्तिपाः प्रकीर्तिता ॥६
ततो लिङ्गमथार्चा वा नीत्वा स्नपनमण्डपम् ।
गीतमङ्गलशब्देन स्नपन तत्र कारयेत् ॥७

महर्षि प्रवर सूतजी ने कहा—इससे आगे मैं मूर्तियो के लक्षण बतलाता हूं । हे द्विजगण ! जो मूर्त्तियो की स्थापना करने वाले पुरुष हैं उनके लक्षणो को आप लोग श्रवण करें ॥१॥ स्थापक को किन २ गुणो से सुसम्पन्न होना आवश्यक है—यह बतलाते हुए कहते है जो पुरुष देवों की प्रतिमा की स्थापना करता है वह अपने शरीर के सम्पूर्ण अवयवो से सयुत होना चाहिये—वेदो के मन्त्रो का पण्डित पुराणो का ज्ञाता–तत्त्वो का जानकार—दम्भ, लोभ से रहित भी होना उसका आवश्यक है । सब के कथन का निचोड यही है कि उपर्युक्त गुणो से हीन पुरुष मूर्त्ति स्थापक होने का पात्र ही नही होता है ॥२॥ मूर्त्ति स्थापक कृष्णसारों से परिपूर्ण देशो मे समुत्पन्न हो और शुभ आकृति वाला होना चाहिए । वह

शौच के आचार मे परायण तथा नित्य ही पापण के कुल में स्पृहा न रखने वाला भी होना आवश्यक है ॥३॥ देवमूर्ति का स्थापक पुरुष शत्रु और मित्र दोनों मे समान व्यवहार रखने वाला होवे —ब्रह्मा–विष्णु और शिव का प्रिय हो—ऊहा और अपोह मे के तत्त्वों का ज्ञाता तथा वास्तु शास्त्र का पारगामी विद्वान् होना चाहिए ॥४॥ स्थापना कराने वाला आचार्य्य नित्य ही सभी दोषो से विशेष रूप मे रहित होना चाहिए । जो भी द्विजगण मूर्त्तिप हो वे सभी अच्छे शुद्ध कुलो मे समुत्पन्न और सरल स्वभाव एवं व्यवहार वाले होवें ॥५॥ बत्तीस–सोलह–आठ ऐसी ही संख्या इन द्विजो की होनी चाहिए जो देव प्रतिमा की स्थापना के कर्म कराने मे सम्मिलित हों तथा ये सभी श्रुति के पारगामी पण्डित भी होने चाहिये। ये ज्येष्ठ–मध्यम और कनिष्ठ–इन तीन श्रेणियों मे विभक्त हुआ करते हैं जो भी मूर्त्तिप कहे गये है । ६। इसके अनन्तर वे सब लिङ्ग अथवा अर्चा को लेकर स्नपन मण्डप मे प्राप्त होकर वहा पर गीत मङ्गल की ध्वनियो से स्नपन करावे ॥७॥

पञ्चगव्यकषायेण मृद्भिर्भस्मोदकेन वा ।
शौचं तत्र प्रकुर्वीत वेदमन्त्रचतुष्टयात् ॥८
समुद्रज्येष्ठमन्त्रेण आपोदिव्येति चापरः ।
याना राजेतिमन्त्रस्तु आपोहिष्ठेतिचापरः ॥९
एवं स्नाप्य ततोदेवं पूज्य गन्धानुलेपनैः ।
प्रच्छाद्य वस्त्रयुग्मेन अभिवन्द्योत्युदाहृतम् ॥१०
उत्थापयेत्ततोदेवमुत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते ! ।
अमरजेति च तथान्ये तिष्ठेति चापरः ॥११
रथे प्रहारयेत्वापि धृता शिल्पिगणेन तु ।
आरोप्यच ततो विद्वानाकृष्णेन प्रवेशयत् ॥१२
ततः प्राक्तीर्थ्यां शय्यायां स्थापयेत् कर्बुधः ।
कुशानास्तीर्य पुष्पाणि स्थापयेत् प्राङ्मुखं नत ॥१३

ततस्तु निद्राकलशं वस्त्रकाञ्चनसंयुतम् ।
शिरोभागेतु देवस्य जपन्नेव निधापयेत् ॥१४

वहा पर प्राप्त होकर उन सबका कर्तव्य होता है कि वे सब पञ्च गव्य (गोमूत्र, गोबर, गो दुग्ध, गोघृत, गोदधि) वपद के द्वारा—मृत्तिकाओ से अथवा भस्म एव उदक से चारो निम्न निर्दिष्ट वेद के मन्त्रो के द्वारा शोच सर्व प्रदम करावें। वे चारो मन्त्रो की प्रतीकें ये हैं—'समुद्र ज्येष्ठ' मन्त्र—दूसरा 'आपोहिष्ठा'—मन्त्र—तृतीय 'सोमो राजा'—मन्त्र और चतुर्थ 'आपोहिष्ठा' इत्यादि मन्त्र होते है ॥८, ९॥ इस विधि से देव प्रतिमा का स्नपन कराकर गन्धानुलेपन आदि से पूजा करे और फिर दो वस्त्रो से प्रच्छादन करे एव 'अभिवस्त्र'—इत्यादि मन्त्र का उच्चारण करना चाहिए ॥१०॥ इसके अनन्तर 'उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते'—इत्यादि मन्त्र के द्वारा देव का उत्थापन कराना चाहिये। फिर 'अमूरज'—इत्यादि मन्त्र के द्वारा और 'रथेतिष्ठ'—इत्यादि मन्त्र से रथ मे अथवा ब्रह्मरथ मे जो कि शिल्पिगण के द्वारा वहा पर निर्मित कर प्रस्तुत किया गया है उसमे समारोपित कर विद्वान् पुरुष को चाहिये कि 'आकृष्णेन' इत्यादि मन्त्र के द्वारा उसमे प्रतिमा का प्रवेश करावे ॥११, १२, १३॥ इसके पश्चात् शय्या मे प्रास्तरण करके इस पुरुष को चाहिये कि धीरे से देव प्रतिमा को वहा पर स्थापित करे। कुशाओ का आस्तरण करके प्राङ्मुख होकर फिर पुष्पो की स्थापना करनी चाहिए ॥१३॥ इसके उपरान्त वस्त्र और सुवर्ण से समन्वित निद्रा कलश को निम्न निर्दिष्ट मन्त्र का जाप करते हुए देव प्रतिमा के शिरो भाग मे निधापित करना चाहिये ॥१४॥

आपोदेवीति मन्त्रेण आपोऽस्मान् मातरोऽपि च ।
ततो दुकूलपट्टैस्तु छाद्य नेत्रोपधानकम् ॥१५
दद्याच्छिरसि देवस्य दौशेय वा विचक्षण. ।
मधुनामधिपाभ्यज्य पूजयित्वा यथाक्रमम् ॥१६

आप्यायस्वेति मन्त्रेण यातेरुद्रशिवेति च ।
उपविश्यार्चयेद्देवं गन्धपुष्पैः समन्ततः ॥१७
सित प्रतिसरं दद्यात् वार्हस्पत्येति मन्त्रतः ।
दुकूलपट्टैः कार्पासैर्नानाचित्रैरथापिवा ॥१८
आच्छाद्य देव सर्वत्र च्छत्रचामरदर्पणम् ।
पार्श्वतः स्थापयेत्तत्र वितानपुष्पसंयुतम् ॥१९
रत्नान्योषधयस्तत्र गृहोपकरणानि च ।
भाजनानि विचित्राणि शयनासान्यनानि च ॥२०
अभिरवा शूरमन्त्रेण यथा विभवतो न्ययेत् ।
क्षीर क्षौद्र घृत तद्वत भक्ष्यभोज्यान्य(न्न) पायसैः ॥२१
षड्विधैश्च रसैस्तद्वत् समन्तात् परिपूजयेत् ।
बलि दद्यात् प्रयत्नेन मन्त्रेणानेन भूरिशः ॥२२

"आपो देवी"—इत्यादि मन्त्र से तथा "आपोऽस्मान् मातरोऽपिच"—इत्यादि मन्त्र के द्वारा दुकूल पट्टों से समाच्छादन करके देव प्रतिमा के शिरो भाग मे नेत्रोपधानक अथवा कौशेय देना चाहिये—यह विचक्षण पुरुष का परम कर्त्तव्य है। फिर इसके उपरान्त में मधु और सर्पि से (घृत से) अभ्यंजन करके सिद्धार्थकों के द्वारा पूजा करे। 'आप्यायस्व' इत्यादि मन्त्र से 'यातेरुद्रशिव' इत्यादि मन्त्र के द्वारा वहाँ पर उपविष्ट होकर सब ओर से गन्धाक्षत पुष्पों से देव का अभ्यर्चन करना चाहिये ॥ १५, १६, १७ ॥ 'वार्हस्पत्य'—इत्यादि मन्त्र के द्वारा देव को सित प्रतिसर समर्पित करना चाहिए। दुकूल पट्टों के द्वारा अथवा अनेक प्रकार के कपास से सूती वस्त्रों से सर्वत्र देव प्रतिमा का भली भाँति समाच्छादन करे और वहाँ पर पार्श्व भाग में छत्र-चामर और दर्पण स्थापित करना चाहिए। वहाँ पर पुष्पों से संयुक्त एक वितान निर्मित करावे। रत्न-ओषधियाँ-गृह के अन्य समस्त उपकरण—भाजन—विचित्र शयन—आसन शूर मन्त्र के द्वारा अभिन करके अपने वैभव के

अनुसार इन सभी का न्यास करना चाहिये क्षीर, क्षौद्र घृत, भक्ष्य, भाज्य, अन्न, पायस, छः प्रकार के रस इन सबसे सभी ओर से देव प्रतिमा का पूजन करना चाहिये। फिर निम्न निर्दिष्ट मन्त्र के द्वारा अच्छी तरह से प्रयत्न पूर्वक बलि देना चाहिये ॥१८–२२॥

त्र्यम्बकं यजामहे इति सर्वतः स्थानकंभुवि ।
मूर्तिपान्स्थापयेत्पश्चात्सर्वदिक्षु विचक्षणः ॥२३
चतुरो द्वारपालांश्च द्वारेषु विनिवेशयेत् ।
श्रीसूक्तं पावमानञ्च सोमसूक्तं सुमङ्गलम् ॥२४
तथाच शान्तिकाध्यायमिन्द्रसूक्तं तथैव च ।
रक्षोघ्नञ्च तथा सूक्तं पूर्वतोबह्वृचोजपेत् ॥२५
रौद्रं पुरुषसूक्तञ्च श्लोकाध्याय सशुक्रियम् ।
तथैव मण्लाध्यायमध्यायमध्वर्यु दक्षिणेजपेत् ॥२६
वामदेव बृहत्साम ज्येष्ठसाम रथन्तरम् ।
तथा पुरुषसूक्तञ्च रुद्रसूक्तं सशान्तिकम् ॥२७
भारुण्डानि च सामानि छन्दोगः पश्चिमे जपेत् ।
अथर्वोऽङ्गिरस तद्वन्नीलं रौद्रं तथैव च ॥२८

"त्र्यम्बकं यजामहे"—इत्यादि मन्त्र के द्वारा सब और धीरे से भूमि पर मूर्तियों को स्थापित करे। इसके पश्चात् विचक्षण पुरुष को सभी दिशाओं में द्वारों में चार द्वारपालों को विनिवेशित करना चाहिये। इसके अनन्तर श्रीसूक्त, पावमान सोम सूक्त, सुमङ्गल, शान्ति का ध्याय, इन्द्र सूक्त, रक्षोघ्न सूक्त और पहिले बह्वृचों का जाप करना चाहिये। रौद्र, पुरुष सूक्त, श्लोकाध्याय, सशुक्रिय, माला ध्याय इनका जाप अध्वर्यु दक्षिण दिशा में करना चाहिए ॥२३–२६॥ छन्दों के ज्ञाता को वाम देव, बृहत्साम, ज्येष्ठ साम, रथन्तर, पुरुष सूक्त, रुद्र सूक्त, शान्तिक, भारुण्ड साम ऋचाएं—इन सबका जाप पश्चिम दिशा में करना चाहिए। जो अथर्व वेद का ज्ञाता आत्विज है उसको आङ्गिरस, नील, रौद्र का जाप करना चाहिए ॥२७, २८॥

तथा पराजिता देवी सप्तसूक्तं सरौद्रकम् ।
तथैव शान्तिकाध्यायमथर्वा चोत्तरे जपेत् ॥२६
शिरः स्थाने तु देवस्य स्थापको होममाचरेत् ।
शान्तिकः पौष्टिकंस्तद्वन् मन्त्रैर्व्याहृतिपूर्वकैः ॥३०
पलाशोदुम्बराश्वत्थअपामार्गः शमी तथा ।
हुत्वा सहस्रमेकैकं देवं पादे तु संस्पृशेत् ॥३१
ततो होमसहस्रेण हुत्वा हुत्वा ततस्ततः ।
नाभिमध्य तथावक्षः शिरश्चाप्यालभेत् पुनः ॥३२
हस्तमात्रेषु कुण्डेषु मूर्तिपाः सर्वतोदिशम् ।
समेखलेषुते कुर्युर्योनिवक्त्रेतु चादरात् ॥३३
वितस्तिमात्रायोनिः स्यद्गजोष्ठसदृशी तथा ।
आयताच्छिद्रयुक्तापार्श्वत कलयोच्छ्रिता ॥३४
कुण्डात् कलानुसारेण सर्वतश्चतुरङ्गुला ।
विस्तारेणोच्छ्रयातद्वच्चतुरस्रा समाभवेत् ॥३५

अथवा मनीषी को पराजिता देवी—सप्त सूक्त, रौद्रक और शान्ति का ध्याय का पाठ तथा जाप उत्तर दिशा में करना चाहिए ॥२६॥ देव प्रतिमा के शिर के भाग की ओर स्थापक को होम का समाचरण करना चाहिए और वह होम शान्तिक पौष्टिक व्याहृतियों से युक्त मन्त्रों के द्वारा उसी भाँति करे ॥३०॥ पलाश— ढाक) उदुम्बर (गूलर)—अश्वत्थ (पीपल)—अपामार्ग (औंगा)—शमी (छोंकर) इनकी समिधाओं से एक-एक सहस्र आहुतियाँ देकर देव के चरण में स्पर्श करे ।३१। एक-एक सहस्र आहूतियों से होम करके फिर नाभि के मध्य भाग का—वक्षःस्थल का और शिरका आलभन करना चाहिए ।३२। सब दिशाओं में एक हाथके विस्तार वाले कुण्डोंमें जोकि मेखलाओं में युक्त होने चाहिए और योनियका-वाले हों उनमें बड़े ही आदर के साथ उन मूर्तिपाओं को करना चाहिए । ॥३३॥ उनकी योनि एक वितस्ति (बालिश्त) भर विस्तार वाली गज के

ओष्ठ के तुल्य होनी चाहिए। वह आयत—छिद्र संयुक्त—पार्श्व भाग में कला से उच्छ्रित-कला के अनुसार कुण्ड से सब ओर चार अंगुल वाली-विस्तार उच्छ्रय-चतुरस्र और सम होनी चाहिये ॥३४, ३५॥

वेदीभित्ति परित्यज्य त्रयोदशभिरंगुलैः।
एव नवसु कुण्डेषु लक्षणञ्चैव दृश्यते ॥३६
आग्नेयशाक्रयाम्येषु होतव्यमुदगाननैः।
शान्तयोलोकपालेभ्यो मूर्तिभ्यः क्रमशस्तथा ॥३७
तथा मूर्त्यधिदेवानां होमं कुर्यात्समाहितः।
वसुधा वसुरेता च यजमानो दिवाकरः ॥३८
जलं वायुस्तथासोम आकाशश्चाष्टमः स्मृतः।
देवस्य मूर्तयस्त्वष्टावेताः कुण्डेषु संस्मरेत् ॥३९
एतासामधिपान्वक्ष्ये पवित्रान्मूर्तिनामतः।
पृथ्वी पाति शर्वश्च पशुपश्चाग्निमेव च ॥४०
यजमानं तथैवोग्रो रुद्रश्चादित्यमेव च।
भवोजलं सदा पाति वायुमीशान एव च ॥४१
महादेवस्तथा चन्द्रं भीमश्चाकाशमेव च।
सर्वदेवप्रतिष्ठासु मूर्तिपा ह्येत एव च ॥४२

तेरह अंगुलों से वेदी की भित्ति का परित्याग करके इस प्रकार से नौ कुण्डों में लक्षण दिखलाई देता है ॥३६॥ उत्तर की ओर मुख करने वालों को आग्नेय-शाक्र और याम्य दिशाओं में हवन करना चाहिये तथा क्रम से लोकपालों के लिये एवं मूर्तियों के लिये शान्ति करे तथा मूर्ति के अधिदेवों का होम परम सावधान होकर करे। देव की आठ मूर्त्तियों का नामोल्लेख किया जाता है। वसुधा, वसुरेता, यजमान, दिवाकर, जल, वायु, सोम और आठवाँ आकाश बताया गया है। ये देव की आठ मूर्त्तियाँ होती हैं उनको कुण्डों में संस्मृत करना चाहिये ॥३७, ३८, ३९॥ अब इनके पवित्र अधिदेवों को बतलाता हूँ। उनके नाम और मूर्ति दोनों ही बतलाते हैं। शर्व पृथिवी की रक्षा करते हैं—पशुप अग्नि का रक्षण

करता है। उग्र यजमान की रक्षा करता है—रुद्र आदित्य का—भव जल का और ईशान वायु का संरक्षण किया करता है ॥४०,४१॥ महा देव चन्द्र का रक्षक है तो भीम आकाश की रक्षा किया करता है। सब देवों की प्रतिष्ठाओं में ये ही मूर्त्तिप हुआ करते हैं ॥४२॥

एतेभ्यो वैदिकैर्मन्त्रै र्यथास्वं होममाचरेत् ।
तथा शान्तिघटं कुर्य्यात् प्रतिकुण्डेषु सन्न्यसेत् ॥४३
शतान्ते वा सहस्रान्ते सम्पूर्णाहुतिरिष्यते ।
समपादः पृथिव्यान्तु प्रशान्तात्मा विनिक्षिपेत् ॥४४
आहुतीनान्तु सम्पातं पूर्णकुम्भेषु वै न्यसेत् ।
मूलमध्योत्तमाङ्गेषु देवं तेनावसेचयेत् ॥४५
स्थितश्च स्नापयेत्तेन सम्पाताहुतिवारिणा ।
प्रतियामेषु धूपन्तु नैवद्यञ्चदनोदकम् ॥४६
पुनः पुनः प्रकुर्वीत होमः कार्यः पुनः पुनः ।
पुनः पुनश्च दातव्या यजमानेन दक्षिणा ॥४७
सितवस्त्रैश्च ते सर्वे पूजनीयाः समन्ततः ।
विचित्रैर्हेमकटकै र्हेमसूत्रांगुलीयकैः ॥४८

इनके लिये वैदिक मन्त्रों के द्वारा यथास्व अर्थात् अपने वैभव के और वित्त के अनुसार होम करने का समाचरण करना चाहिए। प्रत्येक कुण्ड में शान्ति घट करे और वहां पर उनका न्यास भली भाँति करना चाहिये ॥४३॥ एक सौ आहुतियों के अवसान में या एक सहस्र आहुतियाँ समाप्त होने पर अन्त में सम्पूर्णाहुति देना अभीप्सित होता है। प्रशान्त आत्मा वाले को समपाद होते हुए विशेष रूप से निक्षेप करना चाहिए। ॥४४॥ आहुतियों का जो सम्पात है उसको पूर्ण कुम्भों में न्यास करे जो कि मूल-मध्यम और उत्तमाङ्ग होते हैं। उससे देवका अवसेचन करना चाहिये। उस सम्पाताहुतियों के जल से स्थित होते हुए स्नापन कराना चाहिये। प्रत्येक यामों में धूप-नैवेद्य-चन्दनोदक समर्पित करे। ऐसा पुनः

१२६–कलियुगीन भावी राजा

शिशुकोऽन्ध्रः सजातीयः प्राप्स्यतीमां वसुन्धराम् ॥१
त्रयोविंशत् समाराजा शिशुकस्तु भविष्यति ॥२
श्रीमल्लकर्णिर्भविता तस्य पुत्रस्तु वै दश ।
पूर्णोत्सङ्गस्ततोराजा वर्षाण्यष्टादशैव तु ॥३
पञ्चाशतं समाः षट्च शान्तकर्णिर्भविष्यति ।
दशचाष्टौ च वर्षाणि तस्य लम्बोदरःसुतः ॥४
आपीतकाद्दशद्वेच तस्य पत्रो भविष्यति ।
दशचाष्टौ च वर्षाणि मेघस्वाति र्भविष्यति ॥५
स्वातिश्च भविता राजा समास्त्वष्टादशैव तु ।
स्कन्दस्वातिस्तथा राजा सप्तैव तु भविष्यति ।।६
मृगेन्द्रस्वातिकर्णस्तु भविष्यतिसमास्त्रयः ।
कुन्तल स्वातिकर्णस्तु भवितष्टौसमानपः ।।७

महर्षि प्रवर सूतजी ने कहा—शिशुकोन्ध्र इस वसुन्धरा को प्राप्त कर लेगा। वह शिशुक तेईस वर्ष पर्यन्त राजा रहेगा। १,२।। फिर उसका पुत्र श्री मल्ल णि दश वर्ष राजा होगा। इसके पश्चात् अट्ठारह वर्ष तक पूर्णोत्सङ्ग इस भूमि पर शासन करेगा ।।३।। पञ्चाशत और छै वर्ष तक शान्तकर्णि राजा होगा। उसका पुत्र लम्बोदर अठारह वर्ष तक राजा होगा। फिर आपीतक उसका पुत्र दश और दो वर्ष तक राजा होगा। अठारह वर्ष तक मेघस्वाति राजा इस मही मण्डल पर राज्य करेगा। इसके अनन्तर अष्टादश वर्ष तक स्वाति इस मही का राजा होगा फिर सात वर्ष पर्यन्त स्कन्दर स्वाति राजा होगा। तीन वर्ष तक महेन्द्र स्वाति कर्ण इस वसुन्धरा पर राज्य करेगा। कुन्तल और स्वाति कर्ण आठ वर्ष तक इस पृथ्वी पर नृप होगा ।।१—७।।

एकसंवत्सरं राजा स्वातिवर्णो भविष्यति ॥८
भवितारिक्तवर्णस्तु वर्षाणि पञ्चविंशति ।

ततः संवत्सरान् पञ्च हालोराजा भविष्यति ॥९
पञ्चमन्दुलकोराजाभविष्यतिसमा नृप ।
पुरीन्द्रसेनो भविता तस्मात्सोम्योभविष्यति ॥१०
सुन्दरः शान्तिकणस्तु अब्दमेक भविष्यति ।
चकोरः स्वातिकणस्तु षण्मासान् वै भविष्यति ॥११
अष्टाविंशतिवर्षाणि शिवस्वातिर्भविष्यति ।
राजा च गौतमो पुत्रोह्यकविंशत्यतोनृपः ॥१२
अष्टाविंशतिसुतस्तस्यसुलोमावैभविष्यति ।
शिवश्रीर्वै सुलोमत्तु सप्त च भवितानृपः ॥१३
शिवस्कन्धशान्तिकर्णाद्भविता ह्यात्मजः समाः ।
नवविंशतिवर्षाणि यज्ञ श्री शान्तिकर्णिकः ॥१४

एक वर्ष तक स्वातिवर्ण इस पृथ्वी का राजा होगा ॥ ८ ॥ छत्तीस वर्ष तक रिक्तवर्ण शासन करेगा । फिर इसके पश्चात् पाँच वर्ष तक हाल राजा होगा । हे नृप ! फिर पञ्च मन्दुलक राजा होगा— पुरीन्द्रसेन और इससे सौम्य नृपाल होगा । सुन्दर शान्तिकर्ण एक वर्ष पर्यन्त इस वसुन्धरा का राजा होगा । चकोर स्वातिकर्ण छँ मास तक नृप होगा ॥९, १०, ११॥ अट्ठाईस वर्ष पर्यन्त शिव स्वाति इस मही मण्डल का नृपति बनेगा । गौतमी का पुत्र राजा इक्कीस वर्ष तक रहेगा। उसका पुत्र सुलोमा अट्ठाईस वर्ष पर्यन्त राजा होगा । उस सुलोम से समुत्पन्न शिवश्री सात वर्ष पर्यन्त नृप रहेगा। शान्तिकर्ण से शिव स्कन्ध आत्मज होगा । उन्नीस वर्ष तक यज्ञ, श्री, शान्तिकर्णिक राजा होंगे ॥१२, १३, १४॥

षडेव भवितास्याद्विजयस्तुसमास्ततः ।
चण्डश्रीः शान्तिकर्णस्तु तस्य पुत्रः समादश ॥१५
सुलोमा सप्तवर्षाणि अन्यस्तेषां भविष्यति ।
एकोनविंशतिह्येते आन्ध्रा भोक्ष्यन्ति वै महीम् ॥१६
तेषां वर्षशतानि स्युश्चत्वारिषष्टिरेव च ।

आन्ध्राणां संस्थिताराज्येतेषांभृत्यान्वयेनृपाः ॥१७
सप्तैवान्ध्रा भविष्यन्ति दशाभीरास्तथा नृपाः ।
सप्तगर्दभिलाश्चापि शकाश्चाष्टादशैव तु ॥१८
यवनाष्टौ भविष्यन्ति तुषाराश्च चतुर्दश ।
त्रयोदश गु(मु) रुण्डाश्च हूणाह्येकोनविंशतिः ॥१९
यवनाष्टौभविष्यन्तिसप्ताशीतिमहीमिमाम् ।
सप्तगर्दभिलाभूयोभोक्ष्यन्तीमांवसुन्धराम् ॥२०
सप्तवर्षसहस्राणि तुषाराणां मही स्मृता ।
शतानि त्रीण्यशीतिश्च शतान्यष्टादशैव तु ॥२१

हे द्विज ! इसके पश्चात् केवल छै वर्ष ही इसका राजा हुआ था । चन्द्रश्री और शान्तिकर्ण उसका पुत्र दश वर्ष तक शासक रहा था । सुलोमा सप्त वर्ष तक होगा फिर उनका अन्त होगा इस तरह से ये इक्कीस आन्ध्र राजा इस मही का भोग करेंगे ॥१५, १६॥ उनके शासन का काल एक सौ वर्ष और चौंसठ होगा आन्ध्रों के राज्य में उनके भृत्यों के वंश में नृप संस्थित होंगे । सात ही आन्ध्र तथा दश आभीर नृप होंगे । सात गर्दभिल भी होंगे तथा अट्ठारह शक होंगे । आठ यवन राजा होंगे और चौदह तुषार नृपति होंगे । तेरह गुरुड राजा होंगे तथा उन्नीस हूण राजा इस मही का शासन करेंगे । इस मही को सत्तासी वर्ष तक आठ यवन भोगेंगे तथा सात गर्दभिल फिर इस वसुन्धरा का उपभोग करेंगे । यह मही सात हजार वर्ष तक तुषारों की बतलाई गई है । तीन सौ अस्सी और अट्ठारह सौ वर्ष तक का समय बताया गया है ॥१७–२१॥

शतान्यर्द्धचतुष्काणि भवितव्यास्त्रयोदश ।
गु(मु रुण्डा वृषलैः सार्धं भोक्ष्यन्ते म्लेच्छसम्भवाः ॥२२
शतानित्रीणिभोक्ष्यन्ते वर्षाण्येकादशैव तु ।
आन्ध्राः श्रीपार्वतीयाश्चतेद्विपञ्चाशतसमाः ॥२३
सप्तषष्टिस्तुवर्षाणि दशाभीरास्तथैव च ।
तेषूत्सन्नेषु कालेन ततः किलकिलानृपाः ।२४

भविष्यन्तीह यवनाधर्मतः कामतोऽर्थतः ।
तैर्विमिश्रा जनपदाआर्यम्लेच्छाश्च सर्वशः ॥२५
विपर्ययेण वर्त्तन्ते क्षयमेष्यन्ति वै प्रजाः ।
लुब्धानृतप्रवाश्चैव भवितारो नृपास्तथा ॥२६
कल्किनानिहताः सर्वे आर्याम्लेच्छाश्चसर्वतः ।
अधार्मिकाश्चयेऽत्यर्थं पाषण्डाश्चैवसर्वशः ॥२७
प्रणष्टे नृपवंशे तु सन्ध्याशिष्टे कलौ युगे ।
किञ्चिच्छिष्टाः प्रजास्ताव धर्मे नष्टेऽपरिग्रहाः ॥२८

डेढ सौ और चार वर्ष तक तेरह होंगे । वृषलो के साथ म्लेच्छों से समुत्पन्न गुरुण्ड इस भूमि का उपभोग करेंगे ॥-२॥ तीन सौ ग्यारह वर्ष तक आन्ध्र नृप इस भूमण्डल का उपभोग करेंगे और श्री पार्वतीय द्विपचाशत वर्ष पर्यन्त इस वसुन्धरा पर शासन करेंगे । उसी भाँति दश आभीर सड़सठ वर्ष तक इसका उपभोग करेंगे । समय आने पर उन सबके उत्पन्न हो जाने पर फिर इस मही मण्डल पर किलकिला नृप होंगे जो यहा पर काम से—अर्थ से और अधर्म से यवन होंगे । उन से मिले हुए जनपद सब और आर्य्य और म्लेच्छ हो जायगे । सब विपर्यय से बरताव करेंगे और प्रजा क्षय को प्राप्त हो जायेगी । राजा लोग आम तौर पर बडे ही लालची तथा मिथ्या भाषण करने वाले हो जायगे । फिर ये सब आर्य तथा म्लेच्छ सब ओर से कल्कि के द्वारा निहत होंगे । जो भी उस समय मे अधार्मिक और अत्यन्त ही पाषण्डी होंगे वे सब निहत हो जायगे । इस तरह से नृपो के वंश के प्रनष्ट हो जाने पर और कलियुग के सन्ध्या भाग के बाकी रहने पर कुछ थोडी सी प्रजा के जन शिष्ट रहेंगे और वे भी धर्म के नष्ट होजाने पर परिग्रह शून्य होंगे ॥२३-२८॥

असाधवो ह्यसत्वाश्च व्याधिशोकेन पीड़िताः ।
अनावृष्टिहताश्चैव परस्परवधेप्सवः ॥२९
अशरण्याः परित्रस्ताः सङ्कट घोरमाश्रिताः ।
सरित्पर्वतवासिन्याभविष्यन्त्यखिलाः प्रजाः ॥३०

पत्रमूलफलाहाराश्चीरपत्राजिनाम्बराः ।
वृत्त्यर्थमभिलिप्सन्त्यश्चरिष्यन्ति वसुन्धराम् ॥३१
एवं कष्टमनुप्राप्ता. प्रजाकाले युगान्तके ।
नि.शेषास्तु भविष्यन्ति सार्द्धं कलियुगेन तु ॥३२
क्षीणे कलियुगे तस्मिन् दिव्ये वर्षसहस्रके ।
ससन्ध्यांशे मुनिः शेषे कृत तु प्रतिपत्स्यते ॥३३
एव वशक्रमः कृत्स्न कीर्तितो यो मया क्रमात् ।
अतीता वर्त्तमानाश्च तथैवानागताश्च ये ॥३४
महापद्माभिषेकात्तु यावज्जन्मपरीक्षितः ।
एवं वर्षसहस्रन्तु ज्ञेय पञ्चाशदुत्तरम् । ३५

प्रजाजनो मे सभी असाधु वृत्ति वाले—परत्व से हीन तथा व्याधियों एवं शोकों से उत्पीडित होंगे। अनावृष्टि मे अर्थात् वर्षा के पूर्ण तया अभाव होने से सब लोग हत होंगे और सब लोग परस्पर मे वध करने की इच्छा रखने वाले हो जायेंगे। सब रक्षकों से रहित—भयभीत तथा परम घोर सङ्कट को प्राप्त करने वाले—मही, तरु और पर्वतो मे निवास करने वाले सभी प्रजाजन उस भीषण एव महान् दारुण समय मे हो जायेंगे। भोजन के अभाव मे सब लोग पर्ण-मूल और फलों के आहार करने वाले होंगे तथा चीर पत्र-चर्म के वस्त्र धारण किया करेंगे। सब लोग अपनी वृत्ति के प्राप्त करने की इच्छा से सम्पूर्ण पृथ्वी पर इधर-उधर घूमते फिरेंगे। इस प्रकार से युग के अन्त करने वाले प्रजा के समय मे सभी इस कलियुग के साथ ही निःशेष हो जायेंगे। उस कलियुग के क्षीण हो जाने पर दिव्य वर्ष सहस्र वाले सन्ध्यांश के समय मे जो कि उस समय ये मुनि.शेष है कृतयुग ही प्राप्त हो जायगा ॥२६, ३०॥ ॥३१, ३२, ३३॥ इस रीति से मैंने यह वश का क्रम पूर्ण रूप से तथा क्रम से आप सब लोगो के सामने कह दिया है। इस वश क्रम मे जो राजा लोग पहिले हो चुके हैं वे सब, वर्त्तमान काल मे जितने भी विद्यमान हैं वे सब तथा जो भविष्य मे होंगे वे सभी कीर्तित कर दिये गये

है। महा पद्म के अभिषेक से जब तक परीक्षित राजा का जन्म था एक सहस्र और आगे पचासन् वर्ष समझने चाहिए ॥३४, ३५॥

पौलोमास्तु तथान्ध्रास्तु महापद्मान्तरे पुनः।
अनन्तरशतान्यष्टौ षट्त्रिंशत्तु समास्तथा ॥३६
तावत्कालान्तरं भाव्यमान्ध्रान्तादापरीक्षितः।
भविष्येते प्रसङ्ख्याताः पुराणज्ञैः श्रुतर्षिभिः ॥३७
सप्तर्षयस्तदाप्राशु प्रदीप्तेनाग्निना समाः।
सप्तविंशतिभाव्यानां आन्ध्राणान्तुयदापुनः ॥३८
सप्तर्षयस्तु वर्त्तन्ते यत्र नक्षत्रमण्डले।
सप्तर्षयस्तु तिष्ठन्ति पर्य्यायेण शतं शतम् ॥३९
सप्तर्षीणामुपर्य्य तत् स्मृतं वै दिव्यसंज्ञया।
समादिव्या स्मृताः षष्टिर्दिव्याब्दानि तु सप्तभिः ॥४०
एभिः प्रवर्तते कालोदिव्यः सप्तर्षिभिस्तुवः।
सप्तर्षीणाञ्च यो पूर्वौ दृश्येतेह्युदितौनिशि ॥४१
तयोर्मध्ये तु नक्षत्रं दृश्यते यत्समं दिवि।
तेन सप्तर्षयोयुक्ता ज्ञेया व्योम्नि शतं समाः ॥४२

फिर पौलोम और आन्ध्र उस महा पद्मान्तर मे अनन्तर आठ सौ छत्तीस वर्ष पर्य्यन्त समय था। तब तक परीक्षित नृप से लेकर आन्ध्रो के अन्त तक होगा। श्रुतर्षि पुराणो के ज्ञाताओ ने वे सब भविष्य मे समाख्यात किये हैं ॥३६, ३७॥ उस समय मे प्रांशु प्रदीप्त अग्नि के समान सप्तर्षिगण ये होने वाले सत्ताईस आन्ध्रो के जब फिर सप्तर्षिगण हैं जिस नक्षत्र मण्डल मे पर्य्याय (बारी) से सौ-सौ सप्तर्षिगण स्थित रहा करते हैं। सप्तर्षियो के ऊपर मे जो बताये गये हैं वे दिव्य संज्ञा से दिव्य वर्ष ही कहे गये हैं। वे दिव्य वर्ष साठ और सात के साथ हैं॥३८, ३९, ४०॥ इनसे सप्तर्षियो से दिव्य काल प्रवर्त्त होता है। सप्तर्षियो के जो दो पूर्व मे होने वाले निशा मे उदित दिखलाई देते हैं उन दोनो के मध्य मे जो

नक्षत्र सम दिव्लोक में दिखलाई देता है उससे व्योम में सौ वर्ष तक युक्त सप्तर्षिगण जानने के योग्य हैं ॥४१, ४ ॥

नक्षत्राणामृषीणाञ्च योगस्यैतन्निदर्शनम् ।
सप्तर्षयो मघायुक्ताः काले पारिक्षिते शतम् ॥४३
ब्राह्मणस्तु चतुर्विंशा भविष्यति शतसमाः ।
ततः प्रभृत्यय सर्वोलोकोऽव्यापत्स्यतेभृशम् ॥४४
अनृतोपहता लुब्धा धर्मतः कामतोऽर्थतः ।
श्रौतस्मार्त्तेति शिथिले नष्टवर्णाश्रमे तथा ॥४५
सङ्कर दुर्बलात्मान. प्रतिपत्स्यन्ति मोहिताः ।
ब्राह्मणाः शूद्रयोनिस्था शूद्रा वै मन्त्रयोनय. ॥४६
उपस्थास्यन्ति तान् विप्रास्तदर्थमभिलिप्सवः ।
क्रमेणैव च दृश्यन्ते स्ववर्णान्तरदायकम् ॥४७
क्षयमेव गमिष्यन्ति क्षीणशेषा युगक्षये ।
यस्मिन्कृष्णोदिव यातस्तस्मिन्नेव तदाहनि ॥४८
प्रतिपन्न कलियुग प्रमाण तस्य मे शृणु ।
चतु शतसहस्रन्तु वर्षाणां वै स्मृत बुधैः ॥४९

नक्षत्रों के और ऋषियों के योग का यह निदर्शन है। पारीक्षित काल में सौ मघा से युक्त सप्तर्षि गण हैं। सौ वर्ष तक चौबीस ब्राह्मण होंगे। तब से लेकर यह सब लोक अत्यन्त ही अधिक आपत्ति को प्राप्त होगा। धर्म से और काम से हीन-अनृत से उपहत-लुब्ध लोग होंगे। श्रौत और स्मार्त्त धर्म्म एक दम शिथिल हो जाने पर वर्णों और आश्रमों के नष्ट होने पर दुर्बल आत्मा वाले परम मोह के प्राप्त हुए लोग सङ्करता को प्राप्त हो जायेंगे ब्राह्मण लोग शूद्र योनियों में स्थित हो जायेंगे और जो शूद्र होवे वे मन्त्रयोनि वाले हो जायेंगे ॥४३-४६॥ उसके अर्थ के जानने की इच्छा वाले विप्र गण उन शूद्रों के समीप में समुपस्थित हुआ करेंगे। इसी क्रम से दिखलाई देंगे। अपने वर्ण के अन्तर को देने वाले युग के क्षय में क्षीण शेष सब क्षय को ही प्राप्त हो जायेंगे। जिस दिन

मे भगवान् श्री कृष्ण दिवलोक मे अन्तर्हित होकर चले गये थे उसी समय मे और उस ही दिन मे यह कलियुग प्रतिपन्न हो गया था। उसका प्रमाण अब आप मुझसे श्रवण करिये। बुध जनो के द्वारा चार सौ सहस्र वर्ष अर्थात् चार लाख बताया गया है ।।४७, ४८, ४९।।

चत्वार्यष्टसहस्राणि सङ्ख्यात मानुषेण तु।
दिव्य वर्षसहस्रन्तु तदासङ्ख्या प्रवर्तते ।५०
नि शेषेतु सदा तस्मिन् कृत वै प्रतिपत्स्यते।
ऐलश्चेक्ष्वाकुवंशश्च सहदेव· प्रकीर्त्तिता ।५१
इक्ष्वाको· सस्मृत क्षत्र सुमित्रान्तभविष्यति।
ऐल क्षत्र समाक्रान्त सोमवशविदोविदुः ।।५२
एते विवस्वत पुत्रा कीर्तिताः कीर्तिवर्धनाः।
अतीता वर्तमानाश्च तथैवानागताश्च ये।५३
ब्राह्मणा क्षत्रिया वैश्यास्तथा शूद्राश्च वै स्मृताः।
वैवस्वतेऽन्तरे तस्मिन् स वंशः समाप्यते ।५४
देवापि पौरवोराजा ऐक्ष्वाकोयश्च ते मत।
महायोगबलोपेतौ कलापग्रामसश्रितौ ।।५५
एतौ क्षत्रप्रणेतारौ नववशे चतुर्युगे
सुवर्चा मनपुत्रस्तु ऐक्ष्वाकाद्यो भविष्यति ।।५६

मानुष ने बत्तीस हजार वर्ष सङ्ख्यात किया है। उस समय मे दिव्य सहस्र वर्ष की सङ्ख्या प्रवृत्त होती है ।।५०।। उस समय मे उस कलियुग के नि शेष हो जाने पर ही कृतयुग प्राप्त हो जायगा। ऐल और सहदेव इक्ष्वाकु वश प्रकीर्तित किये गये है। इक्ष्वाकु का सस्मृत क्षत्र सुमित्र के अन्त तक होगा। ऐल क्षत्र समाक्रान्त को सोम वश के वेत्ता लोग जानते है। ये सब विवस्वान् के कीर्ति के वर्धन करने वाले पुत्र कीर्तित किये गये हैं जो व्यतीत हो चुके है—वर्तमान काल मे विद्यमान हैं तथा जो अब तक अनागत हैं अर्थात् भविष्य मे होने वाले हैं ।।५ ।। ।।५२, ५३।। ब्राह्मण–क्षत्रिय–वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण कहे गये है।

उस वैवस्वत मन्वन्तर में यह वंश समाप्त हो जाया करता है ॥ २४ ॥ देवापि और पौरव राजा जो आप ऐक्ष्वाक मानते हैं। ये दोनों महान् योग बल से समुपेत थे तथा कलाप ग्राम में आश्रय ग्रहण करने वाले थे। ये दोनों ही नवविंश चतुर्युग में क्षत्र के प्रणयन करने वाले थे। मनु का पुत्र सुवर्चा ऐक्ष्वाकों में सब से आदि में होने वाला होगा। ५५, ५६॥

नवविंशे युगेसो वै वंशस्यादिर्भविष्यति।
देवापिपुत्रः सत्यस्तु ऐलानां भविता नृपः ॥५७
क्षत्रप्रवर्तकावेतौ भविष्येतु चतुर्युगे।
एवं सर्वेषु विज्ञेयं सन्तानार्थन्तु लक्षणम् ॥५८
क्षीणे कलियुगेचैव तिष्ठन्तीह कृते युगे।
सप्तर्षयस्तु तैः सार्धं मध्ये त्रेतायुगे पुनः ॥५९
बीजार्थं वै भविष्यन्ति ब्रह्मक्षत्रस्तु वै पुनः।
एवमेवतु सर्वेषु तिष्ठत्न्तेष्वन्तरेषु च ॥६०
सप्तर्षयोनृपैः सार्द्धं सन्तानार्थं युगे युगे।
एवं क्षत्रस्य चोत्सेधः सम्बन्धोवद्विज स्मृतः ॥६१
मन्वन्तराणां सन्ताने सन्तानादश्रुतोस्मृताः।
अतिक्रान्तयुगार्चैवब्रह्मक्षत्रस्यसम्भवाः ॥६२
यथा प्रशान्तिस्तेषां वै प्रकृतीनां यथाक्षयः।
सप्तर्षयो विदुस्तेषां दीर्घायुस्त्व क्षयोदयौ ॥६३

नवविंश युग में वह वंश का आदि होगा। देवापि का पुत्र सत्य ऐलों का नृप होगा। भविष्य चतुर्युग में ये दोनों क्षत्र के प्रवर्तक होंगे। इसी प्रकार से सब में समझ लेना जान लेना चाहिए। सबका समान अर्थ वाला लक्षण है ॥५०, ५ ॥ कलियुग के क्षीण हो जाने पर कृत युग में सप्तर्षिगण स्थित रहा करते हैं। मध्य में त्रेता युग में पुनः उनके साथ रहते हैं ॥५ ॥ पुनः बीज के लिये वे होंगे। पुनः ब्रह्म और क्षत्र होंगे। इस प्रकार से सब स्थित अन्तरों में युग युग में सन्तान के लिये नृपों के साथ में सप्तर्षिगण होंगे। इस तरह से क्षत्र का उत्सेध द्विजों के साथ सम्बन्ध कहा गया है। मन्वन्तरों के सन्तान में सन्तान श्रुति से कहे गये

हैं। अतिक्रान्त युग वाले ब्रह्म और क्षत्र के सम्भव बताये गये हैं।६०-६२।
जिस प्रकार से उनकी प्रशान्ति और जिस तरह से प्रकृतियों का क्षय, ये
दोनों क्षय और उदय सप्तर्षिगण उनके दीर्घायुष्ट्व को जानते हैं॥ ६३॥

एतेन क्रमयोगेन ऐला इक्ष्वाकवो नृपाः।
उत्पद्यमानास्त्रेतायां क्षीयमाणः कलौ युगे ॥६४
अनुयान्ति युगाख्यान्तु यावन्मन्वन्तरक्षयम्।
जामदग्न्येन रामेण क्षत्रेनिरवशेषिते ॥६५
रिक्तेय वसुधासर्वा क्षत्रियैर्वसुधाधिपैः।
द्विवंशकरणं सर्वं कीर्तयिष्ये निबोध मे ॥६६
ऐलश्चेक्ष्वाकुवंशश्च प्रकृतिं परिचक्षते।
राजानः श्रेणिबद्धाश्च तथान्ये क्षत्रिया भुवि ॥६७
ऐलवंशास्तु भूयांसो न तथेक्ष्वाकवो नृपाः।
एष मेकशतं पूर्णं कुलानामभिरोचते ॥६८
तावदेव तु भोजानां विस्ताराद् द्विगुणं स्मृतम्।
भोजानां द्विगुणं क्षत्रं चतुर्द्धा तद्यथातथम् ॥६९
ते ह्यतीताः स नामनो ब्रुवतस्तान्निबोध मे।
शतं वै प्रतिविन्ध्यानां शतनागाः शतहयाः ॥७०

इस क्रम के योग से ऐल और इक्ष्वाकु नृप त्रेता में उत्पद्यमान होते हैं और कलियुग में क्षीयमाण हुआ करते हैं।६४॥ जब तक मन्वन्तर का क्षय होता है युगाख्या को अनुमान किया करते हैं। जामदग्नि (परशुराम) के द्वारा समस्त क्षत्रियों के निरवशेषित होने पर इस सम्पूर्ण वसुधा के स्वामी क्षत्रियों से यह समस्त वसुन्धरा रिक्त हो गई थी। सब द्विवंश करण को मैं कीर्तित करूँगा। उसे अब आप लोग मुझसे समझ लेवें।६५-६६। ऐलवंश और इक्ष्वाकु वंश प्रकृति के अनुकूल होते हैं। श्रेणीबद्ध राजा लोग तथा अन्य भूमण्डल में क्षत्रियगण हैं। ऐलवंश वाले बहुत अधिक हैं और उस तरह से इक्ष्वाकु के वंश वाले नृप नहीं हैं। इन कुलों के पूर्ण एकशत अभिरोचित होता है। इतना ही विस्तार से भोजों का द्विगुण कहा॥

गया है। भोजों का द्विगुण शत यथातथ है।६८-६६। ये सब अतीत होगये हैं। उनके नामों को बतलाने वाले मुझसे आप लोग ज्ञान प्राप्त कर लेवें। एकसौ प्रतिवन्ध्यो के थे। सौ नागों के थे और एकशत हय थे ।।७०।।

शतमेक धार्तराष्ट्रा ह्यशीतिर्जनमेजयाः ।
शतं वै ब्रह्मदत्तानां वीराणां कुरव शतम् ।।७१
ततः शतञ्च पञ्चालाः शतं काशिकुशादयः ।
तथापरे सहस्रे द्वे ये नीपाः शशविन्दवः ।।७२
इष्टवन्तश्च ते सर्वे सर्वे नियुतदक्षिणाः ।
एवं राजर्षयोऽतीताः शतशोऽथ सहस्रशः ।।७३
मनोर्वैवस्वतस्यास्मिन्वर्तमानेऽन्तरे विभो ।
तेषां तु निधनोत्पत्तौ लोकसंस्थितयः स्थिताः ।।७४
न शक्यो विस्तरस्तेषां सन्तानस्य परस्परम् ।
तत्पूर्वापरयोगेन वक्तुं वर्षशतैरपि ।।७५
अष्टाविंशसमाख्याता गता वैवस्वतेऽन्तरे ।
एते देवगणैः सार्द्धं शिष्टा ये तान्निबोधत ।।७६
चत्वारिंशत्त्रयश्चैव भविष्यास्ते महात्मनः ।
अवशिष्टा युगाख्यास्ते ततो वैवस्वतो ह्ययम् ।।७७

एकशत धृतराष्ट्र थे। अस्सी जन्मेजय थे। ब्रह्मदत्तो के एक शत थे जो कि महावीर हुए थे। कुरुगण शत थे।।७१।। पञ्चाल एक शत थे और काशि कुशादिक एक सौ थे। जो नीप शशविन्दु थे उसी भाँति दूसरे दो सहस्र थे।।७२।। वे सब इष्टवान् थे और सभी नियुत दक्षिणा वाले थे। इस प्रकार से राजर्षिगण सैकड़ों तथा सहस्रों की सख्या में अतीत हो चुके हैं। ये सब विभु वैवस्वत मनु के वर्त्तमान अन्तर मे थे। उनके निधन और उत्पत्ति मे लोकों की संस्थितियाँ स्थित थीं। उनके सन्तान का परस्पर में विस्तार उनके पूर्वापर योग से एकसौ वर्ष में भी कहा नहीं जा सकता है।।७३-७५।। ये अट्ठाईस वैवस्वत मन्वन्तर मे समाख्यात किये गये हैं। ये देवगणों के साथ मे जो शिष्ट हैं उनको भी समझलो ७६। चालीस और तीन ये महान् आत्मा वाले होने वाले हैं। वे अवशिष्ट युगाख्य हैं उसके पश्चात् यह वैवस्वत है।७७

एतद्वः कीर्तितं सम्यक् समासव्यासयोगतः ।
पुनरुक्तं बहुत्वात्तु न शक्यविस्तरेण तु ॥७८
उक्ता राजर्षयो येतु अतीतास्ते युगैः सह ।
ये ते ययातिवंश्यानां ये च वंशा विशाम्पते ॥७९
कीर्तिता द्युतिमन्तस्ते य एतान् धारयेन्नरः ।
लभते स वरान्पञ्चदुर्लभानिहलौकिकान् ॥८०
आयुः कीर्ति धनं स्वर्गं पुत्रवांश्चाभिजायते ।
धारणाच्छ्रवणाच्चैव परं स्वर्गस्य धीमतः ॥८१

यह संक्षेप और विस्तार के योग से भली भाँति आपको बतला दिया है और फिर अधिक होने के कारण विस्तार के साथ बतलाया नहीं जा सकता है । जो राजर्षिगण बतलाये गये हैं वे सब युगो के साथ अतीत हो गये हैं वे जो ययाति के वंश में होने वाले हैं और जो विशाम्पति के वंश में हैं वे द्युतिमान् सब कीर्तित कर दिये गये हैं इनको जो नर धारण करता है वह पाँच लौकिक दुर्लभ वरों को प्राप्त किया करता है - आयु, कीर्ति, धन, स्वर्ग और पुत्रवान् अभिजात होता है । उस धीमान् को इनके धारण करने से, श्रवण करने से स्वर्ग में परम पद प्राप्त हुआ करता है॥७८-८१॥

एतद्वः कथितं सर्वं यदुक्तं विश्वरूपिणा ।
मात्स्यं पुराणमखिलं धर्मकामार्थसाधनम् ॥८२
एतत्पवित्रमायुष्यमेतत्कीर्तिविवर्धनम् ।
एतत्पवित्रं कल्याणं महापापहरं शुभम् ॥८३
अस्मात् पुराणादपि पादमेकं पठेत्तु यः सोऽपि विमुक्तपापः।
नारायणाख्यं पदमेति नूनमनङ्गवद्दिव्यसुखानिभुङ्क्ते ॥८४

यहाँ तक विश्व स्वरूप भगवान् मत्स्य का कहा हुआ पुराण कह दिया गया जो समस्त धर्म, अर्थ, काम का सिद्ध करने वाला है ॥८२॥ यह पवित्र महा पुराण आयु और कीर्ति की वृद्धि करने वाला और परम कल्याणजनक है । बड़े से बड़े पाप भी इसके द्वारा दूर हो जाते हैं ॥८३॥ जो कोई इस पुराण का एक श्लोक भी पढ़ेगा वह पाप से विमुक्त हो जायगा और भगवान् की कृपा से देवताओं के समान दिव्य सुखों का उपभोग करेगा ॥८४॥ ॥ मत्स्य-पुराण समाप्त ॥